THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180918

UNIVERSAL
LIBRARY

हिंदी काव्य-धारा

[हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपना नाता सिर्फ संस्कृतके कवियोंसे जोड़े रक्खा जिससे हिंदी साहित्यके ऐतिहासिक विकासकी यह महत्त्वपूर्ण कड़ी काव्य-परंपरासे टूटकर अलग जा पड़ी · · · · · · बीचकी पाँच सदियोंके अपभ्रंश-काव्योंका थोड़ा-सा भी अनुशीलन हमें लाभ ही पहुंचायेगा · · · · · · यह न केवल हिंदीकी ही, बल्कि बंगला - गुजराती - मराठी - सिंधी - उड़िया - पंजाबी - राजस्थानी - मगही - मैथिली-भोजपुरी आदि भाषाओंकी समिलित निधि है, सिद्ध-सामत-युगीन जन-साहित्यकी अवहेलना हमारे लिए परम हानिकर होगी ।]

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल
इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४५

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

अवतरणिका

इस संग्रहमें कवियोंकी अधिकसे अधिक कविताओंके देनेका निश्चय किया गया; ऐसी अवस्थामें एक-एक कविकी अलग-अलग आलोचना संभव नहीं। इसीलिए हमने एक-एक काव्य-युगके समझनेके लिये उसकी पृष्ठ-भूमि दे देने पर ही संतोष किया है।

सबसे पहले सवाल आता है इस युग——सिद्ध-सामन्त-युग——के कवियोंकी भाषाके बारेमें।

१. कवियोंकी भाषा

हमारे इस युग (७६०-१३०० ई०)की भाषा और आजकी भाषामें काफी अन्तर है, यह हम मानते हैं, तो भी हम बतलायेंगे, कि मूलतः वह भाषा और आजकी भाषा एक है। इस युगमें भी सरहपा (७६० ई०) और राजशेखर-सूरि (१३०० ई०)के बीचकी पाँच सदियोंमें भाषा अचल नहीं बनी रही। वस्तुतः दुनियामें कोई चीज अचल रह ही नहीं सकती। वहाँ यदि कोई अचल है, तो यही परिवर्त्तनका नियम। पीढ़ीके बाद पीढ़ी आती गई और भाषा भी उसके साथ बदलती गई। यदि हम सत्तर बरसकी दादीकी भाषाको ही देखें, तो उसमें पोतीकी भाषामें परिवर्त्तन साफ दीख पड़ेगा। बोल-चालकी भाषाको तो छोड़िये, लेखबद्ध भाषा——जिसे छप जानेसे हम बाज वक्त अचल समझनेकी गलती करते हैं——में भी परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है; इसे हम भारतेन्दु और राजा लक्ष्मणसिंहकी भाषामें १९४४ की भाषाकी तुलना करके आसानीसे देख सकते हैं। यदि आधी शताब्दीमें इतना अन्तर हो सकता है, तो सरहपा और राजशेखरके बीचकी पाँच शताब्दियोंने भाषामें काफी अन्तर डाला है, यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

पाँच शताब्दियोंमें कितना अन्तर हुआ, इसे हम आसानीसे समझ सकते; यदि कवियोंके हाथके लिखे या उनके समकालीन ग्रन्थ हमारे पास होते। मुश्किल यह है, कि हमारे पास जो हस्तलिखित प्रतियाँ पहुँची हैं, वह कई-कई शताब्दियों बाद लिखी गई थीं। यह भाषा संस्कृतकी तरह व्याकरण द्वारा दृढ़बद्ध कोई मृत-भाषा नहीं थी। इन हस्तलिखित प्रतियोंके लिखनेवाले काव्योंके समझने

और रसास्वादनके लिये लिखते-लिखवाते थे; और जब किसी शब्दके पुराने रूपको कुछ अपरिचित-सा हुआ देखते, तो उसे नवीन रूपमें लिख डालते। इस तरह हस्तलिखित प्रतियोमें कवि-कालीन भाषासे परिवर्त्तन हो गया। फिर वे प्रतियाँ यदि किसी "नीम-हकीम खतरा-जान" सम्पादकके हाथमें पड़ गईं, तो क्या गति बनी, इसे मुनि जिनविजय जीके शब्दोंमें कहे तो—"जो कोई एवी जूनी कृति परिमाणमां वधारे लोक-प्रिय बनी होय, तेवी भाषा रचनामा जुदा जुदा जमानाना अनेक जातनां रूपो अने पाठ-भेदो उमेराई ते वधारे अनवस्थित रूप धारण करे छे। अने साथे कोई भाषा-तत्वानभिज्ञ संशोधक साक्षरने हाथे जो तेना जीर्ण-देहनू कायाकल्प थई जाय, तो तछन नूतन रूप प्राप्त करी ले वे।"

"आवी जूनी कृतिओंनू मूल-स्वरूप मेलववा माटे अधिक संख्यामां अने जेम वने तेम बधारे जूनी लखेली प्रतिओं मेलववी जोइये, अने तेमना सूक्ष्म अवलोकन अने पृथक्करणना आधारे पाठ-विचारणा थवी जोइये। आ पद्धतिए कार्य करवाथीज आवी प्राचीन कृतिओंनो आदर्शभूत पाठोद्धार थई शके, अने कर्त्तानी शुद्ध-भाषानो परिचय मली सके।"

यह तो हस्त-लिखित प्रतियोंके सपादनमें कितनी सावधानीकी जरूरत है, यह बात हुई।

इस सग्रहमें इन पुराने कवियोंकी कविताओंके जो नमूने दिये गये है, उनको एक बार देखते ही पाठक समझनेमें असमर्थ हो कह पड़ेगे, कि यह तो हिन्दी-भाषा है ही नही। इसीलिए यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता है, कि वह उससे भी कही अधिक हिन्दी-भाषा है, जितनी कि आजकी मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली। आपको जो दिक्कत हो रही है, वह दादी (पाली)की इस प्रतिज्ञा हीके कारण, कि उनके पास कोई शुद्ध संस्कृत—तत्सम—शब्द फटक नही सकता।

दादीकी इस प्रतिज्ञाको चाहे बुढ़भस कह लीजिए, उनके यहाँ गजको गय बोला जायगा; लेकिन गजेन्द्रकी जगह गयंद तो अब भी आप सुनते है; मृगांक (चंद्र)के स्थान पर मयंक अब भी प्रयुक्त होता है। इस भाषाके सम-

भनेमें जो दिक्कत होती है, वह इसी संस्कृत-रूपके पूरे बायकाट और एकमात्र तद्भव—अपभ्रंश—रूपके प्रचार हीके कारण।

आप जैसे ही तद्भव "मयंक" को तत्सम (मृगांक) रूप देनेकी कुंजी पा जायँगे, वैसे ही यह भाषा आपके लिए उतनी ही आसान हो जायेगी जितनी सूर और तुलसीकी। आपके लिए यह काम हमने आमने-सामनेके पृष्ठोंपर तद्भव (मूल)-भाषा और तत्सम-भाषा (छाया) देकर कर दिया है। आप अपने किसी मित्रको सामनेका पृष्ठ पढनेके लिए कह कर यदि मूलभाषाकी पंक्तियोंको देखते जायँ तो खुद समझने लग जायेंगे कि यह भाषा संस्कृत-प्राकृत नही, हिन्दी है।

आपने सुन रक्खा होगा, कि इस भाषाको अपभ्रंश कहते है, शायद इससे आप समझने लगे होंगे, कि तब तो यह हिन्दीसे जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइये, इसका दूसरा नाम "देशी" भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते है, कि इसमें संस्कृत शब्दोके रूप भ्रष्ट नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—है, इसलिए संस्कृत-पंडितोंको ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दोंका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना—अपभ्रष्ट होना—दूषण नही भूषण है; इससे शब्दोंके उच्चारणमें ही नहीं अर्थमें भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता आती है। "माता" संस्कृत शब्द है, उसका "मातु", "माई", और "मावो" तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिए था। खेद है यहाँ भी कितने ही "नीम-हकीमों" ने शुद्ध संस्कृत "माता" को ही नही लिया, बल्कि उसमें "जी" लगाकर "माताजी" बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नही भूषण था।

कवियोंकी भाषा पर विचार करते हुए हम तत्कालीन साधारण बोलचाल-की भाषापर चले गए, लेकिन हमें फिर सिर्फ साहित्यिक भाषापर विचार करना है। पाँच सदियोंके जिन कवियोंकी कृतियोंका हमने यहाँ संग्रह किया है, वह दो चार जिलेके बराबर किसी छोटेसे प्रदेशके रहनेवाले नही थे। जहाँ सर-हपा और शबरपा बिहार-बंगालके निवासी थे, वहां अब्दुर्रहमानका जन्म मुल्तान-में हुआ था। स्वयंभू और कनकामर शायद अवधी और बुन्देली, क्षेत्र—युक्त

प्रान्त—के थे, तो हेमचंद्र और सोमप्रभ गुजरातके। और रसिक तथा आश्रयदाता होनेके कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद)का भी इस साहित्यके सृजनमे हाथ रहा है।

इस प्रकार हिमालयसे गोदावरी और सिधसे ब्रह्मपुत्र तकने इस साहित्य-के निर्माणमे हाथ बँटाया है। यह भाषा सस्कृतकी तरह ही मृतभाषा नही थी, यह हम कह आये है। साहित्यकी भाषा भी कोई मूल बोलचालवाली भाषा होनी चाहिए, और वह भाषा जरूर एक परिमित क्षेत्रकी मातृभाषा हो सकती है। स्वयभूकी भाषाकी क्रियाओं और कितने ही कृजीके शब्दोको देखनेसे वह अवधीके सबसे नजदीक मालूम होती है।* यद्यपि ऐसा कहनेसे बहुत दिनोसे चली आई इस धारणाके हम खिलाफ जा रहे है, कि अपभ्रश साहित्य सौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रशों हीमे लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमे वही कहनेके लिए मजबूर करती है। हाँ, इसका यह मतलब नही कि और भाषाओके विशेष शब्द उसमे नही है। 'चगा' ("अच्छा") शब्द का बहुत अधिक प्रचार अब पजाबी और मराठीमें ही रह गया है, लेकिन हमारे सामने जो भाषा है, उसमे इसका खूब प्रयोग हुआ है। "थाक" (रहना) जिस अर्थ मे यहा प्रयुक्त हुआ है, वह अब बगलामे ही मिलता है। 'मेल्ही' (छोडना) अब राजपूतानामे ही बोली जाती है। 'ढुक' (देखना) अब सिर्फ बुन्देली और ब्रजभाषामे देखनेको मिलता है, और 'एवडा' (इतना) 'तेवडा' गढवाली और मराठीमे। अच्छे (है) 'छे' के रूपमे बगला, मैथिली, गोरखा, मेवाड़ी और गुजरातीमे सुननेको मिलता है। इसलिए हम स्वयभू जैसे कवियोकी भाषाको जब पुरानी अवधी या कोसली कहते है, तो उसका यह मतलब नही, कि दूसरी प्रान्तीय भाषाओसे उसका कोई सबध नही था। वस्तुतः उस वक्त उत्तर-भारत की सारी भाषाये एक दूसरेके बहुत नजदीक थी। प्रान्तीय भाषाये उस वक्त काफी थीं। "प्राकृत-चंद्रिका"मे उनकी एक मोटीसी गणनाकी गई है, जो इस प्रकार है—

व्राचडी	कैकेयी
लाटी	गौडी

वैदर्भी	ओड्री (उड़िया)
नागरी	सैहली
वर्वरी	गुर्जरी
आवन्ती (मालवी)	आभीरी
पाचाली	मध्यप्रदेशी, आदि
टक्की	

मार्कण्डेयने "प्राकृत सर्वस्व"में जिन अपभ्रंशोंको गिनाया है, उनमेसे कुछ है—

पांचाली (कन्नौज-बरेली)	सैहली
वैदर्भी (वरारी)	आभीरी
लाटी (दक्षिण-गुजराती)	मध्यदेशीया
ओड्री	गुर्जरी
कैकेयी	पाश्चात्या (पछैयाँ)
गौडी	

"कुवलय-माला"ने भी कितने ही नाम दिये है—

गोल्ली (गौडी)	लाटी
मध्यदेशीया	मालवी
मागधी	कोसली
अन्तर्वेदी	महाराष्ट्री
कीरी	
टक्की	
सिंधी	
मरुदेशी	
गुर्जरी	

इस प्रकार हिमालय-गोदावरी और सिन्ध-ब्रह्मपुत्रके बीच यद्यपि बहुतसी बोल-चालकी भाषाये थी, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी।

बोलचालकी भाषाओंमे लिखित साहित्य था या नही, इसके बारेमें अभी

कुछ कहा नही जा सकता । सम्भव है, इन कविताओंको जिस रूपमे हम पेश कर रहे है, उसमे बहुत कुछ शताब्दियोंके लेखकों, पाठकोंका हाथ हो ।

मूल-रूप में कितने ही कवियों—खास कर सिद्धों—ने अपनी कविताये अपनी ही मातृभाषामे की होंगी ।

ऊपरके कथनसे मालूम होता है, कि हमारे यहाँ सांस्कृतिक और साहित्यिक, राजनीतिक और व्यापारिक प्रयोजनके लिए एक भाषाकी आवश्यकताको बहुत पहिलेसे माना जाता रहा है । इसीलिए आज हिन्दीके राष्ट्रभाषाका सवाल कोई नई चीज़ नही है ।

फिर भी सवाल दुहराया जायेगा, कि हमारे इन कवियोंकी भाषा हिन्दी नही, बल्कि संस्कृत-प्राकृतकी तरह कोई बिल्कुल ही अलग भाषा है । "अपभ्रंश" नाम सुनते-सुनते इस गलत धारणाके शिकार हम जरूर हो चुके है; मगर बात ऐसी नही है । संस्कृत (छन्दस्), पाली और प्राकृत जितनी एक दूसरेके नजदीक है, अपभ्रंश उतनी नही है । पुरानी सस्कृत या छन्दस् (वैदिक)-भाषा १५०० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक थोडा बदलते हुए बोली जानेवाली जीवित भाषा थी ।

५०० ई० पू०में बुद्धके समय उसने मूल-पालीका रूप धारण कर लिया और आगे हल्केसे परिवर्त्तनके साथ वह पाँच शताब्दियों तक जारी रही । फिर ईसवी सनके साथ प्राकृतका आरंभ हुआ और वह छठी सदी तक चलती रही । इन बीस सदियोंमें छन्दस्, पाली, प्राकृतके जो तीन छोटे-मोटे भाषा-स्वरूप हमें मिलते है, उनमें परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है । असमानता यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको आसान (बालभाषा) बनाकर पालीने तद्भव शब्दोंकी रचना शुरू की । संस्कृतके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम करके उसने द्विवचन और कुछ प्रयोगोंके झंझटसे बोलनेवालोंको बचाया—बोलने-वालोंने खुद अपनेको बचाया, यही कहना अधिक उचित होगा । कितना बचाया यह इसीसे मालूम होगा कि जहाँ शुद्ध सस्कृत बोलनेके लिए छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्त्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत है, वहाँ पालीमें वह काम आठ-नौ सौ सूत्रोंसे ही हो जाता है ।

प्राकृतने शायद व्याकरणके नियमोंकी संख्याको और कम नही किया, लेकिन तद्भव या उच्चारणके सरलीकरणके कामको उसने और जोर-शोरसे किया। उस युगमे स्वर ही नही व्यंजनोंकी भी खैर नही थी, यदि वह शब्दके आरंभमे न रहे। तद्भव करनेमे पाली और प्राकृत एक-सी रहीं।

लेकिन, इतना होते हुए भी सुवन्त, तिङन्त या शब्द-रूप और धातु-रूपकी शैलीमे दोनों हीने संस्कृतका अनुसरण नही छोड़ा, इसीलिए पाली और प्राकृत-को संस्कृत रूप देनेमे बहुत थोडे श्रमकी जरूरत होती है—तद्भवको तत्सम कर दीजिए, आवश्यकता होनेपर द्विवचन और आत्मनेपद कर दीजिए, बस उसी पुराने ढाँचेमे ही संस्कृत रूप तैयार हो गया।

और अपभ्रंश? यहाँ आकर भाषामे असाधारण परिवर्त्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तों, तिङन्तोकी सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है, जिससे वह हिन्दीसे अभिन्न हो गई है, और संस्कृत-पाली-प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न।

'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ' ये शब्द बतलाते है कि अपभ्रंशका स्थान हिन्दीके पास होना चाहिए या संस्कृत-पाली-प्राकृतके पास। वस्तुतः संस्कृतसे पाली और प्राकृत तक भाषा-विकास क्रमिक या अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त हुआ, मगर आगे वह क्रमिक विकास नही, बल्कि विच्छिन्न-प्रवाह-युक्त विकास—जाति-परिवर्त्तन—हो गया। आज अपभ्रंशकी यह अवस्था है कि संस्कृत-प्राकृत-पाली जाननेवाले मद्रास, सिहल, और कर्नाटकके पंडित इस जाति-परिवर्त्तनके कारण अपभ्रंशसे बात तक नही करना चाहते। यह ठीक भी है, क्योंकि उन्हे इसके लिए हिन्दीकी विभक्तियोंको सीखना पड़ेगा। वहाँ संस्कृत-ज्ञानके बल पर काम नही चलेगा। लेकिन दूसरी तरफ हिन्दी-भाषियोंका अपभ्रशके प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसे आप अपने दिलसे पूछ सकते है। "जिसके लिये किया वही कहे चोर" वाली कहावत है, बेचारी अपभ्रंश हमारे लिए मारी गई।

मगर तर्क कर देनेसे काम नही चलेगा, आखिर पढ़ने-समझनेमे आपकी दिक्कतका ख्याल करना ही होगा। लेकिन दिक्कत है सिर्फ तद्भव और तत्समके झगड़े की। संस्कृत (छान्दस्)की औरस पुत्री पालीने तत्सम (शुद्ध संस्कृत)

शब्दोंका बायकाट शुरू किया, प्राकृतने दादीकी जगह माँका साथ दिया। बेचारी प्राचीनतम हिन्दी (अपभ्रंश)ने दादी और माँके पल्लेको पकडे रक्खा, लेकिन आगे चलकर उसके बोलनेवालोंने वास्तविक भाषा (क्रिया, विभक्ति)को तो रक्खा, मगर परदादी—संस्कृत—के शब्दोके शुद्ध रूप (तत्सम)को खूब तत्परतासे उधार लेना शुरू किया। लोग जितनी मात्रामे तत्सम शब्दोसे अधिक और अधिक परिचित होते गये, उसी मात्रामे तद्भव रूपोंको भूलते गये, जिसका परिणाम है, यह आजकी दिक्कत।

तत्सम या शुद्ध सस्कृत-शब्दोका प्रयोग क्यो फिरसे होने लगा? अवतरणिका-का कलेवर इसके विवरणके लिए पर्याप्त तो नही हो सकता। अस्तु, हम देखते है, कि चौदहवी सदीसे तत्सम शब्दोका प्रयोग बढ़ने लगता है। व्रजभाषा तब भी इस बारेमे कुछ संयमसे काम लेती है, लेकिन तुलसी-बाबाको तो हम अपनी अवधीमे लुटिया ही डुबानेके लिये तैयार दीखते है। शायद, बाबाको अपने "मानस"पर विश्वनाथकी मुहर लगवानी थी। अच्छा, तत्समका प्रचार बढा क्यो? तेरहवी सदीके आरम्भमे इस्लाम-धर्मी तुर्कोका झडा उत्तरी भारत-मे गड गया था। कहा जा सकता है, कि उनके एक सदीके प्रभुत्वकी प्रतिक्रिया भाषा-क्षेत्रमे तत्समके रूपमे आई। लेकिन यही पर्याप्त कारण नही मालूम होता। लकामे तो तुर्कों या इस्लामकी ध्वजा कभी नही गडी, लेकिन वहाँ भी तत्समकी यह प्रवृत्ति गद्य—भाषामे क्यो हुई? सिहली-पद्यमे १९३२ तक तत्समका प्रवेश निषिद्ध था। एक और बात भी—इस्लाम शासनकी प्रतिक्रिया-मे ही यदि पडितोने संस्कृत शब्द-रूपोको जोडना शुरू किया, तो उसका प्रभाव साहित्य और पठित जनता तक ही सीमित होना चाहिए था, लेकिन तत्सम-शब्दों-का प्रचार निरक्षर साधारण जनतामे बहुत दूर तक कैसे घुसा? गाँवका अपठित किसान भी अपने लडकेका नाम 'माहव' नही रखता, बल्कि तत्सम-रूप 'माधव'को ही स्वीकार करता है। 'कृष्ण' आदि नामोंको भी वह तद्भवके 'धरम', 'करम' नही सस्कृतके नज़दीकसे उच्चारण करना चाहता है; 'धम्म', 'कम्म'की जगह कहता है। इसलिए तत्समकी प्रवृत्ति चन्द शिक्षित दिमागोंकी उपज-मात्र नही कही जा सकती। तत्सम या परदादीकी पुनः प्राण-प्रतिष्ठा—एक परिमित क्षेत्र

मे––के बहुतसे कारण है, जिनमे एक कारण यह भी है––समाजके विकासके साथ-साथ उसके लिए शब्दोकी आवश्यकता भी बढ़ती है। नये शब्द पुरानी धातुओंसे गढ़े जा सकते हैं, या विदेशसे उधार लिये जा सकते है। साथ ही कभी-कभी इतिहास-प्रवाहमे छूट गये शब्दोंको भी नया अर्थ दिया जा सकता है। ये छूटे शब्द तद्भव-रूपमे भी हो सकते है, और तत्सम-रूपमें भी। जान पड़ता है, जिस वक्त शब्दोंकी माँग बहुत बढ़ गई थी, उस वक्त कुछ तत्सम (सस्कृत)-शब्दोंको भी चलाया जाने लगा। नये अर्थोंमे नये शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए साधारण लोग भी मजबूर थे और वह जैसे-तैसे संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणपर अधिकार प्राप्त करनेकी कोशिश करने लगे। जब इस तरह अनिवार्य कारणोंसे लोग कितने ही तत्सम शब्दोंको अपना चुके और उन्होंने उसके उच्चारण पर भी कुछ अधिकार प्राप्त किया, तो फिर पण्डितोकी बन आई और उन्होंने संस्कृत-तत्सम-शब्दोंको खूब ठूँसना शुरू किया। हमने कहा था कि अपभ्रंश और आजकी हिन्दी (खड़ी, अवधी––ब्रज लेते)मे अन्तर इतना ही है, कि एकमें शुद्ध सस्कृत––तत्सम––शब्दोका प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जब कि आजकी साहित्यिक भाषामे मुश्किलसे किसी तद्भव-शब्दका प्रयोग होता है। अपभ्रंशमे 'होई', 'कहेउ', 'गयउ', 'गउ', 'कहिज्जइ', आदि तुलसी-रामायण-वाली भाषाके क्रियापदोका प्रयोग होनेपर भी जब तद्भव-शब्दोके कारण लोगोंको उसका समझना मुश्किल हो गया, तो स्वयंभू आदि महान् कवियोंकी कृतियोंका पठन-पाठन छूटने लगा, और धीरे-धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयी। सस्कृत-पाली-प्राकृतसे अलग होने तथा हमारी अपनी भाषा होनेपर भी हमने एक तरह इन कवियोंको मार डालना चाहा। शायद, पहले-पहल इन कवियोंका जैन और बौद्ध होना भी इस उपेक्षाका कारण रहा हो, किन्तु आज शेक्सपियर और उमर खैय्यामकी दिल खोलकर दाद देनेवाले हम लोगोसे तो ऐसी आशा नही की जा सकती।

यहाँ एक बातको हम और साफ कर देना चाहते है। हम जब इन पुराने कवियोंकी भाषाको हिन्दी कहते है, तो इसपर मराठी, उडिया, बँगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती-भाषा-भाषियोंको आपत्ति हो सकती है। लेकिन

हमारा यह अभिप्राय हरगिज़ नही है, कि यह पुरानी भाषा मराठी आदिकी अपनी साहित्यिक भाषा नही है। उन्हें भी उसे अपना कहनेका उतना ही अधिकार है, जितना हिन्दी-भाषा-भाषियोंको। वस्तुतः ये सारी आधुनिक भाषायें बारहवी-तेरहवी शताब्दीमे अपभ्रंशसे अलग होती दीख पड़ती है। जिस समय (आठवीं सदीमें) अपभ्रंशका साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक़्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी। उनके आजके क्षेत्रमें शायद मराठी और उडियाकी भूमिमे आखिरी लड़ाई खतम हो चुकी थी, और यह दोनों भाषायें अपने यहाँ पहलेसे चली आई किसी द्राविडी भाषाकी चिंता शान्त करनेमे लगी थी। गुजरातने तो हमे कई कवि दिये है, उनकी कविताओंका आस्वादन आप इस संग्रहमे करेंगे। वस्तुतः, यह सिद्ध-सामंत-युगीन कवियोंकी उपरोक्त सारी भाषाओंकी सम्मिलित निधि है।

सम्मिलित निधि है, अर्थात् बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक द्राविड़-भाषा-भाषी आन्ध्र, तमिल, केरल और कर्णाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोंकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। यहाँ कोई-कोई अखण्ड हिन्दी-वादी या एक भाषा-वादी पाठक कह उठेंगे—तब तो अब भी क्यों न अ-द्राविड़ीय प्रान्तोंकी एक भाषा कर दी जाये। लेकिन, यह करना वैसा ही होगा, जैसे वयस्क स्वतन्त्र पोते-पोतियों-को फिर दादीके गर्भमे पहुंचानेकी कोशिश करना। गुजरात यद्यपि तेरहवी शताब्दी तक आजके हिन्दी-क्षेत्रका अभिन्न अंग रहा है, आज भी होली-दिवाली, नाच-गाने और दूसरी सैकडों बातोंमे गुजरात हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंसे एकता रखता है, लेकिन आज उसके साहित्य और कितनी ही दूसरी सांस्कृतिक बातोंने गुजरातको एक स्वतन्त्र राष्ट्रका रूप दिया है, फिर हम क्या उससे वैसी अखंडता-की माँग कर सकते है।

अपभ्रंशके कवियोको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य-धाराके प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ़ जूठी पत्तले नही चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र-की तरह हमारे काव्य-क्षेत्रमे नया सृजन किया है; नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदिकी कविताओंसे अच्छी तरहसे मालूम हो जायेगा।

नये-नये छन्दोंकी सृष्टि करना तो इनका अद्‌भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नये-नये छन्दोंकी उन्होंने सृष्टि की, जिन्हे हिन्दी कवियोंने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नही। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके कालमे हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी सभावना है।

हमारे मध्यकालीन कवियोंने अपभ्रंशके कवियोंको भुला दिया और वह प्रेरणा लेने लगे सिर्फ़ संस्कृतके कवियोंसे। स्वयभू आदि कवि अपनी पाँच शताब्दियोंमे सिर्फ़ घास नही छीलते रहे, उन्होंने काव्य-निधिको और समृद्ध, भाषाको और परिपुष्ट करनेका जो महान् काम किया है, हमारे साहित्यको उनकी जो ऐतिहासिक देन है, उसे भुला कर, कड़ीको छोड़कर सीधे संस्कृतके कवियोंसे सम्बन्ध स्थापित करना हमारे साहित्य और हिन्दी-भाषा दोनोंके लिए हानिकर सिद्ध हुआ है। हम संस्कृत कवियोंसे सम्बन्ध जोड़नेके विरोधी नही हैं, लेकिन हमें इस बीचकी कड़ी—जो हमारी अपनी ही कड़ी है—को लेते संस्कृतके प्राचीन कवियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ना होगा; तभी हम ऐतिहासिक विकाससे पूरा लाभ उठा सकेंगे।

२. आर्थिक और सामाजिक अवस्था

१—सम्पत्ति और उसके भोक्ता

सिद्ध-सामन्त-युगकी कविताओंकी सृष्टि आकाशमे नही हुई। वे हमारे देशकी ठोस धरतीकी उपज है। कवियोंने जो ख़ास-ख़ास शैली-भावको लेकर कवितायें की, वह देशकी तत्कालीन परिस्थितिके कारण ही। यह बात तब तक साफ़ नही होगी, जब तक तत्कालीन भारतकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अवस्थाओंकी पृष्ठ-भूमिमें हम उसे नही देखते। पहले हम उस काल—अथवा आठवीसे बारहवी सदीकी पाँच सदियों—की आर्थिक अवस्थापर विचार करते है। उस समय भारत बहुत सम्पन्न था। अकेला रोम अपने यहाँसे हर साल ढाई लाख तोला सोना या साढ़े पाँच लाख सेस्तर्स

(पौने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीजोंको खरीदनेके लिए भारत भेजा करता था। प्लीनी (२३-७९ ई०)ने बड़े क्षोभसे लिखा था––"हमें अपनी विलासिता और अपनी स्त्रियोंके लिए कितनी क़ीमत चुकानी पड़ती है।" उन्नीसवीं सदीके आरम्भके अंग्रेज भी प्लीनीकी तरह भारतीय कपड़ो और मसालोके लिए देशसे धन खिचते देख चिन्तित थे; यद्यपि वह दूसरी ओर भारतको दूह भी रहे थे। भारत उन पाँच शताब्दियोमें शिल्प-व्यवसाय और वाणिज्यमें दुनियाका सबसे समृद्ध देश था। अरब, पश्चिमी-एशिया, उत्तरी अफरीका और यूरोपसे अपार धन-राशि खिच-खिचकर हमारे देशमें चली आ रही थी। शिल्प और व्यापार ही नहीं, कृषि भी उन पाँच शताब्दियोंमें हमारे देशमें बहुत उन्नत-अवस्थामें थी। नदियों और जलाशयो द्वारा सिचाईके प्रबन्धकी प्रथम जिम्मेदारी राज्यके ऊपर थी, इसे पाश्चात्य लेखकोंने भी माना है। इसका यह मतलब नहीं कि हमारी कृषि माडर्न्स-युगकी कृषिके समान उन्नत थी। उस वक्त दुनियाको आधुनिक भौतिक साइन्सका पता ही नहीं था और जो कुछ कृषि-विज्ञान सभ्य-संसारको ज्ञात था, भारत भी उसमें किसीसे पीछे नहीं था।

उस समयकी भारतीय समृद्धिकी बात सुनकर आप शायद सतयुगका ख्वाब देखने लगेंगे, और कह उठेंगे––"वह वस्तुत. राम-राज्य था।" लेकिन यह कहना बहुत गलत होगा। चीन, जावा, अफ्रिका, यूरोपसे जो माया भारत-में आ रही थी उसको भोगनेवाली सारी भारतीय जनता नहीं थी। कौन भोगने-वाले थे, आइये इसे देखें।

(१) **राजा-सामन्त**––इस सम्पत्तिके सबसे अधिक भागको सामन्त-राजा अपनी मौज और आरामके लिए कितना खर्च किया करते थे, इसकी वहाँ कोई सीमा नहीं थी। आजकी कितनी ही देशी रियासतोंकी तरह सारा राजकोष ही उनका वैयक्तिक कोष नहीं था, बल्कि व्यापारियों और सेठोंके खजानोंमें भी जो कुछ था, उसे खर्च कर डालनेमें उनका हाथ पकड़नेवाला कोई नहीं था। जिन्होंने हालके वाजिदअली शाह तथा दूसरे विलासी शासकोंके भोग-विलास-के बारेमें पढ़ा है, वह आसानीसे समझ सकते है कि उस कालके क़न्नौज, मान्य-

ट और पटनाके राजमहलोंमे विलासी भोजन, शौकीनीके वस्त्र, सुगंधित द्रव्य-र कितना खर्च होता रहा होगा। प्रजाकी मेहनतकी कमाईसे उपार्जित यह ाहार्घ वस्तुएं चार-पाँच दिनमें ही खतम हो जानेवाली थी। इनके अतिरिक्त ी सामन्तोके भारी खर्च थे।—नये-नये महल, क्रीड़ा-उपवन, सिंहासन, राज-लंग, मोरछल, चमर और लाखोके हीरा-मोती-महार्घ-रत्नोंके आभूषण, राज-हलोंकी सजावट, चित्र-कला, क्रीडामृग, सोनेके पीजडोंमे बन्द शुक-सारिका, ोहेके पीजडोमे बन्द केसरी। दूर-दूर देशोंसे लाई कितनी ही दुर्लभ महार्घ-स्तुओंके सचयमे भी देशकी सम्पत्तिका भारी भाग खर्च होता था।

फिर सामन्त या राजा अकेले ही उस सम्पत्तिको स्वाहा नही करते थे। ास समयके राजाओंके आदर्श थे—कृष्ण और दशरथ तथा उनकी सोलह-सोलह ज़ार रानियाँ। ये रानियाँ मोटा-झोंटा कपड़ा पहन, रूखा-सूखा खाकर दिन ाटनेके लिए रनिवासमे नही रखी जाती थी। इन हजारों रानियो और उसीके ानुसार उनके पुत्रो-पुत्रियो, बहुओ-दामादोंका खर्च भी देशकी उसी सम्पत्तिके त्थे था। राजवशके अतिरिक्त कितने ही राज-च्युत भगोडे राजवशी भी जाकी गाढी कमाईमे आग लगानेके अधिकारी थे। उस वक्त राजवशोका ाच्छेद अक्सर होता रहता था, फिर वे अपने सम्बन्धियोके पास कन्नौजसे सिहल कका चक्कर काटते रहते थे।

इनके अतिरिक्त राज-दरबारोमे कलाकार, कवि, सगीतज्ञ, चित्रकार, ूर्तिकार ही नही, बहुत काफी सख्या विदूषको, चापलूसों, मसखरो आदिकी ी होती थी।

इन अमीरोंकी सेवाका काम सिर्फ़ वेतन-भोगी चाकर-चाकरानियोंसे नही लता था, उनकी सेवाके लिए काफी संख्या दास-दासियोंकी होती थी। इसके ाद शिकार या किसी दूसरे मनोविनोदके लिए जिधर भी उनकी सवारी जाती, धरके किसान, कमकर और कारीगर अपने धन-उत्पादनके कामको छोड़ गारमें पकडे जानेके लिए मजबूर होते।

(२) **पुरोहित, महंथ**—राजा अपने और अपने लग्गू-भग्गुओपर कितनी म्पत्ति स्वाहा करते थे, इसका थोड़ा-सा अन्दाजा ऊपरके वर्णनसे लग गया

होगा। लेकिन समृद्ध भारतकी सम्पत्तिके अपव्ययका लेखा इतने हीसे समाप्त नहीं होता। पुरोहित और महथ लोगोंका भी खर्च राजसी ठाटके साथ होता था। उनके पास भी महल, दास, कमकर थे और इसीके अनुकूल उनका खर्च भी था। उस समय धार्मिक मठों और मन्दिरोंमे देशकी सम्पत्तिको खर्च करनेमें बहुत उदारता दिखलाई जाती थी।

सातवी सदीमें नालन्दाके ताराके सोना, रतन, जवाहिरसे भरे जिस मंदिर का ज़िक्र विदेशी तीर्थ-यात्रियोंने किया है, उसमें बारहवी सदीके अंत तक बराबर वृद्धि ही होती गई और मुहम्मद बिन-बख्तियारको जितना धन वहाँसे मिला उतना किसी राजमहलसे भी नही मिला होगा। राजवंशोंका हर सौ-दो सौ सालमे उच्छेद भी हो जाया करता था, लेकिन ये मंदिर तो चिरकाल तक सुरक्षित निधि बने रहते थे। महमूद राजपूतानेके रेगिस्तानोंकी खाक छानते सोमनाथमे पत्थर तोड़ने नही गया था। यह निश्चित है कि देशकी सम्पत्तिक काफ़ी भाग ब्राह्मण, जैन, बौद्ध मठों-मन्दिरोंमे जाता था।

(३) **सेठ**—इसके बाद देशकी सम्पत्तिके भारी हिस्सेके मालिक थे, वह श्रेष्ठी-सार्थवाह (कारवाँ-अध्यक्ष) जिनकी कोठियोंका जाल देशके भीतर ही नही, विदेशों तकमे बिछा हुआ था, और जिनके जहाज़ उस समयकी सभ्य दुनियामे सभी जगह पहुँचते थे। इन महासेठों, नगरसेठोंके पास कितनी सम्पत्ति थी, इसका कुछ अनुमान देलवाड़ा (आबू)के सगमर्मरके मन्दिर और उसके बहुमूल्य शिल्पकार्यको देखकर आप आसानीसे लगा सकते है।

वस्तुतः तत्कालीन भारतकी अपार सम्पत्तिके मुख्य भोगनेवाले थे, यही सामन्त, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी-खुशामदी।

(४) **युद्धका अपव्यय**—अमीर लोग, सगीत साहित्य काम-कलापर ही देशकी सम्पत्तिको स्वाहा नहीं करते थे, बल्कि उनकी फ़ज़ूलखर्चीका एक और भी बहुत भारी क्षेत्र था, वह था युद्ध, दिग्विजय। किसी सामन्त (राजा)के लिए बड़े शर्मकी बात होती यदि वह छोटा-मोटा दिग्विजय न करता या कममे कम किसी पड़ोसी राजाकी कुमारीको न पकड़ लाता। यह सामन्तयुगके यौवन-का समय था। सामन्तों और उनके योद्धाओंके हाथोंमें लड़नेके लिए खुजली

पैदा होती रहती थी। उस समयका सामन्त मृत्युकी बिल्कुल ही पर्वाह नही करता था। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे यही सिखलाती थी कि मौतसे डरना—कायरता—उसके लिए चिल्लू भर पानीमे डूब मरनेकी चीज़ है। आज जिस महायुद्धसे हम गुजर रहे है, उसने हमें साफ़ दिखला दिया है कि युद्धमे कितना अधिक अपव्यय होता है—आदमीकी गाढ़ी कमाईमे कितनी बेदर्दीसे और कितने भारी परिमाणमे आग लगाई जाती है। सत्तर सैकड़ा किसान, कम्मी, कारीगर जनताके श्रमसे उपार्जित धनका बहुत भारी ध्वंस ये सामन्त अपने दिग्विजयों और आये दिनकी आपसी लड़ाइयोंमे किया करते थे।

साधारण जनता—लेकिन सम्पत्ति पैदा कौन करता था? ये तीनो नही, बल्कि वह थे, किसान, कमकर और कारीगर। मिट्टीका सोना बनाना उन्हीके श्रमका चमत्कार था। चाहे सुनहले गेहूँ और सुगंधित वासमतीको लीजिए, चाहे कमखाब और दुकूलको, अथवा गोलकुण्डासे निकलनेवाले कोहनूरको; ये सभी चीजे किसानो, कमकरों और कारीगरोके शारीरिक खूनको सुखानेसे पैदा होती थी। जिस तरह आजके राजाओं, नवाबो और करोड़पति सेठोंके वैभवको देखकर सारा देश सुखी और समृद्ध नही कहा जा सकता, उसी तरह उस समयके राजा-पुरोहित-सेठ-वर्गके हृदयहीन अपव्ययके कारण सारे भारतको स्वर्ग नही कहा जा सकता। उस समय शायद सारी जनताका दस सैकड़ेसे अधिक भाग नही रहा होगा, जिसके जीवनको मौज-मस्ती और आरामका जीवन कहा जा सकता।

(१) **दास-दासी**—फिर वह भारत दासप्रथाका भारत था। यदि दस सैकड़ा मौजवाले लोगोंके लिए व्यक्ति पीछे दो-दो दास-दासी रखे जाते थे, तो भारतकी कुल जन-संख्याका बीस सैकड़ा या हर पाँच आदमीमे एक आदमी दास था। दास आदमी नही थे, यद्यपि उनकी शकल-सूरत आदमीकी तरह होती थी। वह ढोरोंकी तरह अपने मालिककी जंगम सम्पत्ति थे, जिन्हे मालिक जब चाहे बेच-खरीद सकते थे। उनका जीवन बिल्कुल अपने मालिककी दयापर निर्भर था। अभी अंग्रेज़ोंके राज्य स्थापित हो जानेपर अठारहवी सदीके बाद तक यह दास-प्रथा भारतमे बनी रही थी। अभी भी दरभंगा जिलेमे दासोंकी

बिक्रीके कितने ही ताल-पत्र आप देख सकते है। और नैपालके स्वतंत्र "हिन्दू-राज्य"मे तो १९२५ ई० तक बाक़ायदा दास-प्रथा जारी रही। यह ठीक है, दास-प्रथाके लिए हम सिर्फ भारत हीको दोषी नही ठहरा सकते, उस समय दुनियाके सभी मुल्कोमे दास-प्रथा मौजूद थी और बाजारोमे गोरे, भूरे, काले सभी रगोके ये मानव-पशु मिलते थे।

(२) **किसान, कम्मी, कारीगर**——जनताके बीस सैकड़े भारतीय दास तत्कालीन भारतीय समृद्धिके भोगनेके अधिकारी नही थे। बाकी सत्तर सैकड़े लोग किसान, कम्मी (अर्द्धदास) और कारीगर थे।——दस सैकड़ा कम्मी, पचास सैकडा किसान और दस सैकड़ा कारीगर मौजकी ज़िन्दगी नही बिता रहे थे। स्वयभू और पुष्पदन्तके खेत अगोरनेवालियोके मोटे गन्ने और द्राक्षा-लताओंको देखकर आप यह समझनेकी गलती न करे, कि वह उन्ही अगोरनेवालियोके उपभोगके लिए थे। वहाँ सारा शिल्प, सारा व्यवसाय, सारी कृषि मुट्ठीभर आदमियोके भोगके लिए होती थी। दूसरोंको तो मुश्किलसे सिर्फ जीने और ब्याने भरका अधिकार था।

(क) **जनताका आत्म-सम्मान**——बीस सैकडा दासोंपर तो, नर-पशु होनेकी वजहसे विचार करनेकी ज़रूरत ही नही, लेकिन सत्तर सैकड़ा किसान-कम्मी-कारीगरकी अवस्था ? आत्म-सम्मान ? ऊपरी वर्गके सामने बिल्कुल शून्य "परम भट्टारक परमेश्वर महाराजाधिराज"के सामने सम्मान-प्रदर्शन करनेके लिए जब दूसरे राजाओं और सामन्तोंको अपने मुकुट उनके चरणोंपर रखने पड़ते थे, तो साधारण जनताको किस तरह जुहार करनी पड़ती होगी, इसे आप खुद समझ सकते है। और दूसरी बेबसियाँ ? सत्तर सैकडा जनताको शरीरसे मज़बूत अपने तरुण पुत्रोंको सामन्तोंके युद्धके लिए भेट करना पड़ता था——हाँ, यदि उनकी जाति छोटी नही समझी जाती हो, छोटी जातिके तरुणको बड़ी जातिके साथ एक पंक्तिमे लड़कर मरनेका भी अधिकार नही था। सत्तर सैकड़ा जनताको अपनी सुन्दर लड़कियोंको वैध या अवैध रूपसे रनिवासमें भेजनेके लिए भी तैयार रहना पड़ता था। कितनी ही जगह तो नव-विवाहिताकी प्रथम रात भी सामन्तके लिए रिज़र्व थी, चाहे वह हाथसे छूकर ही छुट्टी

दे दे। उस वक़्त साधारण जनताके आत्म-सम्मानकी बात करना ही फजूल है।

(ख) **अकाल आदिमें यातना**—उस वक़्त इस आर्थिक हीनताके साथ कुछ सुभीते ज़रूर थे। उस समय भारतकी आबादी आजसे चौथाई या (दस करोड़)से कम ही रही होगी, जिसका मतलब है—लोगोंके पास अधिक खेत, खेत बनानेके लिए अधिक जगल, जगलोंमे जरूरतके लिए अधिक शिकार। उस समय जैनोके तीर्थकरों और देवताओंको छोड़ बाकी सभी देवी-देवता—ब्राह्मण बौद्ध दोनों—घास-खोर नही थे। यह भी अच्छा था कि अमीरोंकी शौकीनीकी प्रायः सारी चीजे देशके भीतर तैयार होती थीं। सम्भव है कुछ रेशम और बारीक दुशाले या कालीन बाहरसे आते हों। अतएव इनके लिए देशका धन बाहर नही जाता था। लेकिन इतना होने पर भी अकाल, बाढ़, युद्ध और महामारीमे साधारण जनताको कीड़े-मकोड़ेकी तरह मरनेसे बचाया नही जा सकता था। फसल अच्छी हुई, शिल्पकी वस्तुओंकी माँग रही, तो सत्तर सैकडा जनताकी साल-की खर्ची ठीकसे चलती रही। उस वक्तके साधारण किसानोंसे आशा नही रखी जा सकती थी कि वे पचासों वैध-अवैध करो, राजकर्मचारियों, पुरोहितों और महाजनोंकी लूट-खसोटके बाद भी एक सालकी उपजको दो साल तक चला लेगे। जब तक साल दो साल आगे तकके खानेका सामान घरमे नही है, तब तक किसान, कम्मी, कारीगर अकाल आदिके चगुलमे पड़कर बुरी मौत मरनेसे कैसे बचाए जा सकते? जहाँगीरके वक़्त (१६३० ई०) सत्तासिया अकालने दक्षिणी भारत और गुजरातमे क्या ग़ज़ब ढाया, लोगोपर क्या-क्या बीती, यह समय सुन्दर कविके आँख देखे वर्णनसे मालूम होगा। इस अकालमे मनुष्यकी साधारण मानवता ही नही खो गई थी, बल्कि आदमी माँ, बहिन, बेटी, भाई, बाप सबके सम्बन्धको सबके सम्मानको ताकमे रखकर केवल अपने शरीरको बचानेकी कोशिश करता था। मरते इतने थे कि मुर्दोका हटाना मुश्किल था। १६४२मे बरमासे मणिपुरके रास्ते जो भारतीय भाग कर आए, उनकी अवस्थाको हमारे एक मित्रकी भ्रातृ-वधू बतला रही थी—"चलनेमे असमर्थ या बीमार पड़ जानेपर लोग अपने भाइयों और पुत्रोंको भी वही जंगलमे छोड़-कर चल देते थे, हाँ उनके पास एक अच्छी दलील थी—यहाँ रहकर खुद भी

मर जानेके सिवा हम अपने बंधुकी कोई सहायता नहीं कर सकते। भूखे-प्यासे अपने शरीरको ले चलनेमें असमर्थ लोग अपने दुध-मुंहे बच्चोंको रास्तेके जंगली पेड़ोंपर टांगकर चल देते थे। ऐसे बच्चे एक दो नहीं, सैकड़ों हमने अपनी आंखों देखे।" उस पुरातन कालके युद्धोंमें भी जब भगदड़ होती होगी, तो लोगोंकी अवस्था इससे बेहतर नहीं रहती होगी। सत्तर फीसदी जनताकी आर्थिक-अवस्था निश्चय ही इतनी हीन थी, कि किसी अकाल, बाढ़ या दूसरी आफ़त आने पर लाखोंकी संख्यामें मरनेके सिवा उनके लिए कोई चारा नहीं था।

हमने उस समयके बहुसंख्यक समाजका यहाँ अतिरंजित चित्र नहीं खींचा है, वस्तुतः उस समयके जीवनकी जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सामग्री जहाँ-तहाँ बिखरी हुई हमें प्राप्त है, उससे हम यह छोड़ दूसरे निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते।

(३) **कवि जनताकी यातनापर चुप क्यों ?**—हमारे इन कवियोंके सामने वे पशु-तुल्य दास-दासी और उनके ऊपर होने पाशविक अत्याचार मौजूद थे। पद-पदपर अपमानित, त्रस्त, पीड़ित, किसान, कम्मी, कारीगर जनता भी उनके सामने मौजूद थी। अकाल महामारी, युद्ध और बाढ़की दारुण-यातना हृदय-द्रावक दृश्य भी उन्होंने आँखोंसे देखे होंगे, फिर भी इन कवियोंकी कृतियोंमें उनके बारेमें इतनी चुप्पी क्यों ? सोचे होंगे, अकाल, बाढ़, युद्ध, महामारी सब भगवान्‌के भेजे हुए हैं—लोगोंके पूर्विले कर्मका यह फल है; इसलिए क्रौंच-मिथुन-मेंसे एकके वधसे तड़प उठनेवाली कविकी आत्माको उधर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं। शायद ऐसा सोचकर इन कवियोंके बारेमें आप कोई कठोर निर्णय सुनाने लगें; लेकिन यह उचित नहीं होगा। जिस परिस्थितिके कारण कवियोंको यह मौन धारण करना पड़ा, उस परिस्थितिपर भी आपको ध्यान देना होगा। यदि कमाऊ जनताकी सारी यातनाओंके असली कारणको वह चाहे न भी बतलाते और सिर्फ लोगोंकी इन यातनाओंका नग्न चित्र खींच देते तो उसमें रेशम और रतनसे ढंका अमीरोंका भोगमय-जीवन नग्न हो उठता; दोनों-की तुलना होने लगती और फिर जनताके कितने ही लोग वैसे समाजसे क्षुब्ध हो उठते; जिसका परिणाम अवश्य अमीरोंके लिए अच्छा नहीं होता। इसलिए

आपको समझना होगा कि क्रौंच-मिथुनमेंसे एकके वधके लिए कविका आँसू बहाना जितना आसान था, उतना उस कालके बहुसंख्यक समाजकी विपदाओंका वर्णन करना आसान नहीं था। यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाजके विरुद्ध लिखनेके लिए अपनी कवि-प्रतिभाका कुछ भी दुरुपयोग करता, तो वह केवल पुरोहितोंके धर्म-दण्डका ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सरपर पड़ता क्रूर राज-दण्ड—छिपकर हत्या, भयकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाजसे निष्कासन और अपमान। इन दण्डोंको सामने रखकर जब आप इन कवियोंकी चुप्पीको देखेंगे, तो मालूम होगा कि उनके वैसा करनेके लिए प्रबल कारण मौजूद थे। उस वक़्त अखबार नहीं थे और न देश-देशान्तरोंके उदार-मना पुरुषोंमें सहानुभूति पैदा करनेका वैसा कोई साधन था कि गोर्कीके कठोर दंडके लिए सारी दुनियामें तहलका मचने लगता। यही नहीं, कवियोंने अपनी काव्य-प्रतिभाकी जो करामात दिखलाई है, उसका बचा-खुचा अंश भी शायद राजा-पुरोहित-सेठकी कोपाग्निसे न बच पाता। कवि अपने स्थूल शरीर और कीर्ति-शरीर दोनोंहीमें नष्ट होनेका भय सोच यदि मौन रहा, तो उसके विरुद्ध किसी कठोर फ़ैसलेके देनेका हमें अधिकार नहीं है।

३. राजनीतिक अवस्था

हर देशकी राजनीतिक अवस्था उसकी आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही होती है; बल्कि राजनीति कहते ही हैं आर्थिक ढाँचे—आर्थिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिए तैयार किये गये फौलादी शिकंजे—को। उन पाँच शताब्दियोंमें साधारण जनताकी आर्थिक अवस्था कैसी थी, उसके ऊपर कितने अत्याचार और उत्पीड़न होते थे, इसे हम बतला आए हैं। हम देख चुके हैं कि जनता किस तरहसे मूक और निरीह बनी हुई थी। राजा सर्वशक्तिमान "परमेश्वर" बन गया था और उसकी निरंकुशताके रोकनेका कोई उपाय बहुसंख्यक जनताके पास नहीं था। लेकिन भारतीय जनता सदासे ही ऐसी नहीं थी। बुद्ध के समय (ई० पू० पाँचवी सदी-में) भारतके कितने ही भू-भागोंपर लिच्छिवियोंकी तरहके शक्तिशाली प्रजा-तंत्र थे। यूनानियों और शकोंके कालमें भी यौधेयों जैसे प्रजातंत्रोंने अपने

अस्तित्वको ही नही बनाये रखा, बल्कि विदेशियोंके शासनको नष्टकर देनेमे इन्ही का सबसे पहिला और सबसे अधिक हाथ था। चौथी शताब्दीके अंतमे गुप्तोंकी विजय तो एक तरहसे खून लगाकर शहीद बननी थी। इन प्रजातंत्रोंमे जन-स्वतत्रता थी, हाँ उतनी ही जितनी धनी-ग़रीब वर्गवाले समाजमे सभव हो सकती है। इन गणो (प्रजातत्रों)की जन-स्वतत्रताको देखकर राजाओंको भी अपने राज्यमे "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" बननेकी हिम्मत नही होती थी। ४०० ई०के आस-पास चद्रगुप्त विक्रमादित्यने यौधेय-गणके उच्छेदके साथ भारतमे चिरकालके लिए जन-तंत्रताका उच्छेद कर दिया। इसमे शक नही कि गणोके विनाशमे उनके भीतरकी आर्थिक विषमता, अल्पशक्ति भी कारण थी। तो भी जनताके इस स्वतत्र शासनके उच्छेद करनेवाले चद्रगुप्त विक्रमादित्यको क्षमा नही किया जा सकता। इस उच्छेदने भारतपर क्या प्रभाव डाला यह इसीसे समझमे आ सकता है, कि वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें जब इति-हासवेत्ताओं और पुरातत्त्वज्ञोंने भारतके पुराने प्रजातत्रोंके सबंधमे साहित्यिक और मुद्रा-संबधी प्रमाण ढूंढ़ निकाले; तो उसकी ओर एक बार हमारे शिक्षित भी आँख मलकर आश्चर्यसे देखने लगे। उनको विश्वास नही होता था। कहाँ भारत और फिर वहाँ एथेन्स जैसा प्रजातत्र--यह हो ही नही सकता। यदि बौद्धोके कुछ पुराने ग्रन्थों तक ही प्रमाण सीमित होते, तो शायद उनको क्षेपक और बाहरी प्रभाव कहकर टाल दिया जाता, मगर ईसाके पहिलेकी शताब्दियो-से लेकर ईसवी चौथी सदी तकके ठोस सिक्कोंसे कैसे इनकार कर दिया जाये? तो भी यह ध्यान रखनेकी बात है कि इन प्रजातंत्रोंके प्रति सारे पुराण-कारों, धर्मशास्त्ररचयिताओं और पीछेके कवियोंकी चुप्पी खास कारणोंसे थी। वह अपने प्रयत्नमे कितने सफल हुए, यह तो प्रजातत्रोंके बारेमे सदाके लिए हमारा अनभिज्ञ बन जाना ही साबित करता है। पिछली शताब्दियोंकी बात छोड़िये, आज भी जब कि हमारे शिक्षित जनतंत्रताका नाम लेकर विदेशी शासनके हटानेकी बात कर रहे है; तब भी किसी लिच्छवि या यौधेय प्रजातंत्रके स्मरण-महोत्सव या कीर्त्ति-स्तंभकी बात नही की जाती। यदि क्रियात्मक प्रस्ताव आता है, तो सर्वगण-उच्छेत्ता चद्रगुप्त विक्रमादित्यके लिए कीर्त्ति-स्तभ स्थापित

करनेका। हम समझते है, यह प्रयत्न किसी भोलेपनके कारण नही है, बल्कि उसके भीतर बहुत गूढ अर्थ छिपा हुआ है।

हमारे कुछ भाई कह उठेंगे, कि भारतकी जनतंत्रता कभी खतम नही हुई। वह तो गाँवोंकी पचायतोंके रूपमे मौजूद रही और इन पंचायतोंको अंग्रेजी शासनने नष्ट किया। लेकिन विक्रमादित्योंने हमारे गावोंकी जनतंत्रताको जनताकी आजादीके लिए नही छोड़ा था। वह जानते थे कि सात लाख गाँव, एक दूसरेसे असबद्ध सर्वथा स्वतत्र प्रजातत्र, किसी निरकुश शक्तिका मुकाबिला नही कर सकते। इसीलिए उन्होंने रस्सीके रेशोंको बिखेर दिया, धाराको बूँदोंमे बाँट दिया और इस प्रकार ये ग्राम-प्रजातत्र निरकुश शासकोंके बडे कामकी चीज़ बन गए। जनताकी इस बिखरी शक्तिकी बेबसीने सदियोंके कड़ुवे तजर्बेके बाद तुलसीदाससे कहलवाया "कोउ नृप होइ हमै का हानी। चेरी छाँडि ना होउब रानी।"

अब राजा "परम स्वतत्र न सिर पर कोऊ" बन गए। उनके ऊपर असली अन्नदाताओंका कोई अकुश न रहा। उनकी निरकुशतापर यदि कभी कोई दबाव पड़ता था, तो सामन्तोकी सदा बनी रहती आपसी खटपट का। सरहपा जिस वक्त अपने दोहोंको बना रहा था, उसीके आस-पास बिहारमे वह आखिरी घटना घटी, जिसमे प्रजाने एक गुमनाम-वंशके बहादुर व्यक्ति गोपालको अपना शासक चुना। इसके बाद फिर भारतीय इतिहासमे ऐसी कोई घटना देखनेमे नही आती। हाँ, तो सामन्तोके ऊपर एक अकुश आपसी खटपट थी और दूसरा था बाहरी आक्रमण। हमारे इस कालके आरभ हीमे अरब, सिंध (७१२ ई०) और मुल्तान (७१३) पर अधिकार जमा लेते है और वह भू-भाग हिन्दुस्तानसे बिल्कुल अलग कर लिया जाता है। पीछे ग्यारहवी सदीके आरंभके साथ ही महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०) के हमले होने लगते है। शायद इन अरब और तुर्क हमलोंने भारतीय नरेन्द्रोंको संयमका कुछ पाठ जरूर पढाया होगा। धर्मको भी राजाओंपर भारी अकुश बतलाया जाता है; लेकिन राजाओके टुकड़खोर पुरोहित और महंथ उनपर कितना अंकुश रख सकते है, यह आसानीसे समझा जा सकता है; खासकर जब कि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई

शक्ति सहायता देनेके लिए मौजूद नहीं हो। जन-शक्तिको तो बल्कि पूरी तरह कुचलनेमें राजाके बाद पुरोहितों और महंथोंका ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होंने भगवान् और ऋषियों-मुनियोंके नामपर धर्मकी नयी व्यवस्थाएँ गढ़कर जन-शक्ति और जन-चेतनाको बिल्कुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वीपर विष्णुका अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्मके कर्मके सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्या-भक्ष्यपर।

बाहरका खतरा दिखलाई देनेपर जरूर देशके हर्ता-कर्ता लोग कुछ करनेके लिए मजबूर होते थे, लेकिन छठी सदीमें हूणोंको परास्तकर भारत कुछ दिनोंके लिए निश्चिन्त हो गया था। ७१२ ई०में अरबोंकी सिन्ध-विजयने फिर खतरेकी घंटी बजाई। इसके लिए जरूरी था, कि देशका अधिकसे अधिक भाग एक शासन-सूत्रमें आ अपनी सैनिक-शक्तिको खूब मजबूत करे। इसके लिए आठवीं सदीसे लेकर अगली सदियोंमें जो प्रयत्न हुए, वह हमारे सामने कन्नौज, मान्यखेट और कभी-कभी पालोंकी प्रभुता या चक्रवर्त्तित्वके रूपमें आये।

(१) **कन्नौज**—कन्नौजने मौखरियों, हर्षवर्धन और उसके सेनापति भंडीके वंशके प्रबल और विशाल राज्योंका प्राय. तीन सौ सालों (५५०-८१५) तक राजधानी रहनेके कारण उसी तरह एक अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त कर लिया था, जिस तरह मुस्लिम-कालमें दिल्लीने जिस वक्त सिंध और पंजाबपर काले बादल मँडला रहे थे, उस वक्त कन्नौजका भंडी-वंश निर्बल और निकम्मा हो रहा था। कन्नौजके पीछे एक समृद्ध देशकी माया और प्राचीन वैभव था, वह ग्राम-पासके सामन्तोंको आकृष्ट कर रहा था। हर्षवर्धनके साम्राज्यके टुकड़े-टुकड़े होनेपर जो अलग-अलग राज्य कायम हुए थे, उनमें बिहार-बंगालके पाल और गुजरात-मालवाके प्रतिहार मुख्य थे। दोनों ही कन्नौजके मालिक बनना चाहते थे। वह कन्नौजके शासक इन्द्रायुध और चक्रायुधमेंसे एकको गुड़िया बनाकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। प्रतिहार वत्सराज (७८३) और गौडेश्वर धर्मपाल (७७०-८०६) इसके लिए अपनी सेनाओंके साथ कन्नौज तक दौड़े। वह आपसमें लड़कर किसी स्थायी फ़ैसलेपर पहुँचना ही चाहते थे कि

सुदूर-दक्षिणसे राष्ट्रकूट ध्रुव (७८०-९४) आ धमका और उसीका पलड़ा भारी रहा। इसीलिए ध्रुवरायकी यात्राका एक मुफ्त हमारे महान् कवि स्वयंभू मालूम होते है। वह जो ध्रुवरायके किसी आमात्य रयडा धनंजयके साथ दक्षिण गए और वहीं उन्होंने अपनी अद्भुत अनमोल कृतियाँ रची। पाल, राष्ट्रकूट और प्रतिहार तीनों कन्नौजपर दाँत लगाये थे। कन्नौजकी शक्ति ही बाहरी शत्रुओंसे उत्तरी भारत—अतएव सारे भारत—की रक्षा कर सकती थी। सौभाग्य समझिए कि अरब-तलवार सिंधकी धारमे पहुँचकर ठंढी पड़ गई, नही तो आठवी सदीमे उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था उसके लिए बड़ी अनुकूल थी।

कन्नौज नगरी एक ऐसी स्वयंवर-कन्या थी, जिसे राष्ट्रकूट, प्रतिहार और पाल तीनों ब्याहना चाहते थे; लेकिन स्वयंवर-कन्या सौत बनकर नही रहना चाहती थी। अब तीनों उम्मेदवारोंको फैसला करना था—कौन अपना देश छोड़ कान्य-कुब्ज जानेके लिए तैयार है। प्रतिहार नागभट्टने फैसला किया, वह कन्नौजका स्वामी बन गया, बाक़ी दोनों मुँह ताकते रह गए। तबसे क़रीब-करीब महमूदके हमले तक कन्नौज उत्तरी भारत और सारे भारतके लिए जबर्दस्त ढाल बना रहा।

(२) **राष्ट्रकूट**—हर्षवर्धनको दक्षिणी भारतकी दिग्विजयसे खाली हाथ लौटानेके लिए मजबूर करनेवाले पुलकेशीके चालुक्य-वंशको खतमकर राष्ट्र-कूटोंने अपनी ज़बर्दस्त सत्ता उसी समय (७५३) स्थापित की, जब कि पूरबमे गोपाल पाल-वंशकी नीव रख रहा था। ७५३ ई०से ९७३ ई०की प्रायः दो सदियों तक राष्ट्रकूट-वंशी वल्लभराज भारतके सबसे बलवान् राजा रहे। नर्मदासे कृष्णा और कभी-कभी कांची तक उनका विशाल राज्य फैला हुआ था और सुदूर-दक्षिण रामेश्वर ही नहीं, कभी-कभी तो सिंहल भी उनकी आज्ञा-को मानता था। कितनी ही बार उनके घोड़ोंकी टाप यमुना और गंगाके द्वाबे (अंतर्वेद)मे प्रतिध्वनित हुई थी। कितनी ही बार उनके सैनिक युक्त-प्रान्तके दुर्गोंमें मालिक बनकर बैठते थे।

(३) **पाल**—गोपाल और धर्मपालका जिक्र अभी कर चुके है। धर्मपाल बंगाल-बिहारसे संतुष्ट न रह कन्नौज तक हाथ फैला रहा था, इसे हम बतला

चुके है। धर्मपाल असफल रहा। उसका पुत्र देवपाल (८१५-३४)भी उत्तर-का चक्रवर्त्ती बनना चाहा, मगर अन्तमे जयमाला नागभट्टके गलेमे पडी, यह बतला चुके है। नवी-दसवी सदीमे यही तीनों भारतकी प्रधान शक्तियाँ थी। देशमे और भी कितने ही राज-वश थे, लेकिन वह इन्ही तीनोंमेसे किसी एकके आधीन रहते थे। गौड़ चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने हमे ८४ सिद्धोंके रूपमे पुरानी हिन्दी (अपभ्रश)के कवि दिए। पाल-वश बौद्धधर्मानुयायी था, इसलिए लोक-भाषामे उसे थोडा-बहुत अनुराग था और वहाँ सस्कृत देश-भाषाके साहित्यका गला घोंटनेकी क्षमता नही रखती थी।

राष्ट्रकूट चक्रवर्त्ती-क्षेत्रने भी प्राकृतके कितने ही कवियो तथा स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे हमारी भाषाके सर्व्वोच्च कवियोको यदि पैदा न किया हो, तो कमसे कम उन्हे आश्रय जरूर दिया। जैन होनेसे राष्ट्रकूट-राजा देश-भाषाके प्रति अधिक उदार विचार रखते थे।

कान्य-कुब्ज चक्रवर्त्ती-क्षत्र यद्यपि वह क्षेत्र था, जिसके ही भीतर अपभ्रश-का अपना मूल-क्षेत्र था : किन्तु वहाँ हम सदा (तुलसीबाबा तक) सस्कृतको ही सर्वेसर्वा रहते देखते है। शायद इसमे ब्राह्मणो और ब्राह्मण-धर्मकी प्रधानता कारण थी, वह नही चाहते थे कि संस्कृतसे दस-पाँच हाथ नीचे भी किसी दूसरी भाषाको स्थान मिले। बहुत सभव है, स्वयभू अवधी भाषा-क्षेत्रके थे और पुष्प-दन्त यौधेय (हरियाना, दिल्ली)-क्षेत्रके, इस प्रकार दोनों ही कान्यकुब्ज चक्र-वर्त्ती-क्षेत्रके थे, लेकिन उनकी पूछ अपने दरबारमे नही बल्कि दूर जाकर दक्षिणापथमे हुई। अपने दर्बारमे तो राजशेखर और श्रीहर्ष जैसे संस्कृतके महाकवियोकी ही एकमात्र पूछ थी।

नवी शताब्दीसे प्राय दो शताब्दियोंके लिए राष्ट्रकूट और प्रतिहार दो ज़बर्दस्त शक्तियाँ तैयार हो गई है, जो पश्चिमी खतरेको रोकनेकी काफ़ी क्षमता रखती थी। बल्कि राष्ट्रकूटोंको इसमे कुछ अधिक सुभीता था। उनकी तीन तरफ़ समुद्रकी खाईं थी, डर था तो सिर्फ़ उत्तर-पश्चिमसे गुजरातकी ओर से। अरबोंने एकाध मर्तबे कोशिश भी की, लेकिन बीकानेरका रेगिस्तान और अरब समुद्र आसान रास्ते नही थे। ऊपरसे राष्ट्रकूटोंका सैनिक-बल बहुत मजबूत था।

प्रतिहारोंपर उत्तरी भारतकी रक्षाका सबसे अधिक भार था। जब तक उन्होंने इस कर्त्तव्यको पूरा किया, तब तक वह अचल रहे, लेकिन जैसे ही राज्यपाल (१०१८)ने महमूदके सामने सर झुकाया, वैसे ही प्रतिहार-वंशका सितारा डूबने लगा, और उसके आधीनके चन्देल (कालिजर) कलचुरी (त्रिपुरी) तथा चौहान (साभर, अजमेर) स्वतत्र होने लगे। प्रतिहार फिर कुछ दिनो तक मुर्दा अगोरते रहे, क्योंकि उनके प्रबल सामन्त आपसी झगडेके कारण कन्नौजके बारेमे कोई फैसला नही कर सकते थे। लेकिन, इस डॉवाडोल अवस्थामे कन्नौज सदाके लिए नही रह सकता था।

१०८० मे गहड़वार चंद्रदेवने कन्नौजपर हाथ साफ किया। यद्यपि गहड़वार वशको गंगा-यमुनाके बीचका बहुत ही गुजान और उर्वर प्रदेश मिला और इस प्रकार वह औरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान रहा, तो भी उसे प्रतिहार-वश जैसा बल नही प्राप्त हो सका। चौहान, चदेल, और कलचुरी अपने बलको कन्नौजसे मिलाकर बाहरी शक्तिसे मुकाबला करनेके लिए तैयार नही थे। तो भी चद्र देवके पौत्र गोविन्दचंद्रके (१०९३-११३४) समय गहडवार-वंश उत्तरी भारतका सबसे अधिक बलशाली राज्य था। गोविन्दचद्रके पौत्र जयचंद्र (११७०-९३) के वक्त गहड़वार शक्ति निर्बल हो चुकी थी। उस वक्त चंदेल परमर्दी (११६७-१२०२) काफी शक्तिशाली था। लेकिन कलचुरी, चौहान या चंदेलों-की कितनी भी प्रबल शक्ति हो, उनमे किसीके लिए संभव नही था, कि प्रतिहारों-के चक्रवर्त्ती-क्षेत्र को फिरसे जीवित करके बाहरी आक्रमणको रोके।

दसवी सदीका अत होते-होते उत्तरी भारतमे पालों, गहड़वारों, चालुक्यों, चंदेलों और चौहानोके अतिरिक्त गुजरात और मालवाके दो और स्वतत्र राज्य बन चुके थे। गुर्जर-सोलकी (चालुक्य) तो बहुत कुछ कन्नौजके पतनसे अस्तित्व-मे आये। मालवाके परमार राष्ट्रकूटोंके विनाश (९७४)के फल-स्वरूप स्वतंत्र हो गये। ग्यारहवी-बारहवी सदीमे अब उत्तरी भारतकी शक्ति अधिक छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, वहाँ सात स्वतंत्र दर्बार थे। कोई एक बडी शक्तिके आधीन रहकर काम करनेके लिए तैयार नहीं था।•

देशभाषाकी दृष्टिसे देखनेसे पाल अब भी सिद्ध-कवियोंका सम्मान करते

थे। गहड़वार-दर्बारमें भी अवश्य कुछ लोक-साहित्यका मान था, जैसा कि काशी-श्वर-संबधी कविताओं तथा स्वयं जयचन्दके महामत्री विद्याधरकी स्फुट कविताओं-मे मालूम होता है। कलचुरी कर्णके दर्बारमें भी बब्बर और दूसरे कितने ही कवियों-का सम्मान होता दिखलाई पडता है। कालिजरका चन्देल-दर्बार शायद इस बारे-में सबसे पिछड़ा हुआ था। कनकामर मुनि, सभव है, इन्हींके बुन्देलखण्डके हों, मगर उनकी कविताओंको आश्रय देने का श्रेय चन्देल दर्बारको नही मिल सकता।

मुज (९७४-७५) और भोज (१०१०-५६) चचा-भतीजे संस्कृत-प्राकृत-के साथ देशी-भाषाके भी प्रेमी थे और उनकी धारामें अवश्य कितने ही अपभ्रश कवियोंका स्वागत किया होगा, यद्यपि हमारे पास तक उनकी कृतियाँ बहुत थोडी पहुँची है। चौहान-दर्बारका कवि सिर्फ चन्द बरदाई हमारे सम्मुख है। यद्यपि उसकी रचना "पृथ्वीराज रासो"की जो प्रति आज उपलब्ध है, वह बहुत विकृत तथा मूलसे चार सदियों बाद की है। हमने उसके कुछ नमूने यहाँ सिर्फ इसी ख्यालसे दिये है, कि चन्दकी कविताका कुछ अश इसमें मौजूद है। उसकी भाषामें खूब मनमानीकी गई है, इसमें सदेह नही।

गुर्जर-चालुक्य-क्षेत्र (९६१-१२५७) यही नही कि दिल्ली-कन्नौजके काफी पीछे तक स्वतंत्र रहा, बल्कि इसने अपभ्रश कवियोंको सबसे अधिक पैदा किया। पैदा करनेसे भी ज्यादा उसने जो बडा काम किया, वह है अपभ्रश-कृतियोंका रक्षा करना। शायद दर्बारके जैन होने तथा जैन नागरिकोंके भाषा-प्रेमके कारण ऐसा हो सका।

हमारे इस साहित्यिक युगकी राजनीतिक पृष्ठभूमिकी ओर व्यापक दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि पहले शतक अर्थात सातवी-आठवी सदीमें बाहरी शत्रु अभी उतने प्रबल न थे। नवीं-दसवी सदीमें हमारा राजनीतिक-संगठन इतना विस्तृत और मजबूत था कि कोई उसका मुकाबला करके सफलताकी आशा नही कर सकता था। ग्यारहवी-बारहवी शताब्दीमें शक्ति आधे दर्जन टुकडोंमें बँट गई। और यह था विदेशी आक्रमणकारियोंको न्यौता देना।

तत्कालीन कविताओंमें हमें तीन बातोंकी छाप मिलती है—रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल-भुलैया, निराशावाद और युद्धवाद या वीररस। ये तीनों ही

काव्य-भावनाएँ उस वक्तके शासक-समाजकी आवश्यकताके लिए बिल्कुल उपयुक्त थी। उस वक्तके सामन्त बच्चेको तलवारका चरणामृत दिखलावटी नहीं पिलाया जाता था, बल्कि दरअसल उसे बचपनसे ही मरने-मारनेकी शिक्षा दी जाती थी। मौतसे खेल करनेके लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदियोके कवियोंने भी अपने आश्रय-दाताओकी बड़ी-बड़ी वीरताओंका वर्णन किया, लेकिन वह अधिकाश थोथी चापलूसी है, यह हमे मालूम है। हमारी इन पाँच सदियोमे सामन्त वस्तुत: निर्भय वीर होते थे। उनके देश-विजयोंके बारेमे कवि अतिशयोक्ति भले ही कर सकता है, लेकिन शरीरपर तीरों और तलवारोंके घावोके चिह्नोंके बारेमे अतिरजनकी जरूरत नही थी। ऐसे समाजके लिए वीर-रसकी कविताएँ बिल्कुल स्वाभाविक है।

युद्ध एक पासा है, जो कभी चित्त भी पड़ सकता है, कभी पट भी। असफल सामन्तके लिए निराशा आवश्यक है, लेकिन निराशा हर वक्त आदमीके दिलको जलाया करती है, इसलिए सब कुछ भूल जानेके लिए आध्यात्मिक भूल-भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक है। प्रभु-वर्गको छोड़ बाकी अस्सी फीसदी जनताके लिए तो निराशावाद बिल्कुल स्वाभाविक है। आध्यात्मिक भूल-भुलैयासे फायदा उठानेवाले साधारण जनतामे शायद ही कोई थे। हाँ, सिद्धोने सरल जन-भाषामे अपनी कविताये लिखकर उनके भीतर घुसनेकी कोशिश की। सिद्धोंके बारेमें यहाँ एक बात स्मरण रखनेकी है—उनकी कवितामे रहस्यवाद है मगर निराशावाद उससे छू नही गया है। वह कायाको मल-मूत्र-पूर्ण गन्दी चीज नही बल्कि तीर्थकी तरह पवित्र मानते है, सब तरहके सांसारिक भोगोंको छोड़ने नही ग्रहण करनेकी शिक्षा देते है। शायद इसमे उनका क्षणिकवादी दर्शन कारण रहा हो। संसारकी सभी वस्तुएँ क्षण-क्षण बदलती रहती है, उनमे सयोग-वियोग होता रहता है, लेकिन जगत्की सारभूत यह क्षणिकता बुरी नही है, इसीसे जगत्का वैचित्र्य, जगत्का सौन्दर्य्य कायम है। अतएव क्षणिक होनेसे जगत् उपेक्षणीय नही है।

ग्यारहवी-बारहवी सदीमे महमूद गजनवीके सोमनाथ और बनारस तकके आक्रमणोंके बाद भी उत्तरी भारत कई राज्योंमे बँटा ही रहा। सातों दर्बार आपसमें लड़ते ही रहते, फिर वहाँ आशावाद कहाँ सभव था? अभी सामन्ती

वीरता मौजूद थी, तलवार झनझनाती रहती थी, लेकिन अपनी बिखरी ताकत देखकर निराशावाद उन्हे अपनी ओर खीच रहा था।

(४) **इस्लाम भारतका अभिन्न अंग**—हम पहिले कह चुके है, कि जिस वक्त हिन्दीके आदि कवि सरहपा अपनी कविताएँ रच रहे थे, उससे आधी शताब्दी पहिले ही (७१२-१३) सिध और मुल्तान हिन्दुओंके हाथसे चले गए। तबसे दसवी सदी तक इस्लामिक राज्य बहुत आगे नही बढ़ पाया। अभी काबुलपर भी हिन्दू ही शासन कर रहे थे। लेकिन ग्यारहवीके शुरू हीमे काबुल ही नही लाहौर भी हिन्दुओंके हाथसे निकल गया। मुस्लिम-राज्य-स्थापना भारतके इतिहासमे एक बहुत भारी घटना थी। अभी तक जितने भी विदेशी आक्रमणकारी भारतमे आए थे, वह भारतीय संस्कृतिको स्वीकार कर—हाँ उसमे कुछ अपनी ओरसे दे करके भी—हजारो जात-पातोंमे बिखरे भारतीय जन-समुद्रमे मिलते गये। लेकिन अब जिस सस्कृति और धर्मसे वास्ता पड़ा, वह काफी सबल था। उसे हजम करनेकी ताकत ब्राह्मणोंके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेमे नही थी। हमारे युगसे आगे हिन्दी-कविताका सूफी-युग (चौदहवी-पन्द्रहवी सदी) इस बातका साफ सबूत है, कि मुसल्मान सूफियोंने हिन्दी-साहित्य और उसकी जनतापर काफी प्रभाव डाला, लेकिन इस्लामने भारतपर अधिकार करके सिर्फ आध्यात्मिक भूल-भुलैयाके कुछ पाठ ही नही पढ़ाये, बल्कि कुछ सामाजिक गुत्थियोंको भी हल किया।

'संदेश-रासक'के रचयिता कवि अब्दुर्रहमान (१०१० ई०)का जुलाहा-वश दसवी सदीके अतमे पहिले ही मुसलमान हो चुका था। इस्लाम जब भारतके दूसरे प्रदेशोंमे फैला, तो वहांपर भी हम प्रमुख शिल्पी जातियोंको बड़ी खुशीसे इस्लाम स्वीकार करते देखते है। कपड़े बनानेवाले कारीगर सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक जो इस्लाममे दाखिल हो गये, उनकी सख्या भारतीय मुसलमानोंमे आज यदि दो-तिहाई नही तो आधीसे ज्यादा जरूर है। यह कोई आकस्मिक घटना नही थी। हम जानते हैं, कपड़ेका व्यवसाय रोमनकालसे अंग्रेजी राज्यके स्थापित हो जाने तककी बीस सदियोंमे हमारे देशका बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा, वह देशकी आमदनीका एक बहुत जबर्दस्त जरिया था। फिर कपड़े बनाने-

वाले कारीगर हिन्दू-धर्मसे इतने रूठ क्यों गये ? उनकी कारीगरीकी बड़ी माँग थी, वह दास नही थे, पैसेके लिए बाजारमें बिकनेकी उन्हे जरूरत न थी, अब्दुर्रहमानकी सुदर कवितासे पता लगेगा, कि वह निरे निरक्षर गँवार भी नही थे। जो कारीगर सूक्ष्म मलमल, उसके ऊपर बेल-बूटे, बनारसी किमखाब और उसपरकी अद्भुत चित्रकारी करनेमे सिद्धहस्त हों, वह शिक्षा-सस्कृतिसे बिल्कुल शून्य हो ही नही सकते। लेकिन हिन्दुओंकी जाति-प्रथा जिसे बौद्ध और जैन भी व्यवहार रूपमे स्वीकार कर चुके थे—इन शिल्पी-जातियोंको शूद्र बनाकर उनपर सामाजिक अत्याचार करनेके लिए ऊपरी जातियोंको अधिकार देती थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि आत्म-सम्मान रखनेवाले पटकार इस्लाम स्वीकार करनेमे अपनी अर्धदासताका अन्त समझने लगे, और वह एक-एक करके नही बल्कि श्रेणी (Guild)-रूपेण इस्लामके झण्डेके नीचे चले गये। अरब तथा बाहरसे आनेवाली दूसरी मुसलमान जातियाँ अभी हिन्दुओंकी जाति-प्रथासे प्रभावित नही हुई थी। इसलिए उस समय सहस्राब्दियोंसे पीडित इन हिन्दू-जातियोको हिंदुत्व छोड़ इस्लाममे जाने ही दमघोटू अन्धेरी कोठरीसे खुले प्रकाश, खुली हवामे साँस लेते जैसा मालूम होता था। हिन्दू यह बात नही कर सकते थे। इस्लामने आरभिक शताब्दियोंमे इस कामको बड़ी तत्परतासे किया, लेकिन जैसे-जैसे बडी जातियोके हिन्दू इस्लाममे दाखिल होने लगे; वैसे ही वैसे इस्लामकी वह क्रान्तिकारी भावना नष्ट होती गई और वहाँ भी ऊँच-नीचका बीज बोया जाने लगा।

बारहवी सदीके अतमे दिल्ली और कन्नौज भी इस्लामी झण्डेके नीचे चले गये थे। अब हिन्दू सामन्त एक-एक करके आत्म-समर्पण करनेके लिए कालकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महमूद और कितने ही दूसरे मुस्लिम विजेताओंने हिन्दुओंके मन्दिरोंपर भी प्रहार किया; लेकिन जैसा कि हम कह आये है वह इतनी मेहनत सिर्फ पत्थरोंके तोडनेके लिए नही किया करते थे। वह जाने थे, महन्तों और पुजारियो द्वारा वहाँ जमा की हुई अपार मायाको लूटने। इससे यह लाभ जरूर हुआ कि मदिरों और देवताओंकी हजारो बरससे स्थापित महिमा बहुत घट गई। कोई ताज्जुब नही, यदि दिल्ली-विजयके बाद तीन सदियों तक हिन्दू सन्त भी

मूर्त्तियो और देवताओंके पीछे लट्ठ लेकर पड़ गये और चारों ओर निर्गुणवादकी दुंदभी बजने लगी। इस ध्वस लीलाने कुछ फायदेका भी काम किया और पुरोहितों-महन्तोके प्रभावको कुछ हल्का किया, यद्यपि वह उतना नही कर सकी, जितना कि ईरान और अफगानिस्तानमे, शायद यदि सारा हिन्दुस्तान इस्लामके अन्दर चला गया होता, तो यहाँकी सैकड़ो समस्याये खतम हो गई होती। मुमकिन है उस वक्त हमारे साहित्य-कलाको और भी क्षति हुई होती और एक बार ईरानकी तरह मुसलमान बने भारतके जातीयता-प्रेमियोंको भी झुझलाना पड़ता।

सिद्ध-युगकी अन्तिम—बारहवी-तेरहवी—सदीमे उत्तरी भारतकी राजनीतिक अवस्था अधिक डांवाडोल थी। यद्यपि मालवा और गुजरात अपनी स्वतंत्रताको बचाए हुए थे, मगर वह भी भविष्यके लिए निश्चिन्त नही थे। ऐसे कालमे भी महाकवियोंका होना असंभव नही है, लेकिन यदि महाकवि अपने पैरोंको धरतीपर रखते तब न। आसमानी नायिका बनाते वक्त उनका स्वप्न बीच-बीचमे पृथ्वीकी विकलताके कारण भग्न हो जाता; इसलिए उनका सृजन भी पूर्ण नही भग्न ही हो सकता है। इस कालमे हमे लक्खण तथा दूसरे ऐसे ही छोटे-छोटे कवि मिलते है। मुसलमान शरणागतकी रक्षाके लिए रणथम्भोरके राणा हम्मीरने हिन्दू-मुसलमान धर्मका ख्याल न करके जिस तरह अपने सर्वस्वकी बाजी लगाई, उसने कुछ महाकवियोको जरूर प्रेरणा दी; बाकी कवि बस छोटे-छोटे सामन्तों और सेठोंकी प्रशंसाके पुल बाँधनेमे ही अपनी सारी शक्ति खर्च करते रहे।

४. धार्मिक अवस्था

पहिलेके वर्णनमे जहाँ-तहाँ धर्मके बारेमे भी हम कुछ कह आये है, लेकिन वहाँ हमने उनका सिर्फ सामान्यरूपेण जिक्र किया। हमारे इस युगके कवियोमे बौद्ध, जैन, हिन्दू और मुसल्मान चारों धर्मके माननेवाले है; इसलिए यहाँ उनके बारेमे कुछ और कहनेकी अवश्यकता है।

मानव-समाजके विकासमे धर्म बहुत पीछे आया है, इसे हम दूसरे स्थानपर

बतला आये है। जिस वक्त मनुष्यमे धनी-गरीबका भेद नही हुआ था, क्योकि अभी उसके पास धन-उत्पादन और लडनेके हथियार बहुत दुर्बल––पत्थर, सीग, लकड़ीके थे; उस वक्त इन धर्मोकी आवश्यकता नही थी। ब्राह्मणों, बौद्धो तथा जैनोकी देव-माला अपने पुराने रूपमे राजसत्ता नही पितृसत्ताका अनुकरण करती है। वेदोके पुराने देवताओंमे किसी एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका पता नही लगता, लेकिन जैसे ही दुनियोंमे "सर्वशक्तिमान् परमेश्वर" पैदा हुए, वैसे ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर भी आ धमका। गुप्तोके निरंकुश राजतंत्रने सर्वशक्तिमान् ईश्वर––विष्णु––के महत्त्वको बहुत बढाया। यद्यपि बौद्ध और जैन सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वरको नही मानते थे। तो भी वह स्थापित समाज-व्यवस्थाके लिए खतरनाक नही थे। प्रवाहण जैवलिके समाज-पोषक सामन्त-समर्थक पुनर्जन्मके सिद्धान्तको स्वीकारकर उन्होंने पहिले ही अपने कार्य-क्षेत्रको सीमित कर लिया था। और अब तो वह ब्राह्मणोके जाति-पाँति, ज्योतिष, सामुद्रिक सबको मानने लगे थे। जिस वक्त ईसाके पहिलेकी दो-तीन सदियोमे यवन, शक, आभीर, गुर्जर आदि जातियाँ बाहरसे हिन्दुस्तानमे घुस रही थी, उस वक्त बौद्धोंका ही पलडा भारी था; क्योकि उन्होने इन जातियोंको समाजमे समानताका स्थान देकर स्वागत किया था। ब्राह्मण इस बलाको बूझ नही पाये, वह अभी सबको "म्लेच्छ" "म्लेच्छ" कह तिरस्कार करते थे; लेकिन जब देखा कि ये आगनुक म्लेच्छ धर्ममे श्रद्धालु बनकर मिनान्दर और कनिष्ककी तरह मठो और मन्दिरोको सोनेसे पाट देते है; तो वह भी सोचनेके लिए मजबूर हुए। यद्यपि वह देरसे होशमे आये, मगर उनका हथियार सबसे जबर्दस्त निकला। बौद्ध आगतुक जातियोंको सम्मानपूर्ण किन्तु समान स्थान देते थे। ब्राह्मणोंने सम्मानपूर्ण ही नही बल्कि बहुत ऊँचा स्थान––सिर्फ अपनेसे एक सीढी नीचे––दिया, पीछे उन्हे आबूके अग्निकुण्डसे निकली क्षत्रिय-जातियाँ कहा गया। आबूके अग्निकुण्ड और उससे आदमियोंकी बात भले ही बिलकुल झूठी है, मगर ब्राह्मणोंने आगन्तुक म्लेच्छ-जातियोको क्षत्रिय बनाया, इसमे कोई सन्देह नही। और इस प्रकार सामन्ती भारतने चिरकालके लिए ब्राह्मणोंके प्रभावको स्वीकार किया।

(१) **बौद्ध धर्म**––ईसाकी पहिली तीन-चार शताब्दियोंमे जब ये आगंतुक

क्षत्रिय बनाए जा रहे थे, उसी वक्त बौद्ध धर्म निहत्था कर दिया गया। बौद्ध अब भारतकी किसी सामाजिक समस्याका अपने पास कोई हल नहीं रखते थे, अब उन्हें अपनी पुरानी कमाईको बैठकर खाना था। सामन्त पूरी तौरसे ब्राह्मणोंके हाथमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे चले गये थे। बौद्ध कभी-कभी दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिके प्रौढ़-दर्शनको सामने रखकर लोगोंकी आँखोंमें चकाचौंध पैदा करना चाहते थे; कभी योग-समाधि, तंतर-मंतर डाकिनी-शाकिनीके चमत्कारसे लोगोंको अपनी ओर खींचना चाहते थे और कभी सिद्धोंके विचित्र जीवन और लोक-भाषाकी कविताओंको भी इस कामके लिए इस्तेमाल करते थे; मगर यह सब हवामें तीर चलाना था। अब भी बहुसंख्यक जनताकी कितनी ही समस्यायें सामने थीं; लेकिन बौद्धोंके मस्तिष्क और हथियार कुंठित हो चुके थे। उन्होंने चलते-चलाते हमारी भाषाकी कितनी ही सेवा जरूर की। अफसोस है कि उनकी कविताओंका बहुत कम अंश हमारे पास बच रहा। उनकी सैकड़ों छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तकें ग्यारहवीं-बारहवीं सदीमें किये तिब्बती भाषाके अनुवादोंमें मौजूद हैं, मगर उसमें भी अधिक संख्या उन पुस्तकोंकी रही होगी, जो शुद्ध सांसारिक दृष्टिसे लिखी गई थीं, अतएव वह भारतमें बाहर नहीं ले जाई गईं, और बौद्ध धर्मके साथ वह यहीं नष्ट हो गईं।

बौद्ध धर्म चलाचली पर था, उसकी भीतरी कितनी ही कमजोरियाँ उसके हितचिन्तकोंको मालूम होने लगी थीं, तो भी सबसे बड़ी कमजोरी—सामाजिक समस्यासे हाथ खींच लेना—की ओर उनका ध्यान नहीं गया। दूसरे धार्मिक पंथोंकी तरह बौद्ध धर्ममें भी ब्रह्मचर्य और भिक्षु-जीवनपर बहुत जोर दिया गया था, लेकिन बारह शताब्दियोंके तजुर्बेने बतला दिया कि वह ढोंगके सिवाय और कुछ नहीं है। आदमी आहारकी तरह काम-भोगमें भी दूसरे पशुओंसे बहुत भिन्नता नहीं रखता। मठोंके अप्राकृतिक-जीवनमें जो बहुत-सी बुराइयाँ बहुत भारी परिमाणमें घुस आयी थीं, उन्हें देखकर कुछ विचारकोंने सोचा, हमें इस ढोंगको हटाना चाहिए और मनुष्यको सहज-स्वाभाविक जीवनपर लाना चाहिए। इन बातोंको वह खुलकर नहीं कह सकते थे, क्योंकि खुलकर कहनेपर पन्थ और भक्त ही नहीं सारे बाहरी समाजका विरोध इतना

जबर्दस्त होता, कि उन्हे अपना अस्तित्व भी कायम रखना मुश्किल हो जाता। उन्होंने छिप करके एक सीमित क्षेत्रमे अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू किया। मुक्त यौन-संबंधके पोषक चक्र-सवर आदि देवता, उनके मंत्र और पूजा-प्रकार तैयार किये। गुह्य-समाज एकत्रित होने लगे, जहाँ स्त्री-पुरुषोंको मद्य-मैथुनकी पूरी स्वतत्रता दी गयी। लेकिन जल्दी ही यह सब काम सहज, स्वाभाविक नही अस्वाभाविक रूपमे होने लगा। सरहपाके वचनोसे जान पडता है, कि वह भोग-स्वातत्र्यको अस्वाभाविकता या अतिमे नही ले जाना चाहता था। वह इस बातका समर्थक था, कि सहज मानवकी जो सहज आवश्यकताएँ है, उन्हे सहज रूपसे पूरा होने देना चाहिए। उसने मंतर-तंतर, देवी-देवतापर भी ठोकर लगाए है। मगर जान पडता है, भीतरी-बाहरी विरोध बहुत जबर्दस्त था, सहज-मार्गसे पाखड-मार्ग पकड़ना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहज-यान, तन्तर-मन्तर, भूत-प्रेत, देवी-देवता-सबधी हजारो मिथ्या-विश्वासों और ढोगोके पैदा करने-का कारण बना। ये सारे मिथ्या-विश्वास, सारी दिव्य-शक्तियाँ महमूद और मुहम्मदबिन-बख्तियारके सामने थोथी निकली और तारा, कुरुकुल्ला, लोकेश्वर और मजुश्रीके मन्दिरों और मठोमे हजार-हजार बरसकी जमा हुई अपार सपत्ति अपने मालिकों और पुजारियोके साथ ध्वस्त हो गयी। बौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिए जब न कोई विहार रहा, न उनके सरक्षक और पोषक सेठ-सामन्त पहिली अवस्थामे रहे, न साधारण जनताका विश्वास पूर्ववत् रहा, तो उन्हे भारतमे दिन काटना मुश्किल होने लगा। पश्चिमकी धरती तो उनके हाथसे पहिले ही निकल चुकी थी; लेकिन उत्तर (तिब्बत), पूरब (बर्मा, चीन) और दक्खिन (सिंहल)मे अब भी उनके स्वागत करनेवाले मौजूद थे। इस प्रकार बचे-खुचे बौद्ध भिक्षु—बौद्ध गृहस्थोंके अगुआ—बाहर चले गये। भिक्षुओके अभावमे गृहस्थ बौद्ध धर्मको भूलने लगे, और जिसकी जिधर सीग समाई, उधर चले गए। इस प्रकार नालन्दा, विक्रमशिलाके ध्वसके बाद पाँच ही छ पीढ़ियोंमें बौद्ध-धर्म नाम-शेष रह गया।

(२) **जैन धर्म**—सामन्तोंपर जैन धर्मका पुराने समयमे क्या प्रभाव पडा था, इसके समर्थनके लिए काफी प्रमाण नहीं मिलते। राष्ट्रकूट (७५३-९७)

और गुर्जर-सोलंकी (९६१-१२५७) राजाओंका जैन धर्मपर बहुत अनुराग था, लेकिन लड़ाकू सामन्तोंके इस अनुरागमें पहिला ही कदम तो यह था, कि बेचारी अहिंसा ताक पर रख दी गई। जैन गृहस्थ ही नहीं जैन मुनि (हेमचन्द्र) भी तलवारकी महिमा गाने लगे भला दिग्विजयोंके जमानेमें अहिंसाको कैसे लेकर चला जा सकता था। बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्म भी जाति-पाँति विरोधी था, लेकिन हमारे युगमें वह भी जाति-पाँतिको वैसे ही मानने लगा था, जैसे ब्राह्मण। इतना ही नहीं हमारे एक जैन कवि मुनिने तो जैन गृहस्थोंको उपदेश दिया है, कि वह अपनी लड़कीको अजैन घरमें न दें। भीतर भिन्न-भिन्न मतोंके रखने-पर भी जो अब तक शादी-ब्याह हो सकता था, उसे भी बन्द कर दिया गया, चलो छुट्टी मिली। जैन धर्ममें सृष्टिकर्त्ता ईश्वर नहीं माना जाता, लेकिन अब तो स्वयं महावीरके नामके साथ परमेश्वर लगाया जाने लगा। जैन गृहस्थ और दूसरे लोगोंके लिए पारस-मणि परमेश्वर-शब्द मिल गया। परमेश्वरमें मिन्नत भी मानी जाने लगी। परमेश्वर-शब्द काफी था, साधारण लोग उसीमें सृष्टिकर्त्ता-विधाता सब समझ लेते थे, आगे बालकी खाल खींचनेकी उन्हें जरूरत नहीं थी।

सामन्तोंने जैन धर्मको अपनाकर भी कितना निबाहा, यह आपने देख लिया। हाँ, व्यापार करनेवाली जातियाँ ज्यादा कट्टर बनीं और आज भी जैनोंमें अधिकाश वैश्य ही मिलते हैं। उन्होंने अहिंसाको जरूर कुछ ज्यादा गभीरताके साथ स्वीकार किया। पश्चिममें भी बनिया-वर्ग जीव-दयाकी ओर बहुत खिंचता है, यद्यपि उसकी दया है—

"जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान।
बिनु छाने लोहू पिवै, पानी पीवै छान॥"

इसे जैन धर्मकी सफलता कह लीजिए। मगर इस सफलताने हानि कितनी पहुंचाई? पोरवाल, ओसवाल, अग्रवाल, श्रीमाल, आदि जातियाँ मूलत यौधेय-प्रार्जुनायन आदि गणोंकी वह वीर-क्षत्रिय जातियाँ थीं जिन्होंने किसी समय यवनों, शकों, गुप्तोंके दाँत खट्टे किये और भारतमें जनतंत्रताके प्रदीपको शताब्दियों तक जलाये रखा। अब सिंहोंके नख-दाँत तोड़ दिये गए और वे

बकरी बनकर सूद खाने और तराजू तोलनेमें लग गये; उन्हें तीर-तलवारकी जरूरत नहीं रह गई। सवाल हो सकता है, क्षत्रियसे वैश्य होने—ब्राह्मणी व्यवस्थाके अनुसार एक सीढ़ी नीचे गिरने—के लिए ये क्षत्रिय तैयार कैसे हो गए? हम इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं "व्यापारे वसति लक्ष्मी" अथवा कुछ पीढ़ियों[1] तक अपनी स्वतंत्रताके लिए तलवार चलाकर देख लिया, कि राज-तंत्रके इतने बड़े सैनिक-संगठनके सामने उनका तलवार हिलाना फजूल है। अब वह क्षत्रियकी जगह नगर-सेठ बने। व्यापार खूब चमका। करोड़ों रुपये लगाकर देलवाड़ा जैसे अनगिनत मंदिर बने, परम-त्यागियों—पात्र और वस्त्र तक भी न रखनेवाले यतियों—का जैन धर्म सोने-हीरेकी राशिसे जगमग-जगमग करने लगा। लेकिन, इस नये सभ्य जैन समाजमें बेचारे निर्ग्रन्थों—नग्न साधुओं-की आफत आयी। सम्भ्रान्त परिवारोंके पुत्र मुनि बन नंगे-मादरज़ाद रहनेसे हिचकिचाने लगे और गृहस्थ भी अपने मुनियोंको इस रूपमें देखनेसे संकोच करने लगे। अब वस्त्रधारी श्वेतांबरोंका पलड़ा भारी हो चला; लेकिन वस्त्र ही तक भले घरोंके लड़के सन्तोष कैसे कर सकते थे? सवाल उठ खड़ा हुआ, चैत्य-वासी (बस्तीमें बाहर मठोंमें रहनेवाले) और बस्ती-वासीका। लेकिन कुछ ही समय बाद यह भी सवाल व्यर्थ हो गया, और जैन मुनि बस्ती-वास ही नहीं दरबार-वास तक करने लगे।

इस युगमें तंत्र-मंत्र और भैरवी-चक्र या गुप्त यौन-स्वातंत्र्यका बहुत जोर था। बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही इसमें होड़ लगाए हुए थे। भूत-प्रेत, जादू-मन्तर और देवी-देवता-वादमें जैन भी किसीके पीछे नहीं थे, रहा सवाल वाम-मार्गका, शायद उसका उतना जोर नहीं हुआ, लेकिन वह बिल्कुल नहीं था, यह भी नहीं कहा जा सकता। आखिर चक्रेश्वरी देवी वहाँ भी विराजमान हुई, और हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनीके आलिंगनका खूब गीत गाने लगे,

---

[1] **जोहियावार (भावलपुर) के जोहियों तथा मेवोंने मुस्लिम काल तक अपनी तलवार नहीं छोड़ी।**

जिससे उसी दिशाका सूक्ष्म संकेत मिलता है।

जैनोंने अपभ्रंश-साहित्यकी रचना और उसकी सुरक्षामें सबसे अधिक काम किया। वह ब्राह्मणोंकी तरह संस्कृतके अंधभक्त भी नहीं थे, क्योंकि वशिष्ठ, विश्वामित्रकी भाँति उनके मुनियोंने संस्कृतमें ही नहीं प्राकृतमें अपने मूलग्रंथ लिखे थे। व्यापारी होनेसे बही-खाता तथा मातृभाषा लिखने-पढ़नेका ज्ञान होना उनके लिए बहुत जरूरी था। ब्राह्मणोंकी समाज-व्यवस्थाके साथ वह बंधे हुए थे। ब्राह्मणोंके महाभारत, पुराण और कथा-वार्त्ताका हर तरफसे प्रभाव पड़ना जरूरी था, क्योंकि वह समुद्रमें बूँदकी तरह थे। इस प्रकार जैन धार्मिक नेताओं-के लिए यह जरूरी हो पड़ा, कि अपने भक्तोंको ब्राह्मणोंका ग्रास बननेसे बचाने-के लिए अपने स्वतंत्र कथा-पुराण तैयार करें। व्यापारीसे यह आशा नहीं रक्खी जा सकती कि वह धर्म जाननेके लिए कठिन-कठिन भाषाएं सीखता फिरेगा। अतएव जैनोंने देश-भाषामें कथा-साहित्यकी सृष्टि की, जिसके कारण स्वयंभू और पुष्पदन्त जैसे अनमोल अद्वितीय कविरत्न हमें मिले। उस साहित्यकी रक्षाके लिए हम और हमारी अगली पीढ़ियाँ उन जैन नर-नारियोंकी हमेशा कृतज्ञ रहेंगी, जिन्होंने इन अमूल्य निधियोंको नष्ट होनेसे बचाया। याद रखिये, इन अमूल्य निधियोंमें सिर्फ जैनोंके ही ग्रन्थ नहीं बल्कि अब्दुर्रहमानके "संदेश रासक" जैसे ग्रन्थ भी हैं।

(३) ब्राह्मण—हम कह चुके हैं कि ईसवी सनके शुरू होनेके बाद ही ब्राह्मणों-का पलड़ा भारी हो गया। हाँ, उन्होंने सिर्फ सामन्त-वर्गकी म्लेच्छ और आर्यकी युद्धाग्निकी भीतरी समस्याको ही अग्नि-कुण्डवाले क्षत्रिय बनाकर हल किया था। लेकिन समाजके हर्त्ता-कर्त्ता तो आखिर सामन्त थे। उन्हें जो कुछ मिलना-जुलना था, वह इन्हीं सामन्तोंसे। बाकी भेड़ोंको भरमाना उनका काम था, जिसमें कि ब्राह्मणोंके सिरजे ईश्वरकी निरंकुशताकी तरह राजाओंकी निर-कुशताके खिलाफ भेड़ें कोई तूफान न खड़ा करें। सामन्त (राजा)-समाज और ब्राह्मणों—मेरा मतलब धार्मिक नेताओं और पुरोहितोंसे है—का हमेशा चोली-दामनका साथ रहा है। ब्राह्मणोंपर सामन्त जितना विश्वास कर सकता था, उतना वह अपनी जातिके व्यक्तिपर भी नहीं कर सकता था। किसी

सामंत-वशी (क्षत्रिय)को राजके प्रधान-मंत्री जैसे बड़े पदको देकर कोई राजा अपने सिहासनको खतरेमे डाल कैसे सकता था ? बिम्बसार (५०० ई० पू०)के ब्राह्मण प्रधान-मंत्री वर्षकारसे लेकर सदा ही हिन्दू-राजाओंके प्रधान-मंत्री ब्राह्मण होते रहे। पुष्पमित्र और पेशवा जैसे दो-एक ही अपवाद है, जब कि ब्राह्मणोंने नमक-हरामी की हो। वह कभी सिहासनपर बैठनेकी कामना नही करते थे, इसलिए प्रधान-मत्रीका पद यदि ब्राह्मणोंके लिए सदा सुरक्षित रहता हो, तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात है।

और ब्राह्मण घाटेमे भी नही थे। शुकनासका ऐश्वर्य तारापीडसे कम न था। प्रधान-मंत्रीके महलकी सजावट और अन्त.पुरकी रौनक राजाओंके हरमसे कम न थी। ब्राह्मणोंने जो भारतीय जनतत्रताके हल्केसे हल्के चिह्नको भी न रहने देनेकी हर तरहसे कोशिश की; उसके लिए उनका स्वार्थ मजबूर करता था। प्रधान-मत्री और मत्री ही नही दूसरे ब्राह्मणोंके लिए भी सामन्त हर तरहसे पूरी भोग-साधना जुटाते थे। चन्द्रदेवने १०९३ ई०मे हाथमे कुश लेकर एक ही बार कटेहली (बनारस)के सारे परगने (पत्तला)को ब्राह्मणोंको दान दे दिया; ११०० ई०मे फिर उसने वृहदऋहवरथ पत्तलाको दान किया। राष्ट्रकूट, पाल तथा दूसरे राजवश भी ब्राह्मणोके प्रति ऐसी ही उदारता दिखाते रहे। विश्वामित्र-वशिष्ठ-भरद्वाजके समयमे भी ब्राह्मणोंका जीवन भोग-शून्य नही था, फिर हमारे इस कालके बारेमे पूँछना ही क्या ? ब्राह्मणोंके मंदिरों-पर किस तरह मुक्त-हस्त हो धन खर्च किया जाता था, इसे देखना हो, तो एलौराके कैलाशको देख लीजिए—एक अद्भुत, विशाल शिवालय पहाड काट-कर निकाल लिया गया है।

हम कह चुके है, कि वाम-मार्गमे ब्राह्मण भी बौद्धोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर खड़े थे। मन्तर-तन्तरकी बात तो खैर आँखमे धूल झोंकनेकी नीतिके कारण हो सकती है, लेकिन चक्र-पूजा। यौन-स्वातत्र्यकी उन्हे क्या जरूरत थी ? आखिर ब्राह्मण एकपत्नि-व्रत नही थे, संपत्तिके अनुसार वह चाहे जितने ब्याह कर सकते थे। दासियोंके रखनेमें भी उनके लिए कोई सीमा न थी। बौद्ध भिक्षु तो बेचारे जबर्दस्तीके ब्रह्मचर्यके फन्देको किसी तरह ढीला करना

चाहते थे, जिसकी कि ब्राह्मणोंको जरूरत नही थी। हाँ, हो सकता है, मद्य-पानके विरुद्ध जो कड़ाइयाँ पीछेके स्मृतिकारोंने कर दी थी, उनसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने चक्रका आश्रय लिया। मीन-मास उस युगके ब्राह्मणोंमे वर्जित था ही नही और मुद्रा—हाथकी अँगुलियोंको टेढ़ी-मेढ़ी करना—के लिए चक्रकी शरण लेनेकी जरूरत नही थी। इस प्रकार मुख्य कारण मद्य रहा होगा और स्त्रीके बारेमे उन्होंने "अधिकस्याधिक फल" समझ लिया होगा।

ब्राह्मणोंने सीधे सेवा करके ही सामन्तोंका उपकार नही किया, बल्कि उन्होंने उनके फायदेके वास्ते साधारण जनताकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेके लिए खूब हन-हन करके हथियार चलाए। खानेकी छुआछूतमे खूब तरक्की की और "आठ कनौजिया नव चूल्हा" करके उसे अपने घरमे शुरू किया। उस वक्त भारतके जो व्यापारी अरब जाते थे, उनके बारेमे एक अरब लेखक (अल्बरूनी) ने लिखा है—वे हमारे (मुसल्मानोंके) ही हाथका खाना खानेमे परहेज नही करते, बल्कि आपसमे भी एक दूसरेका छुआ नही खाते।" बहुत-सी नीच कही जानेवाली जातियोंके प्रति तो ब्राह्मणोंकी व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अन्दाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्यकी जन्मभूमि मलबारके पंचमोंकी बीसवी शताब्दीकी अवस्थाका आपको थोड़ा-सा परिचय हो। उस युगके नगरोंकी बहुतसी सड़के उनके लिए वर्जित थी; कितनी ही सड़कोंपर थूकनेके लिए उन्हे अपने साथ पुरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणोंकी एक और भी व्यवस्था थी—"स्त्री-रत्नं दुष्कुलादपि", इसलिए श्रोत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा सदरीमे पार्शव[1] सन्तान पैदा करनेका पूरा अधिकार रखता था।

ब्राह्मणोंने मिथ्या-विश्वासोंको फैलाने, वयस्क मानवताको बच्चा बनानेके लिए पुराणोंकी संख्या और कलेवरको इसी कालमें खूब बढ़ाया। बुद्धि रखनेवालोंपर यह हथियार नही चलता, इसलिए इसी युगमें बुद्धिको भूल-

---

[1] शूद्रा स्त्रीमें ब्राह्मणका पुत्र।

भुलैयामे डालनेके लिए शंकर (७८८-८३०) श्री हर्ष (११८० ई०) जैसे दार्शनिकोंने "मुँहमे राम बगलमे छूरी" वाला अद्वैतवाद पैदा किया।

इस कालमे जातीय विखरावको ब्राह्मणोंने चरम-सीमापर पहुँचाया। अभी तक जातियोंके लिए भाषा या प्रान्तोंका भेद नही था, मगर अब ब्राह्मणोंने कनौजिया आदि बिल्कुल अलग-अलग ब्राह्मण जातियाँ तैयार की और एक जातिमे भी गोविन्दचंद्र-जयचन्द्र (१११८-९३)के कालमे सरयू-पारियोंमें पंक्ति (उच्चतम) ब्राह्मण और वल्लालसेन (११५८-७९)के समय बंगालमे "कुलीन" ब्राह्मणके नामसे और नये-नये टुकडे किये गये। दडीके कुम्हार-ब्राह्मण जहाँ भारतके किसी भी प्रान्तमे जाकर स्वच्छन्दतापूर्वक रोटी-बेटी कर सकते थे, वहाँ अब रास्ता चारों ओरसे बन्द था। ब्राह्मणोंकी व्यवस्थाने देश-रक्षाके कामके लिए क्या-क्या किया? स्त्रियोंके लिए तो युद्धमे कोई स्थान था ही नही। ब्राह्मण-देवता युद्ध-सेवासे मुक्त थे। वैश्यका काम था डेढा-सवाई करना। शूद्रोंकी हजार जातियाँ?—उन्हे हथियार लेकर अपनी पाँतिमे लड़नेको कौन क्षत्रिय इजाजत देता। लडनेका काम था सिर्फ क्षत्रिय-पुरुषोंका, और उनके सामने भी युद्ध करनेके लिए कोई बड़ा आदर्श नही था, सिर्फ नमक-हलाली और इसके बाद सामन्तका भय रह गया था। सामन्तके भयसे या "हम मालिकका नमक खाते है" इस ख्यालसे लडनेवाले योद्धा, किस श्रेणीके होंगे, इसे आप खुद समझ ले। आप कहेगे, इस युगमे अरबों और तुर्कोसे युद्ध छिड़ता रहता था, जिसमे योद्धाके दिलमे हिन्दू-धर्मकी रक्षाका भी ख्याल आ सकता था। हम इसे मानते है, लेकिन कुछ ही हद तक। क्योंकि मुसल्मान सामन्तकी सेनामें सिर्फ मुसल्मान ही मुसल्मान और हिन्दू सामन्तकी सेनामे सिर्फ हिन्दू ही हिन्दू सैनिक रहे, इसका कोई नियम नही था। अक्सर दोनों हीकी सेनायें मिली-जुली होती थीं।

(४) इस्लाम—इस्लामकी इस युगमें क्या अवस्था थी, इसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। अभी सदियोंकी मानसिक और शारीरिक दासताओंको तोड़नेकी उसमें हिम्मत और क्षमता थी। साथ ही अरबी खलीफा (उमैया और अब्बासी) कोई संकीर्ण विचारवाले धर्मान्ध शासक नही थे। इस्लामकी

पहिली सदीमें चाहे कुछ तोड़-फोड़ हुआ हो, मगर बादमें दुनियाकी सभी संस्कृतिओं और उनकी देनोंके मुसल्मान शासक जबर्दस्त कदरदान संरक्षक थे। अफलातूं अरस्तू और दूसरे यूनानी दार्शनिकों—माइस-वेत्ताओंका पता भी नहीं लगता यदि बगदादके खलीफोंके समय अनुवाद और टीकाओं द्वारा उनकी रक्षा न की गई होती। उस समय भारतसे भी कितने ही विद्वान बड़े सम्मानपूर्वक बगदाद बुलाये गए थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन, वैद्यक, गणित और ज्योतिषके बहुतसे ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता की थी। मुस्लिम अरबोंने हिन्दुस्तानी अंकोंको स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि उन्हींके द्वारा वह सारे युरोपमें फैला।

अब्दुर्रहमानकी कविताम जो बिल्कुल भारतीय आत्मा बोल रही है वह बनावटी बात नहीं थी। अब्दुर्रहमानने देवताका मंगलाचरण करते वक्त अपने ग्रंथमें अपनेको मुसल्मान भक्त साबित किया है। ग्यारहवीं शताब्दीसे मुस्लिम और हिन्दू सामन्तोंमें राजनीतिक शक्तिको हथियानेके लिए जो भीषण संघर्ष शुरू हुए, उसीके प्रोपेगण्डामें हिन्दू और इस्लाम धर्म घसीटे जाने लगे, जैसे कि आज हॉलिफेक्स और चर्चिल जैसे कट्टर साम्राज्यवादी ईसाई-धर्मको घसीट रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य था कि सामन्तोंके इस झूठे प्रोपेगण्डाका शिकार साधारण जनता भी होती थी और उसने कितने ही समय अपनेको अन्धा सिद्ध किया।

जिस वक्त सामन्त अपने स्वार्थके लिए धर्मकी दुहाई देकर कटुताका बीज बो रहे थे, उसी समय सरल-हृदय मानवता-प्रेमी कुछ दूसरे भी पुरुष हुए थे, जो सामन्तोंकी चालसे क्षुब्ध थे और अपनी शक्ति भर दोनों संस्कृतियों और धर्मोंमें भाई-चारा स्थापित करनेकी कोशिश करते थे। हाँ, वह संख्या और साधन दोनोंमें कमजोर थे। सूफी महात्माओंकी संख्या कभी अधिक नहीं रही और वह जिस तसव्वुफ और अद्वैतका प्रचार करते थे, वह साधारण जनताकी पहुँचसे बाहरकी बात थी। साधारण जनताके समझने और लाभकी बातको लेकर यदि वह कुछ करना चाहते, तो उनकी हालत भी वही हुई होती, जो कि

साम्यवादी सैयद मुहम्मद मेहदी जौनपुरी[1]की हुई। सामन्तोंका हथियार सीधा सांसारिक भोगका प्रलोभन था, जब कि दोनों संस्कृतियोमे समन्वय स्थापित करनेवालोका हथियार था, अधिकतर परलोकवाद और मानवकी सहज सहृदयतासे अपील करना।

तेरहवी और बादकी भी दो-तीन सदियोंमे हमे यदि खुसरोको छोड़कर कोई मुस्लिम कवि नही दिखलाई पडता, तो इसका यह मतलब नहीं कि करोड़ों भारतीय मुसल्मान बनते ही कवि-हृदयसे बिल्कुल वचित हो गए। हिन्दुस्तानकी खाकसे पैदा हुए सभी मुसल्मानोके लिए अरबी-फारसीका पंडित होना सम्भव नही था। अब्दुर्रहमान जैसे कितने ही कवियोंने अपनी भाषामे मानव-समाजकी भिन्न-भिन्न अन्तर्वेदनाओको लेकर कविताकी होगी। कुछको उन्होंने कागजपर भी लिखा होगा; मगर उनको हम तक पहुँचानेके लिए सहायक नही मिले। सुल्तानी दर्बारमे विदेशी भाषाओंकी तूती बोल रही थी। मुस्लिम सामन्तोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दुस्तानी लिपि और हिन्दुस्तानी भाषामे लिखी गई कविताएँ पचास-पचास पीढ़ी तक कैसे सुरक्षित रह सकती थी। उधर हिन्दू सामन्तोके यहाँ जब स्वयंभू जैसे प्रथम श्रेणीके कवि भी जैन होनेके कारण भुला दिए जा सकते है, तो मुसल्मान कविके बारेमे पूछना ही क्या है। यह वजह है जो अब्दुर्रहमान (१०१०)से कुतबन (१४९३) तककी प्रायः पाँच सदियोंमे हम किसी मुसल्मान कविकी रचनाका पता नही पाते। रचनाएँ काफी रही होंगी, लेकिन परिस्थितियाँ उनके जीवित रहनेके अनुकूल नही थी। उन्हे एक ओर "हिन्दी-गन्दी" समझा जाता था और दूसरी ओर म्लेच्छ कविकी कृति।

५. सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति एक बहुत ही व्यापक शब्द है। यहाँ इस युगकी चित्रकला, मूर्त्तिकला, वास्तुकला, संगीतकलाके बारेमे ही दो-चार शब्द हम कहना चाहते है। पाँचवी-छठी

---

[1] देखो "मानव-समाज"

सदी भारतीय कलाके मध्याह्नका युग था। सातवी सदी तक पूर्व-अर्जित मान बना रहा। आठवी-नवी सदीमें कुछ ह्रास जरूर होने लगा, लेकिन पतन पूरी तौरसे दसवी सदीमे दिखलाई पडता है। खास करके यह बात चित्र और मूर्त्ति-कलाके बारेमे बहुत देखी जाती है। दसवी शताब्दी और उसके बादकी मूर्त्तियाँ बिल्कुल ही बदसूरत और भावशून्य है। वैसे तो तीर्थंकरकी मूर्त्तियोंको बनानेमें पहिलेसे भी कलाकार बेगार-सी टालने दीख पडते थे। पाँचवी, छठी, सातवी सदीकी कुछ बुद्ध मूर्त्तियाँ बडी सुन्दर है, मगर आठवी सदीके बाद तो बुद्ध और तीर्थंकरोकी मूर्त्तियाँ निरी पाषाण-सी रह गई है। हाँ, बोधिसत्त्वों और ताराकी मूर्त्तियाँ नवी-दसवी सदीमे उतनी बुरी नही देख पड़ती, बल्कि कोई-कोई तो बहुत सुन्दर है, खास करके कुर्किहारकी आठवी-नवी सदीकी कितनी ही पीतलकी मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर है। दसवी, ग्यारहवी सदीके कुछ चित्रपट तिब्बतमे मौजूद है। लदाख और स्पितिके बौद्ध मठोंमें कुछ भित्ति-चित्र भी बहुत अच्छे है। लेकिन दसवी-ग्यारहवी सदीके जो चित्र जैन और बौद्ध ताल-पोथियों-पर मिले है, वे जरूर भद्दे है। जान पडता है नवी सदीके बाद अपवाद रूपसे ही कोई-कोई अच्छे चित्रकार और मूर्त्तिकार रह गये। कला जितनी दूर तक अव-नत हो चुकी थी और जिस तरहके भद्दे नमूनोंको तैयार किया जा रहा था, उसे देखनेसे महमूदके आक्रमणके बाद—खासकर बारहवी सदीके बाद—से जो चित्र-मूर्त्तिकलाकी ओरसे उदासीनता वर्ती जाने लगी, वह अनुचित नही थी। वास्तुशिल्प और खासकर पत्थरोंकी नक्काशी बारहवीं शताब्दीमे उतनी बुरी न थी। देलवाड़ाके जैन मंदिरोंमें संगमर्मरपर खुदे कमल मधुच्छत्र बहुत सुन्दर है, यद्यपि उनमें अलंकरणकी मात्रा जरूरतसे ज्यादा दीख पड़ती है, जिससे गुप्तकालीन सादे सौम्य सौन्दर्यकी उसमे कमी है। तो भी, संगमर्मरको मोम या मक्खनकी तरह अपनी छिन्नियोंसे काट-काटकर कलाकारने जो कौशल दिखाया है, वह सराहनीय है। लेकिन उसी पत्थरमे जो मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं, उनमे विश्वास ही नही होता, कि उतने सुन्दर कमल और मधुच्छत्र बनानेवाले हाथ इतनी भद्दी मूर्त्तियाँ भी बना सकते हैं। बारहवी सदीके बाद तो एक तरह चित्र और मूर्त्तिकलाका दिवाला ही निकल जाता है।

इस युगमे संगीतकी ओर भी ध्यान दिया गया था। आजकलकी कितनी ही राग-रागिनियोंका वर्गीकरण और नामकरण अपभ्रंश-साहित्यके आरंभके साथ होता है। नृत्य और संगीतकी ओर यद्यपि सामन्त-वर्ग बहुत ध्यान देता था और सामन्त-कन्याओंकी शिक्षामे वह अनिवार्य विषय था; लेकिन अब राज-कुमारियाँ दंडीके समयकी तरह अपने कौशलका प्रदर्शन खुले आम नही कर सकती थी। खुले आम नृत्य-संगीतकी जिम्मेवारी अब केवल वेश्याओंपर रह गई थीं।

यद्यपि हमारे युगमे कालिंजरमे "प्रबोध-चद्रोदय" जैसे कुछ नाटक लिखे गए, मगर जान पडता है, अब नाटकोंका समय बीत चुका था। जहाँ नाटकके लिए जबर्दस्त प्रेरणा स्वाभाविक मानव-जीवन था, वहाँ अब वेदान्त और दर्शन अपने ध्यान-ज्ञान और राग-द्वेष आदिके रूपमे नाटकोंके लिए पात्र देने लगे, फिर वह नाटक कैसा होगा, यह आप खुद समझ सकते है।

सामन्तोंकी विलासिताने कुछ नई कलाओंकी भी सृष्टि की। स्वयंभूने राष्ट्रकूट ध्रुव और उसके उत्तराधिकारीके जल-क्रीडा-मण्डपमे जो देखा-सुना था, उसीका वर्णन अपने रामायणमे जल-क्रीडाके रूपमे किया। उस समय सामन्तोंके स्नान-कुण्ड, स्नान-मण्डप उसके खंभे और दीवारोंके अलंकृत करनेमे जंगम और स्थावर रत्नोंका व्यय दिल खोल कर किया जाता था। सामन्तोंकी कलाका प्रधान उद्देश्य होता ही था कामोद्दीपन। वस्तुतः सामन्तोंके जीवन-का आदर्श ही था––खाओ, पिओ, मौज करो। धर्म, दर्शन सारे उसके लिए दिखावे और जब तब मन बहलावकी चीज थे।

६. साहित्यिक अवस्था

हमारा यह साहित्य-युग उस वक्त आरभ होता है, जब कि बाण और हर्ष-वर्धनको रगमंच छोडे बहुत देर नही हुई थी। कवियोंमे अश्वघोष, भास, कालि-दास, दण्डी भवभूति, और बाणकी कृतियाँ बहुत चावसे पढ़ी जाती है। स्वयंभू-ने इन पुराने कवियोंके प्रति अपनी कृतज्ञता साफ प्रकट की है। सिद्धोंमेसे भी सरहपा, तिलोपा, शान्तिपा जैसे कितने ही संस्कृतके बडे-बडे पंडित थे; हाँ, जब

वे भाषा-कविता लिखने बैठते, तो अपने सस्कृत-भाषाके ज्ञानको भूल जाते थे। तभी वह इतनी सरल भाषामे लिखनेमे सफल हुए।

कविता और कविको सदा आश्रयकी जरुरत होती है। वह युग सामन्तोका था। जिस काव्य और कविको सामन्त-वर्गका आश्रय प्राप्त था, वह आर्थिक लाभके तौर पर ही सफल नही होता, बल्कि वह चिरस्थायी होनेका अधिकार रखता था। हर युगकी तरह उस समय भी साधारण जनताकी रुचिको पूर्ण करने-के लिए कविताएँ बनती थी। मगर उनके चिरस्थायी होनेके मार्गमे बहुत सी बाधाएँ थी। यद्यपि स्वयभू और पुष्पदन्त जैसे कवि अत्यन्त असाधारण कवि थे, मगर उनके लिए सामन्ती दर्बारोमे वह भी सुभीता नही था, जो कि किसी थर्ड-क्लास संस्कृतके विद्वानका होता था। पुष्पदन्तने तो इसीलिए बल्कि झुँझलाकर कह भी दिया कि जिस वक्त प्रभुवर्गकी यह हालत है, उस वक्त हमारे जैसोके लिए जंगलमे गुमनाम मारे-मारे फिरते रहना ही अच्छा है। इसीलिए पुष्पदन्तने सामन्तोंके चमर और अभिषेक जलको सज्जनताको धो-बहानेवाला ठहराया। उत्तर-कुरु वैसे भी एक वर्गहीन सुजल, सुफल, सुखी देशके तौरपर प्रसिद्ध था, मगर पुष्पदन्तके पहिले ही से कवि लोग उसे भूल गए थे। पुष्पदन्तने "न दास न कोउ राज" "मानव दिव्य", "अगर्व सुभव्य, समानहि सर्व" कहकर "अहो कुरु-भूमि निशमय स्वर्ग" कहा, इससे भी जान पड़ता है कि देशभाषाके प्रतिभाशाली कवियोंको कितनी प्रतिकूल स्थितिमे रहना पड़ता था। स्वयंभू जैसे महान् कविको भी किसी बड़े दर्बारमे स्थान न पा एक गुमनाममे अधिकारी धनजय, रयडाके आश्रयमे रहकर जिन्दगी गुजार देना भी उसी बातको पुष्ट करता है। अभी चक्रवर्त्ती लोग सस्कृत और थोडा-बहुत प्राकृत—जो कि अब मृत-भाषा बन चुकी थी—पर ही ज्यादा निगाह रखते थे। शायद वह समझते थे, कि देशी-भाषामे गुथी उनकी कीर्त्ति-माला चन्द ही दिनोंमे कुम्हला जाएगी, अमर कीर्त्ति तो संस्कृत काव्यों द्वारा ही मिल सकती है, इसीलिए उन्हे अपभ्रंश कवियोंकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत नही थी।

सिद्धोंके लिए इस बारेमे कोई दिक्कत नही थी। उन्हे किसी दर्बारके

आश्रयकी उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी कि दर्बारको। जल्द सुला देनेवाली उनकी मीठी गोलियोंका जनतापर बहुत प्रभाव था—विचित्र जीवनके कारण दिव्य चमत्कारके कारण, अथवा ज्ञान-विज्ञानके कारण कह लीजिए; राजा सिद्धोंकी पूजा-अर्चामें सबसे आगे रहना चाहते थे। शान्ति पा या रत्नाकर शान्तिको गौड़ नरेश उसी तरह आँखोंपर रखनेके लिए तैयार थे, जैसे मालव-दर्बार या सिंहलेश्वर।

(१) **सिद्धोंकी कविता**—शायद कविताके रूढ़ि-बद्ध संकीर्ण लक्षणको लेने-पर कबीरकी तरह सिद्धोंकी कविता भी कविता न गिनी जाए या कमसे कम अच्छी कविता न समझी जाए; लेकिन लाखों नर-नारियोंको उनमें रस, एक तरह-की आत्म-तृप्ति मिलती थी और आज भी उस तरहकी मनोवृत्ति रखनेवाले कितने ही पाठकोंको वह उतनी ही रुचिकर मालूम होती है; इसलिए उन्हें कविता मानना ही पड़ेगा। यह ठीक है, उनकी भाषा सीधी-सादी है समझनेमें बहुत सुगम है, लेकिन यह कविताका कोई दोष नहीं। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए, कि सिद्धोंकी सीधी-सादी भाषाको भी लोगोंने खींचातानी करके दुष्टकूट बना उनकी भाषाको "सन्ध्या-भाषा" बना डाला, और फिर तो वह उतनी ही दुर्बोध और क्लिष्ट हो गयी, जितना कि श्रीहर्षका "नैषध" या माघका "शिशुपाल-वध"।

हम बतला चुके हैं, आदिम सिद्ध किस तरह कृत्रिम बहु-निर्बन्ध-पूर्ण जीवनको सहज-जीवनका रूप देना चाहते थे और इसके लिए समाजके चौधरियोंकी कितनी ही रूढ़ियोंको वह तोड़-फेंकना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नहीं था कि लोग सहज-जीवन बितानेके लिए अंधेरी कोठरियों और "गुह्य-समाजों"का आश्रय लें। वह इस बातमें सफल नहीं हुए और उनका सहज-यान भी सामन्त-समाजका एक दूसरा कोढ़ बनकर रह गया। उनके आशावादको भी आगे बढ़नेका अवसर नहीं मिला। हाँ, अलख-निरंजनका जो राग उन्होंने गाया, वह चिरकालके लिए अपना असर छोड़ गया। यद्यपि सिद्धोंके अलख-निरंजनमें राम-रहीम या ईश्वर-परमेश्वरसे कोई संबंध नहीं था। वह तो पंडितों और रूढ़िवादियोंके शास्त्र, वेद, पोथी-पत्रेसे न जाने जा सकनेवाले—अ-लख, विशुद्ध सत्य—को बतलाता

था, जो कि वस्तुतः बौद्धोंके निर्वाणका ही विशेषण है। लेकिन पीछेके चेलो—कबीर नानकसे लेकर राधास्वामी दयाल तक—ने उसका और ही अर्थ लगाकर लोगोंको मुक्तिकी ओर नहीं दिमागी गुलामीकी ओर ढकेला।

सिद्ध पुरानी रुढियों, पुराने पाखण्डोंके बहुत विरोधी थे। आदिम सिद्धोंने तो सरहकी तरह अपने बड़े सम्मान और सुखी जीवनकी भी पर्वाह नहीं की। सरह किसी वक्त नालन्दाके एक बड़े प्रतिष्ठित पंडित थे। मगर जब उन्हें वहाँका जीवन दमघोटू लगने लगा, तो उन्होंने सब कुछको लात मारा, भिक्षुओंका बाना छोड़ा, अपनी (ब्राह्मण) नहीं किसी दूसरी छोटी जातिकी तरुणीको लेकर खुल्लमखुल्ला सहजयानका रास्ता पकड़ा। सरहने सिर्फ दूसरे ही पन्थोंके पाखण्डोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि बौद्धोंको भी नहीं छोड़ा। इस बातका अनुकरण पीछेके सन्तोंमें भी पाया जाता है, लेकिन अपने पन्थ और मतको बचाकर। यद्यपि ये पुराने सिद्ध किसी पाखण्डको फैलाना नहीं चाहते थे, लेकिन पीछे उन्हींके नामपर कितने ही मत्र-तंत्र और पाखण्ड चल पड़े। सिद्धोंने सुख-दुख और दुनियाकी सभी समस्याओंको केवल व्यक्तिके रूपमें देखा। उन्हें ख्यालमें भी नहीं आया, कि समाजकी बुराइयोंको सामाजिक रूपसे ही दूर करनेपर सफलता मिल सकती है। लेकिन जैसा कि हमने पहिले लिखा है, सिद्धोंको निराशावाद छू नहीं गया था। वह निराशावाद, योग-वैराग्यसे लोगोंका पिण्ड छुड़ाना चाहते थे और उन्होंने मरनेके पीछे मिलनेवाले निर्वाणके पीछे भागनेवाले लोगोंकेलिए इसी संसारमें स्वाभाविक भोगमय जीवन बितानेका आदर्श उपस्थित किया। सिद्धोंने आत्मावलंबनको यद्यपि पसन्द किया, मगर साथ ही गुरुकी महिमाको उन्होंने इतना बढ़ाया, कि पीछे वही अन्धेरगरदीका एक भारी साधन बन गया। सिद्धोंके बाद जैन रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, राधास्वामी सबने गुरुकी अनन्य भक्तिका राग अलापा।

सिद्धोंकी कवितामें अधिकतर सहजयान और रहस्यवाद ही मिलता है। जिनकी सामन्त-समाजको कभी-कभी जरूरत पड़ती थी, उनको आवश्यकता ऐसे काव्योंकी थी, जिनमें शृंगार और वीररसका जोर हो।

(२) शृंगार और वीररस—उस समयके सामन्त-जीवनका उद्देश्य था

चाहे जैसे भी हो दुनियाका आनन्द खूब डट करके लेना। ऐसा कहनेसे आचारके नियमोंके विरुद्ध जानेकी ज़रूरत नही है; क्योंकि पुरोहित और महन्त अपने मालिकोंकी रुचिके अनुसार हर वक़्त नये धर्मशास्त्र और नये आचार-नियम बनानेके लिए तैयार थे। हाँ, भोग निष्कंटक नही हो सकता था। हर वक़्त एक सामन्तको दूसरे सामन्तसे ही खतरा नहीं था, बल्कि खुद अपने भाई-बहिनोंसे भय लगा रहता था। यदि ज़रा भी चूके, कि भोग और जान दोनोंसे हाथ धोना पड़ा। इसीलिए सामन्तोंको भोगके लिए पूरी क़ीमत अदा करनेको तैयार रहना पड़ता था। स्वयंभू और पुष्पदन्तने सामन्त-जीवनके इन दोनों पहलुओं—भोग भोगना और मृत्युको तृणवत् समझना—का सुन्दर चित्रण किया है, इतना सुन्दर चित्रण पीछेके काव्योंमें हमे नही मिलता। सामन्तको मृत्युकी कोई पर्वाह नहीं थी, न मृत्युके बादकी। विजय हुई तो उसके चरणोंमे सारे भोग पड़े है। हाँ, यदि कभी पराजयका मुँह देखना पड़ा, तब या तो सरहपाके पास जाना पड़ता या किसी अपने कविसे निराशावादकी बात सुन सन्तोष करना पड़ता। स्वयंभू और पुष्पदन्तने पराजित सामन्तोंके लिए काफ़ी सन्देश छोड़े हैं।

हेमचन्द्रके संगृहीत एक पदमें "बापकी भूमड़ी" (पितृ-भूमि)के लिए सर्वस्व-उत्सर्ग करनेकी जो भावना दर्शायी गई है, उसे देखकर हमारे कितने ही पाठक शायद उछल पड़े। लेकिन यह बापकी भूमड़ी साधारण जनताके ख्यालसे नही कही गई। यह सामन्तोंकी अपने हाथसे निकल गई बापकी भूमड़ी—निरंकुश राज—को फिरसे लौटानेके लिए आदेश है। अस्सी फीसदी जनता और भविष्यकी सारी पीढ़ियोंके सुख और स्वार्थका वहाँ कोई ख्याल नही था।

तब और पीछेके भी कवि सन्देश देते हैं—काया नरक, संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं। यह कोई उच्च भावनाका परिचायक नही है। चूँकि उनके जीवनके कुछ महीने या कुछ बरस दुखमें कटे और जिस दुखका कारण भी बहुत कुछ समाजकी विषमनीति है, जिसे कि हटानेसे बहुतसे दुखोंके कारण खतम हो सकते है। लेकिन कविने अपने उस थोड़े समयके दुखको इतना

नहीं आया। एक जीवनके सुख-दुखसे आनेवाली अगनित पीढ़ियोंका सुख-दुख परिमाणमें कहीं अधिक है, लेकिन जो उसका न ख्यालकर सिर्फ़ अपने हीको सब कुछ समझ लेता है, क्या यह उसकी अत्यन्त निम्न कोटिकी स्वार्थान्धता नहीं है ? हमारे कवियोंने व्यक्तिके सामाजिक कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसका कारण था, वही सामन्त-समाज, जिसके हाथमें सारे समाजकी नकेल थी और जो व्यक्तिगत आनन्दको ही सर्वोपरि चीज़ समझता था। हमारे आजके भी कवि जब ऐसी ग़लती कर बैठते हैं, तो इन पुराने कवियोंको दोष देनेकी क्या ज़रूरत। वस्तुतः कवियोंने अत्यन्त संदिग्ध परलोकवाद और वैयक्तिक निराशावादपर जितना ज़ोर दिया, उससे ज्यादा उन्हें चाहिए था, अपनी आगेवाली पीढ़ियोंके मुँहकी ओर देखना—जो पीढ़ियाँ कि संदिग्ध और काल्पनिक नहीं बिल्कुल वास्तविक हैं, यह बात खुद उन्हें अपना अस्तित्व बतला देता। केवल अपने लिए अनन्तजीवनकी मिथ्या आशाकी वेदीपर उन्होंने आनेवाली पीढ़ियोंके वास्तविक अनन्त-जीवनकी बलि चढ़ा देनेमें ज़रा भी आनाकानी नहीं की।

(३) **कुछ कवियोंका मूल्यांकन**—(क) **स्वयंभू**—हमारे इसी युगमें नहीं हिन्दी-कविताके पाँचों युगों (१—सिद्ध-सामन्त-युग, २—सूफ़ी-युग, ३—भक्त-युग, ४—दर्बारी-युग, ५—नवजागरण-युग)के जितने कवियोंको हमने यहाँ संग्रहीत किया है, उनमें यह निस्संकोच कहा जा सकता है, कि स्वयंभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः वह भारतके एक दर्जन अमर कवियोंमेंसे एक था। आश्चर्य और क्रोध दोनों होता है कि लोगोंने कैसे ऐसे महान् कविको भुला देना चाहा। स्वयंभूके रामायण और महाभारत (या कृष्ण-चरित्र) दोनों ही विशाल-काव्य हैं। उनके विशाल आकारको देख-कर सन्देह हो सकता है कि कविने कितनी जगह काव्य-शरीरको जैसे-कैसे भी फुलानेकी कोशिश की होगी, मगर ऐसा प्रयत्न सिर्फ़ वहीं देखनेमें आता है, जहाँ अपने सहधर्मियोंकी ज़बर्दस्तीके कारण वह जैन-धर्मकी कितनी ही नीरस रूढ़ियोंको बखाननेके लिए मजबूर होता है—ठीक वैसे ही जैसे कुशल चित्रकार और मूर्त्तिकार तीर्थंकरोंकी मूर्त्ति बनानेमें बेगार टालने लगते। हम समझते

है कि ऐसे बेगारवाले अंश कविके कविता-कलेवरके अभिन्न अंग नही है। उनके हटा देनेसे न कथानककी शृंखला ही टूटती है और न रसधारा ही।

यद्यपि स्वयंभू वाणसे "घनघनऊ" या समास उधार लेनेकी बात कहता है, लेकिन हर्षचरित और कादंबरीके विकट समासोंका स्वयंभूमे पता नही लगता। स्वयंभूकी भाषाका प्रवाह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्य-स्वर बड़े ही कर्णप्रिय है। शब्द बिल्कुल नपे-तुले है, और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और और ऊपर उठता जाता है। उसका कवि-कौशल कितना श्रेष्ठ है, यह इसीसे मालूम होगा कि मैंने रामायणमे शृंगार, वीर, वीभत्स, आदिके उदाहरणोंको जब जमा किया, तो ग्रन्थके कलेवरके बढ़ जानेके भयसे उनमेसे एक ही एकको देना चाहा, मगर फिरसे पढ़नेपर मालूम हुआ, कि स्वयभूके वर्णनमे हर जगह नवीनता है, इसलिए एकसे अधिक उद्धरण देनेके लिए मजबूर होना पड़ा।

स्वयभूने प्रकृतिका बहुत गहरा अध्ययन किया है, यह हमारे दिये हुए उद्धरणोंसे मालूम होगा। समुद्र और कितने ही अन्य स्थलों, प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। और सामन्त समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। किसी एक सुन्दरीके सौन्दर्यको जितना अच्छी तरह उसने चित्रित किया है, वह तो किया ही है, लेकिन सुन्दरियोंके सामूहिक सौदर्यका वर्णन करनेमे उसने कमाल कर दिया है। चित्रकारकी भाँति कविके सामने भी कोई साकार नमूना रहना चाहिए। स्वयंभूने राष्ट्रकूटोंके रनिवास और उनके आमोद-प्रमोदको नजदीकसे देखा था। वहाँ परदा बिल्कुल नही था, इसलिए और सुविधा थी। उसी सौन्दर्यको उसने रावण और अयोध्याके रनिवासोंके सौन्दर्यके रूपमे चित्रित किया है।

विलाप-चित्रणमे भी उसने बड़ी सफलता प्राप्त की है। रावणके मरनेपर मन्दोदरी और विभीषणके विलाप सिर्फ़ पाठकके नेत्रोंको ही सिक्त नही कर देते, बल्कि उसका मन मन्दोदरी और विभीषण तथा मृत रावणके गम्भीर और उदात्त भावोंकी दाद देता है।

सामन्ती युगमें स्त्रियोंका अधिकार ही क्या हो सकता है? तो भी सिद्ध-

युग, तथा बादकी शताब्दियोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था कुछ बेहतर ज़रूर थी। स्वयभूने सीताका जो रूप रावणको जवाब देते और अग्नि-परीक्षाके समय चित्रित किया है, पीछे उसका कहीं पता नहीं लगता।

मालूम होता है, तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको ज़रूर देखा होगा, फिर आश्चर्य है कि उन्होंने स्वयंभूकी सीताकी एकाध किरण भी अपनी सीतामें क्यों नहीं डाल दिया। तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको देखा था, मेरी इस बातपर आपत्ति हो सकती है, लेकिन मैं समझता हूँ कि तुलसी बाबाने "क्वचिदन्यतोपि"से स्वयंभू-रामायणकी ओर ही सकेत किया है। आखिर नाना पुराण निगम आगम और रामायणके बाद ब्राह्मणोंका कौनसा ग्रंन्थ बाकी रह जाता है, जिसमें रामकी कथा आई है। "क्वचिदन्यतोपि"से तुलसी बाबाका मतलब है, ब्राह्मणोंके साहित्यसे बाहर "कहीं अन्यत्रसे भी" और अन्यत्र इस जैन ग्रन्थमें रामकथा बड़े सुन्दर रूपमें मौजूद है। जिस सोरों या शूकरक्षेत्रमें गोस्वामी जीने रामकी कथा सुनी, उसी सोरोंमें जैन-घरोंमें स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था। राम-भक्त रामानन्दी साधु रामके पीछे जिस प्रकार पड़े थे, उससे यह बिल्कुल सम्भव है कि उन्हें जैनोंके यहाँ इस रामायणका पता लग गया हो। यह यद्यपि गोस्वामी जीसे आठ सौ बरस पहले बना था किन्तु तद्भव शब्दोंके प्राचुर्य तथा लेखकों-वाचकोंके जब-तबके शब्द-सुधारके कारण अभी आसानीसे समझमें आ सकता था। जो उद्धरण हमने यहाँ दिये हैं, उनमेंसे कितनोंका प्रभाव रामचरितमानसके कई स्थलोंपर दिखलाई पड़ेगा। इसका यह हरगिज़ मतलब नहीं, कि गोसाईंजीने भाव वहाँसे चुराया, या उनकी प्रतिभा सिर्फ नकल करनेकी थी; गोस्वामी जीकी काव्य-प्रतिभा स्वतः महान् है। उसे पहलेकी प्रतिभाओंका वैसे ही सहारा मिला होगा, जैसे हरेक बालकको अपने पूर्वजोंकी कृतियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानका विस्तार करना पड़ता है।

(ख) **पुष्पदन्त**—पुष्पदन्तका नम्बर स्वयंभूके बाद आता है, किन्तु इस युगके बाकी कवियोंमें उसका स्थान बहुत ऊँचा है। पुष्पदन्तकी उपाधियोंमें **अभिमान-मेरु** बिल्कुल यथार्थ मालूम होता है। मंत्री भरतको इस फक्कड़

कविकी बहुत नाज़बरदारी करनी पड़ी होगी। अमीरोंके लिए तो उसने पहले ही कह दिया था "चमरानिलही उड़ेउ गुणाइँ"। "अभिषेक धोॅयउ-सुज-नत्तननाय।" कृष्णराजके दर्बारमें पुष्पदन्त कभी अपने मनसे गया होगा, इसमें सन्देह ही मालूम होता है। पुष्पदन्तने विरहका वर्णन बड़ा सुन्दर किया है और गरीबीका भी। अमीरोंके विलासको छोड़कर तो वह महाकाव्यको लिख ही नहीं सकता था, इसलिए वह तो ज़रूरी ही था; मगर सामन्तोंकी संक्षिप्त किन्तु अतिकठोर आलोचना की है कुछ ही शताब्दियों पहले अपनी प्रजातंत्रीय स्वतंत्रतासे वंचित मगर अब भी जब-तब लड़ती रहनेवाली यौधेयकी भूमिका इतना आकर्षक वर्णन और अन्तमें उत्तर-कुरुकी धनी-गरीब-रहित दास-राजा-शून्य दिव्य-मानववाली भूमिकी भारी तारीफ बतलाती है कि पुष्पदन्तका व्यक्तित्व किसी दूसरी ही तरहका था, जिसके लिए उस कालकी परिस्थिति अनुकूल नहीं थी।

(ग) **दो कलिकाल-सर्वज्ञ**—हमारे इस युगमें दो "कलिकाल-सर्वज्ञ" भी हैं। सिद्ध शान्तिपा या रत्नाकरशान्ति (१००० ई०) भारतके शायद सर्व-प्रथम "कलिकाल-सर्वज्ञ" थे। गौड़ नृपतिके राजगुरु और विक्रमशिलाके प्रधान होनेसे भी मालूम हो सकता है, कि वह अपने समयके असाधारण पण्डित थे। शान्तिपाके कुछ दर्शन और एक छन्दःशास्त्र "छन्दो-रत्नाकर" ग्रन्थ अब भी बच रहे हैं। दूसरे कलिकाल-सर्वज्ञ हैं आचार्य हेमचन्द्रसूरि (१०८८-११७६)। इनके संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। अपनी मातृभाषामें उन्होंने कोई स्वतंत्र काव्य रचा था, इसकी कम सम्भावना है। लेकिन अपने व्याकरण 'छन्दोनुशासन' और "देशी-नाममाला" (कोष) द्वारा जो सेवा उन्होंने हमारी भाषाकी की है, वह स्मरणीय है। अपने व्याकरण और छन्दोनुशासनमें उदाहरणके तौरपर उन्होंने अपभ्रंशके बड़े सुन्दर-सुन्दर सैकड़ों पद्य उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि वह इस भाषाको लम्बी नाकवाले पंडितोंकी तरह उपेक्षणीय नहीं समझते थे।

(घ) **कवि अब्दुर्रहमान**—अब्दुर्रहमान हिन्दीका प्रथम मुस्लिम कवि है। (उसकी) भाषा और कलासे मालूम होता है कि कविकी वाणी खूब मंजी

हुई है। मधुर शब्दोंके चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखनेमें अब्दुर्रहमानने बड़ी सफलता प्राप्त की है। अफ़सोस है कि इतने सुन्दर कवि-की इतनी कम कविता हमें प्राप्त है। वह भी लुप्त हो गई होती, अगर किसी जैन-पुस्तक-भंडारने रक्षा न की होती। मंगलाचरणकी कुछ पंक्तियोंको छोड़-कर इसकी कवितामें धर्म कहीं छू नहीं गया। कविके वास्तविक कालके बारे-में हमें कुछ नहीं मालूम, लेकिन जान पडता है कविकी जन्म-भूमि मुलतानके महमूदके हाथमें जानेसे पहले अब्दुर्रहमान मौजूद थे।

(४) कवियोंकी अमर कीर्त्ति

कवियोंने संसार तुच्छ, कोई किसीका नहीं, काया नरक आदि बातोंका प्रचार करके सामन्तोंका ही हित किया, साधारण जनता और आगे आनेवाली पीढ़ीका तो इससे घोर अहित हुआ। उन्होंने उत्पीडित प्रजाका पक्ष लेना तो दूर, उनके कष्टों तथा कारणोंके चित्रण करनेका भी प्रयास नहीं किया—इत्यादि-इत्यादि कितने ही दोष उनके ऊपर लगाए जा सकते हैं; लेकिन इसकी जिम्मेवारी बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थिति और समाजपर है, इस बातका अपने पुराने महान् कवियोंके संबंधमें कोई फैसला देते वक़्त हमें हमेशा ख्याल रखना होगा। सबसे बड़ी बात यह है, कि दोष भी तभी तक लोग देखेंगे, जब तक हमारी दुनिया नई नहीं बनती, इसकी सारी गंदगियाँ दूर नहीं हो जाती। एक बार जहाँ हमारे समाजका कलेवर बदला, कि कवियोंकी महिमा सिर्फ उनके कवित्वके कारण होगी। रामके हाथों मुक्ति पानेवालोंका जब हमारे देशमें नाम भी नहीं रह जाएगा, तब भी तुलसीकी कद्र होगी। स्वयंभूके धर्म (जैन)का अस्तित्व भी न रहनेपर स्वयंभू नास्तिक भारतका महान् कवि रहेगा। उसकी वाणीमें हमेशा यह शक्ति बनी रहेगी कि कहीं अपने पाठकोंको हर्षोत्फुल्ल कर दे, कहीं शरीरको रोमांचित बना दे और कहीं आँखोंको भीगनेके लिए मजबूर कर दे। सनातन-तुलामें नापनेपर हमारे कवियोंका सम्मान शताब्दियोंके बीतनेके साथ अधिक और अधिक बढ़ता जाएगा। जिस वक़्त शत-प्रतिशत जनता शिक्षित और संस्कृत होगी, जिस वक़्त कलाकी निष्पक्ष परखका मान

और ऊँचा होगा, उस वक़्त हमारे कवियोंका कीर्त्ति-कलेवर, उनका आसन और ऊँचा होगा।

कालने बड़ी बेदर्दीसे हमारे पुराने कवियोंकी छँटाई की है। जाने कितने उच्च काव्योंसे आज हम वंचित है। लेकिन इस छँटाईके बाद जो कुछ हमारे पास बचकर चला आया है, उसकी क़द्र और रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकारी होनेका दावा कर सकते हैं।

हम चाहते है कि आदिसे लेकर आज तकके सभी महान् कवियोंकी कृतियोंको पाठकोंके सामने इस तरह रखा जाए, जिसमे वह काव्य-रसका अच्छी तरह आस्वादन कर सके, कवियोके मुखसे तत्कालीन समाजकी आप-बीती जान सकें और कवि-परंपराने किस तरह आनेवाली पीढ़ियोंको प्रेरणा और सहायता दी, इसे भी अच्छी तरह समझ सके। हमारे संग्रहका पाँच युगोंवाला वर्त्तमान प्रयास सिर्फ बीचवाला भाग है जो चार खंडोंमे समाप्त होगा। बीसवी सदीके कवियोंका संग्रह पाँचवाँ खण्ड होगा और वेदसे लेकर पीछे तकके संस्कृत-पाली-प्राकृत कवियोंका सूक्ति-संग्रह एक अलग खण्ड। उस खण्डमे छायासे काम नही चलेगा और मूल-भाषाका देना भी बेकार होगा, लेकिन हम चाहेंगे कि अनुवाद पद्य-बद्ध हों और जहाँ तक हो सके उन्हीं छन्दोंमें; लेकिन यह काम कवि ही कर सकते है। यदि ऐसे कवि उसे अपने हाथमे लेना चाहेंगे, तो हम सहर्ष उनकी यथायोग्य सहायता करेंगे।

प्रयाग
१४-८-४४

राहुल सांकृत्यायन

विषय-सूची

पृष्ठ

१ : आठवीं सदी

§ १. **सरहपा** (७६० ई०) २

१. **दोहा** ,,

(१) रहस्यवाद ,,

(२) पाखंड-खंडन ४

(३) मंत्र-देवता बेकार ,,

(४) सहज-मार्ग ६

(५) भोगमें निर्वाण ,,

(६) काया तीर्थ ८

(७) गुरु-महिमा ,,

(८) सहज संयम १२

(९) कमल-कुलिश साधना १४

२. **गीत** १६

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी ,,

(२) सहज-मार्ग १८

§ २. **शबरपा** (७८० ई०) २०

रहस्यवाद ,,

§ ३. **स्वयंभू देव** (७९० ई०) २२

१. **आत्म-परिचय** ,,

(१) कविका आत्म-निवेदन ,,

(२) रामायण-रचना २६

२. **ऋतु-और काल-वर्णन** ,,

(१) पावस ,,

पृष्ठ

(२) वसंत ३०

(३) संध्या-वर्णन ३२

३. **भौगोलिक वर्णन** ,,

(१) देश-वर्णन ,,

(२) नगर-वर्णन ३४

(क) राजगृह ,,

(ख) महेन्द्रनगर ,,

(ग) दधिमुखनगर ३६

(३) समुद्र-वर्णन ,,

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन ३८

(५) वन-वर्णन ४०

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा ,,

(७) यात्रा-वर्णन ,,

(क) हनूमानकी लंकामें अयोध्याकी यात्रा ,,

(ख) रामकी लंकामें अयोध्या-यात्रा ४६

४. **सामन्त-समाज** ,,

(१) भोजन-प्रकार ,,

(२) नारी-सौन्दर्य ४८

(क) सीता ,,

(ख) मन्दोदरी ५०

(ग) रावण-रनिवास ५२

(घ) अयोध्याका रनिवास ५४

	पृष्ठ
(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ	५६
(३) जल-क्रीड़ा	५८
(४) प्रेम (काम)-अवस्था	६०
(५) विरह (सीता)	६२
(६) मिलन (सीता-राम)	६४
(७) नारी-अधिकार	६६
(क) रावणको सीता-का जवाब	,,
(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता	६८
५. सामन्त और युद्ध	७०
(१) सामन्त (राम)-वेष	,,
(२) देश-विजय (देशोंके नाम)	७२ ,,
(३) योधाओंकी उमगे	७४
(४) पत्नीसे विदाई	७६
(५) रण-यात्रा	७८
(६) सैनिक बाजे	८०
(७) युद्ध-वर्णन	८२
(क) मेघवाहनका युद्ध हथियारोंकी शक्तिकी तुलना	,,
(ख) मेघवाहन-हनूमान-युद्ध	८४
(ग) हनूमानका युद्ध	८८
(घ) कुंभकर्णका युद्ध	९०
(ङ) सुग्रीव-मेघवाहन-युद्ध	९२
(च) रावणका शरीर	९४
(छ) लक्ष्मण-रावणयुद्ध	९६
(८) रण-क्षेत्र	९८
(९) विजयोत्साह	१००
(१०) लक्ष्मणके हाथ रावण-की मृत्यु	,,
६. विजय	१०२
(१) विजयिनी-रामसेनाका लंका-प्रवेश	,,
(२) विभीषण द्वारा रामका स्वागत	,,
(३) भरत द्वारा अयोध्यामे रामका स्वागत	,,
(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा (वीर-रावण)	१०४ ,,
७. विलाप	१०६
(१) नारी-विलाप	,,
(क) अयोध्या-अंतःपुर-का०	,,
(ख) रावण-परिजन-विलाप	१०८
(ग) मन्दोदरि-विलाप	११०
(२) बंधु-विलाप	११२

	पृष्ठ
(क) दशरथ-विलाप	११२
(ख) राम-विलाप	११४
(ग) भरत-विलाप	११६
(घ) रावण-विलाप	११८
(ङ) विभीषण-विलाप	१२०
८. कविका संदेश	१२२
(१) काया-नरक	,,
(२) गर्भवास दुःख	१२४
(३) आवागमन दुःख	,,
(४) ससार तुच्छ	१२६
(५) कोई किसीका नही	१३०
(६) सामाजिक भेद-भाव धर्म-अधर्मसे	,,
§ ४. भुसुकपा(८००ई०)	१३२
रहस्यवाद	,,
२ : नवीं सदी	
§ ५. लुईपा (८३० ई०)	१३६
रहस्यवाद	,,
§ ६. विरूपा (८३० ई०)	१३८
रहस्यवाद	,,
§ ७. डोम्बिपा (८४० ई०)	१४०
रहस्यवाद	,,
§ ८. दारिकपा (८४० ई०)	,,
रहस्यवाद	,,
§ ९. गुंडरीपा (८४० ई०)	१४२
§ १०. कुक्कुरीपा (८४० ई०)	१४२
§ ११. कमरिपा (८४० ई०)	१४४
§ १२. कण्हपा (८४०ई०)	१४६
(१) पथ-पंडित-निन्दा	,,
(२) सहज-मार्ग	,,
(३) निर्वाण-साधना	१४८
(४) रहस्य-गीत	१५०
(५) वज्र-गीत	१५४
§ १३. गोरक्षपा (८४५ई०)	१५६
१. आत्म-परिचय	,,
(१) मछेन्द्रके शिष्य	,,
(२) चौरासी सिद्धोसे संबंध	,,
२. दर्शन	१५७
(१) सहज-यान	,,
(२) मध्य-मार्ग	१५८
(३) अलख-निरंजन	,,
(४) शून्यतत्त्व	१५९
(५) रहस्यवाद	,,
३ साधना और उलटवाँसी	१६१
(१) साधना	,,
(२) उलटवाँसी	,,
४. संदेश	१६२
(१) रूढ़ि-खंडन	,,
(२) राजा-प्रजा समान	१६३
(३) भोगमें योग	,,

पृष्ठ

§ १४. टेंटणपा (८५० ई०) १६४
§ १५. महीपा (८७० ई०) ,,
§ १६. भादेपा (८७० ई०) १६६
§ १७. धामपा (८७० ई०) ,,

३ : दसवीं सदी

§ १८. देवसेन (९३३ ई०) १६८
(१) सदाचार-उपदेश ,,
(२) दान-महिमा १७०
(३) धर्माचरण-महिमा ,,
(४) धर्माचरण ,,
§ १९. तिलोपा (९५० ई०) १७२
(१) सहज-मार्ग ,,
(२) निर्वाण-साधना ,,
(३) निरंजन-तत्त्व १७४
(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार ,,
(५) भोग छोड़ना बुरा ,,
§ २०. पुष्पदन्त (९५९-७२) १७६
१. आत्म-परिचय ,,
(१) कृष्णके स्कंधावारमें कवि ,,
(२) आश्रयदाता मंत्रीकी प्रशंसा १७८
(३) भरतके घरमें स्वागत १८०
२. काल-और ऋतु-वर्णन १८२
(१) संध्या-वर्णन ,,
(२) पावस-ऋतु १८२
३. भौगोलिक वर्णन १८६
(१) हिमालय ,,
(२) देश-विजय १८८
(३) यौधेय-भूमि १९०
(४) मगध-भूमि १९२
(५) मालव-ग्राम ,,
४. सामन्त-समाज १९४
(१) राजत्वके दुर्गुण ,,
(२) राजदर्बार १९६
(३) सामन्ती-भोग ,,
(क) वेश्या-बाजार १९८
(ख) विवाह-वर्णन ,,
(ग) रानियोंका जीवन २००
(घ) नारी-सौन्दर्य-वर्णन ,,
(ङ) नख-शिख-वर्णन २०४
(च) कुपिता नायिका २०६
(४) नारी-विलाप ,,
(५) युद्ध २०८
(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा २१२
५. धार्मिक आचार २१४
(१) श्रोत्रिय कौन ? ,,
(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म ,,

	पृष्ठ
६. कृष्ण लीला	२२०
(१) गोपियोंके साथ	,,
(२) पूतना-लीला	२२२
(३) ओखल-बंधन	,,
(४) देवकीनंद घरमें	२२४
(५) गोवर्धन-धारण	२२६
(६) कालिय-दमन	,,
(७) कृष्ण-महिमा	२३०
७. कविका संदेश	,,
(१) गरीबी	,,
(२) नीति-वचन	२३२
(३) मोहै	,,
(४) दर्शन-वेदान्त	२३४
(५) काया-नरक	,,
(६) संसार तुच्छ	२३६
(७) पूर्व-कर्मवाद	,,
(८) साम्यवादी द्वीप	२३८
§ २१. शान्तिपा (१००० ई०)	,,
रहस्यवाद	,,
§ २२. योगीन्दु (१००० ई०)	२४०
(१) ज्ञान-समाधि	,,
(२) अलख-निरंजन	२४२
(३) आत्मा	,,
(४) परमतत्त्व (परमात्मा)	२४४
(५) निरंजन-योग	२४६
(६) पंथ-पोथीपत्रा-निन्दा	२४८
(७) शून्य-ध्यान	,,
(८) योग-भावना	२५०
(९) सभी देव समान पूजनीय हैं	२५२
§ २३. रामसिंह (१००० ई०)	,,
(१) जग तुच्छ	,,
(२) निरजन-साधना	२५४
(३) पाखंड-खंडन	२५६
(४) गुरु-महिमा	२५८
(५) मंत्र-तंत्र ध्यान-आदि बेकार	,,
§ २४. धनपाल (१०००ई०)	२६०
१. कवि-परिचय	,,
२. भौगोलिक वर्णन	२६२
(१) कुरु-जांगल-देश	,,
(२) गज (हस्तिना) पूर	,,
३. वाणिज्य-सार्थ	२६४
(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी	,,
(२) भविष्यदत्तकी मांका विरोध	,,
(३) माताका उपदेश	२६८
(४) सार्थ (कारवाँ) की यात्रा	,,
(५) समुद्र-यात्रा	२७०
४. सामन्ती वणिक्-समाज	२७२
(१) वसन्त-वर्णन	,,

	पृष्ठ
(२) नारी-सौन्दर्य	२७४
(३) आभूषण-सज्जा	२७६
(४) विरह-वर्णन	२७८
५. सामन्त-समाज	२८०
(१) राजद्वार (राजागण)	,,
(२) सामन्ती-युगकी शिक्षा	२८२
(३) युद्ध (भविष्यदत्तका)	,,
४ : ग्यारहवीं सदी	
§ २५. अज्ञात कवि (१०१०ई०)	२८६
१. तैलप द्वारा पराजित मुंजकी विपदा	,,
(१) मुजका पश्चात्ताप	,,
(२) रुद्रादित्य मंत्रीकी सीख	२८८
(३) मुंजसे भीख मँगवाना	,,
२. सुखी कुटुंब	२९०
३. दासी-प्रेम-निन्दा	,,
४. नीति-वाक्य	,,
५. वैराग्य	,,
§ २६. अब्दुर्रह्मान (१०१०ई०)	२९२
१—परिचय	,,
२—प्रोषित-पतिकाका सन्देश	,,
३—ऋतु-वर्णन	३०२
(१) ग्रीष्म	,,
(२) वर्षा	३०४
(३) शरद्	,,
(४) हेमन्त	३०८
(५) शिशिर	,,
(६) वसन्त	३१०
§ २७. बब्बर (१०५० ई०)	३१४
१. जन-जीवन	,,
(१) ग़रीबीका जीवन	,,
(२) सुखी-जीवन	,,
२. सामन्त-समाज	३१६
(१) कुलक्षणा स्त्री	,,
(२) नारी-सौन्दर्य	,,
(३) ऋतु-वर्णन	३१८
(क) ग्रीष्म	,,
(ख) पावस	,,
(ग) शरद	३२०
(घ) शिशिर	,,
(ङ) वसन्त	,,
(४) वीर-प्रशंसा	३२४
(५) कर्णराजाकी प्रशंसा	,,
(६) कविका सन्देश	३२६
(जग तुच्छ)	,,
§ २८. कनकामर मुनि (१०६० ई०)	३२८
१. भौगोलिक वर्णन	,,
(१) अंगदेश-वर्णन	,,
(२) चम्पानगरी	,,
(३) सिंहलद्वीप-वर्णन	३३०

	पृष्ठ
२. सामन्त-समाज	३३२
(१) राज-दर्शन	,,
(२) राजकुमार-शिक्षा	३३४
(३) पति-विरह-वर्णन	,,
(४) पत्नि-विरह	३३६
(५) दिग्विजय	३३८
(६) युद्ध-वर्णन	३४०
३. कविका संदेश	३४२
(१) मुनिका दर्शन	,,
(२) संसार तुच्छ	३४४
§ २९. जिनदत्त सूरि (११०० ई०)	३४८
१. जिन-वंदना	,,
२. गुरु-महिमा	,,
(जिन-वल्लभ)	,,
(१) दर्शन-व्याकरणादि विद्यानिधान	,,
(२) गुरु-दर्शनका महा-फल	३५०
(३) गुरुकी शिक्षाका फल	३५२
३. वेश्या-निन्दा	३५४
४. कविका संदेश	,,
(१) जात-पाँत मजबूत करो	,,
(२) धर्मोपदेश	,,
(३) दुर्लभ मानुष-जन्म	३५६
(४) गुरु सब कुछ	,,
५ : बारहवीं सदी	
§ ३०. हेमचन्द्र (११२० ई०)	३५८
१. सामन्त-समाज	,,
(१) राज-प्रशंसा	,,
(२) वीर-रस	३६०
(३) कुमारी-वर्णन	३६४
(४) शृंगार	,,
(५) ऋतु-वर्णन	३७२
(क) पावस	,,
(ख) शरद्	३७४
(ग) हेमन्त	,,
(घ) वसन्त	,,
(६) विरह-वर्णन	३७८
२. नीति-वाक्य	३८२
§ ३१. हरिभद्र सूरि (११५९ ई०)	३८४
१ प्रकृति-वर्णन	,,
(१) प्रातः	,,
(२) वसन्त	३८६
२. सामन्त-समाज	३८८
(१) नारी-सौन्दर्य	,,
(२) पुरुष (कृष्ण)-सौन्दर्य	,,
(३) विवाह-महोत्सव	,,
(४) नारी-विलाप	३९०

	पृष्ठ
३. कविका संदेश	३९२
(सब तुच्छ)	,,
§ ३२. अज्ञात कवि (१२६०)	,,
१. जगडू साहुके दानकी प्रशंसा	,,
२. अकालमें दुर्दशा	,,
§ ३३. आमभट्ट (११७० ई०)	३९४
सामन्त-प्रशंसा	,,
(१) सिद्धराज-प्रशंसा	,,
(२) कुमारपाल-प्रशंसा	,,
§ ३४. विद्याधर (११८० ई०)	३९६
सामन्त-प्रशंसा	,,
(जयचन्द-महिमा)	,,
§ ३५. शालिभद्र सूरि (११८४ ई०)	३९८
सामन्त-समाज	,,
(१) सिंहासनासीन राजा	,,
(२) सेना-यात्रा	४००
§ ३६. सोमप्रभ सूरि (११९५ ई०)	४०८
१. नीति-वाक्य	,,
२. सामन्त-समाज	४१०
(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र	,,
(२) नारी-सौन्दर्य	४१२
(३) वसंत	,,
(४) प्रेम	४१४
(५) विरह	४६१

	पृष्ठ
३. कविका संदेश	४१६
(१) जग तुच्छ	,,
(२) इंद्रियोंको मारो	४१८
(३) नरकका भय	४२०
§ ३७. जिनपद्म सूरि (१२०० ई०)	४२२
१. ऋतु-वर्णन	,,
पावस	,,
२ सामन्त-समाज	४२४
(१) शृंगार-सज्जा	,,
(२) हाव-भाव	४२६
§ ३८. विनयचन्द्र (१२००)	४२८
विरह-वर्णन	,,
(बारहमासा)	,,
§ ३९. चन्द बरदाई (१२०० ई०)	४३४
१. हिमालय-वर्णन	,,
२. सामन्त-समाज	,,
(१) राजा (वीसल)-प्रशंसा	,,
(२) शृंगार-रस	४३५
(३) युद्ध	४३८
(क) वीर-रस	,,
(ख) रण-यात्रा	,,
(ग) युद्ध-वर्णन	४३९
(घ) युद्धमें छल	४४१

	पृष्ठ
३ कविका संदेश	४४१
(भाग्यवाद)	,,

६ : तेरहवाँ सदी

§ ४०. लक्खण (१२५७ ई०)	४४२
१ आत्म-परिचय	,,
(१) काव्य-महिमा	,,
(२) आत्म-परिचय	,,
(३) कविका दीनता-प्रकाश	४४४
२. सामन्त-समाज	,,
(१) राजधानी (रायवड्डिय)	,,
(२) राजा (आहवमल्ल)-प्रशसा	४४६
(३) रानी (ईसरदे)-प्रशसा	४४८
(४) मत्री (कान्हड)-प्रशसा	,,
(५) मंत्रिपत्नि-प्रशसा	४५०
§ ४१. जज्जल (१२८० ई०)	४५२
वीर-रस	,,
(राजा हंमीर-प्रशंसा)	,,
§ ४२. अज्ञात कवि (१२९०)	४५६
१. सामन्त-समाज	,,
(युद्ध-वर्णन)	,,
२. देव-स्तुति	४५८
(१) दश-अवतार	,,
(२) राम-स्तुति	,,
(३) कृष्ण-स्तुति	४६०
(४) शंकर-स्तुति	४६०
३. कविका संदेश	,,
सन्तोष और निराशावाद	४६४
§ ४३. हरिब्रह्म (१३०० ई०)	,,
मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा	,,
§ ४४. अंबदेव सूरि (१३०० ई०)	४६६
१. सामन्त-समाज	,,
(१) सेठ (समरसिह)-प्रशंसा	,,
(२) बादशाह और मीरकी प्रशसा	४६८
२. तीर्थयात्री "सेना"	,,
३. रचना-काल	४७०
§ ४५. अज्ञात कवि (१३०० ई०)	४७२
कक्का	,,
(वैराग्य और वात्सल्य)	,,
§ ४६. अज्ञात कवि (१३०० ई०)	४७८
जीते जी कीर्त्ति	,,
§ ४७. राजशेखर सूरि (१३००)	,,
सामन्त-समाज	,,
(१) नारी-सौन्दर्य	,,
(२) शृंगार-सजाव	४८०

[१]

१—सिद्ध-सामन्त-युग

(७६०—१३०० ई०)

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

काल—७६० ई० (गोपाल-धर्मपाल ७५०-७०-८०६ ई०)। देश—मगध (नालंदा)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (६)। कृतियाँ[१]—कायकोष-अमृत-वज्रगीति, चित्तकोष-अज-वज्रगीति, डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, दोहाकोष-

१—दोहा[२]

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धम्म-महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ ॥२॥
मन्तह मन्ते सन्ति ण होइ। पडिलभित्ति की उट्ठिउ होइ ॥६॥
तरुफल-दरिसण णउ अग्घाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ॥७॥

जाव ण आप जणिज्जइ, ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धाँ अन्ध कढाव तिम, वेण्ण 'वि कूव पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष[३]

सङ्ग-पास तोडहु गुरु-वअणें। ण सुनइ सो णउ दीसइ णअणें ॥३॥
पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो डज्झइ ॥४॥
घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उबज्जहि णउ खअहि पइस्सइ ॥५॥

णउ तं बाअहि गुरु कहइ, णउ त बुज्झइ सीस।
सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस ॥९॥
सअ-संवित्ती तत्तफलु, सरहापाअ भणन्ति।
जो मण-गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति ॥१०॥

—सरहपादीय दोहा ७, ८

---

[१] देखो मेरी "पुरातत्त्व-निबंधावलि" पृ० १६९ [२] The Journal of the

हिन्दी काव्य-धारा

१. सिद्ध-सामन्त-युग (७६०-१३०० ई०)

१. आठवीं सदी

§ १. सरहपा

उपदेशगीति, दोहाकोष, तत्त्वोपदेश-शिखर-दोहाकोष, भावनाफल-दृष्टिचर्या-दोहाकोष, वसन्ततिलक-दोहाकोष, चर्यागीति-दोहाकोष, महामुद्रोपदेश-दोहाकोष, सरहपाद-गीतिका ।

१—दोहा

(१) रहस्यवाद

अलिओ ! धर्ममहासुख प्रविशइ । नोन जिमी पानिहीं विलिज्जइ ॥२॥
मंत्रहिँ मंत्रे शान्ति न होइ । प्रतिलब्धी का उत्थित होइ ॥६॥
तरुफल-दर्शन नाहि अघाइ । वैद्यहिँ देखि कि रोग पराइ ॥७॥

जबलौं आप न जानिये, तबलौं सिख न करेइ ।
अन्धा काढे अन्ध तिमि, दोउहिँ कूप पडेइ ॥८॥ —दोहाकोष

शंक-पाश तोड़हु गुरु-वचने । न सुनइ सो नहि दीसइ नयने ॥३॥
पवन वहन्ते ना सो हिल्लइ । ज्वलन जलन्ते ना सो डहियइ ॥४॥
घन वरसन्ते ना सो भीजइ । न उपजै न क्षर्यांहि पईसइ ॥५॥

ना सो वाचहिं गुरु कहइ, ना सो बूझइ शिष्य ।
सहजामृत-रस सकल जग, कासु कहीजै कस्य ॥९॥
स्वक-संवित्ती तत्त्व-फल, **सरहापाद** भनन्ति ।
जो मन-गोचर पाइअइ, सो परमार्थ न होन्ति ॥१०॥

—दोहा ७,८

---

(२) पाखंड-खंडन

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ । एँवइ पढ़िअउ ए चउबेउ ॥१॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त । घरहीँ बइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमेँ । अक्खि डहाविअ कडुएँ धूयेँ ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसेँ । विणुआ होँइअइ हंस-उएसेँ ।
म्लिच्छेहाँ जग वाहिअ भुल्लेँ । धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लेँ ॥३॥
अइरिएहिँ उद्दलिअ छारेँ । सीस मु बाहिअ ए जडभारेँ ॥
घरही वइसी दीवा जाली । कोणहिँ वइसी घण्डा चाली ॥४॥
अक्खि णिवेसी आसण बन्धी । कण्णेहिँ खुसखुसाइ जण धन्धी ॥
रण्डी-मुण्डी अण्ण 'वि वेसेँ । दिक्खिज्जइ दक्खिण-उद्देसेँ ॥५॥
दीहणक्ख जइ मलिणे वेसेँ । णग्गल होइ उपाडिअ केसेँ ॥
खवणेहि जाण-विडंविअ वेसेँ । अप्पण वाहिअ मोक्ख-उवेसे ॥६॥
जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह ।
लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह ॥७॥
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह ।
उञ्छ-भोअणेँ होइ जाण, ता करिह तुरङ्गह ॥८॥
सरह भणइ खवणाण मोक्ख, महु किम्पि न भावइ ।
तत्त-रहिअ काआ ण ताव पर केवल साहइ ॥९॥
चेल्लु भिक्खु जे थविर उदेसेँ । बन्देहिँ आ पब्बज्जिउ-वेसेँ ॥
कोइ सुतप्त बक्खाण बइट्ठो । कोवि चिण्ते कर सोसइ डिट्ठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जसु जेण होइ सन्तुट्ठों । मोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो ॥
किन्तह दीवेँ किँ तह णेवेज्जेँ । किन्तह किज्जइ मंतह सेब्बे ॥१४॥

(२) पाखंड-खंडन

ब्राह्मणहिँ ना जानन्ता भेद । यों ही पढेँउ ये चारो वेद ॥१॥
माटि पानि कुश लिये पढ़न्त । घरही बइठी अग्नि होँमन्त ॥
कार्य विना ही हुतवह होमेँ । आँखि डहावै कड़ुये धूयेँ ॥२॥
ऍकदण्डि त्रिदण्डी भगवा वेसे । ना होइहि विनु हंस्-उपदेशे ॥
मिथ्यहि जग बाहेऊ भूले । धर्म-अधर्म न जानेँउ तुल्येँ ॥३॥
आचरियेहिँ लपेटी छारा । सीसहिं ढोअत ये जट-भारा ॥
घरहीँ वइसे दीपंक बारी । कोनहिं वइसे घंटा चाली ॥४॥
आँखि निवेशी आसन बाँधा । कर्णे खुसखुसाय जन मन्दा ॥
रंडी-मुंडी अन्यहुँ भेसेँ । देखीयत दच्छिना-उदेसें ॥५॥
दीर्घनखा जो मलिने भेसे । नंगा होइ उपाडिय केशे ॥
क्षपणक ज्ञान-विडंबित भेसे । अपना बाहर मोक्ष गवेषे ॥६॥
यदि नंगाये होइ मुक्ति, तो शुनक-शृगालहुँ ।
लोम उपाटे होइ सिद्धि, तो युवति-नितम्वहुँ ॥७॥
पिच्छि गहे देखेँउ जोँ मोक्ष, तो मोरहु चमरहुँ ।
उञ्छ-भोजने होइ ज्ञान, तो करिहु तुरंगहुँ ॥८॥
सरह भनै क्षपणकी मोक्ष, मोहिं तनिक न भावइ ।
तत्त्व-रहित काया न ताप, पर केवल साधइ ॥९॥
चेला भिक्षु जेँ स्थविर-उदेसे । वन्दहि आ प्रव्रजिता-वेसेँ ।
कोँइ स्वतंत्र व्याख्यानेँ बईठो । कोँइ चिन्ता करि शोषइ दीठो ॥१०॥

(३) मंत्र-देवता बेकार

जो जॉसु जेन होइ सन्तुष्टो । मोक्ष कि लभियइ ध्यान-प्रविष्टो ॥
की तेहिँ दीपेहिँ की नैवेद्ये । की हि कीजियइ मन्त्रहँ सेवे ॥१४॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाई । मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाई ॥१५॥
छाड़हुरे आलीका बन्धा । सो मुचहु जो अच्छहु धन्धा ॥
तसु परिआणे अण्ण ण कोई । अवरें गणे सव्व'वी सोई ॥१६॥
सोवि पढ़िज्जइ सोवि गुणिज्जइ । सत्थ-पुराणे वक्खाणिज्जइ ॥
णहि सो दिट्ठि जो ताउ ण लक्खइ । एक्कें वर गुरु-पाअे पेक्खइ ॥१७॥
झाण-हीण पब्बज्जे रहिअउ । घरहि वसन्ते भज्जे सहिअउ ।
जइ भिँड़ि विसअ रमन्त ण मुच्चइ । **सरह** भणइ परिआण कि मुच्चइ ॥१६॥
जइ पच्चक्ख कि झाणे कीअअ । जइ परोक्ख अधार म धीअअ ॥
सरहें णित्ते कड्ढिउ राव । सहज सहाव ण भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जल्लइ मरइ उवज्जइ वज्झइ । तल्लइ परममहासुह सिज्झइ ॥
सरहे गहण गुहिर मग कहिआ । पसू-लोअ निव्वहि जिम रहिआ ॥२१॥
झाण-रहिअ की कीअइ झाणें । जो अवाअ तहि काह वखाणे ॥
भव मुद्दे सअलहि जग बाहिउ । णिअ सहाव णउ केण' वि साहिउ ॥२२॥
मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण । सव्व' वि रे बढ़ ! विब्भम-कारण ॥
असमल चित्त म झाणें खरडह । सुह अच्छन्त म अप्पणु झगड़ह ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाअन्त पिअन्ते सुहहिं रमन्ते । णित्त पुण्णु चक्का'वि भरन्ते ॥
अइस धँम्म सिज्झइ परलोअह । णाह पाए दलीउ भअलोअह ॥२४॥
जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ।
तहि वढ़ !! चित्त विसाम करु, **सरहें** कहिअ उएस ॥२५॥
आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण ।
एँहु सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण ॥२७॥
सअ-संवित्ति म करहु रें धन्धा । भावाभाव सुगति रे बन्धा ॥
णिअ मण मुणहुरें णिउणें जोई । जिम जल जलहिं मिलन्ते सोई ॥३२॥

की तेहि तीर्थ तपोवन जाई । मोक्ष कि लभियहि पानि नहाई ॥१५॥
छाड़हु रे अलीका बन्धा । सो मुंचहु जो आछै मन्दा ।
तसु परि-ज्ञाने अन्य न कोई । अपरे गने सर्व ही सोई ॥१६॥
सोइ पढ़िज्जइ सोइ गुणिज्जइ । शास्त्र-पुराणे वक्खानिज्जइ ।
नहि सो दीख जों तब ना लक्खई । एकहिं वर गुरु-पादें पेखई ॥१७॥
ध्यानहीन प्रव्रज्या - रहितउ । घरहिं वसन्ते भार्या-सहितउ ॥
यदि दृढ़ विषय-रती ना मुचइ । सरह भणइ परि-ज्ञान कि मुंचइ ॥१९॥
यदि प्रत्यक्ष कि ध्याने कीजिय । यदि परोक्ष अंधारमे ध्याइय ।
सरहेंहि नित्ये काढिउ राव । सहज स्वभाव न भावाभाव ॥२०॥

(४) सहज-मार्ग

जरइ मरइ उपजइ बध्यायइ । तहँ लय होइ महासुख सिध्यइ ।
सरहें गहन गह्वर मग कहिया । पशू-लोक निर्बोध जिमि रहिया ॥२१॥
ध्यान-रहित की कीजै ध्याने । जो अवाक् तेहि, काहि बखाने ।
भव-मुद्रहि जग सकल बहायउ । निज स्वभाव ना काहुहि साधेउ ॥२२॥
मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । सर्वहु मूढ़ रें ! विभ्रम-कारण ।
निर्मल चित्त न ध्याने खीचहु । शुभ अछते न आपन झगड़हु ॥२३॥

(५) भोगमें निर्वाण

खाते पीते सुखहि रमन्ते । नित्य पूर्ण चक्रहू भरन्ते ।
अइस धर्म सिध्यइ परलोका । नाथ पाइ दलिया भयलोका ॥२४॥

जहँ मन पवन न संचरइ, रवि-शशि नाहिं प्रवेश ।
तहँ मुढ ! चित्त विश्राम करु, सरह कहेंउ उपदेश ॥२५॥
आदि न अंत न मध्य नहिं, नहिं भव नहिं निर्वाण ।
ऍहु सो परममहासुख, नहिं पर नहिं अप्पान ॥२७॥

स्वक-संवित्ति न करहु रें मंदा । भावाभाव सुगति रे बंधा ।
निज मन ध्यायहु निपुणे योगी । जिमि जल जलहिं मिलंते सोई ॥

पढ़में जइ आभास विसुद्धो । चाहतें चाहतें दिट्ठि णिरुद्धो ॥
एसें जइ आयास विकालो । णिअ मण दोस ण बुज्झइ बालो ॥३४॥
मूल-रहिअ जो चिन्तइ तत्त । गुरु-उवएसे एत्त-विअत्त ॥
सरह भणइ बढ़ ! जाणहु चंगे । चित्त-रूअ संसारह भंगे ॥३७॥
णिअ मण सब्बे सोहिअ जब्बें । गुरु-गुण हिअए पइसइ तब्बें ॥
एवँ मणे मुणि सरहें गाहिउ । तन्त मन्त णउ एक्क'वि चाहिउ ॥३९॥
जब्बे मण अत्थमण जाइ, तणु तुट्टइ बंधण ।
तब्बे समरस सहजे, वज्जइ सुद्द ण बम्हण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एत्थु सें सुरसरि जमुणा, एत्थ सें गंगा साअरु ।
एत्थु पआग बणारसि, एत्थु सें चन्द दिवाअरु ॥४७॥
खेत्तु-पीठ-उपपीठ, एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओं ।
देहा-सरिसअ तित्थ, मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओं ॥४८॥
सण्ड-पुअणि-दल-कमल-गन्ध केसर वरणालें ।
छड्डहु वेणिम ण करहु सोसँण लग्गहु बढ ! आलें ॥४९॥
काय तित्थ खअ जाइ, पुच्छह कुल ईणओ ।
बम्ह-बिट्ठु तेलोअ, सअल जाहि णिलीणओ ॥५०॥
बुद्धि विणासइ मण मरइ, जहि तुट्टइ अहिमाण ।
स माआमअ परम फलु, तहिं किं बज्झइ झाण ॥५३॥
भवहि उअज्जइ खअहि णिवज्जइ । भाव-रहिअ पुणु काहि उवज्जइ ॥
विण्ण-विवज्जिइ जोऊ वज्जइ । अच्छह सिरि गुरुणाह कहिज्जइ ॥५४॥
देक्खहु सुणहु परोसहु खाहु । जिग्घहु कमहुं बइठ्-उट्ठाहु ॥
आल - माल व्यवहारे पेल्लह । मण छड़ एक्काकार म चल्लह ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उवएसे अमिअ-रसु, धाव ण पीअउ जेहि ।
बहु-सत्थत्थ-मरुत्थलहिँ, तिसिए मरिअउ तेहि ॥५६॥

प्रथमे यदि आकाश विशुद्धा । देखत देखत दृष्टि निरुद्धा ॥
ऐसे यदि आयास विकालो । निज मन दोषहिं बूझ न बालो ॥३४॥
मूल-रहित जो चिन्तइ तत्त्व । गुरु-उपदेशे अस्तं-व्यस्त ॥
सरह भनै मुढ़ ! जानहु चंगा । चित्त-रूप संसारहु भंगा ॥३७॥
निज मन सव्वै शोधिय जब्बै । गुरु-गुण हृदये पइसइ तब्बै ॥
ऐस समुझि मन **सरहे** गाहेँउ । तंत्र-मंत्र नहिं एकहु चाहेउ ॥३९॥
जब्बै मन अस्तमन जाइ, तन टूटइ बंधन ।
तब्बै समरस सहजे, कहियइ शूद्र न ब्राह्मण ॥४६॥

(६) काया तीर्थ

एहिँ सों सुरसरि जमुना, एहिँ सो गंगासागर ।
एहिँ प्रयाग वाराणसी, एहिँ सो चंद्र-दिवाकर ॥४७॥
क्षेत्र-पीठ-उपपीठ, एहीँ मे भ्रमउँ वाहिरा ।
देहा सदृशा तीर्थ, नही मे अन्यहिं देखा ॥४८॥
वन-पद्मिनि-दल-कमल-गंध-केसर-वर-नाले ।
छाड़हु द्वैतहि न करहु शोषण, मूढ़ ! न लागहु आरे ॥४९॥
काय तीर्थ क्षय जाय, पूछहु कुलहीनहँ ।
ब्रह्म-विष्णु त्रैलोक्य, सकलहिं निलीन जहँ ॥५०॥
वुद्धि विनासै मन मरै, जहँ टूटै अभिमान ।
सो मायामय परम-फल, तहँ की वाँधिय ध्यान ॥५३॥
भवहीँ उपजै क्षयहिं विनाशै । भाव-रहित पुनि का उत्पादै ॥
द्वैत-विवर्जित योगहुँ वर्जै । ऐसो श्रीगुरुनाथ कहीजै ॥५४॥
देखहु सुनहू छूवहु खाहु । सूँघहु भ्रमहु वइठु उट्ठाहु ॥
क्रय-विक्रय व्यवहारे पेल्लहु । मन छाडहु एँक-कार न चल्लहु ॥५५॥

(७) गुरु-महिमा

गुरु-उपदेशे अमृत-रस, धाइ न पीयेँउ जेहि ।
वहु-शास्त्रार्थ-मरुस्थलहिँ, तृषितै मरेँऊ तेहि ॥५६॥

चित्ताचित्ति'वि परिहरहु, तिम अच्छहु जिम बालु ।
गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु ॥५७॥
अक्खर वण्ण परमगुण रहिजे । भणइ ण जाणइ एमइ कहिजे ॥
सो परमेसरु कासु कहिज्जइ । सुरअ-कुमारी जीम पड़िज्जइ ॥५८॥
भावाभावे जो परिहीणो । तहि जग सअलासेस विलीणो ॥
जब्बे तहें मण णिच्चल थक्कइ । तब्बे भव-संसारह मुक्कइ ॥५९॥
जाव ण अप्पहि पर परिआणसि । ताव कि देहाणुत्तर पावसि ॥
एमइ कहिजे भन्ति ण कव्वा । अप्पहि अप्पा बुज्झसि तब्बा ॥६०॥
घरें अच्छई वाहिरे पुच्छइ । पइ देक्खइ पड़िवेसी पुच्छइ ॥
सरह भणइ वढ़ ! जाणउ अप्पा । णउ सो धेअ ण धारण-जप्पा ॥६२॥
विसअ रमन्त ण विसअँ बिलिप्पइ । ऊअर हरइ ण पाणी छिप्पइ ॥
एमइ जोई मूल सरन्तो । विसहि ण वाहइ विसअ रमन्तो ॥६४॥
अणिमिस-लोअण चित्त णिरोहें । पवण णिरूहइ सिरि-गुरु-बोहें ॥
पवण बहइ सो णिच्चलु जब्बै । जोई कालु करइ कि रें तब्बै ॥६६॥
पण्डिअ सअल सत्थ वक्खाणइ । देहहिं बुद्ध वसन्त ण जाणइ ॥
अवणाअमण ण तेण विखण्डिअ । तो'वि णिलज्ज भणइ हँउ पण्डिअ ॥६८॥
जीवन्तह जो णउ जरइ, सो अजरामर होइ ।
गुरु-उवएसें विमल-मइ, सो पर धण्णा कोइ ॥६९॥
विसअ-विसुद्धें णउ रमइ, केवल मुण्ण चरेइ ।
उड्डी वोहिअ-काउ जिम, पलुटिअ तह'बि पड़ेइ ॥७०॥
विसआसत्ति म बन्ध करु, अरें वढ़ ! सरहे वुत्त ।
मीण-पअङ्गम-करि-भभर, पेक्खह हरिणहँ जुत्त ॥७१॥
जत्त'वि चित्तह विप्फुरइ, तत्त'वि णाह सरुअ ।
अण्ण तरंग कि अण्ण जलु, भव-सम ख-सम सरुअ ॥७२॥
जत्त' बि पइसइ जलहि जलु, तत्तइ समरस होइ ।
दोस-गुणाअर चित्त तह, बढ़ ! परिवक्खण कोइ ॥७४॥

चित्त अचित्तहिं परिहरहु, तिमि होवहु जिमि बाल ।
गुरु-वचने दृढ़ भक्ति करु, ज्योँ होँइ सहज उलास ॥५७॥
अक्षर वर्ण परम गुण रहिए । भनइ न जानइ अइसे कहिये ॥
सो परमेश्वर कासोँ कहिए । सुरत-कुमारी जिमि पतिऐहे ॥५८॥
भावाभावहि जो परिहीना । तहँ जग सकलाशेष विलीना ॥
जब्बै तहँ मन निश्चल थाकै । तब्बै भव - संसारहँ मुंचै ॥५९॥
जौ लोँ ना आपुहिँ परि-जानै । तौ लोँ कि देह अनुत्तर पावै ॥
ऐसेहि कहिये भ्रान्ति न कब्बै । आपुहि आपा बूझसि तब्बै ॥६०॥
घरे आछतै बाहर पूछै । पति देखई पडोसी पूछै ॥
सरह भनै मुढ़ ! जानहु आपा । नहि सो ध्येय न धारण जापा ॥६२॥
विषय रमन्त न विषय विलिपै । पदुम हरइ ना पानी भीजै ॥
ऐसेहि योगी मूल बुझन्तो । विषय बहै ना विषय रमन्तो ॥६४॥
अनिमिष-लोचन चित्त निरोधे । पवन निरोधै श्री-गुरु-बोधे ॥
पवन बहै सो निश्चल जब्बै । योगी काल करै कि रेँ तब्बै ॥६६॥
पंडित सकल शास्त्र वक्खानै । देहहिं बुद्ध वसंत न जानै ॥
अवना-गवन न तेहिं विखडित । तोपि निलज्ज भनै हौँ पंडित ॥६८॥
जीवन्तो जो ना जरै, सो अजरामर होइ ।
गुरु-उपदेसे विमल मति, सो पर धन्या कोइ ॥६९॥
विषय विसुद्धे ना रमै, केवल शून्य चरेइ ।
उड़िया वोहित-काक जिमि, पलटिय तँहहि पड़ेइ ॥७०॥
विषयासक्ति न बन्ध करु, अरेँ मुढ़ ! सरहे उक्त ।
मीन-पतंगम-करि-भ्रमर, पेखहु हरिनहु युक्त ॥७१॥
जहँवाँ चित्ता विस्फुरै, तहँवै नाहि स्वरूप ।
अन्य तरंग कि अन्य जल, भव-सम ख-सम स्वरूप ॥७२॥
जहवाँ पइसै जलहिं जल, तहँवा समरस होइ ।
दोष-गुणाकर चित्त तहँ, मुढ़ ! परिवीक्ष न कोइ ॥७४॥

सुण्णहिँ सङ्ग म करहि तुहु, जहिँ तहिँ सम चिन्तस्स ।
तिल-तुस-मत्त'बि सल्लता, बेग्रणु करइ ग्रवस्स ॥७५॥
सब्ब रूग्र तहिँ ख-सम करिज्जइ । ख-सम-सहावेँ मण'बि धरिज्जइ ॥
सो'बी मणु तहिं ग्रमणु करिज्जइ । सहज-सहावँ सो परु रज्जइ ॥७७॥
घरेँ-घरेँ कहिग्रइ सोज्भु कहाणा । णउ परि सुणिग्रइ महसुह ठाणा ॥
सरह भणइ जग चित्तेँ वाहिग्र । सो ग्रचित्त णउ केण'वि गाहिग्र ॥७८॥
एक्कु देव वहु ग्रागम दीसइ । ग्रप्पणु इच्छेँ फुड पड़िहासइ ॥७९॥
ग्रप्पणु णाहो ग्रण्ण' वि रुद्धो । घरेँ-घरेँ सोग्र सिधन्त पसिद्धो ॥
एक्कु खाइ ग्रवर ग्रण्ण 'वि पोड़इ । वाहिँर गइ भत्तारह लोड़इ ॥८०॥
ग्रावँत ण दिस्सइ जन्त णहि, ग्रच्छन्त ण मुणिग्रइ ।
णित्तरग परमेसुरु, णिक्कलङ्क धारिज्जइ ॥८१॥
सोहइ चित्त णिरालं दिण्णा । ग्रउण-रुग्र मा देखह भिण्णा ॥
काग्र-वाग्र-मणु जाव ण भिज्जइ । सहज सहावँ ताव ण रज्जइ ॥८३॥
घरबइ खज्ज घरणिग्रहि, जहिँ देसहि ग्रबिग्रार ।
माइएँ तहि की ऊवरइ, बिसरिग्र जोइणि चार ॥८४॥
घरबइ खज्जइ सहजे रज्जइ, किज्जइ राग्र-विराग्र ॥
णिग्र पास बइट्ठी चित्ते भट्ठी, जोइणि महु पड़िहाग्र ॥८५॥

(८) सहज संयम

इग्र दिवस णिसहि ग्रहीणमइ, तिहू जासु णिमाण ।
सो चित्त सिद्धी जोइणि, सहज संवरु जाण ॥८७॥
ग्रक्खर बाढ़ा सग्रल जगु, णाहि णिरक्खर कोइ ।
ताव सेँ ग्रक्खर घोलिग्रा, जाव णिरक्खर होइ ॥८८॥
जिम बाहिर तिम ग्रब्भन्तरु । चउदह भुवणे ठिग्रउ गिरन्तरु ॥
ग्रसरिर काहेँ सरीरहि लुक्को । जो तहि जाणइ सो तहि मुक्को ॥८९॥
रुग्रणेँ सग्रल'बि जोँहि णउ गाहइ । कुन्दुरु खणहि महासुहेँ साहइ ॥
जिम तिसिग्रो मिग्र-तिसिणे धावइ । मरइ सोँसहिँ णभ-जलु कहिँ पावइ ॥९१॥

शून्यहिं संग न करहुँ तैं, जहँ तहँ सम चिन्तेहि ।
तिल-तुष-मात्रउ शल्यता, वेदन करइ अवश्य ॥७५॥
सर्व रूप तहँ ख-सम करीजै । ख-सम स्वभावे मनहुँ धरीजै ॥
सो भी मन तहँ अ-मन करीजै । सहज स्वभावे सो **पर** कीजै ॥७७॥
घरें घरें कहियत सोअ कहाना । नहिं पर सुनियत महसुख थाना ॥
सरह भनै जग चित्तें बहाई । सो अचित्त ना केंहुहि गहाई ॥७८॥
एक देव बहु आगम दीसै । आपन इच्छें स्फुट परिभासै ॥७९॥
आपन नाथा अन्यहु रुद्धा । घरें घरें सोंइ सिद्धान्त प्रसिद्धा ॥
एक खाइ अरु अन्यहिँ फोड़ै । बाहर जाइ भतारें लोड़ै ॥८०॥
अवत न दीसै जात नहिँ, होवत नहिँ जानीजै ।
निस्तरंग परमेश्वर, निष्कलंक धारीजै ॥८१॥
सोहै चित्त ललाटे दिन्ना । अपन रूप ना देखहु भिन्ना ॥
काय-वाक्-मन जौ ना भाँगै । सहज-स्वभावे तौ ना राजै ॥८३॥
घरनी खाइस घरपतिहिँ, जहँ देशे अविचार ।
मारिय तह की ऊबरै, विसरिय योगिनि चार ॥८४॥
घरपति खाइअ सहजै राजै, कीजै राग-विराग ।
निज पास बइट्ठी चित्ते भ्रष्टी, योगिनि मधु प्रतिभास ॥८५॥

(८) सहज संयम

इमि दिवस निशहिँ अभिमानै, त्रिभुवन जॉसु निर्माण ।
सो चित सिद्धा योगिनी, सहज संवरा जान ॥८७॥
अक्षर बाढ़ा सकल जग, नाहि निरक्षर कोइ ।
तौलौं अक्षर घोलिया, जौ लों निरक्षर होइ ॥८८॥
जिमि बाहर तिमि अभ्यन्तर । चौदह भुवने थितउ निरंतर ॥
अशरिर कोंई शरीरे लूकेउ । जो तेंहिं जानेंउ सो तहँ मुंचेउ ॥८९॥
रूपणें सकलउ जो ना गहियै । कुंदुरु क्षणहिँ महासुख साधै ॥
जिमि तृषितो मृगतृष्णे धावै । मरें सोखहि, नभ-जल कहँ पावै ॥९१॥

कन्ध-भूअ-आअत्तण इन्दिअ-विसअ-विआर अप हुअ ।
णउ णउ दोहाच्छंदेण, कहवि किम्पि गोप्पु ॥९२॥
पण्डिअ लोअहु खमहु महु, एत्थु ण किअइ विअप्पु ।
जो गुरु बअणे मइ सुअउ, तहि किं कहमि सु गोप्पु ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिस बे'बि मज्झ ठिउ, जो सो सुरअ-विलास ।
को न रमइ णह तिहुअणहि, कस्स ण पूरइ आस ॥९४॥
खण-उबाअ सुह अहवा, अहवा वेण्णि'वि सो'बि ।
गुरु-पूपसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोबि ॥९५॥
गम्भीरह उआहरणें, णउ पर णउ अप्पाण ।
सहजाणन्द चउट्ठ खण, णिअ-संवेअण जाण ॥९६॥
घोरेँन्धारे चन्दमणि, जिम उज्जोअ करेइ ।
परम-महासुह एक्कु खणें, दुरिआसेस करेइ ॥९७॥
दुक्ख-दिवाअर अत्थगउ, उवइ तराबइ सुक्क ।
ठिअ-णिम्माणें णिम्मिअउ, तेण'बि मण्डल-चक्क ॥९८॥
चित्तहि चित्त णिहालु बढ़ ! सअल विमुच्च कुदिट्ठि ।
परममहासुहें सोज्झ परु, तसु आअत्ता सिद्धि ॥९९॥
मुक्कउ चित्त-गयंद करु, एत्थ विअप्प ण पुच्छ ।
गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, तहिँ तड़ वसउ सइच्छ ॥१००॥
विसअ-गएँन्दे करें गहिअ, जिम मारइ पड़िहाइ ।
जोई कबड़ीआर जिम, तिम तहों णिस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो णिब्बाण खलु, सो उण मण्णहु अण्ण ।
एक्क सहावें विरहिअ, णिम्मल मइँ पड़िवण्ण ॥१०२॥
घरहि म थक्कु म जाहि वणें, जहि तहि मण परिआण ।
सअलु णिरन्तर बोहि-ठिअ, कहिँ भव कहिँ णिब्बाण ॥१०३॥

स्कन्ध-भूत-आयतन-इन्द्री-विषय-विचार आप हुव ।
नव-नव दोहा-छन्देहिँ, कहब किछु गोप्य ॥९२॥
पंडित लोगो क्षमहु मोहि, एहु न कियहु विकल्प ।
जो गुरु-वचने मै सुनेँउ, तेहि किमि कहब सुगोप्य ॥९३॥

(९) कमल-कुलिश (वाममार्ग) साधना

कमल-कुलिश दोउ मध्य थित, जो सो सुरत-विलास ।
को तेँहिँ रमै न त्रिभुवने, कासु न पूरै आस ॥९४॥
क्षण-उपाय सुख अथवा, अथवा दोऊ सोइ ।
गुरू-प्रसादे पुण्य यदि, विरला जानै कोइ ॥९५॥
गम्भीरेँहि उदाँहरणे, ना पर ना अप्पान ।
सहजानन्द चतुर्थ क्षण, निज-संवेदन जान ॥९६॥
घोर अन्हारे चन्द्रमणि, जिमि उद्योत करेइ ।
परम-महासुख एक क्षण, दुरित-अशेष करेइ ॥९७॥
दुःख-दिवाकर अस्त गउ, उयेँउ तारपति शुक्र ।
स्थित निर्माणे निर्मियउ, तेहिहिँ मण्डल-चक्र ॥९८॥
चित्रहिं चित्र निहार मुढ़ ! सकल विमुच कुदृष्टि ।
परम-महासुखे सोध पर, तासु हाथ मोँ सिद्धि ॥९९॥
मुक्तउ चित्त गयंद करु, एहि विकल्प ना पूछ ।
गगन-गिरी-नदि-जल पियहु, तहँ तट वसै स्व-इच्छ ॥१००॥
विषय-गयन्दे कर गही, जिमि मारै प्रतिभास ।
योगी कैडीकार जिमि, तिमि तहँ निस्सरि जाइ ॥१०१॥
जो भव सो निर्वाणहू, सो पुनि मानहु अन्य ।
एक स्वभावे विरहिता, निर्मल मैँ प्रतिपन्न ॥१०२॥
घरहि न रहु ना जाहु वन, जहँ तहँ मन परि-जान ।
सकल निरंतर बोधि थित, कहँ भव कहँ निर्वाण ॥१०३॥

एँहु सो अप्पा एँहु परु, जो परिभावइ को'बि ।
ते विणु बन्धे बेट्टि किउ, अप्प-विमुक्कउ तो'बि ॥१०५॥
पर-अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
एँहु सो णिम्मल परमपउ, चित्त सहावे सुद्ध ॥१०६॥
अद्दअ-चित्त-तरूअरह, गउ तिहुँवणें वित्थार ।
करुणा फुल्ली फल धरइ, णाउ परत्त उआर ॥१०७॥
सुण्णा तरूवर फुल्लिअउ, करुणा विविह विचित्त ।
अण्णा भोअ परत्त फलु, एहु सोंक्ख परु चित्त ॥१०८॥
सुण्ण तरूवर णिक्करुण, जहि पुणु मूल ण साह ।
तहि अलमूला जो करइ, तसु पडिभिज्जइ बाह ॥१०९॥
एँक्के बी' एँक्के'बि तरु, तें कारणें फल एँक्क ।
ए अभिण्ण जो मुणइ सो, भव-णिब्बाण-विमुक्क ॥११०॥
जो अत्थी अणठीअउ, सो जइ जाइ णिरास ।
खण्णु सरावे भिक्ख वरु, त्यजहू ए गिहवास ॥१११॥
पर-ऊआर ण कीअऊ, अत्थि ण दीअउ दाण ।
एँहु संसारे कवणु फलु, बरु छड्डुहु अप्पाण ॥११२॥

—दोहाकोष पृ० ८-२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपणे रचि रचि भव निब्बाणा, मिच्छें लोअ बँधावइ अपणा ।
अक्खें ण जाणहु अचिन्त जोई, जाम-मरण भव कइसन होई ॥
जइसो जाम मरण 'वी तइसो, जीवँतें मइलें णाहि विशेशो ।
जा एथु जामा मरणें विशका, सों करउ रस-रसानें रे कंखा ॥
जो सचराचर तिअस भमन्ति । जे अजरामर किम्प न होन्ति ।
जामे काम कि कामे जाम । सरह भणइ अचिन्त सो धाम ॥२॥

ऍंहु सो आपा एहु पर, जो परिभावै कोइ।
सो विनु बंधे बँध गयउ, आपु विमुक्तउ तोपि ॥१०५॥
पर-आपन ना भ्रान्ति करु, सकल निरंतर बुद्ध।
ऍंहु सो निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१०६॥
अद्वय-चित्त-तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार।
करुणा फूली फल धरइ, ना परत्र उपकार ॥१०७॥
शून्य तरूवर फूलेॅऊ, करुणा विविध विचित्र।
अन्या भोग परत्र फल, ऍंहू सौख्य परचित्त ॥१०८॥
शून्य तरूवर निष्करुण, जेॅहि पुनि मूल न शाख।
तहँ अलमूला जो करै, तासुइ भाँगै वाह ॥१०९॥
एक्कै एक्के ही तरु, ते कारण फल एक।
ऍंहु अभिज्ञता करै सो, भव-निर्वाण-विमुक्त ॥११०॥
जो अर्थी अनथीअऊ, सो यदि जाइ निराश।
खंड शरावे भिक्षहू, छाड़हु ऍंहु गृहवास ॥१११॥
पर-उपकार न कीयेॅऊ, अर्थि न दीजेॅउ दान।
एहि संसारे कवन फल, वरु छाँडहु अप्पान ॥११२॥
—दोहाकोष पृ० ८—२३

२—गीत

(१) संसार-निर्वाणका भेद बनावटी

(राग गुंजरी)

अपने रचि-रचि भव-निर्वाणा, मिथ्यै लोक बँधावै अपना।
मैं ना जानहुँ अचिन्त योगी, जन्म मरण भव कैसन होई ॥
जैसो जन्म-मरणहू तैसो, जीवन मरणे नाहिँ विशेषो।
जो यह जन्म-मरण वीशंका, सो कर स्वर्ण-रसायन कांछा ॥
सो सचराचर त्रिदश भ्रमन्ति, ते अजरामर किमि ना होंति।
जन्महिं कर्म कि कर्महिं जन्म, सरह भनै अचिंत सो धर्म ॥२॥

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल , चीआ राआ - सहावे मूकल ।
उजु रे उजु छड़ि मा लेहु वक , निआड़ि बोहि मा जाहु रेँ लंक ॥
हाथेर कंकण मा लेँहु दप्पण , आपणे आपा बूझतु निआ-मण ।
पार - उआरेँ सोई मजिई , दुज्जण-संगे आवसरि जाई ॥
वाम - दहिण जो खाल-बिखाला , **सरह** भणइ वप ! उजु वट भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काआ नावडि खान्टि मण केडुआल । सद् गुरु वआणे धर पतवाल ॥
चीआ थिर करि धरहु रेँ नाई । आण उपाए पार न जाई ॥
नौवहि नौका टानआ गुणे । निर्मलि सहजे जाउ ण आणेँ ॥
बाटत भआ खान्ट 'बी बलआ । भव-उल्लोलेँ सब्ब वि' बलिआ ॥
कूल लई खरेँ सोन्तेँ उजाआ । **सरहा** भणइ गआणेँ समाआ ॥

(राग मालशी)

सुण्णे हो विदारिआ रे निआ मण तोहोँर दोसे ।
गुरु-वआण विहारेँ रेँ थाकिब तइँ पुत ! कइसे ॥
एकट हु भवई गआणा ।
वंगे जाया नीलेसि पारे, भागेँल तोँ होँर विणाणा ।
आवाभुआ भव-मोह रे दीसइ पर आप्पाणा ।
ए जग जल-विंबाकारे सहजेँ सूण आपाणा ॥
आमिआ आच्छन्तेँ विस गीलेसि रे चिआ पर रस आप्पा ।
घरेँ परेँ का बुज्झीले मारि खइब मइ दुठ कुंडवाँ ॥
सरह भणइ वर सून गोँहाली की मो दूठ बलन्देँ ।
एक्केले जग नाशिआ रे विहरहु छन्देँ ॥३६॥
--चर्या पद[1]

---

[1]Caryapadas. J.D.L. Cal. vol. XXX, pp. 1—156

(२) सहज-मार्ग

(राग देशाख)

नाद न विन्दु न रवि-शशि-मण्डल । चित्ता राग स्वभावे मुंचल ।
ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु वंक । नियरें बोधि न जाहु रें लंक ॥
हाथेइ कंकण ना लेहु दर्पण । अपने आपा बूझहु निज मन ॥
पारे - वारे सोंई मादई , दुर्जन - सगे अवसर जाई ॥
वाम दहिन जो खाल-विखाला , **सरह** भनै बाँप ! ऋजु बाटें भइला ॥३२॥

(राग भैरवी)

काय नावडी नीकी मन केडुवाल[1] । सद्गुरु वचने धरु पतवार ॥
चित्तें थिर करु धरु रे नाई । अन्य उपाये पार न जाई ॥
नाविक नौकहिं खीच गुनेहि । मेली सहजे जानु न आनहिं ॥
बाटे भय बड़ ही बलवा । भव-उल्लोले सर्वउ कम्पा ॥
कूल लेइ खर स्रोतें बहाय । **सरह** भनै गगनहीं समाय ॥

(राग मालशी)

शून्य हो ! विदारिउ निज मन तोहरे दोषे ।
गुरु-वचन विहारे रे रहिबे तैं पुत ! कइसे ॥
एकटहु होई गगना ।
वके जाइ लीलेसि पारे, भाँगल तोंहर विज्ञाना ।
अद्भुत भव-मोह रे दीसइ पर अप्पाना ॥
ए जग जल-विवाकार सहजे शून्य अपाना ।
अमृत अछतें विष गिलेसि रे चित्त पर रस आपा ।
घरे परे का बूझीले मारि खाइब मैं दुष्ट कुटुवा ॥
सरह भनै वर शून्य गोंहारी की मोंर दुष्ट बलद्दे ।
एकले जग नाशेंउ रे विहरहु छन्दे ॥३९॥
—चर्यापद[1]

---

[1] पतवार

§ २. शबरपा

काल—८८० ई० (धर्मपाल-७७०-८०६)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—क्षत्रिय, सिद्ध (५)। कृतियाँ—चित्तगुह्यगम्भीरार्थ-

(रहस्यवाद)

(गीत—राग वलाड्डि)

ऊचा ऊचा पावत· तहिं बसइ सबरी बाली।
मोरँगि पिच्छ परिहिण शबरी गीवत गुंजरि-माली॥

उमत शबरो पागल शबरो मा कर गुली-गुहाडा।
तोहोँरि णिअ घरिणी नामे सहज-सुन्दरी॥

नाना तरुवर मोँउलिल रे गअणत लागेँलि डाली।
एकेलि सबरी ए वण हिंडइ कर्ण कुंडल वज्रधारी॥

तिअ-धाउ खाट पडिला सबरो महासुहे सेज छाइली।
सबर भुजंग नैरामणि दारी पेक्ख राति पोहाइली॥

चिअ ताँबोला महासुहे कापुर खाई।
सुन-नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाई॥

गुरु-वाक-पुंजिआ धनु णिअ-मण वाणे।
एके शर सन्धाने विन्धह विन्धह परम-णिवाणे॥

उमत सबरो गुरुआ रोषे गिरिवर-सिहरे संधी।
पइसन्ते **सबरो** लोडिब कइसे॥२८॥

—चर्यापद

§ २. शबरपा

गीति, महामुद्रा-वज्रगीति, शून्यतादृष्टि, षडंगयोग, सहज-संवर-स्वाधिष्ठान, सहजोपदेश-स्वाधिष्ठान ।

(रहस्यवाद)

(गीत---राग वलाड्डि)

ऊँचा ऊँचा पर्वत, तँहि वसै शबरी बाली ।
मोर-पिच्छ पहिरले शबरी ग्रीवा गुंजा-माली ॥
उन्मत शबरो पागल शबरो ना करु गुली-गुहाड़ा ।
तोँहार निज घरनी नामे सहज-सुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौरिल रे गगन ते लागल डारी ।
एकली शबरी यहि बन हीँड़ै कर्ण कुंडल वज्रधारी ॥
त्रिधातु-खाटे पडल शबरो महाँसुखेँ सेज छाइल ।
शवर भुजंग निरात्मा दारी पेखत राति विताइल ॥
चित्त तांबूला महासुख कपूर खाई ।
शून्य-नैरात्मा कंठे लेई महासुखे राति विताई ॥
गुरु-वाक-पुंज धनुष निज-मन वाणे ।
एँक शर संधाने विंधहु परम-निर्वाण ॥
उन्मत शबरा गुरुआ रोषे गिरिवर-शिखरे साँधी ।
पइठत **शबर**हिँ लौटाइब कैसे ॥२८॥

—चर्यापद

§ ३. स्वयंभूदेव

कविराज। काल—७९० ई० (ध्रुव धारावर्ष ७८०-९४ ई०)। देश—कोसल (? मध्यदेश)। कुल—ब्राह्मण (?) कवि माउरदेव और पद्मिनीके

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुह-यण सयंभु पइँ विण्णवइ। महु सरिसउ अण्ण णाहि कुकइ॥
वायरणु कयाइ ण जाणियउ[1]। णउ वित्ति-सुत्त वक्खाणियउ॥
णा णिसुणिउ पंच महाय कव्वु। णउ **भरहु** ण लक्खणु छंदु सव्वु॥
णउ बुज्झिउ **पिंगल**-पच्छारु। णउ **भामह-दंडिय** 'लंकारु॥
वें वें साय तो 'बि णउ परिहरमि। वरि **रयडा** वुत्तु कव्वु करमि॥

---

[1] ९२ संधियाँ या प्रायः १२००० श्लोक स्वयंभूने रचे। आगे ९३—१०८वीं संधितक त्रिभुवन स्वयंभूने रचा। कथा ९२ तकमें ही पूरी हो जाती है।

[2] ८३वीं संधि तक स्वयंभूने रचा। कथा यहीं पूरी हो जाती है, तो भी त्रिभुवन स्वयंभू ने ७ संधियाँ और जोड़ी हैं। स्वयंभू-रामायणकी सबसे पुरानी प्रति भंडारकर इन्स्टीटयुट (पूना)में है। यह गोपाचल (ग्वालियर) में १५६४ ई० (संवत् १५२१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवार) को लिखकर समाप्त की गई। दूसरी प्रति जयपुरमें मिली है। इस प्रकार पहिली प्रति गोस्वामी तुलसीदासके देहान्त १६२३ ई० (संवत् १६८०) से ५९ वर्ष पहिले लिखी गई थी। तुलसीकृत रामायणकी भाँति यह रामायण भी चौपाई (पज्झडिया) में है, और आठ-आठ पाँतियों (अर्धालियों)के बाद दोहा या किसी दूसरे छन्दमें घत्ता (विश्राम) मिलता है। स्वयंभूके उक्त दोनों ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

[1] इच्छानुसार ह्रस्वको दीर्घ करके पढ़िये ह्रस्वचिन्ह ˘ है।

§ ३. स्वंयभू*

पुत्र, आदित्यदेवीके पति, त्रिभुवन स्वयंभूके पिता। कृतियाँ—हरिवंशपुराण[1], रामायण (पउमचरिउ[2]), और स्वयंभू-छन्द।

१—आत्म-परिचय

(१) कविका आत्मनिवेदन

बुध-जन स्वयंभु तोंहि वीनवई। मोंहि सरिसउ अन्य नाहि कुकवी॥
व्याकरण किछू ना जानियऊ। ना वृत्ति-सूत्र बक्खानियऊ॥
ना सुनेउँ पाँच महान् काव्य। ना **भरत** न लक्षण छन्द सर्व॥
ना बूझेउँ **पिंगल**-प्रस्तारा। ना **भामह - दडि** - अलंकारा॥
व्यवसाय तऊ ना परिहरऊँ। वरु **रयडा** कहेंउ काव्य करऊँ॥

---

*वाण (हर्ष ६०६–४८ ई०) और रविषेण (६७६ ई०)के नाम स्वयंभूने अपने ग्रंथमें लिये है; उधर पुष्पदंत (९५९–७२ ई०)ने स्वयंभूका नाम लिया है; इस प्रकार स्वयंभू ६७६ और ९५९के बीचमें हुये। वह रयडा (राजश्रेष्टी ?) धनंजयके आश्रित थे और उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू वंदइ (वंदक)के आश्रित। वंदइका ज्येष्ठ पुत्र गोविंद था। हमारे कवि (स्वयंभू)के नाम, श्रीपाल और धवलइय भी परिचित थे। किंतु उनमें कोई नाम प्रसिद्ध नहीं है। रामायणकी २०वीं संधिमें उन्होंने "धुवराय राय व तइय भुअप्पणत्तिणत्तीसु याणुपायेण" पदमें ध्रुव-राज नामक किसी राजाका नाम दिया है। राष्ट्रकूटोंमें तीन ध्रुव हुये है, जिनमें एक महान् विजेता ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४ ई०)था, दो उसके पुत्रसे होने वाली गुर्जर-शाखामें हुये, तो भी वह ८६७ ई०से पहिले हुये थे। ध्रुव धारावर्ष सेनाके साथ कन्नोज आया था। जान पड़ता है, उसीके अमात्य रयडाके साथ स्वयंभू दक्षिण गये। ध्रुव धारावर्षके पुत्र इंद्रकी गुर्जर (खेडा) शाखामें दो ध्रुव थे—ध्रुव (प्रथम) धारावर्ष ८३०–३५, और ध्रुव (द्वितीय) ८६७ ई०।

सामाण भास छुड मा विहडउ । छुडु आगम-जुत्ति किंपि घडउ ॥
छुडु होंति सुहासिय-वयणाइँ । गामेल्ल - भास परिहरणाइँ ॥
एँहु सज्जण लोयहु किउ विणउ । जं अबुहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥
जं एवँबि रूसइ कोवि खलु । तहोँ हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥
घत्ता। पिसुणेँ किं अब्भत्थिएण, जसु कोवि ण रुच्चइ ।
किं छण-इन्दु मरुग्गहे, ण कंपंतु विमुच्चइ ॥३॥

—रामायण १।३

इय एत्थ पउमचरिए **धणजया**सिय **सयंभु** एव कए ॥

—रामायण (अन्त)

आइच्चएवि पडिमोवमाएँ, आइच्च नामा ए ।
वीअम उज्झा-कंडं सयंभु-घरिणीएँ लेहाविय ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुज्झु ज, त निसुणहु रामायण । . . . .
जएँ लोयहु सुयणहु पंडियाहु । सद्दत्थ - सत्थ - परिचंडियाहु ॥
किं चित्तइ गेल्लबि सक्कियाइँ । वासेण वि जाइँ न रजियाइँ ॥
तो कवणु गहणु अम्हारिसेहिँ । वायरण - विहूणहिँ आरिसेहिँ ॥
कइ अत्थि अणेअ-भेअ भरिया । जे सुयण सहासहिँ आयरिया ।
हँउ किं वि न जाणमि मुक्खु मणे । णिय-बुद्धि पयासिय तो वि जणे ॥
जं सयलेँवि तिहुवणेँ वित्थरिउ । आरभिउ पुणु 'राहव-चरिउ ॥

—रामायण २३।१

तहिँ अवसरि सरसइ धीरवइ । "करि कब्बु दिण्ण मइँ विमल मइ" ॥
इंदेण समप्पिउ वायरणु । रसु **भरहेँ** वासे वित्थरणु ॥
पिंगलेँण छन्द - पय - पत्थारु । **भम्महँ-दंडि**णिहि अलंकारु ॥
वाणेण समप्पिउ घणघणउ । तं अक्खर-डंबर घण-घणउ ॥
हरिसेणिं पाणिउ णित्तणउ । अवरेहिँ मि कइहिँ कइत्तणउ ॥

—हरिवंशपुराण १

सामान्य भाष यदि ना गढऊँ । यदि आगम-युक्ति किछू गढऊँ ॥
यदि होइँ सुभाषित वचनाईं । ग्रामीण - भाष - परिहरणाईं ॥
एँहु सज्जन-लोगहँ का विनऊ । जो अबुधि प्रदर्शेउँ आपनऊ ॥
जो ऐसेँउ रूसै कोइ खला । तो हाथ-उछाला लेउ छल ॥
घत्ता । पिशुनहिं का अभ्यर्थना, जासु किछू ना रूचई ।
का पूर्णेन्दु मरुद् ग्रहेँ, हिँ कंपतो विमुच्चई ॥३॥

—रामायण १।३

एहु इहँ पद्म-चरिते, धनंजयाश्रित स्वयंभुये हिँ किये ।

—रामायण (अन्त)

आदित्यदेवि देवि-प्रतिमा आदित्यदेवीहिँ ।
द्वितिय अयोँध्याकांडहिँ लिखेँउ स्वयंभु-घरनीहिँ ॥

—रामायण ४२ (अन्त)

रावण-रामहु जुद्धे जो । सोँई सुनहु **रामायण** ।
यदि लोग सुजन पंडित अहे । शब्दार्थ-शास्त्र परिचित अहें ॥
की चित्तेहिँ ग्रहण न सक्कियाइँ । वासे हूँ होहिं न रंजियाइँ ॥
तो कौन ग्रहण हमरे सदृशहिं । व्याकरण - विहून एतादृशहिँ ॥
कवि अहे अनेक-भेद-भरिया । जे सुजन स्वभाषहिँ आचरिया ॥
हौँ किछुअ न जानउँ मूर्ख-मने । निज बुद्धि प्रकासेउँ तोउ जने ॥
जो सकलेहिँ त्रिभुवनेँ विस्तरिऊ । आरभेँउ पुनि राघव-चरिऊ ॥

—रामायण २३।१

तेँहि अवसर सरसति धिरजाती । "करु काव्य, दियो मैँ विमलमति ॥"
इन्द्रेहि समर्पेउ व्याकरणा । रस **भरत** सु-वासहिं विस्तरणा ॥
पिंगलेँहिँ छन्द - पद - प्रस्तारा । **भामह दंडिनेहि** अलंकारा ॥
वाणेहिँ समर्पेउ घनघनऊ । सो अक्षर - डंवर घन - घनऊ ॥
हरिसेनने पानिउ आपनऊ । अवरेँहिँ कवियेहिँ कवित्वनऊ ॥

—हरिवंशपुराण १

छब्बरिसाइँ तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स ।
वाणवइ संधि करणे, बोलिणो इत्तिओ कालो ॥
दियहाहियस्स वारे दसमी-दियहम्मि मूल-णक्खत्ते ।
एयारसम्मि चंदे उत्तरकंडं समाढत्तं ॥
—हरिवंशपुराण ९२।३, ४

भद्दमासें विणासिय-भवकलि । हुउ परिपुण्ण चउद्दिसि णिम्मलि ॥
—हरिवंशपुराण (अंत)

धुवराय व तइय लु अप्पठत्ति-णत्ती सु याणु पाढेण
णामेण सामि अब्बा सयंभु-घरिणी महासत्ता ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्खर - वास - जलोह - मणोहर । सुयलंकार -छंद-मच्छोहर ॥
दीह-समास-पवाहा-वकिय । सक्कय-पायय-पुलिणा-लंकिय ॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल । कवि-दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल ॥
अत्थ-बहल-कल्लोला णिद्दिय । आसा-सय-सम-ऊह-परिट्ठिय ॥
राम-कहा सरि एँह सोंहती ।.....

—रामायण १

२—ऋतु और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्खण दासरहि, तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावेँहिं ।
पसरइ सुकइहि कव्वु जिह, मेह-जालु गयणंगणें तावेहिं ॥
पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहों । पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहों ॥
पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहों । पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहों ॥
पसरइ जेम कित्ति जगणाहहों । पसरइ जेम चिंता धणहीणहों ॥
पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहों । पसरइ जेम किलेसु णिहीणहु ॥

छै वर्ष तिमास इग्यारह वासरा स्वयंभूको ।
बानवे संधि रचने हि, बोलियउ एत्तनो कालो ॥
दिवसाधिप को वार, दशमी दिवस मूल-नक्षत्रे ।
ग्यारहवें चंद्र(मासे) उत्तरकाड समाप्त भवो ॥
—हरिवंशपुराण

भादौं मास विनाशित भव कलि, हुअ परिपूर्ण चऊदस निर्मलें ।
—हरिवंशपुराण (अन्त)

ध्रुव राजा.....
नामेन स्वामि.....स्वयभुघरिनी महासत्त्वा ॥
—रामायण २० (अन्त)

(२) रामायण-रचना

अक्षर - वास - जलोघ - मनोहर । सु - अलंकार - छंद - मत्स्योधर ॥
दीर्घसमास-प्रवाहहिँ वकित । संस्कृत-प्राकृत-पुलिनालंकृत ॥
देशी भाषा दोउ-तट उज्ज्वल । कवि-दुष्कर-घन-शब्द-शिलातल ॥
अर्थ-बहुल कल्लोलहिँ सज्जित । आशा-शत-सम-ओघ-समर्पित ॥
राम-कथा सरि एहु सोहंती ।.....
रामायण १

२—ऋतु- और काल-वर्णन

(१) पावस

सीय स-लक्ष्मण दाशरथि, तरुवर-मूले वैठेँउ जबहीँ ।
पसरै सुकविहिँ काव्य जिमि, मेघ-जाल गगनंगणे तबहीँ ॥
पसरै जिमि बुद्धी वहु-ज्ञानहँ । पसरै जिमि पापा पापिष्टहँ ।
पसरै जिमि धर्मा धर्मिष्टहँ । पसरै जिमि ज्योत्स्ना मृगवाहहँ ॥
पसरै जिमि कीर्ती जगनाथहँ । पसरै जिमि चिन्ता धनहीनहँ ॥
पसरै जिमि कीर्त्ती सुकुलीनहँ । पसरै जिमि किलेश निहीनहँ ॥

पसरइ जेम सद्द सुर-तूरहों । पसरइ जेम रासि णहें सूरहों ॥
पसरइ जेम दवग्गि वणंतरे । पसरिउ मेह-जालु तह अंवरे ॥
तड़ि तड़-तड़इ पड़इ घणु गज्जइ । जाणइ रामहों सरणु पवज्जइ ।
घत्ता । अमर महद्धणु गहिय करें, मेह-गइन्दे चडिवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिंभ णराहिवहों, पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥१॥
जे पाउस-णरिन्दु गल-गज्जिउ । धूली रउ गिंभेण विसज्जिउ ॥
गंपिणु मेह विंदि आलग्गउ । तड़ि करवालु पहारेंहिँ भग्गउ ॥
जं 'वि वरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ हणु-हणंतु उण्हालउ ॥
धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ । हस-हस-हस-हसंतु संथाइउ ॥
जल-जल-जल-जलंतु पयलंतउ । जालावलि-फुलिग मेल्लंतउ ॥
धूमावलि-धय-दंड ब्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्ग कड्ढेप्पिणु ॥
झड़-झड़-झड़-झड़ंतु पहरंतउ । तरुअर-रिउ भड-थ ड-भज्जंतउ ॥
मेह-महग्गय-घड विहडंतउ । जं उण्हालउ दिट्ठ भिड़ंतउ ॥
पाउस-राउ ताव संपत्तउ । जल-कल्लोल-संति पयडंतउ ।
घत्ता । घणु अप्फालिउ पाउसेण, तडि-डंकार-फार दरिसंतउ ।
चोइवि जलहर-हत्थि-हड, णीर सरासणि मुक्क तुरंतउ ॥२॥
जल-वाणासणें घायहिँ धाइउ । गिण्हु णराहिउ रणें विणिवाइउ ।
दद्दुर रडें वि लग्ग णं सज्जण । ण णच्चंति मोर खल-दुज्जण ॥
णं पूरेंत सरिउ अक्कंदें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ।
णं परहुय विमुक्कु उग्घोसें । णं वरहिण लवंति परिऊसें ।
णं सरवर वहु अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसें गंजोल्लिय ।
णं उण्हविय दवग्गि विऊएँ । णं णच्चिय महि विविह-विणोए ।
णं अत्थविउ दिवायर दुक्खे । णं पइसरइ रयणि सइ सोक्खें ।
रत्तपत्त-तरु-पवणाकंपिय । केण'वि काहेउ गिंभुऊ जंपिय ।
घत्ता । तेहएँ कालें भयाउरयें, विण्णि'वि वासुएव वलएव ।
तरुवर-मूलें स-सीय थिय, जोग लयेविणु मुणिवर जें व ॥३०॥

—रामायण २८।१-३

पसरै जिमि शव्दा सुर-तूर्यहूँ । पसरै जिमि राशि नभें सूरहँ ॥
पसरै जिमि दावाग्नि वनांतरें । पसरें उ मेघ-जाल तिमि अंवरें ॥
तड़ि तड़-तड़ै पड़ै घन गरजै । जानकि रामहँ शरणहिं व्रजै ॥
घत्ता । अमर महाधनु गहि करै, मेघ गयंदे चढें उ यशलुब्धा ।
ग्रीष्म नराधिप कहँ ऊपर, पावस-राज केर दल सज्जा ॥१॥
जनु पावस-नरेन्द्र गल-गर्जेउ । धूली-रज ग्रीष्मेहि विसर्जेउ ॥
जंपिय मेघवृन्द आ-लागेउ । तड़ि करवाल प्रहारेहिं भागेउ ।
जनु हि पराङ्-मुख चलें उ विशाला । उट्ठें उ हनहनंत ऊष्णाला ।
धग-धग-धगंत उद्-धायउ । हस-हस-हस-हसन्त संजायउ ।
ज्वल-ज्वल-ज्वल-ज्वलंत प्रचलंता । ज्वालावलि फुलिग मेलंता ।
धूमावलि-ध्वज-दंड उठायेउ । वर-बादली खड्ग कड्ढायेउ ।
झड़-झड़-झड़-झड़ंत प्रहरंता । तरुवर-रिपु भट-ठट भज्जंता ।
मेघ महागज-घट विघटंता । जनु उष्णाला दीख भिडंता ।
पावस-राव तवहिं आयंता । जल-कल्लोल शांति प्रकटंता ।
घत्ता । धनु फरकायेउ पावसहिं, तडि टकार फार दरसंता ।
प्रेरिय जलधर-हस्ति-घट, तीर शरासन मोचु तुरता ॥२॥
जल-वाणासने घातहिं धायेउ । ग्रीष्म नराधिप रणेहिं निपातेउ ।
दादुर रटन लागु जनु सज्जन । जनु नाचईं मोर खल-दुर्जन ।
जनु पूरहिं सरिता आक्रंदे । जनु कपि किलकिलंति आनन्दे ।
जनु परभृत विमोचु उद्घोषे । जनु वर्हिन लपंति परदोषे ।
जनु सरवर वहु-अश्रु-जलोल्लित । जनु गिरिवर हर्षे गंजोल्लित ।
जनु ऊषमिय दवाग्नि वियोगें । जनु नाचिय महि विविधि-विनोदे ।
जनु अस्तमेउ दिवाकर दुःखे । जनु पइसे रजनी सति सौख्ये ।
रक्तपत्र-तरु-पवना-कपिय । केहेंहि कहेउ ग्रीष्मऊ जल्पिय ।
घत्ता । तेहें हि कालें भयातुरे, दोउहि वासुदेव वलदेव ।
तरुवर-मूलें स-सीय चित, जोग लइय मुनिवर जेम ॥३॥

—रामायण २८ ।१-३

(२) वसंत

कुव्वर-णयरु पराइय जावेंहिं । फागुण-मासु पवोलिउ तावेंहिं ।
पइठु वसंत-राउ आणंदें । कोइल-कलयलु मंगल-सद्दें ।
अलि-मिहुणें हिं वदिणें हिं पढ़न्तें हि । वरहिण वावणेहि णंच्चतेहिं ।
अदोला-सय-तोरणवारें हिं । ढुक्कु वसंतु अणेय-पयारें हिं ।
कत्थइ चूअ-वणइ पल्लवियइं । णव-किसलय-फल-फुल्लु 'ब्भवियइं ।
कत्थइ गिरि-सिहरहिं विच्छायइं । खल-मुंह इव मसि-वण्णइं जायइं ।
कत्थइ माहव-मासहों मेइणि । पिय-विरहेण 'व सूसइ कामिणि ।
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मंदलु । णर-मिहुणेहिं पणच्चिउ गोंदलु ।
तं तहों णयरहों उत्तर-पासें हिं । जण-मण-हरु जोयण-उद्देसेहिं ।
दिट्ठु वसत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण-हियउँ जेम अपमाणु ।
—रामायण २६।५

णं दीसर-पइ सारऐं सारऐं । माहव-मासु णाइ हक्कारइ ।
सासय-सिव सं पावणें पावणें । दरिसावियउ फग्गुणे फग्गुणें ।
णव-फल-पारिपक्काणणें काणणें । कुसुमिय साहारऐं साहारऐं ।
रिद्धि गयक्कोक्कणयहि कणयहों । हंस ब्भंसिये कु-वलऐं कुवलऐं ।
महुयर महु मज्जंतऐं जंतऐं । कोइल वासंतऐं वासतए ।
कीर-वंदि उट्ठतए-ठतए । मलयाणिलें आवंतऐं वंतऐं ।
मधुवरि-पडिसंल्लावऐं लावऐं । जहि णवि तित्तिरयहों तित्तिरऐं ।
णाउ ण णावइ किंमुइ किंमुइ । जहि वसेण गय-णाहहों णाहहों ।
तहि तणु तप्पइ मीयहें मीयहें ।
घत्ता—अच्छउ सामण्णे केणवि अण्णो, जहि अइमुत्तउ रइ करइ ।
तं जण-मण-मज्जावणों, सच्छ-सहावणु को महुमासु ण संभरइ ॥१॥
कत्थइ अंगारय-संकासउ । रेहइ तंविरु फुल्ल पलासउ ।
णं दावाणलु आउ गवेसउ । "को मइ दड्ढ ण दड्ढु पएसउ" ।

(२) वसंत

कुव्वर नगर पहूँचेउ जब्बहिं । फागुन-मास प्रवोलेउ तव्वहिं ।
पइसु वसंत-राव आनन्दे । कोइल-कलकल मंगल-शब्दे ।
अलि-मिथुनेंहिं वंदीहिं पढ़न्तेंहि । वहिन वामनेहिं नाचंतेहि ।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेहिं । ढुक्कु वसंत अनेक-प्रकारहिं ।
कहिं कहिं चूत-वनहिं पल्लवितहिं । नव-किसलय-फल फूलु' द्रुवितहिं ।
कहिं कहिं गिरिशिखरा वि-च्छाया । खल-मुख इव मसिवर्णहिं लाया ।
कहिं कहिं माधव-मासहिं मेदिनि । प्रिय-विरहेंहिं जनु श्वसही कामिनि ।
कहिं कहिं गावै वाजै मॉदर । नर-मिथुनेहिं प्रनाचेंउ गोंदल ।
सो तेहिं नगरहं उत्तर-पासें । जन-मनहर योजन-उद्देशें ।
दीख वसंत-तिलक उद्याना । सज्जन हियहिं यथा अप्रमाणा ।
—रामायण २६।५

जनु दीवस-पति धीरेइँ धीरे । माधव-मास न्याइँ हकारे ।
शाश्वत-शिव इव पावन-पावन । दरसायऊ फागुने फा-गुन ।
नव-फल-परिपक्वानन कानन । कुसुमेंउ सहकारे-सहकारे ।
ऋद्धि गयेउ कोकनद करकहँ । हंसा हँसे कुवलय कु-वलय ।
मधुकर मधु मज्जते याते । कोकिल वासंतें वासंतें ।
कीर-वदि उट्ठते ठंते । मलयानिल आवंते-वते ।
मधुकरि प्रतिसंलापैं लापैं । जहँ नव-तीतरयें तीतरये ।
नाम न नावै किशुकि कि-सुकि । जँह वशेहि गजनाथहँ नाथहँ ।
नहँ तनु तप्पै सीतहँ शीते ।
घत्ता—आछेउ सामान्ये कौनहुँ अन्ये, जहँ अतिमुक्तउ रति करइ ।
जन-मन-मज्जावन, स्वच्छ-सुहावन, को मधु-मास न आदरइ ॥१॥
कहिं कहिं अंगारक-संकाशा । राजै तामरु फुल्ल पलाशा ।
जनु दावानल आइ गवेषा । "को मे दाहु न दाहु प्रदेशा" ।

कत्थवि माहविए णिय-मंदिरु । यंतु णिवारिउ तं इंदिदिरु ।
ऊसरु ऊसरुतहु अपवित्तउ । अण्णएँ णव पुप्फवइएँच्छित्तउ ।
कत्थइ मूय-कुसुम-मंजरियउ । णाइ वसंत वड़ायउ धरियउ ।
कत्थइ पवण-हयइ पुण्णायइ । णं जगें उत्थल्लिया पुण्णायइ ।
कत्थइ अहिणवाइ भमरउलइ । थियइ वसंत-सिरिहे णं कुरुलइ ।
फणसइ अवुह-मुहा इव जड्डुइ । सिरि-हलाइ सिरिहल इव वड्डुइ ।
—रामायण ७१।१-२

(३) संध्या-वर्णन

उवहसइ संझाराउ सुह-बंधुरु । विद्दुमयाहरु मोत्तिय-दंतुरु ।
छिवइ'व मत्थउ मेरु-महीहरु । तुज्झुवि मज्झुवि कवणु पईहरु ।
ज चंद-कंत-सलिलाहिसित्तु । अहिसेय-पणालु'व फुसिय चित्तु ।
जं विद्दुम-मरगय-कंतिआहि । थिउ गयणु'व सुरधणु-पंतिआहि ।
जं इंदणील-माला-मसीएँ । आलिहइ वंदि भित्तीएँ तीए ।
जहि पोमराय-पह तणु विहाइ । थिउ अहिणव-संझाराउ णाइ ।
जहि सूरकंति खेइज्जमाणु । गउ उत्तर-येसहों णाइ भाणु ।
जहि चंद-कंति मणि-चंदियाउ । णव-यंद-ब्भासें चंदियाउ ।
अच्छरिउ कुमार चवंति येव । वहु चंदी-हूयउ गयणु केम ।
पिक्खेप्पिणु मुत्ता-हल-णिहाय । गिरि-णिज्झर भणेवि धुवत्ति पाय ।
—रामायण ७२।३

३. भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अवहत्थें'वि खल-यणु णिरवसेसु । पहिलउ णिरु वण्णमि मगह-देसु ।
जहिं पक्क-कलम-कमलिणि णिसण्णु । अलहंत तरणि थेरव विसण्णु ।

कहिँ कहिँ माधविया निज मंदिर । जोउ निवारेउ इंदिंदिरू ।
ऊसर ऊस ऋतुहुँ अपवित्रा । अन्ये नव पुष्पवतिएँ क्षिप्तउ ।
कहिँ कहिँ मूक कुसुम-मंजरिया । न्याइँ वसंत बडापउ धरिया ।
कहिँ कहिँ पवनाहत पुन्नागा । जनु जग ऊछल्लेँउ पुं-नागा ।
कहिँ कहिँ अभिनव-भ्रमर-कुलाऊ । रहेँउ वसंत-सिरिहि इव कुरुलउ ।
पनसा अवुध-मुखा इव जड्डा । सिरि-फल सिरिफलाहि इव बड्डा ।
—रामायण

(३) संध्या-वर्णन

उपहसै संध्या-राग सुख-बंधुर । विद्रुमक-अधर, मौक्तिक-दंतुर ।
छुवइ इव मस्तक मेरु-महीधर । तुम्हंरेँउ हमरेँउ कवन पतीघर ।
जनु चंद्रकान्त सलिलाभिषिक्त । अभिषेक-प्रणालि 'व स्पृशित-चित्त ।
जनु विद्रुम-मरकत-कांतियाहि । रहु गगन इव सुरधनु-पंक्तियाहि ।
जनु इंद्रनील-माला-मसीहि । आलिखइ बन्द भित्तीहि ताहि ।
जहँ पद्मराग-प्रभ-तनु विभाहिं । रहु अभिनव-संध्या-राग न्याइँ ।
जहँ सूर्यकांति क्षीइज्जमान । गउ उत्तर-देसहिं न्याइं भानु ।
जहँ चंद्रकांतमणि-चंद्रियाव । नव-चंद्राभासे चंद्रिकाव ।
अँचरजेँउ कुमार च्यवंत एव । बहु चंद्रीभूतउ गगन केम ।
पेखियवउ मुक्ताफल-निभाय । गिरि-निर्झर भनि धोवंत पाय ।
—रामायण ७२।३

२—भौगोलिक वर्णन

(१) देश-वर्णन

अपभ्रंशेँउ खल-जन-अनवशेष । पहिलेँउ मैं वर्णउँ **मगह-देश** ।
जहँ पक्व कलम-कमलिनि निषण्ण । अलभंत तरणि थिरवहिँ विषण्ण ।

जहिँ सुय-पंतिउ सुपरिट्ठिआउ । णं वणसिरि-मरगय-कंठियाउ ।
जहिँ उच्छु-वणइ पवणाहयाइँ । कंपंति'व पीलणभय-गयाइ ।
जहिँ णंदण-वणइँ मणोहराहँ । णच्चंति'व चल-पल्लव-कराइँ ।
जहिँ फाडिम-वयणइँ दाड़िमाइँ । णज्जंति ताइ णं कइ-मुहाइँ ।
जहिँ महुयर-पंतिउ सुंदराउ । केअइ-केसर-रय-धूसराउ ।
जहिँ दक्खा-मंडव परियलति । पुणु पंथिय रस-सलिलइँ पियंति ।

——रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहिँ पट्टणु णामेँ रायगिहु, धण-कणय-समिद्धउ ।
णं पुहइएँ णव-जोव्वणाइ, सिरि-सेहरु आइट्ठउ ॥४॥

चउ गोअरु-त्ति पायार-वन्तु । हँस इव मुत्ताहल-धवल-दन्तु ।
णच्चइ'व मरुद्धुय-धय-करग्गु । धर इव णिवडंतउ गयण-मग्गु ।
सूलग्ग-भिण्णु देउल-सिहरु । कण इव पारावय-सद्द-गहिरु ।
धुम्मइ'व गएँहि मयभिभलेहिँ । उड्डइ'व तुरंगहि चंचलेहिँ ।
ण्हाइ'व ससिकंत-जलोयरेहिँ । पणवइ'व तार-मेहल-हरेहिँ ।
पक्खलइ' व नेउर-णिय-लएहिँ । विप्फुरइ'व कुंडल-युयलएहिँ ।
किलकिलइ 'व सव्व-जणोच्छवेण । गज्जइ इव मुख-भेरी-रवेण ।
गायइ 'व अलाव-णिमुच्छणोहिँ । पुरवइ 'व धम्मु धण-कंचणेहिँ ।

—रामायण १।५४-५

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गयणंगणेँ थिएण, विज्जाहर-पवर णरिन्दहोँ ।
णाइ स-णिच्छरेण, अवलोइउ णयरु महिंदहोँ ॥१॥

चउ-दुवारु चउ-गोअरु चउ-पायारु-पंडर । गयण-लग्ग पवणाहय-धयमालाउरं पुर ।
गिरि-महिन्द-सिहरे रमाउले । रिद्धि-विद्धि-धण-धण्ण-संकुले ।
तं णिएवि हणुयेण चिंतियं । सुरपुरं किमिदेण धत्तियं ।

—रामायण ४६।१-२

जहँ शुक-पंक्तिउ सुपरि-स्थिताव । जनु वन-श्री-मरकत-कठियाव ।
जहँ इक्षु-वना पवनाहता । कंपत इव पेलन-भय-भीता ।
जहँ नंदन-वनं मनोहरा । नाचत इव चल-पल्लव-करा ।
जहँ फाटें वदन दाडिमा । दीखत से वे जनु कपि-मुखा ।
जहँ मधुकर-पक्तिउ सुंदराईं । केतकि-केसर-रज-धूसराइँ ।
जहँ दाखा-मंडप परिचलहीं । पुनि पथिक रस-सलिलहि पियहीं ।

—रामायण १।४

(२) नगर-वर्णन

(क) राजगृह

घत्ता । तहँ पत्तन नामा राजगृह, धन-कनक-समृद्धउ ।
जनु पुहुमिहिँ नवयौवन-श्री-शेखर आदेशितऊ ॥
चौगोपुर चौप्राकार-वन्त । हँस इव मुक्ताफल धवल-दन्त ।
नाचत 'व मरुत-धुत-ध्वज-कराग्र । धारा इव पड़तो गगन-मार्ग ।
शूलाग्र विंधें उ देवल-शिखर । क्वण इव पारावत शब्द-गहिर ।
धूंवत इव मद-विह्वल-गजेहिँ । ऊड़त इव तुरगें हिँ चंचलेहिँ ।
न्हावत शशिकांत-जलोदरेहिँ । प्रणमति 'व तार-मेखल-धरेहिँ ।
प्रस्खलइ 'व नूपुर-निजलयेहिँ । विस्फुरइ 'व कुंडल-जुगलऐहि ।
किलकिलति 'व सर्व-जनोत्सवेन । गर्जति 'व मुरज-भेरी-रवेन ।
गायति 'व अलापा-मूर्छनेहिँ । पूरति 'व धर्म-धन-काचनेहि ।

—रामायण

(ख) महेन्द्रनगर

घत्ता । गंगनांगणे स्थितउ, विद्याधर-प्रवर-नरेन्द्रहु ।
न्याइँ स-निश्चरहिँ, अवलोकेउ नगर-महेन्द्रकहु ।
चौद्वार चौगोपुर चौप्राकार पांडुरं । गगन लाग पवनाहत-ध्वजमालाकुल पुर ।
गिरि-महेन्द्र-शिखरे रमाकुलं । ऋद्धि-वृद्धि-धनधान्य-संकुलं ।
ताहि देखि हनुमंत चिंतयें उ । सुरपुर किमि इन्द्र धरत्तियउँ ।

—रामायण ४६।१-२

(ग) दधिमुख-नगर

मण-गमणेण तेण णहें जंते। दहिमुह-णयरु दिट्ठु हणुवंते।
दिट्ठु राम-सीमा चउपासें हि। धरिउ णाइ पुर-रिणिय सहासें हि।

जहि पफुल्लियाइँ उज्जाणइ। बट्टइ[1] णं तित्थयर-पुराणइ।
जहि ण कयावि तलायइ सुक्कइ। णं सीयलइ मुट्ठु पर-दुक्खइ।

जहि वाविउ वित्थय-सोवाणउ। णं कुगइ'व हेट्ठा-मुह-गमणउ।
जहि पायार ण केणवि लंघिय। जिण-उवएस णाइ गुरु-लंघिय।

जहि देउलइ धवल-पुडरियइँ। पोत्था वायरणइ -बहु-चरियहँ।
जहि मंदिरइँ स-तोरणवारइँ। णं सम-सरणइँ सहपरिवारइँ।

जहि भुव-णेत्त-सुत्त दरिसावण। हरि-हर-बम्हेहि जेहा आवण।
जहि वर-वेसउ तिणयण-भूवउ। पवन-भुयग-सतहि अणुहूअउ।

जहि गयणत्थ-वसह हर हरसइ। राम-तिलोयण जेहा गहवइ।

घत्ता—तहि पट्टणें वहु उवमह भरिअएँ, णं जगें सुकइ-कव्वि वित्थरियएँ।
सहइ स-परियणु दहिमुहि-राणउ, णं सुरवइ सुरपुरहों पहाणउ ॥१॥

रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

णिद्दलिय भुअंग-विसग्गि मुक्कु। मुक्कंत ण वर-सायरहु ढुक्कु[2]।
ढुक्कंतें हि वहल फुलिग घित्त। घण सिप्पि-संख-संपुड-पलित्त।
धग-धग-धगंति मुत्ता-हलाइँ। कढ़-कढ-कढ़ंति सायर - जलाइँ।

हस-हस-हसन्ति पुलिणंतराइँ। जल-जल-जलन्ति भुवणंतराइँ।

—रामायण २७।५

संचल्लेउ राहव साहणेण। संघट्टिउ वाहणु वाहणेण।
थोवंतरे दिट्ठु महासमुद्दु। सुंसुयर-मयर-जलयर-रउद्द।
मच्छोहरु-णक्क-ग्गोहु घोरु। कल्लोलावंतु तरंग-थोरु।

---

[1] बाटै, बाडै, बाय [2] देख्यो (व्रज और बुंदेली)

(ग) दधिमुख-नगर

मनकी गतिसों सो नभ जंता। दधिमुख नगर देखु हनुमंता। देखु अराम-सीम चौपासें हिं। धरें उ जनू पुर-रणित सहासहिं।

जहँ प्रफफुल्लिताउ उद्याना। बाटै[1] जनु तीर्थंकर[2]-पुराणा। जहँ न कदापि तलावा सूखहिं। जनु शीतलत सुष्ट पर-दुःखहिं।

जहँ वापी विस्तृत-सोपाना। जनु कुगती हेठे-मुँह जाना। जहँ प्राकार न कोऊ लंघें उ। जिन-उपदेश न्याइँ दुर्लघें उ।

जहँ देवलहिं धवल-पुडरिका। पोथी वाँचै औ बहु-चरिता। जहँ मंदिरा स-तोरणवारा। जनु शम-शरणा सह-परिवारा।

जहँ भुव-नेत्र-सूत्र-दरसावन। हरि-हर-ब्रह्मा जैसो आवन। जहँ वर-वेश्या त्रिनयन-भूता। प्रवर-भुजंग[3]-शतें हिं अनुभूता।

जहँ गगनस्थ वृषभ हर हरषति। राम-त्रिलोचन सरिसो गृहपति।

घत्ता। सो पत्तन बहु-उपमा-भरिया, जनु जग सुकवि-काव्य विस्तरिया।
रहै स-परिजन दशमुख राना। जनु सुरपति सुरपुरहिं प्रधाना॥

—रामायण ४७।१

(३) समुद्र-वर्णन

निर्दलें उ भुजंग विसर्ग मोचु। मोचत जनु वर-सागरहिं ढूकुं।

ढूकत हि बहु स्फुलिंग क्षिप्त। घन-सीप-शंख-संपुट-प्रलिप्त। धग-धग-धगंत मुक्ताफला। कड-कड-कडंत सागर-जला।

हस-हस-हसत पुलिनातरा। ज्वल-ज्वल-ज्वलंत भुवनांतरा।

—रामायण २७।५

संचल्लें उ राघव साधन-सँग। संघट्टें उ वाहन वाहन-सँग।

थोडा'न्तरे देखु महासमुद्र। सूँस अवर मकर-जलचरें हिं रौद्र। मत्स्योधर-नाका-गोह-घोर। कल्लोलावत तरंग-जोर।

---

[1] हैं [2] पथप्रवर्त्तक महावीर [3] वेश्यालम्पट [4] देखु [5] थोर

वेला वड्ढतउ दुहुदुहंतु । फेणुज्जल-तोय तुषार दिंतु ।
तहों अवरें पयड़उ राम-सेण्णु । णं मेह-जालु णहयलें णिसण्णु ।

—रामायण ५६।६

घत्ता । मण-गमणें हिं गयणि पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह ।
महि-मंडयहों णह-यल-रक्खसेण, फाडेंउ जठर-पयेसु जिह ।२

दीसइ रयणायरु रयण-वाहु । विण्णु'व सवारि छंदु 'व सगाहु ।
अत्थहु सुहि'व हत्थि'व करालु । भडारिउ'व्व वहु-रयण-पालु ।
सूहव-पुरिसो'व्व सलोण-सीलु । सुग्गीउ'व पयडिय इद-लीलु ।
जिण-सुव चक्कवइ'व कियव सेलु । मज्झाणु'व उप्परि चड़िय वेलु ।
तवसि'व परिपालिय समय-सारं[1] । दुज्जण पुरिसो'व्व महाव-खारु ।
णिद्धण आलाउ'व अप्पमाणु । जोइसु'व मीण-कक्कडय-थाणु ।
महकव्व-णिवंधु'व सद्द-गहिरु । 'चामीयर'व सद्दय-पीय-मयरु ।
नहि जलणिहिउ लंघंतएहि । वोहित्थइ दिट्ठइ जंतएहि ।
सीह-वडइ लविय इलाइं । महरिमि चित्ताइँ'व अविचलाइं ।

—रामायण ६६।२-३

(४) नदी (गोदावरी)-वर्णन

थोवंतरे मच्छुत्थल्ल देति । **गोला**-णइ दिट्ठ समुव्वहति ।
सुंसुअ घोरग्घुरु-घुरु-हुरंति । करि-मय-रड्ढोहिय डुहु-डुहंति ।
डिंडीर-संड-मंडलिउ दिंति । दद्दुर यरडिय दुरु-दुरु-दुरंति ।
कल्लोलुल्लोहिउ उव्वहंति । उग्घोस-घोस घव-घव-घवंति ।
पडिखलण-वलण खल-खल-खलंति । खल-खलिय खडक्कि झडक्क देंति ।
ससि-संख-कुंद-धवलो झरेण । कारंडुड्डाविय डंवरेण ।

---

[1] आचारव्रत

बेलहिँ बधंतउ दुह-दुहंत । फेनु-'ज्ज्वल तोय-तुषार देत ।
तें हि ऊपर पहुँचें उ राम-सेन । जनु मेघजाल नभ-तलें निषण्ण ।
—रामायण ५६।९

घत्ता । मन-गतिहि गगनें चलंतउ, लक्खेउ लवण-समुद्र किमि ।
महि-मंडल नभ-तल राक्षसें हिँ, फाड़ें उ जठर-प्रदेश जिमि ।।

दीसइ रत्नाकर रतन-चारु । विष्णु'व सवारि छंदि'व सगाथ ।
अर्थहु सुख इव हस्ति'व कराल । भंडारी इव वहु-रतन-पाल ।
सु-भव[1] पुरुष इव सलोन-शील । सुग्रीवि'व प्रकटें उ इन्द्र-नील ।
जिनसुत चक्रवर्ति'व कियें उ शैल । मध्यान्हि'व ऊपर चढें उ बेल ।
तपसी इव पालें उ समय-सार । दुर्जन-पुरुष इव स्वभाव-खार ।
निर्धन-अलाप इव अ-प्रमाण । जोतिसि 'व मीन-कर्कटक-थान ।
महकव्य-निबँध इव शब्द-गहिर । चामीकरि'व शयित-पोत-मकर ।
तहँ जलनिधिहू लंघंतयेहु । वोहितऊ देखें उ जांतएहु ।
सिह-वटहिँ लंबित-फलाउ । महऋषि-चित्ता इव अविचलाउ ।
—रामायण ६९।२-३

(४) नदी-वर्णन

थोडांतरे मच्छ-उछल्ल देंत । गोदा-नदि देखु समा-वहंत ।
सूँसउ घोरा घुर-घुर-घुरंत । करि-मद-रडोहित डुहु-डुहुंत ।
हिंडीर-खंड मंडलिउ देंत । दादुर-ध्वनियहु दुर-दुर-दुरंत ।
कल्लोलु-'ल्लोहित उद्वहंत । उद्घोष घोष घब्-घब्-घबंति ।
प्रतिखलन-वलन खल-खल-खलंत । खल-खलिउ खडक्कि झटक्कि देंत ।
शशि-शंख-कुंद-धवला झरेण । कारंडव 'डायउ डंबरेण ।

---

[1] सुजात

घत्ता। फेणावलि वंकिय-वलयालंकिय, णं महि बहुअहे तणिया।
जल-णिहि भत्तारहों मोत्तिय हारहों, वाह पसारिय दाहिणिया ॥३॥
—रामायण ३१।२

(५) वन-वर्णन

तहि तेहएँ सुदरें सुप्पवहे। आरण्ण-महग्गय-जुत्त-रहे।
धुर लक्खणु रहवरें दासरहि। सुर-लीलएँ पुणु विहरंत महि।
तं कण्ह-वण्ण-णइ मुएँ विगया। वण कहिमि णिहालिय मत्तगया।
कत्थवि पचाणण गिरि-गुहेहिं। मुत्तावलि विक्खिरंति णहेहिं।
कत्थवि उड्डाविय सउण-सया। णं अडविहें उड्डे विणण-गया।
कत्थवि कलाव णच्चति वणे। णावइ णट्टावा जुयइ-जणे।
कत्थइ हरिणइँ भय-भीयाइं। संसारहों जिह पावइ याइं।
कत्थवि णाणा-विह रुक्ख-राइं। ण महि-कुल-वहुअहि रोमराइं।
—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि (अयोध्या)-प्रशंसा

धूवंत धवल-धय वड-पउरु। पिय पेक्खु अउज्झाउरि णयरु।
घत्ता। किर जम्मभूमि जणणीय सम, अण्णु विहूसिय जिणवरेहि।
पुरि वंदिय सिर सयंभुव करेंहि, जणय-तणय-हरि-हलहरेहि[1] ॥२॥
—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमानकी लंकासे अयोध्याकी यात्रा—

घत्ता। मणगमणेहिँ गयणें पयट्टेहि, लक्खिउ लवण-समुद्दु किह।...
अण्णुवि थोवंतरु जंतएहि, तिहिमि णिहालिउ गिरि-मलउ।
जो लवली-वलहो चंदण सरहो, दाहिण-पवणहों थाम लउ ॥३॥

---

[1] राम-लक्ष्मण

घत्ता । फेणावलि-वंकिम वलयालंकृत, जनु महि-वधुअहि-तनिया ।[1]
जलनिधि भत्तारह मौक्तिकहारहँ, बाँह पसारिय दाहिनिया ॥

—रामायण ३१।३

(५) वन-वर्णन

तँह तेहिहि सुदर सु-प्रभो । आरण्य महागज-युक्त रहो ।
धुर लक्ष्मण रथवरें दाशरथी । सुर-लीलहिँ पुनि विहरंत मही ।
सो कृष्ण-वेण-नदि मृग-सहिता । वन कहउँ निहारिय मत्तगजा ।
कहिँ कहिँ पंचानन गिरि-गुहाहिँ । मुक्तावलियहिँ विकिरंत नभहिँ ।
कहिँ कहिँ उड्डायें उ शकुन-शता । जनु अटविहि उड्डै वियद-गता ।
कहिँ कहिँ कलापि नाचंत वने । न्याईं नाट्या वा युवति-जने ।
कहिँ कहिँ हरिना भय-भीताइँ । संसारहु जिमि पापहि जाइं ।
कहिँ कहिँ नानाविध वृक्षराजि । जनु महि-कुलवधुवहि रोमराजि ।

—रामायण ३६।१

(६) मातृभूमि-प्रशंसा

धूवंत धवल-ध्वज वट-प्रवरू । प्रियें ! पेखु अयोध्यापुरि नगरू ।
घत्ता । फुरु जन्म-भूमि जननीहिँ सम, आन विभूषित जिनवरेहिँ ।
पुरि वंदि मिर स्वयंभू करेहि, जनकतनय-हरि-हलधरेहिँ ।

—रामायण ७८।२०

(७) यात्रा-वर्णन

(क) हनूमान्‌की लंका-अयोध्या

घत्ता । मन वेगें हिँ गगनें चलंतो, लखें उ लवण-समुद्र जिमि ।.....
अवरो थोडं[2] तरे जातो, तहँहिँ निहारें उ गिरि-मलयो ।
जो लवली वलहो चंदन-सरहो, दक्षिण पवन विस्तार लियो ।

---

[1] तनी=वाली [2] बेंत

जहि जुवइ-पउरु पारज्जियाइँ । रत्तुप्पल-कयलिय-वण थियाइँ ।
कामिणि-गइ छाया-मंसियाइँ । जहि हंस-वलइ आवासियाइँ ।
कर-करयल-ऊहामिय मणाइ । जहि मालइ-कंकेल्ली-वणाइँ ।
जहि वयण-णयण-पह घल्लियाइ । कमलिदीवरइ समल्लियाइ ।
जहि महुरवाणि-अवहत्थिआइ । कोइल-कुलाइँ कसणइ थियाइँ ।
भउहावलि-छाया-वंकियाइँ । जहि णिव-दलइ कडुअइ कियाइँ ।
जहि चिहुर-भार ऊहामियाइ । वरहिण-कुलाइँ रोवावियाइँ ।
त मलउ मुएँवि विहरति जाव । दाहिण-**महुरएँ** आसण्ण ताव ।
घत्ता । **किक्किंध**-महागिरि लक्खियउ, तुग-सिहरु कोडावणउ ।
छुड रमिअहें पुहइ-विलासणिहें, उर-पयेसु णंग सव्वणउ ॥४॥
जहि इंदणील-कर-भिज्जमाणु । ससि थाइ जुण्ण-दप्पणु-समाणु ।
जहि पउमराय-कर-तेय-पिंडु । रत्तुप्पल-सण्णिहु होइ **चंदु** ।
जहि मरगय-खाणिवि विप्फुरंति । ससिबिंबु भिसिणि पत्तुवकरंति ।
त मेल्लें विरह-मुच्छल्लिय-गत्त । णिविसद्धें सरि **कावेरि** पत्त ।
जालइय विहजें वि णरवरेहि । महकव्व-कहा इव कइ-वरेहि ।
सामिय-आणा इव किंकरेहि । तित्थकर-वाणि'व गणहरेहि ।
सिव-सासयमोत्ति'व हेउयेहि । वरसद्दुप्पत्ति'व वाउएहि ।
पुणु दिट्ठु महानद **तुंगभद्द** । करि-मयर-मच्छ-कच्छय-रउद्द ।
घत्ता । असहंते वण-दव-पवण-झडु, दसह-किरण-दिवायरहों ।
ण सज्झें सुट्ठु ति साएण, जीहें पसारिय सायरहों ॥५॥
पुणु दिट्ठ पवाहिणि **कण्णवेण्ण** । किविणत्थ-पडत्ति'व महि-णिसण्ण ।
णं इंदणील-कंठिय-धरेण । दक्खविय समुद्दहों आयरेण ।
पुणु सरि**भीम**-जलोह फार । जा सेउण देसहों अमिय-धार ।
पुणु **गोला**-णइ मंथर-पवाह । संभेण पसारिय णाइ वाह ।

---

[२] **तीर्थंकर महावीरके प्रथम प्रमुख शिष्य**

जहँ युवति-प्रवर पाराजिताइँ । रक्तोत्पल-कदली-वन थिताइँ ।
कामिनिगति-छाया-मर्षिताइँ । जहँ हंस-यूथ आवासिताइँ ।
कर-करतल ईहामृग-मनाइँ । जहँ मालति-कंकेल्ली-वनाइँ ।
जहँ वदन-नयन-प्रभ फेंकियाइँ । कमलि-'दीवरहु समेलियाइँ ।
जहँ मधुर-वाणि अपहस्तिताइँ[1] । कोकिल-कुलाइँ कृष्णा थिताइँ ।
भौंहावलि-छाया-वंकिमाइँ । जहँ निंब-पत्र कटुका कियाइँ ।
जहँ चिकुर-भार ईहामृगाइँ । वर्हिण-कुलाइँ रोवाइताइँ ।
सो मलय-भूमि विहरत जौ । दक्षिण-**मथुरहिँ** आसन्न तौ ।
घत्ता । **किष्किंध**-महागिरि लखियहू, तुग-शिखर क्रोडावनऊ ।
यदि रम्यहि पुहुमि-विलासिनिहीं, उर प्रदेश अनग सर्वनऊ ॥३४॥
जहँ इन्द्रनील-कर-भिद्यमान । शशि रहै जीर्ण-दर्पण-समान ।
जहँ पद्मराग-कर-तेज-पिंड । रक्तोत्पल-सदृश होइ चंद ।
जहँ मरकत-खानिहि विस्फुरति । शशिबिब भिसिहि प्रत्युपकरंति ।
सो छाडि विरह-सुच्छलिय-गात्र । निमिषार्धे सरि **कावेरि** प्राप्त ।
ज्वालयित विभंगेहु नरवरेहिँ । महकाव्य-कथा सोँ कविवरेहि ।
स्वामी-आज्ञा सोँ किंकरेहि । तीर्थंकर-वाणि सोँ गण धरेहिँ ।
शिव-शाश्वत मोति सोँ हेतुएहिँ । वर शब्दु-'त्पत्ति सोँ वायुएहिँ ।
पुनि देखु महानदि **तुंगभद्र** । करि-मकर-मच्छ-कच्छप-रउद्र ।
घत्ता । असहंतो वन-दव-पवन झड, दुसह किरण-दिवाकरहू ।
जनु संध्यहि सुठि तृषितयहि, जीभ पसारेंउ सागरेहिँ ॥५॥
पुनि देखु प्रवाहिणि **कृष्णवेण्य** । कृषिणार्थ-प्रवृत्ति'व महि-निषण्ण ।
जनु इंद्रनील कंठे धरेहिँ । देखिविय समुद्रहु आकरेहिँ ।
पुनि सरि **भीम** जलोघ फार । जो सेतुन देसहु अमृधार ।
पुनि **गोदा** नदि मंथर-प्रवाह । संझेहिँ पसारेंउ नारि-वाँह ।

---

[1] **पराजित**

पुणु वेण्णि **पाइण्हिउ** वाहिणीउ । णं कुडिल-सहावउ कामिणीउ ।
पुणु **तापि** महाणइ सुप्पवाह । सज्जण-मत्तिव्व अलद्धथाह ।
थोवंतरालें पुणु **विंझु** थाइ । सीमतउ पि हिमिहितणउ णाइ ।
पुणु **रेवा** णइ हणुवंत एहि । साणिदिय रोसव संगएहि ।
किं विंझहों पासिउ उवहि चार । जो सविसु किविणु अभंब खारु ।
त णिसुणेवि सीय-सहोयरेण । विम्मच्छिय णहयल-गोयरेण ।
घत्ता । जं **विंझु** मुए'वि गय सायरहों, मा रूसहि **रेवा**-णइहें ।
णिल्लोणु मुयइ सलोणु सरइ, णिय-सहाउ यहु तिय मइहें ॥६॥

साणम्मय दूरवरेण चत्त । पुण **उज्जयणें** णिविसेण पत्त ।
जहि जणवउ सघणु महग्घणो'व्व । रामो वरिवच्छलु लक्खणोव्व ।
णुणवंतउ घणु कर-सगहो'व्व । अमुणिय-कर-सिर-तणु वम्महो'व्व ।
साविउ महिल'व्व **उज्जेणि** मुक्क । पुणु पारियत्त **मालवु** ढुक्कु ।
जो धण्णालंकिउ णर-वइ'व्व । उच्छहणु कुसुम-सरु रइवइ'व्व ।
त मेल्लें वि **जउणा** णइ पवण्ण । जा अलय'-जलय-गव-लालि-वण्ण ।
जा कसिण भुयंगि'व विसहों भरिय । कज्जल-रेहा-वण धरणिएँ धरिय ।
थोवंतरें जल-णिम्मल-तरग । ससि-संख-सम-प्पह दिट्ठ **गंग** ।
घत्ता । अम्हहँ विहि गरुवउ कवणु जउ, जुज्झि वि आयं मच्छरेण ।
हिमवंतहों ण अवहरिविणिया, धय-वडाइँ रयणायरेण ॥७॥

थोवंतरें तिहि मि **अउज्झ** दिट्ठ । णं सिद्धिपुरिहि सिद्धव पइट्ठ ।
जहि मिहुणइ आरंभिय रयाइ । पंथिय इव उव्वाइय पयाइ ।
पाहुण इव अवरुंडण-मणाइ । गिरिवर-गत्ता इव सव्व णाइ ।
अविचल-रज्जा इव सुकरणाइ । रिसि-उल इव भाण-परायणाइ ।
धणुहर इव गुण-मेल्लिय सराइँ । अहों रत्ता इव पहराउराइ ।.....
घत्ता । महि-मंदरु-सायरु जावणहू, जाव दिसइ महणइ जलइ ।
तउ होंति ताव जिणकेराइ, पुण्ण पवित्तइ मंगलइ ॥८॥

—रामायण ६९।३-८

---

[1] मूंगा

पुनि दोउ **पयस्विनि** वाहिनीहुँ । जनु कुटिल-स्वभावउ कामिनीहुँ ।

पुनि **तापि** महानदि-सुप्रवाह । सज्जन-मैत्री 'व अलब्ध-थाह । थोडतरालें पुनि **विंध्य** जाइ । सीमंतहूँ हिमकेरि न्याइँ ।

पुनि **रेवा** नदि हनुमंत आव । सानदिउ रोषउ संगतेहि । कीं विंध्यहु पासे उदधि चारु । जो सबहुँ कृपण भाँपेउ खार ।

सो सुनि सीय-सहोदरेन । विमरशेंउ नभतल-गोचरेन ।

घत्ता । जो विंध्यभुमिहुँ गउ सागरहु, ना रुसइ **रेवा** नदिहि ।

निर्लवण मुचइ सलवण सरइ, निज स्वभाव स्त्रीमयहि ॥६॥

सा **नर्मद** दूरतरेण त्यक्त । पुनि **उज्जयिनी** निमिषेण प्राप्त ।

जहँ जनपद सघन महार्घ इव । रामोपरि वत्सल लक्ष्मण इव । गुणवंतउ घन कर-संग्रह इव । अमुनिय-कर-शिर तनु मन्मथ इव ।

शापित महिलि'व **उज्जयन** मुचु । पुनि पारियात्र **मालवहिं** ढूकु । जो धान्यालकृत नरपति इव । उत्सहन कुसुम-शर रतिपति इव ।

सो छाडिय **जमुना** नदी पहुँच । जो अलक[1]-जलक गो लाल-वर्ण । जो कृष्णभुजंगि'व विष-भरिया । कज्जल-रेखा-वन धरनि धरिया ।

थोडंतरे जल-निर्मल-तरग । शशि-शख-समप्रभ देखु **गंग** ।

घत्ता । हमरो सम गरुओ कौन, यदि जूझिव वहु-मत्सरहीं ।

हिमवंतहु जनु अपहरण किय, ध्वजपताक रतनाकरहीं ॥७॥

थोडंतरे तहँहि **अयोध्य** दृष्ट । जनु सिद्धिपुरिहि सिद्धप प्रविष्ट ।

जहँ मिथुनइ आरभेंउ रजाइँ । पंथिक इव उट्ठाइय पदाइँ । पाहुन इव आलिगन-मनाइँ । गिरिवर-गात्रा इ सर्व न्याइँ ।

अविचल राज्या इव सु-करणाइँ । ऋषि-कुल इव भांड-परायणाइँ । धनुधर इव गुणें मेलें'उ शराइँ । अहोंरात्रा इव प्रहरावराइँ ।.....

घत्ता । महि-मंदर-सागर जावनहँ, जौ लौं दीसइ महनदिं जलई ।

ता होंति तौ लौ जिनकेरइ, पुण्य-पवित्र मंगलइ ॥८॥

—रामायण ६९।३-८

---

[1] मूँगा

(ख) रामकी लंकासे अयोध्या-यात्रा--

गउ लंक विहीसणु मिच्चवलु । सोलहउसे दिवसें पयट्ट बलु ।
स-विमाणु स-साहणु गयण-वहे । दावतु णिवाणइ पिअय महे ।
एहु सुदर दीसइ मयरहरु । एहु **मलय**-धराहरु सुरहि-तरु ।
किक्किंध-महिंदहों इह सयल । इह तुलिय कुमारें **कोडिसिल** ।
हुंउ लक्खणु एण पहेण गय । एत्तहि खर-दूसण-तिमिर हय ।
इह सबु कुमारहों खुडिउ सिरु । इह फेडिउ रिसि-उवसग्गु चिरु ।
इह सो उद्देसु णिअच्छियउ । जिय मोंम जणणु जहि अच्छियउ ।
एहु देसु अमेसु विचारु चरिउ । अइवीर णराहिउ जहि धरिउ ।
घत्ता । तं सुंदरियउ जियत उरु, जहि वण बाल समावडिय ।
लक्खिज्जइ लक्खण पायवहो, अहिणव वेल्लि णाइ चडिय ॥१९॥
रामउरि एहु गुण-गारविय । जा पूयण जक्खें कारविय ।
एहु अरुणु गामु कविलहोंतणउ । जहि गल-थल्लाविउ अप्पणउ ।
एहु दीसइ सुदरि ! **विभ**-इरि । जहि वस किउ वालि-खिल्लु वइरि ।
वइदेहि ! एउ **कुव्वर**-णयरु । कल्लाण-माल जहि जाउ णरु ।
एहु **दसउरु** जहि लक्खणु भमिउ । सीहोयर सीह समरि दमिउ....
दीसइ सव्वु सुवण्णु भउ । णिभ्भविउ विहीसणि ण णवउ ।
धूवंत धवल-धय-वड-पउरु । पिय ! पेक्खु **अउज्झाउरि** णयरु ।

—रामायण ७८।१९-२०

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लहु[1] भोयणु आणहि सुंदरउ । ज सरस-सलोणउ जेहें सुरउ ।
तं णिसुणेंवि वेवि सचल्लिउ । ण **सुरसरि-जउणा** उत्थल्लिउ ।

---

[1] तुरंत

(ख) लंका-अयोध्या

गयउ **लंक** विभीषण-मित्र-बल। सोलहवें दिवस प्रवृत्त बल।
स-विमान स-सेना गगनपथी। दर्शन निवानइ प्रियकांक्षी।
एँहु सुंदर दीसइ मकरधरु। एहु **मलय**-धराधर सुरभि-तरु।
किष्किन्ध महेन्द्रहु एहु सकला। एहिँ ठायउ कुमारें कोटि-शिला।
हौं लक्ष्मण जेहि पथहिँ गयउं। ऍहिठंव खर-दूषण त्रिशिर हतें उँ।
एहिँ शांब कुमारहु खुटें उ शिरू। एहिं नाशें उ ऋषि-उपसर्ग चिरू।
ऍहिँ सोई देश निरीक्षियऊ। जित मोमजनन जहँ अच्छियऊ[1]।
एहु देश अशेष विचार चरें ऊं। अतिवीर नराधिप जहँ धरें ऊ।
घत्ता। सो सुदरियउ जयंतपुरु, जहँ वनपाल आइ पडिया।
लखहु ऍह लक्ष्मण पादपहु, अभिनव वेइल-जस चढिया ॥१॥
रामपुरि एह गुण-गौरविया। जा पूजन यक्षहिँ कारविया।
एहु अरुण-ग्राम कपिलहु-तनऊ[2]। जहँ फेक दियें उ मैं आपनऊ।
एहु दीसइ सुदरि! विध्यगिरी। जहँ वश किउ वालखिल्य वैरी।
वैदेहि! एहु **कुव्वर**-नगरू। कल्याण-माल जहँ जनें उ नरू।
एहु **दशपुर** जहँ लक्ष्मण भ्रमें ऊ। सिंहोदर सिंह समरें दमें ऊ।
दीसइ सर्व सुवर्ण भवऊ। निर्मियें उ विभीषण जनु नवऊ।
धूवंत धवल-ध्वज-पट-प्रवरू। प्रिये! **अयोध्या**पुरि नगरू।

—रामायण

४—सामन्त-समाज

(१) भोजन-प्रकार

लघु[1] भोजन आनहिँ सुंदरऊ। जो सरस-सलोनउ जिमि सुरऊ।
सो मुनिकर दोऊ संचलियउ। जनु **सुरसरि-जमुना** उच्छलियउ।

---

[1] आछे=हैं [2] केरउ [3] तुरंत

रद्ध एक्कु लहु लेविणु आइउ । णं सुरसरि-लच्छिउ विक्खाइउ ।
वड्ढिउ भोयणु मोयण-सज्जइ । अच्छइ पच्छइ लहयइ पेज्जइ ।
सक्कर-खंडेँहि पायस-पयसेँहि । लड्डुव-लावण-गुल-इक्खु-रसेँहि ।
मंडा-सोयवत्ति घीअउरेँहि । मुग्ग-सूप णाणाविह कूरेँहि ।
सालणएहि विवण्ण-विचित्तेँहि । माइणि मायदेहि विचित्तेँहिं ।
अल्लय-पिप्पलि-मिरिआ-मलयहि । लावण-मालूरेँहि कोमलयहि ।
चिब्भिडिया[1]-कणेर-वासुत्तिहि । पेउव-पप्पडेहि सुपहुत्तेँहि ।
केलय-णालिकेर-जवीरिहि । करभर-करविंदेहि करीरिहि ।
तिम्मणेहि णाणाविह-वण्णेँहि । साउव-भज्जिय-खट्टावण्णेँहि ।
अण्णु वि खंड-सोल्ल-गुल-सोल्लिहि । वडवा-डगणेहि कारेल्लेँहि ।
विंजणेहि स-महिय-दहि-खीरिहि । सिहरणि-चूय-वत्ति-सोवीरिहि ।

घत्ता । अच्छइ एवउ मुह-रसिउ, अविअण्हउ उल्हावणउ किह ।
जहि जि लहिज्जइ तहि जि तहि, गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ॥११॥

—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि पहरंतु पसंसिउ जावेँहिं । जाणइ-णयण कडक्खिय तावेँहिं ।
सुकइ-सुकब्ब-सुसंधि सु-सधिय । सुपय-सुवयण-सुमद्द-सुवद्धिय ।
थिर-कलहंस-गमण गइ-मंथर । किस-मज्झारेँ णियंवेँ सुवित्थर ।
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । ण पिपिलि - रिछोलि विलिण्णी ।
अहिणव-हुडूपिड-पीणत्थण । णं मयगल-उर-खभणिसुभण ।
रेहइ वयण-कमलु अकलंकउ । ण माणस-सर विअसिउ पंकउ ।
सुललिय-लोयणु ललिय-पसण्णहँ । ण वरइत्त मिलिय वर-कण्णहँ ।
धोलइ पुट्ठिहि वेणि महाइणि । चंदण-लयहिँ ललइ णं णायणि ।

घत्ता । किं वहु जंपिएण तिहिँ भुयणिहिँ जं जं चंगउ ।
तं तं मेलवेवि णं, दइवेँ णिम्मिउ अंगउ ॥३॥

—रामायण ३८।३

---

[1] ककंडी

रांधु एक लघु लेके आयउ । जनु सुरसरि-लक्ष्मी विखरायउ ।
परसेँउ भोजन मोदन-सज्जइ । चर्व्वइ चोष्यइ लेह्यइ पेयइ ।
शक्कर-खंडेहिँ पायस-पयसेहिँ । लड्डू-लवण गोल-इक्षुरसेहिँ ।
मडा-सोय वर्त्ति घेवरहीँ । मूँगसूप नाना-विधि गुड़हीँ ।
सालन एहू वर्णविचित्रा । माइन माकंदहीँ विचित्रा ।
अदरक-पीपरि-मिरिचा-मलयहिँ । लावण-कइथईहि कोमलयहिँ ।
चिरभटिका[1] केनेर-वासुत्तेहिँ । पेउब पापडही सुबहुतहिँ ।
केला-नारिकेल-जंबीरा । करभर-करविंदा कारीरा ।
तेँवनही नानाविध वर्णहि । स्वादू भजिया-खट्टावनहिँ ।
अन्यउ खड-सोल गुड-सोली । वडवा-इंकनारु कारेली ।
व्यजनहीँ स-भेँस-दधि-खीरहिँ । शिखरण-अम्मावट-सौवीरहिँ ।
घत्ता । रहहेँऊ एहू मुख-रसिक, अवितृष्णा ललचाव किमि ।
जहँहि लेइये तहँहि तहँ, मीठो जिनवर-वचन जिमि ॥११॥
—रामायण ५०।११

(२) नारी-सौंदर्य

(क) सीता—

हरि प्रहरन प्रशंसेँउ जब्बें । जानकि नयन कटाक्षेँउ तब्बें ।
सुकवि-सुकाव्य सुसंधि सधिया । सुपद-सुवचन-सुशब्द, सुवधिय ।
थिर-कलहस-गमन गतिमथर । कृश मझारें नितब सुविस्तर ।
रोमावली मकरघर तीनी । जनु पिपीलिका पंक्ति-विलीनी ।
प्रभिनव हुड-पिंड पीनस्तन । जनु मदकल-उरु-खभ-निजीतन ।
राजै वदन-कमल अकलकउ । जनु मानससर विकसेँउ पंकज ।
पुललित-लोचन ललित-प्रसन्ना । जनु वरियात मिलेँउ वर-कन्या ।
डोलै पीठिहिँ वेणि महाइनि । चदन-लतहिँ ललै जनु नागिनि ।
घत्ता । का वहु जल्पनेहिँ तिहु भुवनहिँ जो जो चगा ।
सो सो मिलाईया जनु दैवें निरमेँउ अंगा ॥३॥
—रामायण ३८।३

---

[1] ककड़ी [2] सेवई [3] भात [4] मट्ठा [5] हाथी

सचल्ले **विंभ** पहाणयेण । लक्खिज्जइ जाणइ राणयेण ।
पप्फुल्लिय धवलकमल-वयणा । इंदीवर-दल-दीहर-णयणा ।
तणु मज्झें णियंबें वच्छें गरुआ । जं णयण कडक्खिय जणय-सुया ।
उम्मायण मयणहिं मोयणेहिं । वाणें हि मदीवण-मोसणेहिं ।
आइम्मिय मल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छियउ ।
कर मोडइ अगु वलइ हसइ । अमसइ समइ पुणु णीसमइ ।

घत्ता । मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु, पहु येम पजपिउ कुइयमणु ।
वलिवडएँण वसि वणवसहु, उद्दाले विआणहु यासु महु ॥

—रामायण २७।३

(ख) मंदोदरी—

घत्ता । सहसत्ति दिट्ठु मदोयरिए, दिट्ठिएँ चल-भउहालइ ।
दूरहों जें समाहउ वच्छयले, ण णीलुप्पल-मालइ ॥२॥

दीसइ तेण वि सहसत्ति वाल । ण भसले अहिणव-कुसुममाल ।
दीसत चलण-णेउर रसंत । णं महुर-राव वंदिण पढत ।
दीसइ णियंव-मेहल-समग्ग । णं कामएव-अत्थाण-मग्ग ।
दीसइ रोमावलि छुडु चडंति । णं कसण-वाल-सप्पिणि ललंति ।
दीसंति सिहिणि[1] उवसोह दंत । णं उरयलु भिदिवि हत्थि-दंत ।
दीसइ पप्फुल्लिय वयण-कमलु । णीसासामोवामत्त-भसलु ।
दीसइ मुणा (सु) अणुहुव[2] सगंधु । ण णयण-जलहों किउ सेयउवधु ।
दीसइ णिट्ठलु[3]-मिरु चिहुर-छण्णु । ससि-विवु व णव-जलहर-णिमण्णु ।

घत्ता । परिभमइ दिट्ठि तहों तहिं जि तहिं, अण्णहि कहिं मि ण थक्कइ ।
रस-लपडु महुयर-पति जिम, केयइँ भुइवि ण सक्कइ ॥३॥

—रामायण १०।२-३

---

[1] सिहिण—पूनावाली प्रति का पाठभेद　[2] य—पूना　[3] निडालु—पूना

मचल्लेॅउ विध्या पथनयेहिँ । लक्खिज्जै जानकि रामएहिँ ।
प्रफ्फुल्लित-धवल-कमल-वदनी । इंदीवर-दल-दीरघ-नयनी ।
माँझे क्षीण नितब-वक्ष गरुआ । जो नयन कटाक्षिय जनकसुता ।
उन्मादन मदनहि मोदनेहिँ । वाणेॅहिँ सँदीपन-शोषणेहिँ ।
आक्रमिया सालिय मूर्छियऊ । पुनि "दु:ख दु:ख" उन्मूछियऊ ।
कर मोड़ै अग कँपै हसई । आश्वसै श्वसै पुनि नि:श्वसई ।

घत्ता । मकरध्वज-शर-जर्जरित-तनु, प्रभु ईमि प्रजल्पेॅउ कुपित-मना ।
वलवंतएँ मवसं वन वसहू, उद्दारे जानहु यासु(?) ममा ॥३॥
—रामायण २६।३

(ख) मंदोदरी

घत्ता । सहसा दृष्ट मदोदरिए, दृष्टिहि चल-भौॅहा-लई ।
दूरहुं हि धारेॅउ वक्षतले, जनु नीलोत्पल-मालई ॥२॥

दीसइ तेहिहिँ सहसा हि वाल । जनु भ्रमरे अभिनव-कुसुममाल ।
दीसत चरण-नूपुर रसत । जनु मधुर-राव वदिन पठत ।
दीसइ नितब-मेखल-समग्र । जनु कामदेव-दर्बार-मार्ग ।
दीसइ रोमावलि छुड[1] चढति । जनु कृष्ण-वाल-सर्पिणि ललंति ।
दीसंत स्तनहूं शोभ देत । जनु उर-तल भिदेॅउ हस्तिदंत ।
दीसइ प्रफ्फुल्लित वदन-कमल । निश्वासामोदासक्त-भ्रमर ।
दीसइ सुनास अनुभुत-सुगध । जनु नयन-जलधि कियेॅउ सेतुबंध ।
दीसइ निस्तर शिर चिकुर-छन्न । शशि-बिवि'व नव-जलधर-निमग्न ।

घत्ता । परिभ्रमै दृष्टि तहि तहँहि तहीं, अन्यहि कहहिँ न थक्कई ।[2]
रस-लपट मधुकर-पंक्ति जिमि, केतकि भूमि न सक्कई ॥३॥
—रामायण १०।२-३

---

[1] तुरंत [2] ठहरती, बंगला—थाक

तहि अवसरें आइय मंदोयरि । सीहहों पासि 'व सीह-किसोयरि ।
वर-गणियारि 'व लीला-गामिणि । पिय माहवियें वि महुरालावणि ।
सारगि 'व विप्फारिय-णयणी । सत्तावी सजोयण-वयणी ।
कलहसि 'व थिर-मंथर-गमणी । लच्छि 'व तिय तू वेजू रवणी ।
अहयो भाणि हि अणुहर-भाणी । जिह सा तिह एहवि पउ[१] राणी ।
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पयसुदर ।
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणें । जिह सा तिह एह वि ण कुसासणें ।
घत्ता । किं वहु जपिएण उवमिज्जइ काहें किसोयरि ।
णिय-पडिछंदउ णा थिय, सइँ जेंणाइँ मदोयरि ॥८॥

—रामायण ४१।८

(ग) रावण-रनिवास—

। सचल्लिय मदोयरि राणी ।
ताइ समाणु स-डोरु स-णेउरु । सचल्लिउ मयलु 'वि अतेउरु ।
जं पप्फुल्लिय पकय-णयणउ । जं कुवलय-दल-दीहर-णयणउ ।
ज सुरवर-करि-मथर-गमणउ । ज पर-णरवर-मण-जूरणवउ ।
जं मुदरु सोहग्गु 'ग्घवियउ । जं पीणत्थण-भारें णमियउ ।
ज मणहरु तणु-मज्झु सरीरउ । जं उरयट्ठणिय गंभीरउ ।
जं णेउर-रव घणु भकारउ । ज रथोलिय मोत्तिय-हारउ ।
ज कंची-कलाव-पब्भारउ । ज विब्भम-भूभगु-वियारउ ।
घत्ता । तं तेहउ रावणकेरउ, अतेउरु सचल्लियउ ।
णं सभमरु माणस-सरहें रें, कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहिं पइसंतें हि दिट्ठ स-णेउरु । रावण-केरउ इट्ठ 'तेउरु ।
चिहुरेहि सिहंडि-उलंवु भाइ । कुरुलेहिं इदिंदिर-विंदु णाइ ।

---

[१] पट्ट, प्रधान

तेहि अवसर आइय मदोदरि । सिंह-पासें जनु सिह-कृशोदरि ।
वर-गयदि जिमि लीलागामिनि । प्रिय-माधवियहिँ मधुरालापिनि ।
सारंगी इव फारिय-नयनी । सत्ताईस-संयोजक-वदनी ।
कलहसि व थिर-मंथर-गमनी । लक्ष्मी इव या रूपारमणी ।
अभया भाणी अनुहर-भाणी । जेहिँ सा तेहिहि सो पटरानी ।
जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि सुमनोहर । जेहिँ सा तेहिँ ऐसहि पदसुदर ।
जेहि सा तेहि ऐसहि जित-शासन । जेहिँ सा तेहि ऐसहि न कुशासन ।
घत्ता । का वहु जल्पनेहिँ उपमिज्जै, कैस कृशोदरी ।
निज प्रतिबिवउ ना ठिय, स्वयं न्याइँ मदोदरी ॥८॥

—रामायण ४१।४

(ग) रावण-रनिवास—

. . . . . । सचल्लिय मंदोदरि रानी ।
ताहि स-मान स-डोर स-नूपुर । सचल्लें उ सकलहु अन्तःपुर ।
जो प्रफ्फुल्लिय पकज-नयनउ । जो कुवलयदल-दीग्घ-नयनउ ।
जो सुर-वर-करि-मथर-गमनउ । जो पर-नरवर-मन-झूरनउ ।
जो सुदर-सौभाग्य-अर्च्यवयउ । जो पीनस्तन-भारे नमिअउ ।
जो मन-हर तनु-मध्य शरीरउ । जो उरोज स्तनियउ गभीरउ ।
जो नूपुर-रव-घन-झकारउ । जो सडोलिय मुक्ता-हारउ ।
जो काची-कलाप प्राग्-भारउ । जो विभ्रम-भ्रूभग-विकारउ ।
घत्ता । सो तें हु रावणकेरउ, अतःपुर सचल्लियउ ।
जनु सभ्रमर मानससरहिँ, कमलिनि-वन प्रफ्फुल्लियउ ।

—रामायण ४०।११

तहँ पइसंतहि देखु स-नूपुर । रावण-केरउ इष्ट्-अंतःपुर ।
चिकुरेहिँ शिखडि-कुल मनहुँ भाय । कुटिलेहिँ[1] इदीवर-वृन्द न्याइँ ।

---

[1] कुटिलन-प्रकाशै

भउहेहिँ अणंग-धणु-लइ वनं'व । णयणिहि णीलुप्पल-काणणं 'व ।
मुह-विंबेँहि मय-लंछण-बलं 'व । कल-वाणिहि कल-कोइल-कुलं 'व ।
कोमल-बाहेँहिँ लयाहरं 'व । पाणिहि रत्तुप्पल-सरवर 'व ।
णक्खेँहि केअइ-सूई-थलं 'व । सिहिणेँहि सुवण्ण-घड-मडल 'व ।
सोहग्गेँ वम्महसाहण 'व । रोमावलि णाइणि-परियणं 'व ।
तिवलिहि अणगपुरि—खाइयं 'व । गुज्झेहि मयण-मज्जण-हर 'व ।
उरुएहि तरुण-केली-वण 'व । चलणग्गेहि पल्लव-काणण 'व ।
घत्ता । हंस-उलु 'व गइएहि, कुजर-जूहु 'व वर-लीलहि ।
चाव-वलु 'व गुणेहि, छण-ससिविंबु 'व सयल-कलहि ॥५॥
—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

किं चलण-तलग्गइ कोमलाइ । ण ण अहिणव-रत्तुप्पलाइ ।
किं ऊरु परोप्परु भिण्ण-तेय । णं ण वर-रभा-खंभ येय ।
किं कणय-दोरु धोलइ विसालु । ण ण अहिरयण-णिहाण-पालु ।
किं तिवलिउ जठर पद धाविआउ । ण णं कामउरिहि खाइँआउ ।
किं रोमावलि घण-कसण एह । ण ण मयणाणल-धूम-लेह ।
किं णव-थण, ण ण कणय-कलस । किं कर ण ण पारोह-सरिस ।
किं आयंविर-करयल चलति । ण ण असोय-पल्लव लुलति ।
किं आणणु, ण ण चद-विंब । किं अहरउ णं ण पक्क-बिंबु ।
किं दसणावलिउ स-मुत्तियाउ । ण ण मल्लिय कलियउइ भाउ ।
किं गंड-वास ण दंति-दाण । किं लोयण, णं ण कामवाण ।
किं भउह इमाउ परिट्ठियाउ । ण ण वम्महधणु-लट्ठियाउ ।
किं कण्णा कुडल-हरण एय । ण ण रवि-ससि-विप्फुरिय-तेय ।
किं भालउ, णं णं ससहरद्धु । किं सिरु, ण णं अलि-उल-णिवद्धु ।
—रामायण ६९।२१

भौंहेँहिँ अनंग-धनु लता-वन इव । नयनहिँ नीलोत्पल-कानन इव ।
मुख-विवेहिँ मृगलाछन-वल इव । कल-वाणिहिँ कल-कोकिल-कुल इव ।
कोमल-वाहेहिँ (काम-) लताघर इव । पाणिहिँ रक्तोत्पल-सरवर इव ।
नखहीँ केतकी-सूचि-थल इव । स्तनहीँ सुवर्णघट-मंडल-इव ।
सौभाग्ये मन्मथ-सेना इव । रोमावलि नागिनि-परिजन इव ।
त्रिवलीहिँ अनगपुरी-खाईँ इव । गुह्येहिँ मदन-मज्जन-गृह इव ।
उरुएहिँ तरुण-कदलीवन इव । चरणाग्रेँहिँ पल्लव-कानन इव ।

घत्ता । हसकुल इव गतिएहिँ, कुजर-जूथ इव वर-लीलहिँ ।
चाप-वल इव गुणेहिँ, क्षण-शशिविव इव सकल-कलेहिँ ॥५॥

—रामायण ७२।५

(घ) अयोध्याका रनिवास—

की चरण-तलाग्रा कोमला । जनु जनु अभिनव-रक्तोत्पला ।
की ऊरु परस्पर-भिन्न-तेज । जनु जनु वर-रंभा-खंभ एह ।
की कनकडोरि डोलइ विशाल । जनु जनु अहि रतन-निधान-पाल ।
की त्रिवली जठरु'परि धाइया । जनु जनु कामपुरिहि खाईँया ।
की रोमावलि घन-कृष्ण एह । जनु जनु मदनानल-धूम-लेख ।
की नव-थन, जनु जनु कनक-कलश । की कर, जनु जनु प्रारोह-सरिस ।
की आलवित-करतल चलति । जनु जनु अशोक-पल्लव ललति ।
की आनन, जनु जनु चद्रबिब । की अधरउ, जनु जनु पक्व-बिब ।
की दशनावलिउ स-मौक्तिकाउ । जनु जनु मल्लिक-कलियही भाउ ।
की गंडपास जनु दन्ति-दान । की लोचन, जनु जनु काम-वाण ।
की भौहा एह परिस्थिताउ । जनु जनु मन्मथ-धनु-यष्टियाउ ।
की कर्ण कुडलाभरण एह । जनु जनु रवि-शशि विस्फुरित-तेज ।
की भालउ, जनु जनु शशधरार्ध । की शिर, जनु जनु अलि-कुल-निबद्ध ।

—रामायण ६६।२१

(ङ) **भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—**

घत्ता । तहों वणहों मज्झे हणुवंतेण, सीय णिहालिय दुम्मणिया ।
ण गयण-मग्गेउ मेल्लिय, चदलेह-वीयहें णिया ॥७॥

महिय सहासहि परिअरिय, ण वणदेवय अवयरिय ।
तिण-मेत्तुवि णवलक्खणु जाहें, णिब्बण्णिज्जइ काइँ तहें ॥
वर-पय-तलेहिँ पउणारएहिँ । **सिंघल**णहेहिँ दिहि गारएहि ।
उच्चगुलिएँहि **वेंडल्लि**एहि । बडुल्लिएँ गुप्फेहि **गोलए**[1]हि ।
वर-पोट्टरिएहि **मायंदि**येहि । **सिरिपव्वय**-णणिएँहि मडियेहि ।
ऊरुअ-जुयले **णिप्पालएण** । कडिमडलेण **करहाडएण** ।
वरसोणिय **कंची**-केरियाएँ । तणु-णाहिएण गभीरियाएँ ।
मुलालिय-पुट्ठिएँ **सीवारिया**एँ । पिडत्थणिआएँ **एलउलिया**एँ ।
वच्छयले **मज्झिमए**सएण । भुअ-सिहरें **पच्छिमए**सएण ।
वारमडीकेरेंहि बाहुलेहि । **सिंधव** मणिबधहि बट्टुलेहि ।
माणग्गीवेंहि **कच्छा**णुणेहिं । उट्ठउडेहि **कोकणिय**हि-तणेहि ।
दसणावलियए **कण्णाडिय**ए । जीहएँ को **रोहणवा**डियए ।
णासउडें तुग **विसयत**णेहिं । गभीरएहि वर-लोयणेहिं ।
भउहाजुएण **उज्जेण**एण । भालेण विचित्त **उडाण**एण ।
कासियहि कवोलेहि पुज्जयेहि । कण्णेहि मि **कण्णाउज्ज**येहि ।
काविलेहिं केस-विसेसाएण । विणएण वि**दाहिण**-एसएण ।

घत्ता । अह कि बहुणा वित्थरेण, अण्णावि इणणें सुदरि-मइण ।
एक्केकीवत्थु लग्गिप्पिणु, णावइ घडिय पयावइण ॥८॥
—रामायण ४९।८

दिव्वेहि णाणा-पयारेहि पुप्फेहि । रत्तुप्पल-दीवरभोय-पुप्फेहि ।
अइउत्तया-सोय-पुण्णाय-णाएहि । सयवत्तिय।-मालई-पारिजाएहि ।

---

[1] गोलक देश

(ङ) भिन्न-भिन्न देशोंकी नारियाँ—

घत्ता । तहँ वनहि मध्ये हनुमतउ, सीय निहारेंउ दुर्मनिया ।
जनु गगन-मार्गे उन्मीलित, चद्रलेख दुतियह-तनिया ॥७॥
सखिय सहस्रेहि परिवारिय, जनु वनदेवी अवतरिया ।
तृण-मात्रहु नव-लक्षण जाहि, निर्वर्णिये काइँ ताहि ॥
वर-पद-तलेहिँ पद्मार-एहिँ । **सिंहलिनिएँहिँ** दिशि-गौरवेहिँ ।
उच्चागुलीहि वैपुल्यएहिँ । वाढल्लिए गुल्फेँहिँ गोलएहिँ
वर-पेट्ट-एहिँ माकदिएहिँ । **श्रीपर्वत**-केरिहिँ मडितेहिँ ।
ऊरुअ-जुगलें **नेपाल**येहि । कटिमडलेइ **करहाटिके**हि ।
वरश्रोणिय **कांची**-केरियाँ । सूक्ष्म-नाभिकेहि गभीरियाँ ।
सुललित-पृष्ठिय **शिवारि**येहि । पिड-स्तनियइ **एलकुलियइ** ।
वक्ष-तले **मध्यम-देशिया** । भुज-शिखरे **पच्छिम-देशिया** ।
द्वारवती-केरइ वाहुयहिँ । **सिंधविय** वर्त्तुल-मणिबंधहिँ ।
मान-ग्रीवहिँ **कच्छाणनिया** । ओठउडें[1] **कोंकणि**-तनिया ।
दशनावलिहिँ **कन्नाडिया** । जीभहिँ **रोहण-वाडिया** ।
नासउडें **तुग-विषय**-तनिया । गभीरिया वरलोचनिया ।
भौहा-युगेइ **उज्जेनिया** । भालेहँ विचित्र **ओड्डियानिया** ।
काशिया कपोलेहिँ पुजकेहिँ । कर्णेहिँ हि **कनउज्ज**केहिँ ।
केश-विशेषकेहिँ **काबिलिया** । विनयेहि हि **दक्षिण**-देशिया ।
घत्ता । अरु का वहु-विस्तारेहिँ, अन्यान्येहिँ सुदरिमयी ।
एक-एक वस्तु लेइके, जनु गढेंउ प्रजापति ।

—रामायण ४९।८

दिव्येहिँ नाना-प्रकारेहिँ पुष्पेहिँ । रक्तोत्पले-दीवर-भोज-पुष्पेहिँ ।
अतिमुक्तका-शोक-पुन्नाग-नागेहिँ । चतपत्रिका-मालति-पारिजातेहिँ ।

---

[1] उड—कोमलालाप में

कणिया (र)-कणवीर-मंदार-कुदेहि । विअइल्ल-वर-तिलय-वउलेहि मदेहि ।
सिंधूर-वंधूक-कोरट-कुज्जेहि । दमणेण मरुएण पिक्का-तिसंज्झेहि ।
एव च मालाहि अण्णण्ण-रूवाहि । **कण्णाडिया**हि'व्व सरसार-भूयाहि ।
आहीरियाहि'व्व वायाल-भसलाहि । **वलाडिया**हि'व्व मुह-वण्ण-कुसलाहि ।
सोरट्ठियाहि'व्व सव्वग-मउआहि । **मालविणि**आहि 'व्व मज्झारच्छउआहि ।
मरहट्ठियाहि'व्व उद्दाम-वायाहि । गीयज्झुणीहि'व्व अण्णण्ण-छायाहि ।
—रामायण ७१।९

(३) जल-क्रीडा

घत्ता । तहि सर-णह-यले स-स-कलत्त वेवि हरि-हलहरा ।
रोहिणि[1]-रण्णहि ण परमिय चद-दिवायरा ॥१४॥

तहि तेहएँ सरें सलिले तरतइँ । सचरति चामीयर-जतइँ ।
णाइ विमाणइ सग्गहों पडियइँ । वण्ण-विचित्त-रयण-वेयडियइँ ।
णत्थि रयणु जहि जतु ण घडियउ । णत्थि जतु जहि मिहुणु ण चडिअउ ।
णत्थि मिहुणु जहि णेहु ण वड्ढिय । णत्थि णेहु जहि सुरउ ण बड्ढिउ ।
तहि नर-नारि-जुवइ जल कीडइ । कीडताइ एहंति सुरलीलइ ।
सलिलु करग्गह आप्फालनइँ । मुरय-वज्ज-धायव दरिसतहँ ।
खलियहि वलियहि अहिणव-गेयहि । वद्धइ सुरयक्खित्तिय तेयहिं ।
छदेहिं तालिहिं वहुलय-भगेहि । करुणुच्छेत्तिहि णाणा भगेहिं ।
घत्ता । चोक्खु स-रागउ, सिगार-हार-दरिसावणु ।
पुप्फ-रज्जु-ज्झुवत, जलकीडणउ सलक्खणु ॥१५॥

जलें जय-जय सद्दें णहाय णर । पुणु णिग्गय-हल सारंग-धर ।
—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला-सुदरि सीयहिं । वज्जयण्ण-सीहोयर-धीएँहिं ।
घत्ता । वुच्चइ भरह णराहिवइ, सर-मज्झे तरत-तरंताइँ ।
देवर थोडि वारवरिअच्छहु, जल-कील-करंताइँ ॥१०॥

---

[1] नक्षत्र

कर्णकार-कर्णवीर-मदार-कुदेहिँ । बेईल-वरतिलक-वकुलेहिँ मंदेहिँ ।
सिंधूर-वंधूक-कोरंट-कच्चेहिँ । दवनेहिँ मरुएहिँ पिक्का-तिसध्येहिँ ।
ऐसेहि मालाहिँ अन्यान्य-रूपाहिँ । **कन्नाडियहिँ** इव सरसार-भूताहिँ ।
आहीरियाहिँ[1]व वाचाल-भसलाहिँ । **वाराडियाहिँ**[1]व मुखवर्ण-कुशलाहिँ ।
सौराष्ट्रियाहिँ[1]व सर्वांग-मृदुकाहि । **मालविणियाहिँ**[1]व कटिमध्यँ सूक्ष्माहि ।
मरहट्ठियाहिँ[1]व उद्दाम-वाचाहिँ । गीत-ध्वनिहिँ इव अन्यान्य-छायाहिँ ।
—रामायण ७१।९

(३) जलक्रीडा

घत्ता । तहँ सर-नभ-तले स्वस्व-कलत्रेहिँ हरि-हलधरा[2] ।
रोहिणि रानिहिँ जनु प्र-रमेँउ चद्र-दिवाकरा ॥१४॥

तहँ तेहि हि सर सलिल तरता । सचरहीँ चामीकर-यत्ता ।
नारि-विमाना स्वर्गहँ पड़िया । वर्ण-विचित्र-रत्न-वीजडिया ।
नाहि रतन जहिँ जंतु न गढ़ियउ । नाहि जंतु जहिँ मिथुन[3] न चढियउ ।
नाहि मिथुन जँह नेह न बढियउ । नाहि नेह जँह सुरत न बढियउ ।
तहँ नर-नारि-युवनि जलक्रीडेँ । क्रीडती नहाइँ सुरलीलेँ ।
सलिल कराग्रहिँ उच्छालन्तेँ । मुरज-वाद्य थापा दरसन्तेँ ।
स्खलितहिँ वलितहिँ अभिनव-गीतेहिँ । बद्धेँ सुरत-समन्वित तेजहिँ ।
छन्देहिँ तालहिँ वहुलय-भगहिँ । करुण-लक्षेपी नाना-भंगहिँ ।
घत्ता । चक्षु सरागउ शृगार-हार-दरसावन ।
पुष्पपरज्जु युध्यत, जलक्रीडनउ सलखावन ॥१५॥

जले जय-जय-शब्देहिँ नहाएँ नर । पुनि निकसे हल-सारगधर ।
—रामायण २६।१४-१६

सल्लविसल्ला सुदरि सीतहिँ । वज्रकर्ण-सिंहोदर-धीतहिँ ।
घत्ता । बोलै भरत नराधिप, सर-मध्येँ तरंत-तरताई ।
देवर थोडिवार रहउ, जलक्रीड करंताई ॥१०॥

---

[1] भ्रमर [2] हरि=लक्ष्मण, हलधर=राम [3] जोड़ा

त पडिवण्णु पइट्ठु महासरु । जल-कीडहें 'वि अचलु परमेसरु[1] ।
लग्गउ सुदरीउ चउ-पासेहि । गाढालिंगण-चुवण-हासेंहि ।
हेला-हाव-भाव-विण्णासेहिँ । किलिंकिंचिय विच्छित्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टाविय कुट्टमिय वियारेहि । विब्भम वरविव्वोक-पयारेहिँ ।
तो वि ण खुहिउ भरहु सहसुट्ठिउ । अविचलु ण गिरि-मेरु परिट्ठिउ ।
अच्छइ जाव तीरें सुह-दंसणु । ताव महागउ-तिजग-विहीसणु ।
णिय आलाण-खभु उप्पाडेवि । मदिर सयइ अणेयइ पाडेवि ।
परिभमंतु गउ त जें महासरु । जलकीलइ जहि भरहु णरेसरु ।
—रामायण ७९।११

(४) प्रेम (काम)-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीयहें देह-रिद्धि पावंतिहें । येक्कु दिवसु दप्पणु जोयतिहें ।
पडिमाछलेंण महाभयगारउ । आरिस वेस णिहालिय णारउ ।
तणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी । सीहागमणें कुरंगि'व दिट्ठी ।
"हा हा माएँ" भणतिहिँ सहियहिँ । कलयलु कियउ भग्ग गह-गहियहिँ ।
पमरिस कुज्झइय किकर । उक्खय'व क्खरवाल भयंकर ।
मिलिबि तेहि-कहँ कहमि ण मारिउ । लेवि अद्धचदें हिँ णीसारिउ ।
रत्ता । गउ सव राहउ देवरिसि, पडे पडिम लिहेवि सीयहें तणिया ।
दरिसाविय भामडलहों वि, सजुत्ति णाइ-णर धारणिया ॥८॥
देट्ठ जं जें पडपडिम कुमारें । पंचहि सरहि विद्धुणं मारें ।
सुसिय वयणु घुम्मइय णिडालउ । वलिय अगु मोडिय भुयडालउ ।
ाढ केसु परकोडिय वच्छउ । दरिसाविय दस कामावत्थउ ।
चिंत पढम थाणतरें लग्गइ । बीयाएँ पिय-मुह-दसणु मग्गइ ।

---

[1] राजा

सो प्रतिपन्न पइसु महासर । जलक्रीडहिँहि अचल परमेश्वर ।
लागीं सुदरी उ चौपासेहिँ । गाढालिगन-चुवन-हासेहिँ ।
हेला-हाव-भाव-विन्यासेहिँ । किलकिंचित-विक्षिप्ति-विलासेहिँ ।
मोट्टायन-कुट्टमन-विकारेहिँ । विभ्रम-वरविव्वोक-प्रकारेहिँ ।
तोउ न क्षुभेंउ भरत भट उट्ठेउ । अविचल जनु गिरि मेरु परिट्-ठिउ ।
जौ लों रहै तीर शुभ-दर्शन । तौ लों महगज-त्रिजग-विभीषण ।
निज वधान-खभ उप्पाडिय । मदिर-शतहिँ अनेकहिँ पातिय ।
परिभ्रमत गउ तेंहिहिँ महासर । जलक्रीडें जहँ भरत-नरेश्वर ।
—रामायण ७९।११

(४) प्रेम-अवस्था

(सीता और रामकी)

सीता देह ऋद्धि पावनिह । एक दिवस दर्पण जोयंतिह ।
प्रतिमा छलेंइ महाभयकारू । ऐसो वेस निहारेंउ न्यारू ।
जनकतनयाँ सहसाही भागी । सिहागमनें कुरँगि'व लागी ।
"हा हा माइ" भनंतिहिँ सखियहिँ । कलकल कियेंउ, भागु गहिगहियहिँ ।
आमरखी क्रोधेऊ ! किंकर । उत्क्षिप इव करवाल भयकर ।
मिलब तेहि कहँ कहउँ न मारिउ । लेबि अर्धचंद्रेंहि निस्सारिउ ।
घत्ता । गउ सव राघव-देव-ऋषि, पटें प्रतिम लिखब सीता-तनिया[1] ।
दरसायेंउ भामंडलहुँ, युक्ति नारि-नर धारणिया ॥८॥
देखु जोहि प्रति-प्रतिम कुमारा । पचहिँ शरहि वेधु जन मारा ।
सुखेंउ वदन घूमिया ललाटउ । कँपेउ अँग मोडेंउ भुजडालउ ।
बँधेंउ केश मरोड़िय वक्षा । दरसायेंउ दश कामावस्था ।
चित्त प्रथम स्थानंतरें लागै । दुसरे प्रियमुख-दर्शन माँगै ।

---

[1] सीताकेर

तइयएँ ससइ दीह-णीसासें । कणइ चउत्थइ कर-विण्णासें ।
पचम डाहें अँगु ण वुच्चइ । छट्ठइ मुहहों ण काइ विरुव्वइ ।
सत्तमि थाणे ण गासु लइज्जइ । अट्ठमे गमणू माएहिँ भिज्जइ ।
णवमएँ पाण-सँदेहहों ढुक्कइ । दसमएँ मरइ ण केम'वि चुक्कइ ।

घत्ता । कहिउ णरिंदहों किंकरिहिँ, पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ ।
हा तेहिँ वि कण्णह कारणेण, सो दसमी कामावत्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लक्खिउ लक्खणु लक्खण-भरियउ । णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ ।
भू उणियवि सुर-भवणाणदहों । मणु उल्लोलें हिँ जाइ णरेंदहों ।
मयण-सरसणें धरें वि ण सक्किउ । वम्महों दस ठाणेहि पढुक्कउ ।
पहिलइ कहुवि समाणु ण बोल्लइ । वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ ।
तइयए सयलु अगु परितप्पइ । चउथइ ण करवत्तें हि कप्पइ ।
पंचमें पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ वार-वार मुच्छिज्जइ ।
सत्तमे जलुवि जलइ ण भावइ । अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ ।
णवमएँ पाण पडत ण वेअइँ । दसमएँ सिरु छिज्जतु ण चेयइ ।

घत्ता । एम वियंभिउ कुसुमाउहु, दसहें मि थाणेहिँ ।
तं अच्छरिउ ज मुक्कु, कुमारु ण पाणेहिँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-विऊएँ दुम्मणिया, असु-जलोल्लिय-लोयणिया ।
मोक्कल केस कवोलु भुआ, दिट्ठ विसठुल जणय-सुया ॥
जाणइ-वयण-कमलु अलहंतिउ । मुहु ण देति फुल्लधुय पतिउ ।
हणइँ तो वि ण करंति णिवारिउँ । करयलेहि लग्गंति णिरारिउँ ।
एंव सिलीमुह सा निज्जती । अण्णु विऊय-सोय-सतत्ती ।
वणें अच्छंति दिट्ठ परमेसरि । सेस सरिहि मज्झेण सुरसरि ।

तिसरे श्वसै दीर्घ-निःश्वासै । कँदै चतुर्थे करविन्यासैं ।
पंचम दाहै अंग, न बोलइ । छठ्ये मुखहिँ न काहुहि देखइ ।
सतयें थान न ग्रास लईजै । अठये गमनोन्मादे भिज्जै ।
नवये प्राणसँदेहहु ढूकै । दसये मरव न कथमपि चूकै ।
घत्ता । कहेँउ नरेन्द्रहिँ किंकरिन्हि, प्रभु ! दुष्कर जीवै पुत्र तव ।
हा नाहिहिँ कन्यहिँ कारणे, सो दसई कामावस्थ गउ ॥९॥

—रामायण २१।८-९

लखेँऊ लक्ष्मण लक्षण-भरिया । जनु प्रत्यक्ष मदन अवतरिया ।
भू · आनेउ सुरभवनानदहु । मन उल्लोलेहिँ जाइ नरेंद्रहु ।
मदन शरासनेँ धरब न शक्येउ । मन्मथ दश थानेहिँ प्रढूकेँउ ।
पहिले काहुहि सँग ना बोलै । दूजेँहिँ बड निःश्वास प्रमेलै ।
तीजे सकल अंग परितप्पै । चौथे जनु तरवारहिँ कँपै ।
पचयेँ पुनि पुनि प्रासादिज्जै । छठ्येँ वार-वार मूछिज्जै ।
सतयेँ जलहु जलार्द न भावै । अठयेँ मरण-लीलाँ दरसावै ।
नवयेँ प्राण पतत न वेदै । दसयेँ शिर छेदत न चेतै ।
घत्ता । इमि विजृभेँउ कुसुमायुध, दसहुहिँ थानहँ ।
सो अचरज जो छूट, न प्राण कुमारकहँ ॥८॥

—रामायण २६।८

(५) विरह (सीता)

राम-वियोगे दुर्मनिया, अश्रु जलोल्लित-लोचनिया ।
मुक्तहु केश कपोलेँ भुजा, देखु विसंस्थुल जनकसुता ॥
जानकि-वदन-कमल अलभतिउ । मुख न देति फुल्ल'न्धुक-पक्तिउ ।
हनैँ तो उ न करति निवारेँउ । करतलेँहीँ लागंति निरालेँउ ।
ऐस शिलीमुख सासनयंता । अन्येँ वियोग-शोक-संतप्ता ।
वनेँ वसति दीखु परमेश्वरि । शेष सरिहिँ मध्ये (जनु) सुरसरि ।

रिसिउ अजणेउ इत्थतरे । धण्णउ एक्कु रामु भुवणतरे ।
जो तिय एह आसि माणतउ । रावणु सइ जि मरइ अलहतउ ।
रलकार जों होती सोहइ । जइ मडिय तो तिहुयणु मोहइ ।
सीयहों तणउ रूउ वण्णिप्पिणु । अप्पहु णहें पच्छण्णु करेप्पिणु ।
घत्ता । जो पेसिउ राहवचदेण, सो घत्तिउ अगुत्थलउ ।
उच्छंगि पडिउ वइदेहिहे, णावइ हरिसहों पोट्टलउ ॥६॥. . .
क्खिय सीया एवि किह । वियसिय सरिया होइ जिह ।
णं मय-लंछण समि-जोण्हा इव । तित्ति-विरहिय गिम्ह-तण्हा इव ।
व्वियार-जिणवर-पडिमा इव । रइविहि विण्णाणिय-घडिया इव ।
अभय-करच्छज्जीव-दया इव । अहिणव-कोमल-वण्ण-लया इव ।
पउहर पाउस-सोहा इव । अविचल सव्वसह वसुहा इव ।
कंति-समुज्जल-तडिमाला इव । सुट्ठ सलोण उयहि-वेला इव ।
म्मल-कित्ति व रामहों केरी । तिहुयणुमिवि परिट्ठिय मेरी ।
—रामायण ४९।९, १२

(६) मिलन (सीता-राम)

ाहों अहों परमेसर दासरहि । पच्छण्णें लकाउरि पइसरहि ।
मिलि ताव भडारा[1] जाणइहे । तरु दुत्तरु विरह-महाणइहे ।
इ ति-जग-विहूसण-कुभ-थले । मय-परिमल-मेलाविय भसले" ।
घत्ता । त णिसुणेवि हलहरु-चक्कहरु, सीयहें पासें समुच्चलिया ।
अहिसेय-समएँ सिरिदेवयहो, दिग्गय विण्णि णाइ मिलिया ॥६॥
देहि दिट्ठ हरि-हलहरेहि । ण चद-लेह विहि-जलहरेहि ।
णं मरय-लच्छि पकय-सरेहिं । ण पुण्णाएँ विहि पक्खंतरेहिं ।
सुरसरि हिम-गिरि-सागरेहिं । ण णह-सिरि चद-दिवायरेहिं ।
परिपुण्ण-मणोरह जाणईहि । तर इव लायण्ण-महाणईहि ।

---

[1] राजा, स्वामी

षेँउ आंजनेय एँहि अवसरेँ। धन्यउ एक राम भुवन'तरेँ।

जो नियं एहु अहै मानंतिउ। रावण मरै मतिहिँ अलभंतउ।
रलकार होति जो मोहै। यदि मडित तो त्रिभुवन मोहै।

सीयहिँ केर रूप वर्णेबिउ। आपुहँ नभेँ प्रच्छन्न करेबिउ।

घत्ता। जो प्रेषेँउ राघवचद्रेण, सो डारेँउ अगुट्ठि लिऊ।
उत्सगेँ पडिउ वैदेहिकहँ, मानो हर्षहँ पोट्टलिऊ ॥६॥

खेउ सीत ऐसु किमि। विकसिउ सरिता होइ जिमि।

जनु मृणलाच्छन शशि ज्योत्स्ना इव। तृप्ति-विरहित ग्रीष्म-तृष्णा इव।
विकार जिनवर-प्रतिमा इव। रतिपतिहिँ जनु निज गढिया इव।

अभयकर अच्छ जीवदया इव। अभिनव-कोमल-वर्णलता इव।
यधर पावस-शोभा इव। अविचल सर्वंसह वसुधा इव।

काति-समुज्ज्वल तडिमाला इव। सुट्ठि सलोन उदधि-वेला इव।
मल कीर्त्ति इव रामहिँ केरी। त्रिभुवनहूँहि परिस्थिय सेरी।

—रामायण ४६।६.१२

(६) मिलन (सीता-राम)

"अहोँ अहोँ परमेश्वर ! दाशरथी। पाछे लंकापुरी पइसैही।
लु तब भट्टारक[1] जानकिहीँ। तरु दुस्तर विरह-महानदिहीँ।

चढु त्रिजग-विभूषण कुभतले। मद-परिमल मेलायेँउ भसले[2]"।
ग। सो सुनियहि हलधर-चक्रधरु, सीतहिँ पास समुच्-चलिया।

अभिषेक समय श्रीदेवियहूँ, दोँउ दिग्गज न्याईँ आमिलिया ॥
हि दीख हरि-हलधरेहिँ। जनु चंद्रलेख विधु-जलधरेहिँ।

जनु शरद-लक्ष्मि पंकज-सरेहिँ। जनु पूर्णो विधु पक्षातरेहिँ।
ु सुरसरि हिमगिरि सागरेहिँ। जनु नभश्री चद्र-दिवाकरेहिँ।

परिपूर्ण-मनोरथ जानकीहिँ। तरेँ इव लावण्य-महानदीहिँ।

---

[1] राजा [2] भ्रमर

णिय-णयण-सरासणि संध इव । पिउ पगुण-गुणेहिँ णिबंध इव ।
जस-कद्दमें णं जगु लिप इव । हस्सिंसु पवाहें सिप्प इव ।
विज्जे इव करयल-पल्लवेहिँ । अंच्चे इव णहकुमुमेंहि णवेहिँ ।
पइसर इव हियएँ हलाउहहों । कर इव उज्जोउ दिसामुहहों ।
घत्ता । मेहलिय[1] मिलतहों रहुवइहें, मुहु उप्पण्णउ जेत्तडउ ।
इंदहो इंदत्तणु णत्ताहो, होंज्जण होंज्जवें तेत्तडउ ॥७॥
सकलत्तउ लक्खणु पणय-सिरु । पभणइ जलहर-गंभीर-गिरु ।
"जं किउ खर-दूसण-तिसर-वहु । जं हंसदीवें जिउ हंसरहु ।
जं सत्ति पडिच्छिय समर-मुहे । जं लग्गु विसल्ल करंवुरुहे ।
जं रणें उप्पण्णु चक्करयणु । जं णिहिउ वलुद्धरु दहवयणु ।
तं देवि ! पसाएँ तउतणेंण । कुलु धवलिउ जाइ मइत्तणेंण" ।
अहिवायणु किउ लक्खणेण जिह । सुग्गीव-पमुह-णरवरहिँ तिह ।
सयलवि णिय-णिय वाहणेंहिँ थिय । पर-पुर-पवेस-सामग्गि किय ।
जय-मंगल-तूरइ ताडियाइँ । रिउ-घरिणिहिँ चित्तइ पाडियाइँ ।

—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हलें सीएँ सीएँ किं मूढ़ी । अच्छहि दुक्खें महण्णवें छूढ़ी ।....
हलेंहलें सीएँ ! सीएँ ! महि भुजहिं । माणुस-जम्महों अणहुंजहिं ।
घत्ता । पिउ इच्छहि पट्टु पडिच्छहिँ, जइ सब्भावें हसिउ पइँ ।
तो लइ मह एवि पसाहणु, अब्भत्थिय एत्तउ उ मइ" ॥१३॥
तं णिसुणेवि वयदेहि सुया । पभणइ पुलय-विसट्ट भुआ ।

---

[1] महिला=मेहरी

निज-नयन-शरासनें संध इव । प्रिय-प्रगुण-गुणेहिं निवंध इव ।
यश-कर्दमें जनु जग लेप इव । हँसियेउ प्रवाहे सीप इव ।
विद्या इव करतल-पल्लवेहिं । अर्चे इव नखकुसुमेंहिं नवेहिं ।
प्रतिसर इव हियइ हलायुधहँ । कर इव उज्जोतु निशा-मुखहँ ।

घत्ता । मेहरिहिं मिलंते रघुपतिहिं, सुख उत्पन्नउ जेत्तनऊ ।
इन्द्रहँ इन्द्रत्व-प्राप्ति समये, हुयउ न होइहि तेत्तनऊ ॥७॥

स-कलत्रउ लक्ष्मण प्रणत-शिरा । प्रभनै जलधर-गभीर-गिरा ।
"जो किउ खर-दूषण-त्रिशिर-त्रधा । जो हंसद्वीपें जिनु हंसरथा ।
जो शक्ति प्रतीच्छेउ समर-मुखे । जो लाग विशल्य करंबुरुहे ।
जो रणें उत्पन्न चक्ररतना । जो निधिउ वलुद्धर दशवदना ।
सो[1] देवि ! प्रसादें तवतनऊ[1] । कुल धवलें उ जाइ सतित्वनऊ" ।
अभिवादन किउ लक्ष्मणें हिं यथा । सुग्रीव प्रमुख-नरवरेहिं तथा ।
सकलें हिं निज-निज वाहनें थितउ । पर-पुर-प्रवेश-सामग्रि[2] कियउ ।
जयमंगल-तूर्या ताड़िया । रिपु-घरिणिहिं चित्ता पाडिया ।
—रामायण ७८।६-८

(७) नारी-अधिकार

(क) रावणको सीताका जवाब—

रावण—"हले हले[1] सीते सीते ! का मूढि । रहहि दुःख-महार्णवें छूटि ।
हले हले सीते सीते ! महि भोगहु । मानुष-जन्महँ फल अनु-भोगहु ।

घत्ता । प्रिय इच्छहिं पट्ट प्रतीच्छहु, यदि सद्भावें हसिउ तैं ।
तो लेहु मम एहु प्रसाधन, अभ्यर्थेउं एत्तना मै" ॥१३॥

सो सुनिया वैदेह-सुता । प्रभणइ पुलक-विसृष्टभुजा ।

---

[1] तवकेरहु [2] जमाउड़ा [1] २ २

सीता—"सच्चउ इच्छमि दहवयणु।.....
इच्छमि जइ महु मुहु ण णिहालइ।.....
जइ पुणु णयणानंदणहों, ण समप्पिय रहुणंदणहों।
ता हउँ इच्छमि एउ हले, पुरि खिप्पंती उयहि-जले।....
इच्छमि णंदण-वणु मज्जतउ। इच्छमि पट्टणु पयलहों जंतउ।
इच्छमि दहमुह-तरु छिज्जंतउ। तिलु तिलु राम-सरेंहि भिज्जतउ।
इच्छमि दस'वि सिरइ णिवडतइं। सरें हसाहय इव सयवत्तइं।
इच्छमि अंतेउरु रोवंतउ। केस-विसथुलु धाह मुअंतउ।
इच्छमि छिज्जतिय धय-चिधइं। इच्छमि णच्चताइं कवंधइं।
इच्छमि धूमं धारिज्जंतइं। चउदिसु मुहइ चियाइं बलंतइं।
जं जं इच्छमि तं तं सच्चउ। णं तो करमिज्जइ हलें पच्चउ"।
—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसल-णयरें पराइय जावेहिं। दिणमणि गउ अत्थवणहों तावेहिं।
जत्थहों पिययमेण णिव्वासिय। तहों उववणहों मज्झें आवासिय।
कहवि विहाणु भाणु णहि उग्गउ। अहिमुहु सज्जण-लोउ समागउ।
कंतहितणिय कंति पेक्खेप्पिणु। पभणइ पोमणाहु विहसेप्पिणु।
"जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ। महिलउ होंति सुद्धु णिल्लज्जउ।
दरदाविय कडक्ख-विक्खेवउ। कुडिलमइउ बड्ढिय अवलेबउ।
बाहिर धिट्ठउ गुण-परिहीणउ। किह सयखडु ण जंति तिहीणउ।
णउ गणंति णिय-कुलु मइलतउ। तिहुयणें अयस-पडहु वज्जंतउ।
अंगु समोडें[1]वि धिद्धिक्कारहों। वयणु णिएंति केम भत्तारहों"।
सीय ण भीय सइत्तण गब्बें। बलें वि पबोल्लिय मच्छर गब्बें।
"पुरिस-णिहीण होंति गुणवंति'वि। णियहें ण पत्तिज्जंति मरंति'वि।

---

[1] समेटे

सीता—साँचे इच्छउँ दशवदनू ।.... ।
इच्छउँ यदि मम मुख न निहारै ।
यदि पुनि नयनानंदनहिँ, न समर्पेँउ रघुनंदनहिँ ।
तो हौँ इच्छउँ एहु हले, पुरि फेँकंती उदधि-जले ।.....
इच्छउँ नन्दन-वन मज्जंता । इच्छउँ पट्टन पातल जंता ।
इच्छउँ दशमुख-तरु छिद्यता । तिल-तिल राम-शरेँहिँ भिद्यन्ता ।
इच्छउँ दसहु शिरा निपतंता । सरेँ हंसाहत इव शतपत्रा ।
इच्छउँ अन्तःपुर रोवंती । केश-विसंस्थुल ढाह भरंती ।
इच्छउँ छिद्यता ध्वज-चिन्हा । इच्छउँ नाचंता काबधा ।
इच्छउँ धूमा धारिज्जंता । चौदिशि सुहडी चिता बलंता ।
जो जो इच्छउँ सो सो साँचय । जनु तो करऊँ मैँ फलेँ प्रत्यय ।
—रामायण ४६।१५

(ख) अग्नि-परीक्षाके समय सीता—

कोसलनगरे पहुँचेउ जब्बहिँ । दिनमणि गउ अस्तमनउ तब्बहिँ ।
जहँवा प्रियतमेहिँ निर्वासिय । तँहि उपवनहि माँझ आवासिय ।
कहब विहान भानु ना उग्गउ । अभिमुख सज्जन लोग समागउ ।
कांतहि-केरि कांति पेखियबी । प्रभणै पद्मनाभ विहसियबी ।
"यदपि कुलग्रताउ निरवद्या । महिलउ होहिँ सुधू[1] निर्लज्जा ।
तनिक दाबेँ कटाक्ष-विक्षेपउ । कुटिलमयिउ बाढिय अवलेपउ ।
बाहर ढीठउ गुण-परिहीना । किमि शतखंड न जांति त्रिहीनउ ।
नहि गणही निजकुल मइलंता । त्रिभुवनेँ अयश-पटह बाजता ।
अंग समोडेँहु धिक्धिक्कारहँ । वदन नियति केम भर्तारहँ" ।
सीय न भीत सतीत्वहिँ गर्वेँ । बलेँहु प्रबोल्लेँउ मत्सर-गर्वेँ ।
"पुरुषा हीन होहिँ गुणवंतउ । तियहिँ न पतियायहीँ मरतिउ ।

---

[1] केवल

घत्ता। खडुलक्-कडु सलिलु वहतेंयहों, पउराणियहें कुलग्गयहें।
रयणायरु खारइ देतउ, तो वि ण थक्कइ णं णेम्मयहें ॥८॥
साणु ण केणवि जणेण गणिज्जइ। गंगा णइहें तंजें ण्हाइज्जइ।
ससि स-कलंकु तहि जें पह णिम्मल। कालउ मेहु तहि जें तडि[1] उज्जल।
उबलु अपुज्ज ण केणवि छिप्पइ। ताहि पडिम चंदणेंण विलिप्पइ।
धुज्जइ पाउ पंकुजइ लग्गइ। कमल-माल पुणु जिणहों वलग्गइ।
दीवउ होइ सहावें कालउ। वट्टि सिहएँ मंडिज्जइ आलउ।
णर-णारिहि एवडुउ अंतरु। मरणें वि वेल्लि ण मेल्लइ तरुवर।
एह पइ कवण बोल्ल पारंभिय। सइ वडाय मइ अज्जु समुब्भिय।
तुहु पेक्खंतु अच्छु वीसत्थउ। डहउ जलणु जइ डहिवि समत्थउ।
घत्ता। किं किज्जइ अण्णइ दिव्वें, जेण विसुज्झहों महु मणहों।
जिह कणय-लोलि डाहुत्तर, अच्छमि मज्झेंउ आसणहों" ॥९॥
—रामायण ८३।७-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

परवलें दिट्ठएँ राहव-वीरु पयट्टउ। रइ रण-रहसेण उरे सण्णाहु विसट्टउ।
सो राहव पहरण-हत्थाएँ। दणुवइ णिद्दलण-समत्थाएँ।
दीहर-मेहल-गुप्पंताए। चदण-कद्दमें खुप्पंताए।
विच्छोइय मणहर कंताए। किय-माया सुग्गीवें ताए।
रण-रहसुद्धूसिय-गत्ताए। अप्फालिय वज्जावत्ताए।
आवीलिय तोणा-जुयलाए। किंकिणि ललंत बल-मुहलाए।
कंकण-णिवद्ध करकमलाए। वित्थिण्णुण्णय वच्छयलाए।
कुंडल-मंडिय-गंडयलाए। चूडामणि-चुंबिय-भालाए।
भासुल-भुलिआरुल-वयणाए। रत्तुप्पल-सण्णिह-णयणाए।
जं सें न - सण्णद्धएँ दिट्ठाए। तं लक्खणे वि आलुद्धाए।
—रामायण ६०।१

---

[1] तडित्, बिजली

घत्ता। खडखड सलिल वहंतियहु, पटरानियह कुलग्गयहु ।
रतनाकर खारइ देतउ, तोपि न थाकै जनु निर्मथे ॥८॥
सोउ न कोइहें जनेहिं गणीजै । गंगानदिहिं सोउ नहईजै ।
शशि सकलंक ताह प्रभाँ निर्मल । कालउ मेघ ताह तडि उज्वल ।
उपल अपूज्य न कोउँ छूवई । तेहि प्रतिमा चंदन लेपइ ।
धोइयें पाव पंक यदि लागै । कमल-माल पुनि जिनहु समर्पै ।
दीपउ होहि स्वभावे कालउ । बाति शिखहिं मंडिज्जै आलउ ।
नर-नारिहीं एवडउ[1] अंतर । मरतेंउ बेलि न मेलै[2] तरुवर ।
एहु तैं कवन बोलि प्रारंभिउ । सति बड़ाइ मैं आज समुज्झिउ ।
तुह देखंत होहु विश्वस्ता । दहउ ज्वलन यदि दहन-समर्था ।
घत्ता। का कीजै दूसर दिव्येहिं[3], जातें विशुद्धइ मम मना ।
जिमि कणक-लोलें दाहुत्तर, रहहुँ माँझेहू आसना ॥९॥
—रामायण ८३।१-९

५—सामन्त और युद्ध

(१) सामन्त (राम)-वेष—

पर बले दीख राघववीर । रवि रण लसेहिं उर सन्नाह निबद्धउ ।
सो राघव प्रहरण-हस्ताऊ । दनुपति-निर्दलन-समर्थाऊ ।
दीरघ-मेखल गोप्यंताऊ । चंदन-कर्दमें लेप्यंताऊ ।
वीछोहिउ मनहर-कान्ताहीं । कृत-माया सुग्रीवें ताहीं ।
रण-रभसेंहि धूसित गात्राए । आस्फालिय वैयावर्त्याए ।
आ-धारेंउ तूणी-जुगलाए । किंकिणि-ललंत बल-मुखराए ।
कंकण-निबद्ध-करकमलाए । विस्तीर्ण-'न्नत-वक्षतलाए ।
कुंडल - मंडित - गंडतलाए । चूडामणि - चुवित - भालाए ।
भासुर - पुलकाकुल - वदनाए । रक्तोत्पल - सन्निभ - नयनाए ।
जो सेन-सनद्धा-दीखाए । सो लक्ष्मणेंहू आलुब्धाए ।
—रामायण ६०।१

---

[1] एतना [2] छाड़े [3] आगके गोले आदिसे सतीत्व परीक्षा

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिँ । साहणु[1] मिलिउ अ्रसेसु'वि तावेहिँ ।
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहों । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहो ।
अग्गएँ धित्तु वद्धलं पिक्खुव । हरिणक्खरहिँ लीण णं डिक्खुव ।
सुदरु पत्तु वतु वरसाहु'व । णाव वहुल सरि गंगपवाहु'व ।
दिट्ठ राय तहिँ आय अणतवि । मल्ल-विमल्ल-सीह-विक्कंतवि ।
दुज्जय-अजय-विजय-जय-जय मुहुँ । णर-मद्दूल-विउल गय-गय मुहुँ ।
रुद्दवच्छ-महिवच्छ-महद्धय । चंदण-चदोयर-गरु(ड)द्धय ।
केसर-मारि-चड-जमहंटा । **कोंकण-मलएँ-पंडिया-**'णट्टा ।
गुज्जर-गंग-वंग-भंगाला । पइविय-पारियत्त-पंचाला ।
सिंधव-कामरूव-गंभीरा । तज्जिय-पारसीय-परतीरा ।
मरु-कण्णाड-लाड-जालंधर । टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बर ।
अवरवि जे ऍक्केक्क-पहाणा । . . . . . .

—रामायण ३०।२

घत्ता । जे अल मलवल पवल-वले, हरि-वल-वलेहि साहिया ।
ते णरवइ लवणकुमेहिं, सवमि करेप्पिणु साहिय ॥५॥

खस-सब्बर-बब्बर-टक्क-कीर । कउवेर-कुरव-सोंडीर-वीर ।
तुगं-'ग-वंग-कन्होज्ज-भोट्ट । जालंधर-जवणा-जाण-जट्ट ।
कंमीरो-'सीणर-कामरुव । ताइय-पारस-काहार-सूव ।
णेपाल-धट्ट-हिंडीव-'तिसर । केरल-काहल-कइलास-वसिर ।
गंधार-मगह-मद्दा-हिवावि । सक-सू सेण-मरु-पत्थिवावि ।
एयवि अवरवि किय वस-विहेय । पल्लट्ट पडीवासेहि लेय ।

—रामायण ८२।६

---

[1] साधन=सेना

(२) देश-विजय

(देशोंके नाम)

परि-आरूढ नराधिप जब्बहिँ। साधन[1] मिले'उ अशेषउ तब्बहिँ।
लेख लिएवउ जग-विख्यातहु। तुरत विसजउ महिधर-रायहु।
आगे लियउ वद्धलं पेखु'व। हरिणाक्षरहिँ लीन जनु डिक्खु'व।
सुदर पात्रवंत वर साधु'व। नाव-वहुल सरि गग-प्रवाहु'व।
दीख राय तहँ आय अनंतउ। सल्ल-विसल्ल-सिंह-विक्रांतउ।
दुर्जय-अजय-विजय-जय-जय मुख। नर-शार्दूल-विपुलगज-गजमुख।
रुद्रवत्स-महिवत्स-महाध्वज। चंदन-चदोदर-गरुडध्वज।
केसर-मारि-चड-यमघंटा। **कोंकण-मलय-पंडिया-**'नट्टा।
गुर्जर-गंग-वंग-भंगाला। पइविय-पारियात्र-पंचाला।
सिंधव-कामरूप-गभीरा। **ताजिक-पारसीक**-परतीरा।
मरु-कर्नाट-लाट-जालंधर। टक्क-अहीर-कीर-खस-बर्वर।
अवरहु जे ऍक-एक प्रधाना। .....।
—रामायण ३०।२

घत्ता। जे अलमत बल प्रवलबलें, हरिवल बलेहिँ साधिया।
ते नरपति (हूँ) लव-कुशेहिं, स्ववश करीय प्रसाधिया ॥५॥

खस-सर्वर-वर्वर-ढक्क-कीर। कौबेर-कुरव-शौडीर-वीर।
तुंग-'ङ्ग-वंग-**कंवोज-**भोट्ट। **जालंधर-यवना-**जान-जट्ट।
कश्मीर-उशीनर-कामरूप। ताजिक-पारस-काहार-सूव।
नेपाल-धट्ट-हिंदिव तिसरा। केरल-कोहल-**कैलाश-वशिर।**
गंधार-मगह-मद्र-आहिवाउ। शक-शूरसेन-मरु-पार्थिवाउ।
एतउ अवरउ किउ वश-विधेय। पलटें उ प्रतीवासेहिँ लेय।
—रामायण ८२।६

---

[1] रण-साधन, सेना

(३) योधाओंकी उमंगें

अण्णेक्क सुहड सण्णद्ध केवि । णिय कंतहु आलिंगणु करेवि ।
अण्णेकहु धण तंबोलु देइ । अण्णेक्क समप्पिउ पिउ ण लेइ ।
मइ कन्तें समाणें चउदलेहिं । हयपण्णेहिं रहवर-पोप्फलेहिं ।
णर-वर संचूरिय-चुण्णएण । रिउ-जयसिरि-बहुअएँ दिण्णएण ।
अण्णेकहों जाइँ सुकंत देइ । ऊहुल्लइँ फुल्लइँ नतरु लेइ[1] ।
ण समिच्छमि हउँ तुहु लेहि भज्जें । एत्तिउ सिरु णिवडइ सामि-कज्जें ।
अण्णेक्कहों धण-भूसणइँ देइ । अण्णेक्कु तंपि तिण-समु गणेइ ।
किं गंधें किं चदण-रसेण । मइ अंगु पसाहेव्वउ जसेण ।

घत्ता । अण्णेक्कहों धण अप्पाहइ, हिम-ससिकंत-समुज्जलइँ ।
करिकुंभइ णाह दलेप्पिणु, आणेज्जहि मोत्ताहलइँ ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

केवि जस-लुद्ध । सण्णद्ध-कोह । केवि सुमित्त-पुत्त । सुकलत्त-चत्त-मोह ।
केवि णीसरंति वीर[2] । भूधर'व्व तुंगधीर ।
सायर'व्व अप्पमाण । कुंजर'व्व दिण्णदाण ।
केसरि'व्व उद्धकेस । चत्त-सव्व-जीवियास ।
केवि सामि-भत्ति-वंत । मच्छिरग्गि-पज्जलत ।
केवि आहवे अभंग । कुकुमं पसाहि-अंग ।
केवि सूर साहिमाणि । सत्ति-सूल-चक्कपाणि ।
केवि गीढ वारुणत्थ । तोण-वाण-चाव-हत्थ ।
कुद्ध लुद्ध-जुद्ध केवि । णिग्गयासु सण्णहेवि ।

—रामायण ५६।२

---

[1] नरु नलेइ—पूना [2] हेलावुवई-छंद

(३) योधाओंकी उमंगें

अन्नेक[1] सुभट सन्नद्ध कोइ । निज कंतहँ आलिगन करेइ ।
अन्नेकहु धनि तांवूल देहिं । अन्नेक समर्पेंउ पिय न लेहिं ।
मैं कंत समाने चउदलेहिं । हय पर्णेहिं रथवर-श्रीफलेहिं ।
नरवर संचूरित-चूर्णकेहिं । रिपु-जयश्री-वधुअइ दिन्नकेहिं ।
अन्नेकहु जाइँ सुकंत देइ । ऊहुल्लैं फुल्लैं नर न लेइँ ।
नहि इच्छउँ हउँ तुहु लेइ भाज्यें । ईहउ शिर निपतै स्वामिकार्यें ।
अन्नेकहँ धन-भूषणैं देइ । अन्नेक सोउ तृणसम गनेइ ।
का गंधहिं का चंदन-रसहीं । मैं अंग प्रसाधेबउँ यशेहिं ।

घत्ता । अन्नेकहु धन आपानही, हिम-शशिकांत-समुज्वलईं
करिकुभइं नाथ ! दलेविय, आनीजै मुक्ताफलईं ॥३॥

—रामायण ५६।२-३

कोइ यशलुब्ध । सन्नद्ध-क्रोध । कोइ सुमित्र-पुत्र । सुकलत्र त्यक्तमोह ।
कोइ निःसरंति वीर । भूधर इव तुंगधीर ।
सागर इव अप्रमाण । कुजर इव दिन्न-दान ।
केसरि इव ऊर्ध्व-केश । त्यक्त-सर्व-जिविताश ।
कोइ स्वामि-भक्तिमंत । मत्सराग्नि-प्रज्वलत ।
कोइ आहवे अभंग । कुंकुमे प्रसाधित-आंग ।
कोइ शूर साभिमानि । शक्ति-शूल-चक्र-पाणि ।
कोइ गीढ-वारुणास्त्र । तूण-वाण-चाप-हस्त ।
क्रुद्ध लुब्ध-युद्ध कोइ । निर्गत-असु सन्नहेइ ।

—रामायण ५६।२

---

[1] अनेक

(४) पत्नीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता[1] । कोइ पधाइउ हणु हणु सद्दें, परिहइ कोइ कवउ आणंदें ।
रण-रसियहों रोमंचुब्भिण्णहों, उरें सण्णाहु ण माइउ अण्णहों ॥२॥
पभणइ कावि "कंत ! करि-कुभे जेत्तडाइँ। मुत्ताहलाइँ लेवि महु आणेज्जहि तेत्तडाइँ"।
कावि कंत-चिंधइ अप्पाहइँ । कावि कंत णिय-कंतु पसाहइँ ।
कावि कंत-मुह यंति करावइँ । कावि कंत दप्पणु दरिसावइँ ।
कावि कंत पिय-णयणइ अंजइँ । कावि कंत रण-तिलउ पउंजइ ।
कावि कंत स-वियारउ जंपइ । कावि कंत तबोलु समप्पइ ।
कावि कंत-बिवाहर लग्गइ । कावि कत आलिगणु मग्गइ ।
कावि कंत ण गणेइ णिवारिउ । सुरयारंभु करेइ णिरारिउ ।
कावि कत-सिरें बंधइ फुल्लइँ । वत्थइ परिहावई अमुल्लइ ।
कावि कत आहरणइ ढोयइँ । कावि कंत परमुहइ पजोयइँ ।
घत्ता । कहवि अगे रोसहु ण माइय, पिय रण-वहुअएँ सहुँई सगइया[2] ।
जइ तुहु तहें अणुराइउ वट्टइ, तो महुँ ण हवय देवि पयट्टइ ॥३॥
पभणइ कोवि "वीरु जइ चवहि एव भज्जे। तो वरें तहें जें देमि जा जुत्त सामिकज्जे।"
कोवि भणइ "गयगडवलग्गइ । आणवि मुत्ताहलइँ धयग्गइँ ।"
कोवि भणइ "णउ लेमि पसाहणु । जाव ण भजमि राहव-साहणु ।"
कोवि भणइ "मुहवित्ति ण इच्छमि । जाव ण सुहड छडक्क पडिच्छमि।
कोवि भणइ "ण णिहालमि दप्पणु । जाव ण रणि विणिवाइउ लक्खणु ।"
कोवि भणइ "णउ अक्खिउ अजमि । जाव ण सुरवहु-जण-मण-रजमि ।". . . .
कोवि भणइ "णउ सुरउ समाणमि । जाव ण भडहु कुलक्खउ आणमि ।"
कोवि भणइ "धणि फुल्ल ण वंधवि । जाव ण रणें सर धोरणि संधवि"।
घत्ता । कोवि भणइ "धणें णउ आलिगमि, जाव ण दंति-दत आलिगमि" ।
कोवि करवि ण वित्ति आहारहों, जाव ण दिण्ण सीय दहवयणहों ॥४॥

---

[1] तोमर-छंद [2] सट्टइ-चाहिये

(४) पत्तीसे विदाई (रावण-सैनिककी)

घत्ता । कोइ प्रधायउं हन-हन शब्दें, परिहरि कोउ कवहुँ आनंद्दे ।
रणरसिया रोमाचु-द्धिन्नहँ । उरें सन्नाह न आयउ अन्यहँ ॥२॥
प्रभणै कोइ "कंत ! करिकुभें जेत्तनाइँ । मुक्ताफलाइँ लेवि आनीजै तेत्तनाइँ ।"
कोइ कत चिन्हाईं पूजै । कोइ कंत निज-कंत प्रसाधै ।
कोइ कंत-मुख धोंवन करावै । कोइ कत दर्पण दरसावै ।
कोइ कत-प्रिय-नयनहिं अंजै । कोइ कंत रणतिलक प्रयोगै ।
कोइ कंत सविकारउ जल्पै । कोइ कंत तांवूल समर्पै ।
कोइ कंत-विंबाधर लागै । कोइ कंत आलिगन मॉगै ।
कोइ कंत न गनेइ निवारिउ । सुरतारंभ करेइ निरारिउ[1] ।
कोइ कंत शिरें वाँधै फूलहिं । वस्त्रहिं पहिरावै अनमोलहिं ।
कोइ कंत आभरणहिं योजै । कोइ कंत परमुखहिं प्रयोगै ।
घत्ता । "कहवि अंगें रोसहु न भाइय, प्रिय रण-वधु-संग ईर्ष्याइय ।
यदि तुहुँ तहँ अनुरागिय वट्टै[2], तो मम न हवै[3] देवि प्र-वट्टै ॥३॥
प्रभनै कोइ "वीर ! यदि वोलु एव भार्ये । तो वरु तेहिहि देउँ जो युक्त स्वामि-कार्ये ।"
कोइ भनै "गजगंड विलग्नहिं । आनवि मुक्ताफलहिं ध्वजाग्रहिं ।"
कोइ भनै "ना लेहुँ प्रसाधन । जौ लों न भंजउँ राघव-साधन ।"
कोइ भनै "मुखवृत्ति न इच्छउँ । जौ लौं न सुभट-छडक्क प्रतीच्छउँ ।
कोइ भनै "न निहारौं दर्पण । जौ लौं न रण विनिपातौं लक्ष्मण ।"
कोइ भनै "ना आँखिहुँ अजौं । जौ लौ न सुर-वधुजन-मन रंजौं ।
कोइ भनै "न सुरति सम्मानौं । जौ लों न भटहँ कुल-क्षय आनौं ।
कोइ भनै "धनि ! फूल न बाँधव । जौ लों न रणें सर पाँती साँधव ।"
घत्ता । कोइ भनै "धनि ! ना आलिगौं, जौ लों न दंति-दंत आलिगौं ।"
कोइ "करवि न वृत्ति आहारहु, जौ लों न दीन सीय दशवदनहुँ ॥४॥

---

[1] अत्यंत [2] बाटै (काशी) = है [3] होवे (काशी) = है

गरुअ पउ-हरीए अच्चंत णेहिणीए । रणें पइसंतु कोवि सिक्खविउ गेहिणीए ।
णाह णाह ! समरंगणें काले । तूर भेरि-दडि-संख-रव-भाले ।
उत्थरंत वर वीर समुद्दे । सीह-णाय णर-णाय-रउद्दे ।
मत्त-हत्थि गल-गज्जिय सद्दे । अब्भिडिज्ज पर राहवचंदे ।
कावि णारि परिहासइ एमं । तेम जुज्झु णवि लज्जमि जेवं ।
कावि णारि पडिबोहइ णाहं । भग्गमाणें पइं जीवमि णाहं ।
कावि णारि पडिच्चुवणु देइ । कोवि वीरु अवहेरि[1] करेइ ।
कंतें कंतें मइ मंदु लएबी । कित्ति-वहुय रणें परिच्चुवेवी ।
कावि णाहि णवकारु करेइ । कोवि वीरु रणें-दिक्ख लएइ ।

—रामायण ५६।३-५

थोवंतरु जाव परिभमइ । सहुँ कंतएँ कोवि वीरु चवइ ।
सुंदरि ! मृगणयणे ! मरालगइ ! तं पहु पसाउ किं वीसरइ ।
तं पेसणु तऊ लग्गियउँ । तंजीविउ दाणु अमग्गियउँ ।
तं उच्चासणु मणें वेयडिउ । तं मत्तगइंदें-खंधें चडिउ ।
तं मेहलु तं कंठाहरणु । त चेलिउँ त जें समालहणु ।
तं फुल्लु सहत्थें तं तंबोलु । त असणु स-परियलु कच्चोलु ।
तं चीरु भारु चामीयरहो । अवरवि पसाय लंकेसरहो ।
एयहुँ जसु एक्कइ णावडइ । सो सत्तमि णरयण्णवें पडइ ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेक्खु पेक्खु आवंतउ साहणु । गलगज्जंत महग्गय-वाहणु ।
पेक्खु पेक्खु हिसंत तुरगम । णहयलें विउलें भवति विहंगम ।
पेक्खु पेक्खु चिंधइ धूयंतइँ । रह-चक्कइं महियलें खुप्पंतइँ ।
पेक्खु पेक्खु कड्ढिय असिवत्तइँ । धाणुक्किय फारक्किय पत्तइँ ।

---

[1] तिरस्कार

गरुअ पदधरिय अत्यन्त स्नेहनियहिँ । रणेँ पइसंत कोइ सिखायउ गेहिनियहिँ ।

"नाथ नाथ ! समरंगण काले । तूर्य-भेरि-दँडि-शँख-रव-माले ।
उतरंत वरवीर समुद्रे । सिंहनाद नरनाद रउद्रे ।

मत्त-हस्ति-गलगर्जित शब्दे । आभिडिया पर राघवचंदे ।"
कोइ नारि परिहासै एवं । "तिमि जूझौ नहि लज्जउँ येवं ।"

कोइ नारि प्रतिबोधै नाथहँ । "भागंते तोहिं जीवउँ ना हउँ ।
कोइ नारि प्रतिचुवन देई । कोई भी अवधीर[1] करेई ।

"कंत कंत ! मैँ मृदु लपेवी । कीर्त्ति-वधुअ रणेँ परिचुवेबी ।"
कोइ नाहिँ नमकार करेई । कोइ वीर रण-दीक्ष लएई ।

—रामायण ५९।३-५

थोडतर यावत् परिभ्रमई । कांतासोँ कोइ वीरा कहई ।

"सुंदरि ! मृगनयने ! मरालगति । सो प्रभु-प्रसाद का बीसरइ ।
सो प्रेषण[2] तऊ लागेऊँ । सो जीवित-दान अमोँगेऊँ ।

सो उच्चासन मन वीजडऊ । तेहि मत्तगयंद-स्कन्धेँ चढिऊँ ।
सो मेहरि सो कंठाभरणू । सो चोलिउ सोँउ सम-नलभनू ।

सो फूल स्वहत्थेँ सो तमूल । सो अशन स-परिदल[3] कट्टोर ।
सो चीर भार चामीकरहू । अवरौ प्रसाद लंकेश्वरहू ।

एतहुँ यश एकइ ना वडई । सो सतवेँ नरकार्णव पडई ।

—रामायण ६२।५

(५) रण-यात्रा

पेखु पेखु आवंतउ साधन[4] । गलगर्जत महागज-वाहन ।

पेखु पेखु हिनहिनत तुरंगम । नभतलेँ विपुल भवति विहंगम ।
पेखु पेखु चिन्हा कंपंता । रथचक्का महितलहिँ खनंता ।

पेखु पेखु काढ़िय असिपत्रा । धानुष्केँहिँ फरकायो पत्रा ।

---

[1] तिरस्कार [2] आज्ञा [3] थाली [4] सेना

पेक्खु पेक्खु वज्जंतइ तूरइँ । णाणा-विह निनाय-गंभीरइँ ।
गलगज्जंत धणुह-टंकारउँ । सुहड विमोक्क पोक्कहक्कारउँ ।
पेक्खु पेक्खु सय-संख रसंता । णाइ स दुक्खउ सयणँ रुअंता ।
पेक्खु पेक्खु पचलंतउ णरवइ । गह चक्कहहोँ मज्झेँ सणि णावइ ।
दसउर-[1]णाहु णिहालइँ जावेँहिँ । सयलु' वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ ।
—रामायण २५।४

घंटा-टंकार-मणोहराइँ । उद्धुत मत्त-महुयर-सराइँ ।
ससि-सूर-कंत-कर-णिब्भराइँ । बहु-इंद-णील-किय-सेहराइँ ।
पवलय-माला रंखोलिराइ । मरगय-रिछोलिएँ सोहिराइँ ।
मणि-पोमराय-वण्णुज्जलाइँ । वेडुज्ज-वज्ज-पह-णिम्मलाइँ ।
मुत्ता-हल-माला धवलियाइँ । किकिण-घग्घर-सर-मुहलियाइँ ।
धूवंत धवल-धुय-धय-वडाइँ । वज्जंत संख-सय-संघडाइँ ।
सुग्गीवेँ रयणुज्जोइयाइँ । विहि विण्णि विमाणइ ढोइयाइँ ।
—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पडु-पडह-संख-भेरी-रवेण । कंसाल-ताल-दडिरउ रवेण ।
कोलाहल काहल-णीसणेण । वड्ढीअ मुउदा मीसणेण ।
धंमुक्क करउ-टिविला-रवेण । झल्लरि-रुजा-डमरुअ-करेण ।
पडिढक्क-हुडुक्का-वज्जिरेण । घुम्मंत-मत्त-गय-गज्जिरेण ।
तंडविय-कण्ण-विहुणिय-सिरेण । गुमु-गुमु-गुमंत इंदीवरेण ।
पक्खरिय तुरय पवणुज्झडेण । धूवत-धवल-धय-धूवडेण ।
मण-गमणा मेल्लिय मंदणेण । जम-वरुण-कुवेर-विमद्दणेण ।
वंदिण जयकारु'ग्घोसिरेण । सुर-वहुअ-सत्थ-परितोसणेण ।
घत्ता । सहु सेण्णेँ महइ दसाणणु णीसरिउ ।
छण-चंदु'व तारा णियरेँ परियरिउ ॥१॥
—रामायण ६३।१

---

[1] मालवा का दशपुर

पेखु पेखु वाजंता तूरइँ । नानाविध निनाद-गंभीरइँ ।
गलगर्जत धनुष-टंकारा । सुभट विमोचु पुक्क हंकारा ।
पेखु पेखु शतशख रसंता । न्याइँ स्वदुःखउ स्वजन रुदता ।
पेखु पेखु प्रचलंतउ नरपति । ग्रह-चक्कहु माँझे स निशापति ।
दशपुर-नाथ निहारेँउ जब्बेँ । सकलहु सैन्य पराइउ तब्बेँ ।
—रामायण २५।४

घटा-टकार मनोहराइँ । उड्डंत मत्त-मधुकर-स्वराइँ ।
शशि-सूर-कांत-कर-निर्भराइँ । बहु-इन्द्रनील-कृत-शेखराइँ ।
प्रवलय-माला रंखोलिराइ[1] । मरकत-पक्तीहीँ सोहराइँ ।
मणि-पद्मराग-वर्णोज्ज्वलाइँ । वैदूर्य-वज्र-प्रभ-निर्मलाइँ ।
मुक्ता-फल-माला-धवलिताइँ । किंकिणि घर्घर स्वर मुखरिताइँ ।
कंपंत धवल-धुत-ध्वज-बडाइँ । बाजंत शंख-शत-संघटाइँ ।
सुग्रीवेँ रतनोद्योतिताइँ । विधि दोउ विमानइँ ढोइयाइँ ।
—रामायण ५६।४

(६) सैनिक बाजे

पटु पटह-शख-भेरी-रवेहिँ । कंसाल-ताल-दडिरव-रवेहिँ ।
कोलाहल काहल-निःस्वनेहिँ । बड्ढीय मृदगा मिश्रणेहिँ ।
धमुक्क-करड-टिबिला-रवेहिँ । झल्लरि-रुंजा-डमरू-करेहिँ ।
प्रतिढक्क-हुडुक्का बाजिरेहिँ । घूमत मत्तगज-गर्जिरेहिँ ।
ताडविय कर्ण-विधुनित-शिरेहिँ । गुम-गुम-गुमत इदीवरेहिँ ।
पाखरिय तुरग-पवनोज्झटेहिँ । धुन्वत-धवल-ध्वज-धूवटेहिँ ।
मनगमना छोडी स्यंदनेहिँ । यम-वरुण-कुवेर-विमर्दनेहिँ ।
वंदिन जयकारु-द्घोषणेहिँ । सुर-बधुग्र-सार्थ-परितोषणेहिँ ।
घत्ता । सवसेनहिँ सह दशानन नीसरिऊ ।
क्षण-चंदि'व तारा-निकरे परिचरिऊ ॥१॥
—रामायण ६३।१

---

[1] सांकल

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहन[1] का युद्ध—

पच्छइ मेहवाहणो गहिय-पहरणे णिग्गउ तुरंतो ।
णं जुग-खय-सणिच्छरो भरिय-मच्छरो अहर-विप्फुरंतो ।
सो'वि पधाइउ रहवरें चडियउ । ण केसरि-किसोरु णिव्वडियउ ।
संचल्लइए तोयदवाहणें । तूरइ हयइ असेस'वि साहणे ।
मंणज्झंति केवि रयणीयर । वर-तोणीर-वाण-धणु-वर-कर ।
केंवि तिक्खर-खग्गु-'क्खय-हत्था । केवि गुरुहु ऊणमिया-मत्था ।
केवि चडिय हिसंत-तुरंगें हिं । केवि रसत-मत्त-मायंगें हिं ।
केवि रहें हि केंवि सिविया-जाणेहिं । केवि परिट्ठिय-पवर-विमाणें हिं ।
पुच्छिउ णिययय-सारही, "अहो महारही ।
दिढइं जाइं जाइं, कहि कित्तियइं ।
अत्थइ रणहों समत्थइ, रहिहें चडावियइं ।"

(हथियारोंकी शक्तिकी तुलना—)

तो एत्थंतरि पभणइ सारहिं । "अत्थइं अत्थि देव ! जइ पहरहिं ।
चक्कइ पंच मत्त वर-वायइं । दस असिवरइं अणिट्ठिय गावइं ।
वारह भुस पण्णारह मोग्गर । सोलह लउडि दंड रणें दुद्धर ।
वीस फरसु चउवीस तिसूलइं । कोंतइ तीस सत्तु-पडिकूलइं ।
घण पणतीस चाउ वसुणेदा । चाल पचास तीस अद्धदा ।
सेल्लइ सट्ठि खुरुप्पइं सत्तरि । अण्णइं कणय-चडिय चउहत्तरि ।
असीति सत्तिउ णवइ भुसढउ । जाउ दिवे दिवें रंण-रसि-यट्ठिउ ।
सउ णारायहुं जं परिमाणमि । अण्णहि पुणु परिमाणु ण जाणमि ।

घत्ता । वारह णियलइं सोलह, विज्जउ रह चडिअउ ।
जेहि धरिज्जइ समरंगणि, इंदु' वि भिडिअउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] मेघनाद

(७) युद्ध-वर्णन

(क) मेघवाहनका युद्ध—

पाछेइँ मेघवाहन गहिय-प्रहरणा निर्गतउ तुरंता ।
जनु युग-क्षय शनिश्चर, भरिय-मत्सर अधर-विस्फुरंता ।
सोउ प्रधायउ रथवर चढियउ । जनु केसरि-किशोर नीबड़ियउ ।
संचलतेई तोयदवाहनें । तूर्यहिं हयहिं अशेषहु साधनें ।
सन्नाहति कोंइ रजनीचर । वरतूणीर-बाण-धनु-वर-कर ।
कोंइ तीखर-खड्गु-द्युत-हत्था । कोइ गुरुहिं अवनामिय-मत्था ।
कोइ चढिय हिनहिनत तुरंगेहिं । कोइ रसत मत्त-मातगेहिं ।
कोइ रथेहिं कोंइ शिविका-यानेहिं । कोइ बैठे प्रवर-विमानेहिं ।
पूछेंउ निजय-सारथी, "अहो महारथी !
दृढे जाइँ जाइँ, कहु केत्तियइँ ।
अर्थइ रणहु समर्थें, रथिहिं चढावियईं ।

हथियारोंकी शक्तिकी तुलना

तो एहीं बिच प्रभणें सारथी । "अर्थें अहे देव ! यदि प्रहरहिं ।
चक्रैं पाँच सात वर-वायहिं[1] । दश असि-वरहिं अनिष्टित गावैं ।
बारह भूष पन्नारह मुद्गर । सोलह लउरि-दंड रणें दुर्धर ।
बीस परशु चौबीस त्रिशूलहि । कुतहिं तीस शत्रु-प्रतिकूलहिं ।
घन पैंतीस चाप वसुनेद्रा । चाल पचास तीस अर्धदा ।
सेलहि साठ क्षुरप्रहिं सत्तर । अन्यहिं कनक-चढ़िय चौहत्तरि ।
अस्सी शक्तिहि नबे भुसुडिउ । जाउ दिने दिन रण-रसिकस्थिउ ।
सौ नाराचौं जो परिमाणौं । अन्येहिं पुनि परिमाण न जानऊँ ।
घत्ता । बारह निगडहिं सोरह विद्या रथ चढियउ ।
जेंहि धरिये समरंगणे, इन्द्रहुँ भिडियउ ॥५॥

—रामायण ५३।४-५

---

[1] हथियार

(ख) मेघवाहन और हनूमान्का युद्ध—

एक्कल्लउ सुहडु अणंत-बलु । पप्फुल्लु तोवि तहों मुह-कमलु ।
परि-सक्कइ थक्कइ उल्ललइ । हक्कारइ पहरइ दणु दलइ ।
आरोक्कइ ढुक्कइ उत्थरइ । परिउंभइ[1] रुंभइ वित्थरइ ।
णवि छिज्जइ भिज्जइ पहरणेहिँ । जिह जिणु ससारहों कारणेहिँ ।
हणुयहों पासेँहि परिभमइ बलु । णं मदल-कोडिहि उयहि-जलु ।
घत्ता । धरेँवि ण सक्कइ बलु सयलु 'वि उक्खय-पहरणु ।
मारुहेँ पासेँहि परिभमइ मंदरहों णाइ तारायणु ॥६॥
धाइउ पवणणंदणो दणु-विमद्दणो बलहों पुलइ-अगो ।
हउ-रहु रह-वरेण गउ गय-वेरण, तुरएण वर-तुरंगो ॥
सुहडेँ सुहडु कवंधे कवंधेँ । छत्तेँ छत्तु चिधहउ चिधेँ ।
वाणेँ वाणु चाउ वर-चावेँ । खग्गेँ खग्गु अणिट्ठिय-गव्वेँ ।
चक्कइँ चक्कु तिसूल तिसूलेँ । मोग्गर मोग्गरेण हुलिहलेँ ।
कणएँण कणउ मुसलु वर-मुसलेँ । कोते कोंतु रणंगणेँ कुसलेँ ।
सेल्लेँ सेल्लु खुरुप्पु खुरुप्पेँ । फलिहि फलिहु गयावि गय-रुप्पेँ ।
जतेँ जतु एंतु पडिखलियउ । बलु उज्जाणु जेण दरमलियउ ।
णासइ सयलु'ण्णावि मत्थउ । णिग्गइ दुण्णि तुरगु णिरुत्थउ ।
विवरामूहुउ हल्लिय-वयणउ । भग्गमडप्फरु मउलिय-णयणउ ।
घत्ता । वियलिय-पहरणु णासंतु णिए' वि णिय-साहणु ।
रह-वरु वाहेँवि थिउ अग्गएँ, तोयदवाहणु ॥७॥
रावण-राम-किकरा रणे भयकरा, भिडिय विप्फुरता ।
विउ सुग्गीव-राहवा विजय-लाह-वाणाइँ हणु भणंता ॥
वेवि पयंड वेवि विज्जा-हर । वेँण्णि'वि अक्खय-तोण-धणुह-कर ।
वेँण्णि'वि वियउ-वच्छ पुलइय-भुअ । वेण्णि'वि अजण-मदोयरि-सुअ ।

---

[1] परिब्भंइ

(ख) मेघवाहन और हनूमान्का युद्ध—

एकल्लउ सुभट अनतबलू । प्रप्फुल्ल तोउ तसु मुख-कमलू ।
परि-शक्कै थाकै उल्ललई । हक्कारै प्रहरै दनु-दलई ।
आ-रोकै ढूकै उल्ललई । परि-रुंधै रुधै विस्तरई ।
नहि छिद्यै भिद्यै प्रहरणेहिं । जिमि जिन संसारह कारणेहिं ।
हनुमत्-पासेंहिं परिभ्रमै बलू । जनु मदर-कोटिहिं उदधि-जलू ।
घत्ता । धरेंव न सक्कै बल सकलहु उक्खाड-प्रहरण ।
मारुति-पासेंहिं परिभमै मंदर-कोटि'व तारागण ॥६॥
धायेंउ पवननदनो दनु-विमर्दनो । वलवत् पुलकित-अगो ।
हय-रथ रथवरेहिं गयेंउ गजवरेहिं तुरगेहिं वरतुरंगा ।
सुभटेहिं सुभट कवंध कवंधेहिं । छत्रें छत्र चिन्हहऊं चिन्हा[1] ।
वाणें वाण चाप वर-चापें । खड्गें खड्ग अनिष्ठित[2]-गर्वें ।
चक्रहिं चक्र त्रिशूल त्रिशूलें । मुद्गर मुद्गरेहिं हुलिहलें ।
कनकेहिं कनक मुसल वर-मुसलें । कृतें कृत रणगण कुसलें ।
सेलें सेल क्षुरप्र क्षुरप्रें । फरिहिं फरिहु गजाहु गज-रूपें ।
यंत्रें यंत्र आवत प्रतिस्खलियेंउ । बल उद्यान येन दरमलियेंउ ।
नाशै सकल नवाइया मत्थउ । निर्गत दोउ तुरंग-निरर्थउ ।
विवर-मुखाहू हालिय-वदनहु । भग्न-'भिमान मुकुलिया-नयनहु ।
घत्ता । विचलिउ प्रहरण नाशंत निजहु निज-साधन ।
रथवर वाहहु रहु आगे, तोयदवाहन ॥७॥
रावण-राम-किकरा रण-भयंकरा, भिडेंउ विस्फुरंता ।
सुग्रीव-राघव-विजल लाभवाणा हन भनंता ॥
दोउ प्रचंड दोउ विद्याधर । दोऊ अक्षय-तूण-धनुष-कर ।
दोऊ विकट-वक्ष पुलकित-भुज । दोऊ अंजन-मंदोदरि-सुत ।

---

[1] ध्वज [2] अनंत, असमाप्त

वेंण्णि'वि पवण-दसाणण-णंदण । वेण्णि'वि दुद्दम-दाणव-मद्दण ।
वेण्णि'वि पहरण-परवल-चड्डिय । वेण्णि'वि जय-सिरि-वहुअवरुंडिय ।
वेण्णि'वि राहव-रावण पक्खिय । वेण्णि'वि सुर-वहु-णयण-कडक्खिय ।
वेण्णि'वि समर-सएँहिँ जसवता । वेण्णि'वि पहु-सम्माण-सरंता ।
वेण्णि'वि वीर-धीर भय-चत्ता । वेण्णि'वि परम-जिणिदहों भत्ता ।
वेण्णि'वि अतुल-मल्ल रण-दुद्धर । वेण्णि'वि रत्त-णेत्त-फुरिया-हर ।

घत्ता । विहिमि महाहउ जो असुर-सुरेदहि दीसइ ।
राहव-रावणहों से तेहउ दुक्खरु होसइ ॥८॥

——रामायण ५३।६-८

भिडिअइ वे'वि सेण्णइँ आउ जुज्झु घोरु ।
कुडल-कडय-मउडणिवडंत कणय-डोरु ।
हण-हण-हणंकारु महारउद्दु । छण-छण-छणंतु गुण-पिंछ-सद्द ।
कर-कर-करंतु कोयड-पवरु । थर-थर-थरंतु णाराय-णियरु ।
खण-खण-खणंतु तिक्खग्ग खग्गु । हिलि-हिलि-हिलतु हय-चंचलग्गु ।
गुलु-गुलु-गुलंत गयवर विसालु। "हणु-हणु" भणंतु णर-वर-विसालु[1]।
पोप्फस-वसणे गत्तत्त-मालु । धावत कलेवर सव-करालु ।
झल-झल-झलंतु सोणिय-पवाहु । छिज्जंत चलण तुट्टत वाहु ।
णिवडंत सीसु णच्चत रुंड । ऊणल्ल तुरय-धय-छत्त-दंड ।
तँहि तेहएँ रणें रण-भर-समत्थु । राहव-किकरु वर-वारणत्थु ।

घत्ता । सीहद्धउ चवल सीह-संदणे चडियउ ।
संतावणु मुहुमारिव्वें अब्भिडिउ ॥३॥

वेण्णि'वि सीह-संदणा वेण्णि'वि सीह-चिंधा ।
वेण्णि'वि चाव-करमला वे'वि जगें पसिद्धा ।

---

[1] णरवर वमालु

दोऊ पवन-दशानन-नंदन । दोऊ दुर्दम-दानव-मर्दन ।
दोऊ प्रहरण परबल-चढिया । दोऊ जयश्री-वधु आँलिंगिया ।
दोऊ राघव-रावण-पक्षिय । दोऊ सुरबधु-नयन-कटाक्षिय ।
दोऊ समर-शतेहिँ यशवंता । दोऊ प्रभु-सम्मान स्मरंता ।
दोऊ वीर-धीर भय-त्यक्ता । दोऊ परम-जिनेंद्रह भक्ता ।
दोऊ अतुल-मल्ल रण-दुर्धर । दोऊ रक्तनेत्र स्फुरिताधर ।

घत्ता । दोँउहि महाहव जो असुर-सुरेंद्रहिँ दीसै ।
राघव-रावणँह सो, वैसे दुष्कर होषै[1] ॥८॥

—रामायण ५३।६-८

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर ।
कुडल-कटक मुकुट निपतंत कणक-डोर ॥
हन-हन-हनंकार महा-रउद्र । छन-छन-छनंत गुण-पिच्छ-शब्द ।
कर-कर-करंत कोदंड-प्रवर । थर-थर-थरंत नाराच-निकर ।
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग । हिलि-हिलि-हिलंत हय-चचलाग्र ।
गुलु-गुलु-गुलंत गजवर-विशाल । "हन हन" भनंत नरवर-विशाल ।
फुप्फुम वसने गात्रात्त-माल । धावंत कलेवर शव-कराल ।
झल-झल-झलंत शोणित-प्रवाह । छिद्यंत चरण तुटचंत बाँह ।
निपतंत शीश नाचंत रुंड । फिक्कंत तुरग-ध्वज-छत्र-दंड ।
तँह तेहि रणे रणधर-समर्थ । राघव-किंकर वर-वारणास्त्र ।

घत्ता । सिंहध्वज चपल सिह-स्यंदन चढियउ ।
संतापन सुखमारी इव भिडियउ ।
दोऊ सिंहस्यंदना दोऊ सिहचिन्हा ।
दोऊ चाप-करतला दोऊ जग-प्रसिद्धा ।

---

[1] होखै (काशी)

वेण्णि'वि[1] जस-लुद्ध विरुद्ध कुद्ध । वेण्णि'वि वंसुज्जल कुल-विसुद्ध ।
वेण्णि'वि सुर-वहु-आणंद-जणण । वेण्णि'वि सत्तुत्तम सत्तु-हणण ।
वेण्णि'वि रण-धुर-धोरिय महंत । वेण्णि'वि जिण-सासण-भत्तिवंत ।
वेण्णि'वि दुज्जय जय-सिरि-णिवास । वेण्णि'वि पणई-यण-पूरियास ।
वेण्णि'वि निसियर-णर-वर-वरिट्ठ । वेण्णि'वि रावण-राहवहँ इट्ठ ।
वेण्णि'वि जुज्झत मिलीमुहेहि । ण गिरि अवरोप्परु सरि मुहेहिं ।
मारिच्चहोँ भय भीसावणेण । धणु जीउच्छिण्णु संतावणेण ।
तेण'वि तहोँ चिर-पेसिय-सरेहिं । समारु'व परम-जिणेसरेहि ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्का युद्ध

हणुवंत-रणे परिवेढिज्जइ णिसियरेहिं ।
ण गयण-यले वाल-दिवायरु जलहरेहिं ।
पर-बलु अणंतु हणुवंतु एक्कु । गय-जूहहोँ णाइ इदु थक्कु ।
आरोक्कइ कोक्कइ समुहुं धाइ । जहि जहि जेँ थट्ट तहि तहि जेँ थाइ ।
गय-घड भड-थड भजंतु जाइ । वंसत्थलेँ लग्गु दवग्गि णाइ ।
एक्कू रहु महाँहवेँ रस-विसट्टु । परिभमइ णाइँ वलेँ भइय वट्ट ।
सो णवि, भडु जासु ण मलिउ माणु । सो ण धयउ जासु ण लग्गु वाणु ।
सो णवि तुरगु जसु गोँडु ण तुट्टु । सो विण रहु जासु ण रहगु फुट्ट ।
सो णवि भडु जासु ण छिण्णु गत्तु । त णवि विमाणु जहि सरु ण पत्तु ।
घत्ता । जगडंतु वलु मारुइ हिडइ जहिँ जेँ जहिँ ।
संगाम-महिहेँ रुड णिरतर तहि जेँ तहिँ ॥१॥
जं जिणेवि ण सक्किउ वर-भडेहि । वेढाविउ मारुइ गय-घडेहि ।
गिरि-सिहिर-गहिर कुभत्थलेहिं । अणवरय-गलिय-गंडत्थलेहिँ ।
छप्पए-झंकार-मणोहरेहिँ । घटा-टकार-भयकरेहिं ।
तंडविय कण्ण उद्ध करेहिं । मुक्क'कुसेहि मय-णिब्भरेहिं ।

---

[1] बे=दो (गुजराती)

दोऊ यशलुब्ध विरुद्ध क्रुद्ध । दोऊ वशोज्वल कुल-विशुद्ध ।
दोऊ सुरबधु-आनंद-जनन । दोऊ सत्त्वोत्तम शत्रु-हनन ।
दोऊ रण-धुर-धौरेय महंत । दोऊ जिन-शासन-भक्तिवंत ।
दोऊ दुर्जय जयश्री निवास । दोऊ प्रणयीजन-पूरिताश ।
दोऊ निशिचर-नरवर-वीरष्ट । दोऊ रावण-राघवहँ इष्ट ।
दोऊ युध्यंत शिलीमुखेहिँ । जनु गिरि अपरोपर सरि-मुखेहिँ ।
मारीचहु भय-भीषावणेहिँ । धनुज्या उच्छिन्दु संतापनेहिँ ।
मोऊ तेहि चिर-प्रेषित-शरेहिँ । संसारि'व परम जिनेवरेहिँ ।
—रामायण ६३।३-४

(ग) हनूमान्का युद्ध

हनुमंत-रणे परिवेठिज्जै निशिचरेहिँ ।
जनु गगनतले वालदिवाकर जलधरेहिँ ।
पर-बल अनंत हनुमत एक । गज-यूथहिँ न्याईँ इंदु थाक[1]
आरोकइ कोकइ समुँहेँ धाइ । जहँ जहीँ ठट्ट तहँ तहीँ थाय[2] ।
गज-घट भट-ठट भजंत जाइ । वंश-स्थलेँ लागि दवाग्नि न्याइँ ।
एको रथ महाहवे रस-विसट्ट । परिभ्रमै न्याइँ वलेँ भयावर्त्त ।
सो नहिँ भट जासु न मलेँउ मान । सो नहिँ ध्वज जासु न लागु वाण ।....
सो नहिँ तुरंग जसु गोँड न टूट । सो नहिँ रथ जसु न रथंग फूट ।
सो नहिँ भट जासु न छिन्नु गत्त । सो नहिँ विमान जेहि शर न प्राप्त ।
घत्ता । झगडंत वल मारुति हिडइ जहँहि जहँ ।
संग्राम-महिहिँ रुंड निरतर तहँहि तहँ ॥१॥
जो जितव नं सक्केउ वर-भटेहिँ । वेष्ठाविउ मारुति गजघटेहिँ ।
गिरि-शिखर-गहिर-कुभस्थलेहिँ । अनवरत-गलित-गंडस्थलेहिँ ।
षट्पद-झंकार-मनोहरेहिँ । घंटाटंकार-भयंकरेहिँ ।
तांडविय कर्ण ऊर्ध्व-करेहिँ । मुक्त-आकुशेहिँ मद-निर्भरेहिँ ।...

---

[1] ठहरै (बंगला) [2] रहं (गुजराती)

रण-रसिएँहि वैहाविद्धएहि । पेल्लिउ पडिवक्खु कइद्धएहि ।
णासइ विहडप्फडउ गलिय-खग्गु । चूरंतु परप्फरु चलण-मग्गु ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जंतउ पेक्खें'वि णियय-सेण्णु । रावणु जयकारेवि कुभयण्णु ।
धाइउ भय-भीसणु भीम-काउ । ण राम-बलहों खय-कालु आउ ।
परिसक्कइ रण-भूमिहि ण माइ । गिरि-मंदरु-थाणहों चलिउ णाइ ।
जउ जउ जि समच्छरु देइ दिट्ठि । तउ तउ जें पडइ णं पलय-विट्ठि ।
कों'वि वाएँ कोवि भिउडिएँ पणट्ठु । कों'वि ठिउ अवठंभेवि धरणि विट्ठु ।
कों'वि कहवि कउच्छए णरु णिलुक्कु । कों'वि दूरहोज्जें पाणेहि मुक्कु ।
घत्ता । सुग्गीव वले गरुअउ हुअउ हल्लोहलउ ।
णं अंगरें[1] हत्थि पइट्ठव राउलउ ॥३॥...
इत्थतरे किक्किधाहिवेण । पडिबोहणत्थु आमुक्क तेण ।
उम्मोहिउ उट्ठिउ वलु तुरंतु । कहि कुभयण्णु वलु वलु भणंतु ।
घत्ता । सयडम्मुहु पुणुवि पडीवउ धावियउ ।
ण उयहि-जलु महि रेल्लंतु पराइयउ ॥५॥
पर-वलु णियेवि समुत्थरंतु । लंकाहिवेण थरहर-थरंतु ।
करि कड्ढिउ णिम्मल चदहासु । उग्गामिउ णइ दिणयर-सहासु ।
रिउ-साहणें भिडइ ण भिडइ जावँ । सोंडीर-वीर-णर तिण्णि तावँ ।
इंदइ घणवाहण वज्जणक्क । सिर णमिय कियंजलि-हत्थ थक्क ।
"अम्हें हि जीवंतें हि किकरेहिँ । तुहु अप्पणु पहरहि कि करेहिँ" ।
सामिउ सम्माणेवि वद्ध-कोह । तिण्णें वि समरंगणें भिडिउ जोह ।
चंदोयर-तणयहु वज्जणक्कु । घणवाहणु भामडलहों थक्कु ।
इदइ सुग्गीवहों समुहु चलिउ । णं मेरु महोयहि पहहुँ चलिउ ।
घत्ता । णरु णरवरहों तुरयहों तुरय समावडिउ ।
रहु रहवरहों गयहों महग्गउ आविडिउ ॥६॥

---

[1] अग्गहरे

रणरसिकेहिँ वेधा-विद्धएहि । पेल्लेंउ प्रतिपक्ष कपिध्वजेहि ।
नाशइ विहडप्फल गलित-खड्ग । चूरंत परस्पर-चरण-मार्ग ।

(घ) कुंभकर्णका युद्ध

भज्जतउ पेखिय निजय-सैन्य । रावण जयकारहु कुभकर्ण ।
धायउ भयभीषण भीमकाय । जनु रामवलह क्षयकाल आय ।
गरि-सकै न रण-भूमिहि अमाइ । गिरि-मदर-थानहु चलेउ न्याइँ ।
जेंहि जेहि समक्षहु देइ दृष्टि । सोइ सोइ पडै जनु प्रलय-वृष्टि ।
कोइ वाचें कोइ भृकुटिहिँ प्रणष्ट । कोइ ठिउ अवथंभेहि धराविष्ट ।
कोंइ कोइ कटाक्षहिँ नरउ लूकु । कोइ दूरहीँहि प्राणेहिँ मोचु ।

घत्ता । सुग्रीवहु गरुओ हुयो हल्लाहलउ ।
जनु अग्रहारे पइठउ हस्ति राजुलउ ॥३॥..

एहि अन्तर किष्किधाधिपेहिँ । प्रतिबोधनार्थ आमोचु तेहिँ ।
उन्मोहेंउ उठेंऊ वल तुरंत । कहँ कुम्भकर्ण-वलवल भनंत ।

घत्ता । शकट-मुँह पुनि हि प्रतीपउ धावियउ ।
जनु उदधि-जल मही रेल्लंत[1] परायउ ॥५॥

अरवल निजेंहु समुत्थरत । लकाधिपेहिँ थर-थर-थरंत ।
करें काढेंउ निर्मल चद्रहास । उग्गियउ जनू दिनकर-सहस्र ।
रिपु-सेना भिडइ न भिडइ याव । शौडीर-वीर-नर तीन ताव ।
इंद्रजि-घनवाहन-वज्रनाक । शिर नमिय कृतांजलि-हस्त थाक ।
'हम सव जीवंतेहिँ किंकरेहिँ । तुहु अपने प्रहरै किं करेहि ।"
स्वामिय सम्मानेहु वद्ध-क्रोध । तीनौ समरंगणें भिडेंउ योध ।
वद्रोदर-तनयहु वज्रनाक । घनवाहन भामंडलहुँ थाक ।
इन्द्रजि सुगीवहि समुह चलिउ । जनु मेरु महोदधि-मथन चलिउ ।

घत्ता । नर नरवरहुँ तुरयहु तुरय समापडिऊ ।
रथ रथवरहुँ गजहुँ महागज आभिडिऊ ॥६॥

---

[1] रेल-पेल

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध—

किक्किंध-णराहिउ धरिउ जाव । घण-वाहण भामंडलहँ ताव ।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोर । सरि सोत्त स-उत्तरें पहर थोरु ।
छिज्जंत महग्गय गरुअ-गत्तु । णिवडत समुद्धुय-धवल-छत्तु ।
लोट्टंत महारह-हय-रहगु । घुम्मंत-पडंत महातुरग्गु ।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु । णच्चंत कवधउ असि-कर-ग्गु ।
आयामेंवि रणें रोसिय-मणेण । अग्गेउ मुक्कु घणवाहणेण ।
आमेल्लिउ आयउ धगधगतु । अगार वरिसु णहें दक्खवंतु ।
वारुणु विमुक्कु भामंडलेण । ण गिरिहि वज्जु आखडलेण ।
उल्हाविउ जलणु जलेण ज जें । सरु णागवासु पम्मुक्क त जें ।

घत्ता । पुप्फवइ-सुउ दीहर-पवर-महासरेहिँ ।
परिवेंढियउ मलयिदु'व विसहरेहि ॥६॥

—रामायण ६५।१-९

तार मारिच्च साहण सुसेणाहिवा । सुअपचडालि समुच्छ दहिमुह-णिवा ।

घत्ता । अण्णेकहु मि भवणेक्केक्क पहाणहु ।
कि सक्कियउ णाउँ गणेप्पिणु दाणहु ॥८॥

केणवि कोवि दोच्छिउ "मरु सवडम्मुहु थाहि थाहि ।
केणवि कोवि वुत्तु "समरंगणें रहवरु वाहि वाहि ॥"
केणवि कोवि महासर-जालें । छाइउ जिह सुक्कालु दुकालें ।
केणवि कोवि भिण्णु वच्छत्थलें । पडिउ घुलतु णवरि महि-मंडलें ।
केणवि कहोंवि सरामणु ताडिउ । ण हेट्ठामुहु हिअव उपाडिउ ।
केणवि कहोंवि कवउ णिव्वाट्टिउ । वलि जिह दस-दिसेहि आवट्टिउ ।
केणवि कहोंवि महद्धउ पाडिउ । णं मउ माणु मडप्फरु साडिउ ।
केणवि दति-दतु उप्पाडिउ । णावइ जसु अप्पणउ भमाडिउ ।
केणवि भंप दिण्णु रिउ-रहवरें । गरुडें जिह भुयंग-भुअणतरें ।
केणवि कहि'वि सीसु अच्छोडिउ । णं अवराह-रुक्खु-फल तोडिउ ।

(ङ) सुग्रीव और मेघवाहनका युद्ध--

किष्किध-नराधिप धरेंउ याव । घनवाहण भामडलहँ ताव ।
आभिडेंउ परस्पर युद्ध-घोर । शरस्रोत स्व-उत्तरें प्रहर थोर ।
छिद्यत महागज गरुअ-गात्र । निपतत भमुद्धत-धवल-छत्र ।
लोटत महारथ-हय-रथाग । घूमत पडंत महातुरंग ।
टूटत कवच टूटंत खड्ग । नाचत कवधउ असि-करग्र ।
आयामेहु रणें रोषितमनेहिँ । आग्नेय मोचु घनवाहनेहिँ ।
आमेलेंउ आतप धगधगत । अगार वरिसु नभें दग्धवत ।
वारुण विमोचु भामडलेहिँ । जनु गिरिहिँ वज्र आखंडलेहिँ ।
वूझायउ ज्वलन जलेहिँ जो हि । शर नागफास प्रम्मोचु सो हि ।

घत्ता । पुष्पवती-सुत दीरघ-प्रवर-महाशरेहिँ ।
परिवेठेंउ मलयद्रुम'व विषधरेहिँ ॥९॥

--रामायण ६५।१-९

तार मारीच साधन सुसेनाधिपा । सुत प्रचडालि संमूर्छ दधिमुखनृपा ।

घत्ता । अन्नेकहुहि भवने एक एक प्रधानहँ ।
का सक्किय नाम गनाइव राजहँ ।

केहु सँग कोउ दर्शिउ "मर शकटमुंह स्थाहि स्थाहि ।
केहु सँग कोउ कह "समरंगणे रथवर वाहि वाहि ।"
केहु कहँ कोउ महाशर जालें । छापेउ जिमि सुक्काल दुकालें ।
केहु कहँ कोउ भिन्दु वक्षस्थले । पडेंउ घुरत केंवल महिमडले ।
केहु कहँ कोउ शरासन ताडेंउ । जनु हेठामुंह हृदय उपाडेंउ ।
केहु कहँ कोउ कवच निर्वट्टिउ । वलि जिमि दशदिशेहिँ आवट्टिउ ।
केहु कहँ कोउ महाध्वज पातेंउ । जनु मृदु मान'हँकारा साटेंउ ।
कोऊ दंति-दंत उप्पाडेउ । मानों यश आपनो भ्रमाडेंउ ।
कोउ झंप दियेंउ रिपु-रथवरें । गरुडें जिमि भुजंग भुवनंतरे ।
कोऊ काहुहि शीश आछोडिउ । जनु अपराध वृक्ष फल तोडिउ ।

घत्ता। केणवि समरे दिण्णु विवक्खहो हिअउ थिरु।
जीविउ जमहीं गुरु पहरहों सामियहँ सरु ॥९॥

—रामायण ६६।९

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कंठेहि दसजें कठाइँ दस भालहिँ तिलय दस।
दस सिरेहिँ दस मउड पज्जलिय।
दहहिमि कुंडल-जुएहि कण्ण-जुयल-सुकउल मुहलिय।
फुरिउ रयण-सघाउ दसाणण रोसुव। अह थिउ स-नारायणु वहल पऊसु'व।
पढम वयणु खय-सूर समप्पहु। सिदुरारुणु मुरहमि दूसहु।
बीयउ वयणु धवल-धवलच्छउ। पुण्णिम-यद-बिब-सारिच्छउ।
तइयउ वयणु भुयण-भय-गारउ। अगारारुणु मुक्कगारउ।
वयणु चउत्थउ बुह-मुह भासुरु। पचमएण सइजें ण सुर-गुरु।
छट्ठउ सुक्क मुक्क-सकासउ। दाणव-वक्खिवउ सुर-सतासउ।
सत्तमु कसणु सणिच्छरु भीसणु। दतुरु वियडु दाढु दुद्दरिसणु।
अट्ठमु राहु-वयणु विकरालउ। णवमउ धूमकेउ धूमालउ।
दसमउ वयणु दसाणणकेरउ। सव्व-जणहों भय-दुक्ख-जणेरउ।
घत्ता। वहु-रूवउ वहु-सिरु वहु-वयणु, वहु-विह-कवोलु वहु-विह-णयणु।
वहु-कठउ वहु-करु वि वहु-पउ, ण णट्ठ-पुरिसु रसभाव गउ ॥८॥
ते णिएप्पिणु णिसियरिंदस्स सीसइ णयणइ मुहइं'पहरणाइँ रयणीयर भीसणु।
आहरणइ वच्छयलु राहवेण पुच्छिउ विहीसणु।
"किं तिकूड सेलोवरि दीसइ णव-घणु। देव देव! एँहु रहें थिउ रावण।
किं गिरि-सिहरडें, णहि दीसराइँ। ण ण आयइँ दससिर-सिराइँ।
किं पलय-दिवायर-मंडलाइँ। णं णं आयइँ मणि-कुंडलाइँ।
किं कुवलयाइँ माणस-सरहों। णं णं णयणइँ लंकेसरहों।
किं गिरि-कंदरइँ भयाणणाइ। णं णं दह-वयणें दसाणणाइँ।
किं सुर-चावइ चाउत्तिमाइ। ण णं कंठाहरणइँ इमाइँ।
किं तारा-यणइँ तणुज्जलाइँ। णं णं धवलइँ मुत्ताहलाइँ।

घत्ता। काहुहिँ समरे दीन विपक्षहँ हृदय थिर।
जीवित जमहु पुर प्रहरहु स्वामियहँ शिर ॥९॥

—रामायण ७४।९

(च) रावणका शरीर

दसहिँ कठे दसहु कंठा दस भालहिँ तिलक दस।
दस सिरेहिँ दस मुकुट प्रज्वलिय।
दसहि'पि कडल-युगेहिँ कर्ण-युगल-शुक-कुल-मुखरिय।
स्फुरे'उ रत्ननसंघात दशानन रोषि'व।
अथ थिउ स-नारागण वहल प्रदोषि'व।
प्रथम वदन क्षय-शूर समर्पहु। सिदुर-अरुण सुरथउ दुस्सहु।
दूसर वदन धवल-धवलाक्षउ। पूर्णिम-चद्रविव-सारिक्खउ।
तीसर वदन भुवन-भयकारउ। अगारारुण मोचु अँगारउ।
वदन चतुर्थउ वुध-मुख-भासुर। पंचम स्वयं एव जनु सुरगुरु।
छट्ठउ शुक्ल-शुक्र-सकाशक। दानव-पक्षिक सुर-संत्रासक।
सत्तम कृष्ण शनिश्चर भीषण। दंतुर विकट-दाढ दुर्दर्शन।
अष्टम राहु-वदन विकरालउ। नवमउ धूमकेतु धूमालउ।
दसमउ वदन दसाननकेरउ। सर्वजनन्ह भय-दुःख-जनेरउ।
घत्ता। वहु-रूपउ वहु-शिर वहु-वदन, वहु-विध कपोल वहु-विध नयन।
वहु-कंठउ वहु-करहु वहु-पद, जनु नट्ट-पुरुष रसभाव गयउ ॥८॥
सो निजेही निश्चरेन्द्र कर सीसैँ नयनैँ मुखैँ प्रहरणैँ रजनीचर भीषण।
आभरणैँ वक्षतल राघवेहिँ पूछेँउ विभीषण ॥
"का त्रिकूट शैलोपरि दीसै नवघन ?" "देव देव ! एहु रथेँ हौ रावण।"
"का गिरि-शिखरा नहि दीसराइँ ?" "ना ना अहँ दससिर-सिराइँ।"
"का प्रलय-दिवाकर-मंडलाइँ। ?" "नाना अहैँ मणि-कुडलाइँ।"
"का कुवलयाइँ मानससरहू ?" "ना ना दशवदने दस आननहू।"
"का सुर-चापा चापोत्तमहू ?" "नाना कंठाभरणा एहू।"
"का तारा-गणइँ तनुज्वलाइँ ?" "ना ना धवलइँ मुक्ता-फलाइँ।"

कि कसणु विहीसण गंयण-पलु । ण णं लंकाहिव वच्छ-यलु ।
किं दिसवे यंड-सोंड-पयरो । ण ण दहकंधर-कर-णियरो ।
घत्ता । त वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण, लोयणइँ विरिल्लेँवि तक्खणेण ।
अवलोइउ रावणु मच्छरेण, णं रासि-गयेण सणिच्छरेण ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करेँ केरप्पिणु सायरावत्तु थिउ लक्खणु ।
गरुड-रहे गारुडत्थु गारुड-मद्धउ ।
वलु वज्जावत्तु धरु सीह चिधु वर-सीह-सदणु ।
गयवि हत्थु गय-रह-वरु पमय महद्धउ ।
विप्फुरंतु किक्किधा-हिउ सण्णद्धउ ।. . . . . .
घत्ता । सण्णहे'वि पासु ढुक्कउ वलहोँ, अक्खोहणि वीससयइँ वलहोँ ।
विरएवि वूहु मचल्लियइँ, ण उयहि-मुहइ उत्थाल्लियइ ॥१०॥

घुट्टु कलयलु दिण्ण रणभेरि चिधाइ सम्मुब्भियइँ,
लइय कवय-किय-हेइ-सगहे ।
गय-घडउ पचोइयउ मुक्क-तुरय-वाहिय-महारहा,
राम-सेण्णु रण-रहसियउ ।
कहिमि ण माइउ जगु गिलेवि,
ण परवलु गिलइ पधाइयउ ।
अब्भिट्टु जुज्झु रोमिय-मणाहुँ । रयणीयर-वाणर-लक्खणाहुँ ।
उमरिय मख-मय-मघडाहुँ । रण-वहु फेडाविय मुह-वडाहु ।
उद्धकुस-धाइय गय-घडाहुँ । खर-पवण'दोलिय धय-वडाहुँ ।
कपाविय मयल-वसुधराहुँ । रोसाविय आसीविसहराहुँ ।
मेल्लाविय णयणहु वासणाहुँ । संजलिय दिसामुहु इंधणाहुँ ।
जय-लच्छि-वहुअ-गेण्हण-मणाहु । जूराविय सुर-कामिणि-जणाहु ।
उग्गामिय भामिय असि-वराहु । णिव्वट्टिय लोट्टिय हय-वराहु ।
णिद्दलिय कुभ कुभत्थलाहु । उच्छलिय धवल-मुत्ताहलाहु ।

"का कृष्ण विभीषण गगन-तला ?" "ना ना लंकाधिप वक्षतला।"
"का दीसइ चउ शौड प्रकरो ?" "ना ना दसकधर कर-निकरो।"

घत्ता। सो वचन सुनीयउ लक्ष्मणेहिं, लोचनहिं विरक्तेंउ तत्क्षणेहिं।
अवलोकेंउ रावण मत्सरेहिं, जनु राशिगतेहिं शनिश्चरेहिं ॥९॥

(छ) लक्ष्मण-रावण युद्ध—

करे करवाल सागरावर्त्त ठाढो लक्ष्मणु।
गरुड-रथै गरुडास्त्र गारुडा-मूर्धउ।
वल वज्रावर्त्त धरु सिहचिन्ह वरसिह-स्यदनु।
गजहि हस्त गज-रथ-वर प्रमद महाध्वज।
विस्फुरत किष्किधाधिप सन्नद्धउ।..

घत्ता। सन्नाहि'व पार्श्व ढुकै वलहु, अक्षोहिणि वीस-सौ वलहु।
विरचि व्यूह सचल्लिय, जनु उदधिमुखड उच्छल्लिय ॥१०॥

घुष्टु कलकल दीनु रणभेरि चिन्हैं उठियाइं,
लेइ कवच किय-हेति-सग्रहा।
गज-घटउ प्रप्ररियउ मोचु तुरग वाहेंउ महारथा,
रामसैन्य रण-रहसियऊ।
कहिंहु न अमायउ जगें निगलि,
जनु परवल निगलै धाइयऊ॥
आरब्धु युद्ध रोषितमनाहें। रजनीचर-वानर-लाछनाहें।
अपसरिय शख-शत-संघटाहें। रण-वधु फेंराविय मुख-पटाह।
ऊर्ध्वंकुश धाइय गजघटाह। खर-पवनादोलिय ध्वजपटाह।
कपाविय सकल वसुधराह। रोषाविय आशीविषधराह।
मलाविय नयनहुँ वासनाह। संज्वलिय दिशामुख इधनाह।
जय लक्ष्मि-वधुग्र-ग्रहणन-मनाह। झूराविय सुरकामिनि-जनाह।
उट्ठाविय भ्रामिय असिवराह। नीवत्तिय लोट्टिय हयवराह।
निर्दलिय कुभ कुभस्थलाह। उच्छलिय धवल-मुक्ताफलाह।

घत्ता । भड-थड गय-घडेहिँ भिडंतएहिँ, रह-तुरयहिँ तुरिउ भिडंतएहिँ ।
रयणियरु समुट्ठिउ भत्तिकिह, णिय- कुलु मइलंतु दुपुत्तु जिह ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाउ सुट्ठु समरंगणु दूसंचारउँ । तहि' मि केवि पहरंति स-साहुक्कारउँ ।
केहिमि करि-कुभइ परमट्ठइ । णं संगम-सिरिहे थण वट्टइँ । . . .
केहिमि लइयइ पर-वल-छत्तइँ । ण जयसिरि-लीला-सयवत्तइँ ।
केहिमि चक्खु पसरु अलहंतेहिँ । पहरिउ वाला लुचिकरंतेहिँ ।
केण' वि खग्ग-लट्ठि-परियट्टिय । रण-रक्खसहो जीहे ण कड्ढिय ।
केण'वि करि-कुभत्थलु पाडिउ । ण रण-भवण-वारु उग्घाडिउ ।
कत्थइ सुसुमूरिय असि-धारेहिँ । मोत्तिय-दंतुरु हसियउ अहरेहिँ ।
कत्थइ रुहिर-पवाहिणि धावइ । जाउ महाहउ-पाउसु णावइ ।
घत्ता । सोणिय-जल-पहरणग्गिरेहि'व, सुहतराल णह-यल-गएहिँ ।
पज्जलइ वलइ धूमाइ रयणु, णं जुग-खय-काले कालवयणु ॥१२॥
—रामायण ७४।१२

हे णरणाह ! णेह अच्छरियउ । पर-वलु पेक्खु केम जज्जरियउ ।
रुड-णिरंतरु सोणिय चच्चिउ । णाणा विह-विहंग-परिअचिउ ।
कोवि पयड-वीरु बलवंतउ । भमइ कियतु वरिउ जगडतउ ।
गय-घड भड-थड सुहड वहंतउ । करि-सिर कमल-सडु तोडतउ ।
रोक्कउ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । ण खय-कालु समरे परिसक्कइ ।
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेहएँ समरे सूरहँमि भज्जंति मइ ।
गय-गिरिवरेहि ताव समुट्ठिय रुहिर-णइ ॥२॥
गय-वर-गडसेल-सिहर'ग्ग-विणिग्गय णइ तुरंतिया ।
उद्धुव धवल छत्त-डिंडीरु समुव्वहंतिया ।
पवरोज्झर-सोणिय-जल-पवाह । करि-मयर-तुरंगम-णक्क-गाहु ।
चक्कोहर मंदण संसुमार । करवाल मच्छ परिहच्छ चार ।

घत्ता । भटठट-गजघटेहिँ भिडंतएहि, रथ-तुरंगहिँ तुरिय भिडंतएहिँ ।
रजनिचर समुट्ठेउ भट्ट किमि, निजकुल मैलंत दु-पुत्र जिमि ॥११॥
—रामायण ७४।८-११

(८) रण-क्षेत्र

जाव सुष्टु समरंगण दुःसंचारा । तहँहि कोइ प्रहरंति स-साधुक्कारा ।
कोऊहि करिकुभैँ परिमीँजै । जनु संग्राम-श्री स्तन-वट्टै ।
कोऊ लेइय पार-बल छत्रहिँ । जनु जयश्री-लीला शतपत्रहिँ ।
कोऊ चक्षु-प्रसर अलभता । प्रहरेउ वाला-लुचि करंता ।
कोऊ खड्ग यष्टि परि-काढिय । रण-राक्षसहँ जीभ जनु काढिय ।
कोऊ करिकुम्मस्थल पाटेँउ । जनु रण-भवन-द्वार उग्घाटेउ ।
कहि कहि मुठि काटिय असिधारेहिँ । मौक्तिक-दतुरु हसियउ अधरेहिँ ।
कहिँ कहिँ रुधिर प्रवाहिणि धावै । याव महाहव-पावस आवै ।
घत्ता । शोणित जल-प्रहरणाग्रेहि इव, सुखतराल नभतल गतेहिँ ।
प्रज्वलै बलै धूमै रतन, जनु युगक्षयकाले कालवदन ॥१२॥
—रामायण

हे नरनाथ ! नेह आश्चर्यउ । पर-बल पेखु केम् जर्जरियउ ।
रुड निरंतर शोणित-चर्चित । नानाविध विहंग परि-अर्चित ।
कोइ प्रचंड वीर-बलवंता । भ्रमै कृतांत-वरेँउ झगडंता ।
गज-घट भट-ठट सुभट वहंता । करि-शिर-कमलषंड-तोडंता ।
रोकै कोकै ढूकै थाकै । जनु क्षयकाल समरेँ परिसक्कै ।.....
—रामायण २५।१८

घत्ता । तेही समरे सूरहुँहि भज्जत ।
गज-गिरिवरेहिँ तव अमुट्ठिय रुधिरनदी ॥२॥
गजवर-गंड शैल शिखराग्र-विनिर्गत नदी तुरंतिया ।
उद्धुत-धवल-छत्र-डिंडीर-समुद्-वहंतिया ।
प्रवरोज्झर-शोणित-जलप्रवाह । करि, मकर, तुरंगम नाक-ग्राह ।
चक्कोधर स्यंदन शिशुमार । करवाल, मच्छ-परिहस्त चार ।

मत्तेभ-कुंभ-भीसण-सिलोह । सिय-चमर-वलाया-पति सोह ।
तंण्णइ[1]तरेवि केँवि वावरंति । वुड्डुति केवि केँवि उव्वरंति ।
केँवि रय-धूसर केवि रुहिर-लित्त । केँवि-हत्थ हडएँ-विहुणे विधित्त ।
केँवि लग्ग पडीवादंत-मुसलेँ । णं धत्तु विलासिणि-सिहिण-जुअलेँ ।
केँवि णियय विमाणहोँ झप देति । णहेँ णिवडेँवि वइरिहि सिरइ लेति ।
तहिँ तेहए रणेँ सोणिय-जलेण । रउ सोसिउ सज्जणु जिह खलेण ।
—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जं राम-सेण्णु णिम्मल-जलेण । संजीवेँउ संजीवणि-वलेण ।
तं वीरेहि वीर-रसाहिएहि । वग्गतेँहि पुलय-पसाहिएहि ।
वज्जतेँहि पडहेँहि मद्दलेहि । गिज्जतेँहि धवलेँहि मगलेहि ।
णच्चंतेहि खुज्जय-वावणेहि । जज्जरिय पढते वभणेहि ।
गायतेँहि अहिणव-गायणेहि । वायतेँहि वीणा-वायणेहि ।
—रामायण ६६।२०

तो खर-णहर-पहर-धुव-केसर केसरि-जुत्त-सदणो ।
धवल-महद्धउ समुद्धायउ दसरह-जेट्ठ-णदणो ।।
जस-धवल-धूरि-धूसरिय-अगु । धवलंवरु धवला वर-तुरंगु ।
धवलाणणु धवल-पलब-वाहु । धवलामल-कोमल-कमल-णाहु ।
धवलउ जेँ सहावेँ धवल-वंसु । धवलच्छि-मरालिहेँ राय-हंसु ।
धवलाहँ लवलु धवलायवत्तु । रहु-णदणु दणु-पहरतु पत्तु ।
—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चंद-हासाउहेण । हक्कारिउ लक्खणु दह-मुहेण ।
लइ पहरु पहरु कि करहि खेउ । तुहु एक्केँ चक्केँ सावलेउ ।

---

[1] वं नइ

मत्तेभ-कुंभ-भीषण-शिलोघ । सितचमर वलाकापंक्ति सोह ।
सो नदी तरन कोउ व्यापरंति । बूडंति कोइ कोंइ ऊवरंति ।
कोंइ रजधूसर कोंइ रुधिर-लिप्त । कोंउ हाथहरे विहुणेउ-घित्त ।
कोंइ लाग प्रतीपा दंत-मुसले । जनु धूर्त्त विलासिनि-स्तन-युगले ।
कोंइ निजह विमानहँ झंप देति । नभें निपतिय वैरिहि शिरहिं लेति ।
तहँ तेहि रणे शोणित-जलेहिँ । रज मोखें उ सज्जन जिमि खलेहिँ ।
—रामायण ६६।३

(९) विजयोत्साह

जो राम-सैन्य निर्मल-जलेहिँ । संजीवें उ मजीवनि-बलेहिँ ।
सो वीरेहिँ वीरग्गमाधिकेहि । वल्गंतें हि पुलक प्रसाधितेहिँ ।
वाजते पटहें हिँ माँदलेहिँ । गीयतें हि धवलें हिँ मगलेहिँ ।
नाचते कुब्जक-वामनेहिँ । चर्चरी पढतेहिँ ब्राह्मणेहिँ ।
गायंते अभिनव-गायनेहिँ । वाजतेहिँ वीणावादनेहिँ ।
—रामायण ६६।२०

तो खर-नखर-प्रहर धुत केसर केसरियुक्त-स्यदनेहिँ ।
धवल-महाध्वज फहरायेउ दशरथ-ज्येष्ठ-नदनेहिँ ।
यश-धवल-धूरि-धूसरित अग । धवलावर धवला वरतुरग ।
धवलानन धवल-प्रलव-वाह । धवलामल-कोमल-कमल-नाभ ।
धवलहुहि स्वभावे धवल-वश । धवलाक्ष-मरालिहें राजहस ।
धवला लवण्य धवलातपत्र । रघुनदन दनु-प्रहरत प्रप्त ।
—रामायण ७५।७

(१०) लक्ष्मणके हाथों रावणकी मृत्यु

तो गहिय चद्रहासायुधेहिँ । हक्कारेउ[1] लक्ष्मण दशमुखेहिँ ।
ले प्रहरु प्रहरु का करहि क्षेप । तुह एको चक्को सावलेप ।

---

[1] पुकारेउ (मैथिली, भोजपुरी, मगही)

महु पइ पुणु आयं कवणु गण्णु । किं सीह(हि) होइ सहाउ अण्णु ।
तं णिसुणेंवि विप्फुरियाहरेण । मेल्लिउ रहंगु लच्छीहरेण ।
घत्ता । उअयइरिहें णं अत्थइरि गउ, सूर-बिंबु कर-मंडियउ ।
सइँ मुएँहि हणंतहों दहमुहहों, मंड-उरत्थलु खंडिअउ ॥२२॥
—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम-)सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसंतें वल-णारायणेण । ववचालिय णायरिया-णणेण ।
एँहु सुदरि ! सोक्खुप्पायणहो । अहिरामु रामु रामायणहो ।
एँहु लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु । जो रावण-रावण-पलयकरु ।
एँहु भामंडलु भाभूसभुउ । वइदेहि-सहोयरु जणय-सुउ ।
एँहु किक्किधाहिउ दुद्दरिसू । तारा-वइ तारावइ-सरिसू ।
एँहु अगउ जेण मणोहरिहे । केसग्गहु किउ मंदोयरिहे ।
एँहु सुर-वर-करि-कर-पवर-भुउ । णदण-वण-मद्दण पवण-सुउ ।
—रामायण ७८।९

(२) विभीषणद्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दोव-जल-क्खय-गहिअ-करा । गय तहिँ जहि हलहर-चक्कहरा ।
आमीमेंहि मेमहि पणवणेहिँ । जय णंद वद्ध वद्धावणेहिँ ।
उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मगलेहिँ । पडु-पडहहिँ सखेंहिँ मंदलेहिँ ।
कइ-कहएँहिँ णउ-णट्टावएहिँ । गायण-वायण-फंफावएहिँ ।
णर-णायर-वंभण-घोसणेहि । अवरेंहिँमि चित्त-परिऊसणेहिँ ।
—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमणें भरहु णीसरियउ । हय-गय-रह-णरिंद-परियरिउ ।
अण्णे तहि मत्तुहणु स-वाहणु । स-रह सु-सालंकारु सु-साहणु ।

मम तैं पुनि आहि कवन गण्य । का सिंहह होउ स्वभाव अन्य ।
सो सुनिया विस्फुरिताधरेहिं । मेलेंउ रथांग लक्ष्मीधरेहिं ।
घत्ता । उदयगिरिहिं जनु अस्तगिरि गउ, सूरबिब-कर-मंडियऊ ।
स्वयं मृतहि हनंतहु दशमुखहु, मंडउरस्थल खंडियऊ ॥२२॥

—रामायण ७५।२२

६. विजय

(१) विजयिनी (राम) सेनाका लंकामें प्रवेश

पइसते वल-नारायणेहि । व्यवचालिय नागरिका-ननेहि ।
एँहु सुदरि ! सौख्य-उपायनहू । अभिराम राम रामायणहू ।
एँहु लक्ष्मण लक्षण-लक्ष-धरु । जो रावण रावण प्रलय-करू ।
एँहु भामडल भाभूषभुतू । वैदेहि-सहोदर जनकसुतू ।
एँहु किष्किधाधिप दुर्दर्शू । तारा-पति तारापति-सरिसू ।
एँहु अगद जानें मनोहरिहा । केश-ग्रह किउ मंदोदरिहा ।
एँहु सुरवर-करि-कर-प्रवर-भुजू । नदन-वन-मर्दन पवनसुतू ।

—रामायण ७८।६

(२) विभीषण द्वारा लंकामें रामका स्वागत—

दहि-दूबि-जल-आक्षत गहिय-करा । गा तहँ जहँ हलधर-चक्रधरा ।
आशीषेहिं शेषहिं प्रनमनहीं । "जय नंद वर्ध" बद्धावनहीं ।
ऊछाहेहिं धवलेहिं मंगलेहिं । पटु पटहेंहिं शखेंहिं माँदलेहिं ।
कवि-कथनेहिं नट-नट्टावनहीं । गायन-वादन-फप्फावयहीं ।
नर-नागर-ब्राह्मण घोषणहीं । औरेंहिउ चित्त-परितोषणहीं ।

—रामायण ७८।१२

(३) भरत द्वारा अयोध्यामें रामका स्वागत—

रामागमनें भरत नीसरेंऊ । हय-गज-रथ-नरेन्द्र परिचरेंऊ ।
अन्यहु तँह शत्रुहन सवाहना । स-रथ स-स्वालंकार सु-साधना ।

छत्त-विमाण-सहासइ धरियइँ । अवरें रवि-किरणइ अतरियइं ।
तूरइ हयइँ कोडि-परिमाणें हिं । दुदुहि दिण्ण गयणें गिव्वाणें हिं ।
जणवउ णिरवसेसु संखुब्भइ । रह-गय-तुरयहिं मग्गु ण लब्भइ ।
णिवडिय एक्कमेक्क भिडमाणेहिं । पेल्ला-वेल्लि जाय जंपाणहि ।
घत्ता । केक्कय-सुएण णमतएण, सिरुरुहु चलणंतरें कियउ ।
दीसइ विहि रत्तुप्पलहँ, णीलुप्पल-मज्झे णाइ थिअउ ॥१॥
जिह रामहों तिह णमिउ कुमारहों । अतेउरहों पहोलिर हारहों ।
वल्लेंण वलुद्धरेण हक्कारेंवि । सरहस णिय-भुय-दड पसारेंवि ।
अवरुंडिउ मायरु वहु-वारउ । मत्थएं चुंबिउ पुणु मयवारउ ।
मय-वारउ उच्छंगें चडावि उ । मय-वारउ भिच्चहु दरिसावि उ ।
मय-वारउ दिण्णउ आसीसउ । वरिस सरिस हरिसमु विसीसउ ॥
—रामायण ७६।१-२

जयजयकारु करतें हि लोएँहिं । मगल-धवलु-च्छाह पऊएँहिं ।
अइहव मेसासीस महामेहिं । तारय-णिवह-छडा-विण्णासेहिं ।
दहि-दोवा-दप्पण-जल-कलसें हिं । मोत्तिय-रगावलि णव-कणिसें हिं ।
वंभण-वयणु'ग्घोसिय वेएँहिं । कंडिअ जज्जरिव्व' सम-भेएहिं ।
णड-कइ-कहय छत्त-फफावें हि । लक्खिय तारारोंहणु विहावें हि ।
भट्टें हिं वयणु'च्छाह पढतें हि । वायाली स-विसर सुमरतें हि ।
मल्ल-प्फोडण-सरें हि विचित्तें हि । इदयाल-उप्पाइय चित्तें हिं ।
मद फंद वदें हिं कुदेतें हि । डोम्बें हि वंसारोंहण करतें हि ।
घत्ता । पुरें पइसंतहों राहवहों, णट्ट-कला-विण्णाणइ केवलइँ ।
दुदुहि ताडिय सुरें हि णहों, अच्छरेहि'मि गीयइ मगलइं ॥४॥
—रामायण ७६।८

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सयल सुरासुर दिण्ण पसहों । अज्ज अमगलु रक्खस-वसहों ।
खल-खुद्दहुँ पिसुणहुँ दुवियड्ढहु । अज्ज मणोरह सुरवर सड्ढहु ।

छत्र-विमान-सहस्सें धारिया । अवरें रविकिरणहं अन्तरिया ।
तूर्य हनें (हिं) कोटि परिमाणा । दुदुभि दियें उ गगनें गीर्वाणा ।
जनपद निर्विशेष सक्षुब्धा । रथ-गज-तुरगहिं मार्ग न लब्धा ।
निपतें उ एकमेक भिडमाना । पेलापेलि जायें भम्पाणा ।
घत्ता । केकयि-सुतहिं नमतएहिं, शिररुह चरणतरें कियउ ।
दीसें विधि-रक्तोत्पलहँ, न्याइँ नीलोत्पल माँझे ठियउ ॥१॥
जिमि रामहँ तिमि नमें उ कुमारहु । अतःपुरहु प्रभोलिर हारहु ।
वलें हि वलुद्धरेहिं हक्कारिय । स-रभस निज-भुजदण्ड पसारिय ।
अवलिंगिउ माता वहु वारा । माथे चुवें उ पुनि शतवारा ।
शतवारउ उत्संगें चढाइउ । शतवारउ भृत्यहँ दरसाइउ ।
शतवारउ दीनें उ आशीषा । वरिस-सरिस हरि सं मुविभीषा ।

—रामायण ७९।१-२

जयजयकार करतेहिं लोगें हिं । मंगल-धवल-उच्छाह प्रयोगें हिं ।
अतिभव शेषाशीष-सहस्सें हिं । तारक-निवह-छटा-विन्यासें हिं ।
दधि-दूर्वा-दर्पण-जलकलशें हिं । मौक्तिक रंगावलि नवमँजरिहिं ।
ब्राह्मण-वदन-उद्घोषिय वेदहिं । कंडिक चर्चरि इव समभेदहिं ।
नट-कवि कथें छत्र फहरावें । लखियत तारारुहण विभावें हिं ।
भाटें हिं वचन-उच्छाह पढंतें हिं । वैतालिक विसार सुमरतें हिं ।
मल्ल-स्फोटन-शरेहिं विचित्रें हिं । इंद्रजाल-उत्पादित चित्तें हिं ।
मंद फद वदें हि कूदतें हि । डोमें हिं वशारोह करतें हि ।
घत्ता । पुरि पइसंतहँ राघवहँ, नाट्यकला विज्ञानइँ केवलइँ ।
दुदुभि ताडित सुरें हिं नभहु, अप्सरेहि उ गाइय मंगलाइँ ।

—रामायण ७९।४

(४) शत्रु-वीरकी प्रशंसा

वीर रावण—

सकल-सुरासुर दीन प्रशंहि । आज अमंगल राक्षस-वशहिं ।
खल-क्षुद्रहु पिशुनहु दुर्विदग्धहु । आज मनोरथ सुरवर सिद्धहु ।

दुद्दुहीं बज्जहु गज्जइ सायरु । अज्ज तवउ सच्छदु दिवायरु ।
अज्जु मियकु होउ पहवंतउ । वाउ वाउ जगि अज्जु सइत्तउ ।
अज्जु धणउ धणरिद्धि णियच्छउ । अज्जु जलतु जलणु जगें अच्छउ ।
अज्जु जमहों णिव्वहउ जमत्तणु । अज्जु करेउ इंदु इंदत्तणु ।
अज्जु धणहु पूरंतु मणोरहु । अज्जु णिरग्गलु होंतु महागहु ।
अज्जु पफुल्लउ फलउ वणासइ । अज्जु गाउ मोक्कलउ सरासइ ।

—रामायण ७६।४

जो भुवणा-हिंदोलणा, वइरि-समुद्द-विरोलणा ।
सुर-सिंधुर-कर-वंधुरा, परिअट्टिय रणभरधुरा ।।
जे थिर थोर पलंव-पईहर । सुहि मंभीस वीस-पहरण-धर ।
जे वालत्तणें वालक्कीलइ । पण्णय-मुहें हि छुहंतउ लीलइ ।
जे गंधव्व-वावि-आडंभण । सुर-सुदरि-वुह-कणय-णिरुंभण ।
जे वइ सवण-रिद्धि-विब्भाडण । तिजग-विहूसण गय-मय-साडण ।
जे जम-दंड-चड-उद्दालण । स-वसुधर कइलासु[1]च्चालण ।
जे महाम-यर मडफर-भजण । णलकुव्वर[1]-गोहिणि-मण-रजण ।
जे अमरिंद-दप्प-ऊहट्टण । वरुण-णराहिव-वल-दल-वट्टण ।

—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिये

रोवंतें हें दसरह-णंदणेण । धाहाविउ सव्वे परियणेण ।
दुक्खाउरु रोवइ सयलु लोउ । णं चप्पिवि चप्पें वि भरिउ सोउ ।

---

[1] कुवेर (वैश्रवण)-पुत्र

दुदुभि वाजै गरजै सागर। आज तपउ स्वच्छंद दिवाकर।
आज मृगाक होउ प्रभवंता। वायु वाहु जग आज स्वतंत्रा।
आज धनप धन-ऋद्धि नियच्छउ[1]। आज ज्वलंतु ज्वलन जग अच्छउ।
आज यमहु निर्वहउ यमत्त्वा। आज करेउ इंद्र इंद्रत्वा।
आज धनहु पूरतु मनोरथ। आज निरर्गल होंतु महाग्रह।
आज प्रफुल्लउ फलउ वनस्पति। आज गाउ परिमुक्त सरस्वति।
—रामायण ७६।४

जो भुवना हिंदोलना, वैरिसमुद्र-विरोलना।
सुरसिधुर करवंधुर, परिआ-ठिउ रणभरधुरा॥
जो थिर थोर प्रलंवपती-हर। सुखि भीडंत बीस-प्रहरणधर।
जो वालत्वेहि वालक्रीडइ। पन्नग-मुखेहिँ छवंता लीलइ।
जो गंधर्व-वापिया-गाहन। सुर-सुदरि बुधकनक निरूपण।
जो वैश्रवण-ऋद्धि-विभ्राटन। त्रिजग-विभूषण गज-मद-शाटन।
जो यमदंड-चड-उद्दारण। स-वसुधर कैलाश-उच्चारन।
जो सहस्रकर-गर्व-विभजन। नलकूवर-रोहिनि-मनरंजन।
जो अमरेंद्र-दर्प-अवघट्टन। वरुण-नराधिप-वल-दल-वंटन।
—रामायण ७७।१०

७. विलाप

(१) नारी-विलाप

(क) अयोध्याके अन्तःपुरका लक्ष्मणके लिए

रोवते दशरथ-नंदनहीँ। धाहावेउ[1] सर्व परिजनहीँ।
दुःखाकुल रोवै सकल लोक। जनु चप्पे चप्पे भरेँउ शोक।

---

[1] देउ

रोवइ भिच्च-यणु ममुद्द-हत्थु । ण कमल-सडु हिम-पवण-घत्थु ।
रोवइ अतेउरु मोयवुण्णु । णं(स)ज्जमाणु सख-उलु चुण्णु ।
रोवइ अवरा इव रामजणणि । केक्कय दाइय तरु-मूल-खणणि ।
रोवइ सुप्पह विच्छाय जाय । रोवइ सुमित्त सोमित्ति-माय ।
हा पुत्त पुत्त ! केत्तहि गउसि । किह सत्तिएँ वच्छत्थलें हउसि ।
हा पुत्त ! मरतु म जो हउसि । दइवेण केण विच्छो इउसि ।

घत्ता । रोवतिएँ लक्खण-मायरिएँ, मयल लोउ रोवावियउ ।
कारुण्णइ कव्व कहाएँ जिह, कोव ण अमु मुआवियउ ॥१३॥

—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । ताव दसाणणु आहयणें पडिउ सुणेवि सदोरु[1] सणेउरु ।
धाइउ मंदोयरि-परमुह, धाहावंतु सयलु अतेउरु ॥४॥

दुम्मणु दुक्ख-महण्णवें घित्तउ । पिउ-विऊय जालोलिय-लित्तउ ।
मोक्कल-केस विमंठुल-गत्तउ । विहडप्फडु णिवडंतु'द्धतउ ।
उद्ध-हत्थु उद्धाहावतउ । असु-जलेण वसुह सिचंतउ ।
णेउर-हार-डोर गुप्पतउ । चदण-च्छड-कद्दमें खुप्पतउ ।
पीण-पऊहर-भारक्कतउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जंतउ ।
णं कोइल-कुलु कहिमि पयट्टउ । णं गणियारि-जूहु विच्छुट्टउ ।
णं कमिलिणि वणु थाणहो चुक्कउ । णं हसि-उलु महासर मुक्कउ ।
कलुण-सरेण रसंत पधाइउ । णिविसें रण-धरित्ति सपाइउ ।

घत्ता । हय-गय-भड-रुहिरारुणिय, समर-वसुंधर मोह ण पावइ ।
रत्तउ परिहवेवि पंगुरेवि, थिय रावणु अणुमरणें णावइ ॥५॥...

तहि दहवयणु दिट्ठु वहुवाहउ । कप्पतरु'व्व पलोट्टिय साहउ ।
रज्ज-गय-लवण-खभु' च्छिण्णउ ।.....

---

[1] कटि-आभूषण सुवर्ण डोरी

रोवै भृत्यगण उठाइ हाथ । जनु कमल-षड हिमपवन-प्राप्त ।
रोवै अन्तपुर शोकपूर्ण । जनु सज्जमान शंख-कुल-चूर्ण ।
रोवै औरहिँ इव रामजननि । केकयि दापित तरुमूल-खननि ।
रोवै सुप्रभ विच्छाय जाय । रोवै सुमित्रा सौमित्र-माय ।
हा पुत्र पुत्र ! कहँवा गओसि । किमि शक्तिहिँ वक्षस्थलें हतोसि ।
हा पुत्र ! मरत न जोयोसी । दैवेहिँ किमि विच्छोहेओसी ।
घत्ता । रोवंती लक्ष्मण-महतारी, सकल लोक रोवावियऊ ।
कारुण्यइ काव्यकथाइ जिमि, को ना अश्रु मुचावियऊ ॥१३॥

—रामायण ६९।१३

(ख) रावण-परिजन-विलाप

घत्ता । तब्ब दशानन आहवें पडेंउ, मुनिय स-डोर स-नूपुर ।
धाइउ मदोदरिप्रमुखा, धाहावत सकल-अत.पुर ॥४॥
दुर्मन दुःख महार्णव क्षिप्तउ । प्रिय-वियोग-ज्वालोलिय-लिप्तउ ।
मुक्तहु केश विसस्थुल[1]-गात्रउ । हडवडत निपतत उद्भ्रातउ ।
ऊर्ध्वहस्त उद्-धाहावतउं[2] । अश्रुजलेंहिँ वसुधा सिचतउ ।
नूपुर-हार डोर गोप्यतउ । चदन-छट-कर्दम मेटंतउ ।
पीन-पयोधर-भाराक्रान्तउ । कज्जल-जल-मल मइलिज्जतउ ।
जनु कोकिल-कुल कथा-प्रवृत्तउ । जनु गजियार-यूथ-विच्छुट्टउ ।
जनु कमलिनि-वन थानहँ चूकउ । जनु हसीकुल महसर मुचउ ।
करुण-स्वरेहिँ रमत प्रधायेंउ । निमिषें रणधरित्रि संप्रापेंउ ।
घत्ता । हय-गज-भट-रुधिरारुणित, समर-वसुधर सोइ न पावै ।
रक्तउ परिभवेहु अंकुरेंउ, ठिउ रावण अनुमरणें न आवै ॥५॥

तहँ दशवदन दीस वहुवाँहा । कल्पतरू इव लोटिय शाखा ।
राज्यगज-आलान-खभ[3] च्छिन्नउ । . . . . . .

---

[1] अस्तव्यस्त [2] धाड मारती [3] हाथी बांधने का खंभा

घत्ता। दह दियहाइ स-रत्तियइँ, जं जुज्झंतु ण णिद्दएँ मुत्तउ।
तेण चक्कु सेज्जहि चडेँवि, रण-वहुअएँ समाणु णं सुत्तउ ॥६॥...
घत्ता। णिएँवि अवत्थ दसाणणहोँ, हा हा सामि भणंतु सवेयणु।
अतेउरु मुच्छाविहलु, णिवडिउ महिहि भत्ति णिच्चेयणु ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तारा-चक्कु'व थाणहोँ चुक्कउ। 'दुक्खु दुक्खु' मुच्छएँ आमुक्कउ।
लग्ग रुएँव्वएँ तहि मदोयरि। उव्वमि-रभ-तिलोत्तिम-सुदरि।
चंदवयण-सिरिकं-तणुद्ध(द्द?)रि। कमलाणण-गधारि'व सुदरि।
मालइ-चंपय-माल-मणोहरि। जय-सिरि-चदण-लेह-तणूध(द?)रि।
लच्छि-वसंत-लेह-मिग-लोयण। जोयण-गध गोरि-गोरोयण।
रयणावलि मयणावलि सुप्पह। काम-लेह काम-लय सदप्पह।
सुहय वसंत-तिलय मलयावइ। कुकुम-लेह-पउम-पउमावइ।
उप्पल-माल-गुणावलि णिरुवम। कित्ति-बुद्धि-जय-लच्छि-मणोरम।
घत्ता। आएहिँ सोआरियहि, अट्ठारह हि'व जुवइ-सहासेँहि।
णव-घण-मालाडवरेँहिं, छाइउ विज्जु[1] जेम चउपासेँहि ॥८॥
रोवइ लंकापुर-परमेसरि। हा रावण ! तिहुयण-जण-केसरि।
पइ विणु समरतूरु-कहोँ वज्जइ। पइ विणु बालकील कहोँ छज्जइ।
पइ विणु णवगह-एक्कीकरणउ। को परिहेसइ कंठाहरणउ।
पइ विणु को विज्जा आराहइ। पइँ विणु चंद-हासु को साहइ।
को गंधव्व-वापि आडोहइ। कण्णहोँ छवि-सहासु सखोहइ।
पइ विणु को कुवेरु भंजेसइ। तिजग-विहुसणु कहोँ वसेँ होसइ।
पइ विणु को जमु विणिवारेसइ। को कइलासु'द्धरणु करेसइ।
सहस-किरणु णलकुव्वर-सक्कहु। को अरि होसइ ससि-वरुणक्कहु।
को णिहाण रयणइ पालेसइ। को वहुरूविणि विज्जाँ लएँसइ।

---

[1] विच्छु(?)

घत्ता। दश दिवसाइँ स-रात्रियहिँ, जनु युध्यंत न निद्रा प्राप्तउ ।
सो चक्र-शय्यहिँ चढिया, रण-वधुयेहिँ सँग सुत्तउ ॥६॥...
घत्ता। पेखि अवस्थ दशाननहों "हा हा स्वामि" भनंत सवेदन ।
अंतःपुर मूर्छाविकल, निपतेउ महिहिँ झट्ट निश्चेतन ॥७॥

(ग) मंदोदरि-विलाप—

तार-चक्र इव थानहिँ चूकउ । दुःख दुःख मूर्छहिँ आमुचउ ।
लागु रोइबा तहँ मन्दोदरि । उर्ब्बशि-रभ-तिलोत्तम-सुदरि ।
चंद्रवदनि श्रीकांत तनूदरी । कमलानन **गंधारि** 'व सुदरी ।
मालति-चंपक-माल-मनोहरी । जयश्री - चदन - लेख तनूदरी ।
लक्ष्मि-वसत-लेख मृगलोचन । योजन-गंधाँ गोरि गोरोचन ।
रतनावलि मदनावलि सुप्रभ । कामलेख कमलता स्वयंप्रभ ।
सुखद-वसत-तिलक मलयावति । कुकुम-लेख पद्म-पद्मावति ।
उत्पल-माल-गुणावलि निरुपम । कीर्त्ति बुद्धि जय लक्ष्मि मनोरम ।
घत्ता। आएँहि शोकार्त्तहिँ, अट्ठारहहिँ वरयुवति-सहस्रेहिँ ।
नव घनमालाडंवरेहिँ, छाइ विज्जु जेम चौपासेहिँ ॥८॥
रोवै लंकापुर-परमेश्वरि । "हा रावण ! त्रिभुवन-जन-केसरि ।
तुम विनु समर-तूर्य कहँ वाजै । तुम विनु वालक्रीड कहँ छाजै ।
तुम विनु नवग्रह एकीकरणउ । को पहिरावै कंठाभरणउ ।
तुम विनु को विद्या[1] आराधै । तुम विनु चंद्रहास[2] को साधै ।
को गंधर्व-वापि आडोभै । कर्णहु छवि-सहस्र संखोभै ।
तुम विनु को कुवेर भंजीहै । त्रिजगविभूष केहि वश होइहै ।
तुम विनु को यम विनिवारीहै । को कैलाशोद्धरण करीहै ।
सहसकिरण-नलकूवर-शत्रुहु । को अरि होइहै शशि-वरुणउ कहँ ।
को निधान रतनहि पालीहै । को वहुरूपिन विद्या लीहै ।

---

[1] मंत्रशक्ति [2] तलवार

घत्ता। सामिय पइँ भविएण विणु, पुप्फविमाणे चडेंवि गुरुभत्तिएँ।
मेरु-सिहरें जिण-मदिरइँ, को मइ णेसइ वंदण-हत्तिए ॥९॥

पुणुवि पुणुवि गयणंगण-गोयरि। कलुणाकंदु करइ मंदोयरि।
णदण-वणें दिज्जति मणोहरि। सुमरमि पारियाय-तरु-मंजरि।
वुड्डुण वाविहें थण-परिवट्टणु। सुमरमि ईसि ईसि अवरुडणु।
सयण-भवणें णहणियर-वियारणु। सुमरमि लीला-पकय-ताडणु।
पणय-रोस-समए मएँ वधणु। सुमरिम रसणा-दाम-णिवधणु।
सुमरमि दिज्जमाण दणु-दावणि। धरणेंदहों केरउ चूडामणि।
सुमरमि सामि कुमारहों केरउ। वरहिण पेहुण कण्णें ऊरउ।
सुमरमि सुर-करि-मय-मलु सामलु। हारें ठविज्जमाणु मुत्ताहलु।

घत्ता। सुमरमि सइ सुरयारुहणु, णेउर-वर-झकार-विलासु।
तोइ महारउ वज्जमउ, हिअउ ण वेदलु होइ णिरासु ॥१०॥

पुणुवि पुणुवि मंदोयरि जंपइ। उट्ठें भडारा कित्तिउ सुप्पइ।
जइ'वि णिरारिउ णिद्दएँ भुत्तउ। तो'वि ण सोहहि महियलें सुत्तउ।
सामिय ! को अवराहु महारउ। सीयहें दूई गय-सय-वारउ।
तँहि अकारणिज्जें आरुड्ढउ। जेण परिट्ठिउ पारावट्ठउ।
तहिं अवसरें पिउ पेक्खेवि धाइउ। कावि करेइ अलीअइ-साइउ।
आलिंगेवि ण सव्वायामें। कावि णिवधइ रसणा दामें।
कावि वरसुएण कवि हारें। कावि सुअध-कुसुम-पब्भारें।
कवि उरें ताडिवि लीला-कमलें। पभणइ मउलिएण मुहकमलें।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

केणवि कहिउ ताम भरहे सहों। गय सोमित्ति राम वणु-वासहों।
तं णिसुणेवि वयणु धुयवाहउ। पडिउ महीहरो'व्व वज्जाहउ।

घत्ता । स्वामी ! तुमहि भये विनु, पुप्पविमान चढबि गुरु-भक्तिय ।
मेरु शिखरे जिनमंदिरैं, को मोहिं लेइसै वदन हाथिय" ॥९॥

पुनि पुनि गगनंगण-गोचरी । करुणाक्रदन कर मंदोदरी ।
"नंदनवनें दीयंत मनोहरि । सुमिरौं पारियात्र-तरु-मजरि ।
डुब्बन-वापिहिं स्तन-परिवर्त्तन । सुमिरौं तनिक तनिक आलिगन ।
शयन-भवनें नख-निकर-विदारन । सुमिरौं लीलापंकज-ताडन ।
प्रणय-रोष-समये मम बधन । सुमिरौं रसनादाम-निवधन ।
सुमिरौं दीयमान दनु-दानव । धरणीद्रहु केरहु चूडामणि ।
सुमिरौ स्वामि-कुमारहु केरउ । वर्हिन पिच्छहु कर्णेपूरउ ।
सुमिरौं सुर-करि-मदमल श्यामल । हारें ठपीयमान मुक्ताफल ।

घत्ता । सुमिरौं सकृत-सुरत-आरोहण, नूपुर-वरभकार-विलास ।
तोंउ हमारौ वज्र-मय, हृदय न दो-दल होइ निराश" ॥१०॥

पुनिहु पुनिहु मदोदरि जल्पै । "उठु भट्टारक केतक सुत्तै ।
यदिउ अवश्यहि निद्रा भुक्तउ । तऊ न सोहै महितल-सुत्तउ ।
स्वामी ! को अपराध हमारउ । सीतहिं दूति गई शतवारउ ।
तहें अकारणीय आरूढउ । जातें परि-स्थित-पारा-उट्ठउ" ।
तें हि अवसरें प्रिय पेखब धाइउ । कोइ करेइ अलीकै साइउ ।
आलिगेबि न सर्वायामे । कोइ निबधै रसना-दामे ।
कोइ वरंशुकेहिं कोइ हारें । कोंइ सुगध कुसुम-प्राग्भारें ।
कोइ उर ताडबि लीलाकमलेहिं । प्रभनै मुकुलितेहिं मुखकमलेहिं ।

—रामायण ७६।४-११

(२) बंधु-विलाप

(क) राम-वनवासपर दशरथका विलाप

काहुहिं कहेउ तबहिं दशरथ सहँ । गयें सौमित्रि राम वनवासहँ ।
सो सुनि केहिं वदन कँपवाँहउ । पडेंउ महीधर इव वज्राहतु ।

घत्ता। ज मुच्छाविउ राउ, सयलु'वि जणु मुह-कायरु।
पलयाणिल-सतत्तु, रसेवि लग्गु ण सायरु ॥६॥
चंदणेण पव्वालिज्जतउ। चमरुक्खेविहिँ विज्जिज्जतउ।
"दुक्खु दुक्खु" आसासिउ राणउँ। जरठ-मियंकु'व थिउ उद्धाणउ।
अविरल असु-जलोल्लिय-णयणउँ। एम पजंपिउ गग्गिर-वयणउ।
णिवडिय असणि अज्ज आयासहों। अज्ज अमंगलु दसरह-वंसहों।
अज्ज जाउँ हउँ सूडिय-वक्खउ। दुह भायणु पर-मुँह हउँ वेक्खउ।
अज्ज णयरु सिय-सपय-मेल्लिउ। अज्जु रज्जु परचक्कें पेल्लिउ।
एव पलाउ करोवि सहग्गएँ। राहव-जणणिएँ गउऊ लग्गएँ।
केस-विसंठुल दिट्ठ रुअंती। असु-पवाह धाह मेल्लंती।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिये रामका विलाप

घत्ता। सोमित्ति-सोय-परिमाणेण, रहुवइ-णंदणु मुच्छिअउ।
जलु चदणु चमरुक्खेवएँहिँ, दुक्खु दुक्खु उम्मुच्छिअउ ॥२॥
हा लक्खण-कुमार ! एक्कोयर[1]। हा भद्दिय उविद दामोदर।
हा माहव ! महुमह महुसूयण। हा हरि-कण्ह-विण्हु-णारायण।
हा केसव ! अनंत-लच्छी-हर। हा गोविद ! जणद्दण-महिहर !
हा गंभीर-महाणइ-रुंभण। हा सीहोयर-दप्पणिसुभण।....
हा हा रुद्द-भुत्ति-विणिवारण। हा हा वालिखिल्ल-संहारण !
हा हा कविल-मरट्ट-विमद्दण। हा वणमाली-णयणाणदण।
हा अरि-दमण ! मडप्फर-भंजण। हा जिय-पोम सोम-मण-रजण।
हा महरिसि-उवसग्ग-विणासण। हा आरण्ण-हत्थि-संतावण !
हा करवाल-रयण-उद्दालण ! संव-कुमार-विलास-णिहालण !
हा खर-दूसण-वलमुसुमूरण ! हा सुग्गीव-मणोरह-पूरण !
हा हा कोडिसिला-संचालण ! हा हा मयर-हरो उत्तारण !

---

[1] सहोदर, भाई

घत्ता । जो मुर्छायेॅउ राव, सकलहु जन मुँह-कातर ।
प्रलयानल-संतप्त, बोॅलन लागु जनु सागर ॥६॥

चंदनेहिँ लेप्पाइज्जंतउ । चमर्-उत्क्षेपेहिँ बीजायंतउ ।
"दुःख दुःख" आश्वासै राणा । जरठ मृगाकि 'व ठिउ उद्धाना ।
अविरल-अश्रु-जलोलित-नयना । इमि प्रजल्पेउ गद्गद-वयना ।
"निपतिय अशनि आज आकाशहं । आज अमंगल दशरथ-वंशहं ।
आज जाउँ हौँ पीटिय वक्षहु । दोॅउ भाइन परमुंह हौँ पेखउँ ।
आज नगर सिय-संपति मेलेॅउं । आज राज्य परचक्रें पेलेॅउ" ।
इमि प्रलाप करेब सहाग्रइ । राघव-जननिएँ आयउ लग्गेॅइ ।
केश-विसंस्थुल दीस रोॅवती । अश्रुप्रवाह धाह मेलंती[1] ।
—रामायण २४।६-७

(ख) लक्ष्मणके लिए रामका विलाप

घत्ता । सौमित्र शोकपरितापेॅहिं, रघुपतिनंदन मूर्छियउ ।
जल-चंदन-चमर डुलावनहूँ, दुःख-दुःखउ मूछियउ ॥२॥

"हा लक्ष्मण कुमार एकोदर ! हा भद्रिय उपेन्द्र दामोदर !
हा माधव मधुमथ मधुसूदन ! हा हरि कृष्ण विष्णु नारायण !
हा केशव अनंत लक्ष्मीधर ! हा गोविंद जनार्दन महिधर !
हा गंभीर-महानदि-रुंधन ! हा सिंहोदर-दर्प-निनाशन !
हा हा रुद्र भुकुटि विनिवारण ! हा हा वालिखित्य-संहारण !
हा हा कपिल-(कु)दर्प-विमर्दन ! हा वनमाली नयनानंदन !
हा अरिदमन-गर्व-वी-भंजन ! हा जितपद्म सोम-मन-रंजन !
हा महाँ ऋषि-उपसर्ग विनाशन ! हा आरण्य-हस्ति-संतापन !
हा करवाल-रतन-उद्दारण ! शांवकुमार-विलास-निहारण !
हा खर-दूषण-बल-मुसमूरण ! हा सुग्रीव-मनोरथ-पूरण !
हा हा कोटिशिला-संचालन ! हा हा मकरधरो उत्तारन !

---

[1] त्यागेउ [2] शत्रु शासन

घत्ता। कहि तुहुँ कहि हउँ कह पिअय, कहि जणेरि कहि जणणु गउ ।
हय-विहि विछोउ करेप्पिणु, कवण मणोरह पुण्ण तउ ॥३॥

हरि-गुण संभरंतु विद्दाणउ । रुवइ स-दुक्खउ राहव-राणउ ।
वरि पहिरउँ पर-णरवर-चक्कएँ । वरि खय-कालु ढुक्कु अत्थक्कएँ ।
वरि ल कालकुट्टु विसु भक्खिउ । वरि जम-सासणु णयण-कडक्खिउ ।
वरि असिपजरें थिउ थोवंतरु । वरि सेविउ कियत-दततरु ।
झप दिण्ण वरि जलण जलंतएँ । वरि वगला-मुहें भमिउ भमंतएँ ।
वरि वज्जासणें सिरें ण पडिच्छिय । वरि ढुक्कंति भवित्ति-समिच्छिय ।
वरि विसहिउँ जम-महिस-झडिक्किउ । भीसण-काल-दिट्ठि अहिडंकिउँ ।
वरि विसहिउ केसरि णह-पंजरु । वरि[1] जोयउ कलि-काल सणिच्छरु ।
घत्ता। वरि दति-दंतें मुसलग्गें हि, विणिभिदाविउ अप्पणउ ।
वरि णग्ग-दुक्खु आयामिउ, णउ विऊउ भाइहिँ[2] तणउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हँउ भामंडलु हणुवंत एहु । एँहु अगद रहसुच्छलिय देहु ।
तिण्णिवि आइय कज्जेण जेण । सुणु अक्खमि कि बहु वित्थरेण ।
सीयहि कारणें रोसिय-मणाहँ । रणु वट्टइ राहव-रावणाहँ ।
लक्खणु सत्तिएँ विणिभिण्णु तत्थु । दुक्करु जीवइ तें आय इत्थु ।
तं वयणु सुणिवि परियालयेलु । णं कुलिस-समाहउ पडिउ सेलु ।
णं चवण-कालें सग्गहों सुरेंदु । उम्मुच्छिउ कहवि कहवि णरेंदु ।
दुक्खा उरु धाहा वणह लग्गु । पुण्णक्खइ हरि'व मुयतु सग्गु ।
घत्ता। हा पइ सोमित्ति ! मरंतएण, मरइ णिरुत्तउ दासरहि ।
भत्तार-विहूणिय णारि जिह, अज्जु अणाहीहूय महि ॥१०॥

---

[1] वलि [2] सीताका भाई

घत्ता । कहँ तुहुँ कहिहौं का पियहिँ, कहँ जनेरि कहँ जनक गउ ।
हत-विधि ! विछोह कराइय, कवन मनोरथ पूर्ण तव" ॥३॥

हरि-गुण संवदत विद्राणउ । रोंवइ सदुःखउ राघव-राणउ ।
वरु प्रहरौ पर-नरवर-चक्रउ[1] । वरु क्षयकाल ढुक्कु अत्यक्कउ ।
वरु सो कालकूट विष भक्षिउ । वरु यमशासन-नयनकटाक्षउ ।
वरु असिपंजरें ठिउ थोडंतर । वरु सेउव कृतांत-दंतान्तर ।
झप देंउब वरु ज्वलन जलते । वरु वगलामुखें भ्रमिव भ्रमंते ।
वरु वज्रासनें शिरेंहिँ प्रतीच्छिव । वरु ढुक्कंत भवित्रि समीच्छिव ।
वरु विसहव यम-महिष-झडक्कउ । भीषण-काल-दृष्टि अभिडकउ ।
वरु विसहव केसरि-नख पजर । वरु जोयव कलिकाल-शनिश्चर ।
घत्ता । वरु दतिदतें मुसलग्रेंहि विनि-भिदाविउ आपनहुं ।
वरु नरक-दुःख आगामिउ, नहिं वियोग भाइहिँतनउ ॥४॥

—रामायण ६७।२-४

(ग) आहत लक्ष्मणके लिये भरतका विलाप

हौं भामंडल हनुमंत एहु । एहु अगद रभसोच्छलिय-देह ।
तीनहुं आयउं कार्येहिं जेहि । सुनु भाखौं का वहु विस्तरेहि ।
सीतहिँ कारणें रोषितमनाहँ । रण चल्लै राघव-रावणाहँ ।
लक्ष्मण शक्तिहि विनि-भिन्नु तत्र । दुष्कर जीवै सो आय अत्र" ।
सो वचन सुनिय परिपातयेल । जनु कुलिश-समाहत पडेउ शैल ।
जनु च्यवन-काल स्वर्गहँ सुरेन्द्र । उन्मूछिउ कहव कहव नरेन्द्र ।
दुःखाकुल धाहा वनह लग्ग । पुण्य-क्षय हरि इव मरत सर्ग ।
घत्ता । हा तव सौमित्रि ! मरंतई, मरै अवश्यहिँ दाशरथी ।
भर्त्तारि-विहूनी नारि जिमि, आज अनाथा भइ मही ॥१०॥

---

[1] शत्रुराज शासन

हा भायर ! ऍक्कसि देहि वाय । हा पइ विणु जइसिरि-विहव जाय ।
हा भायर ! महु सिरि पडिय गयणु । हा हियउ फुट्टु दक्खहि वयणु ।
हा भायर् ! महुयर-महुर-वाणि । महु णिवडिऊ-सि दाहिणउ पाणि ।
हा ! कि समुद्दु जल-णिवहु खुट्टु । हा ! किह दिढु कुम्भकडाहु फुट्टु ।
हा ! किह सुरवइ[1] लच्छिऍं विमुक्कु । हा ! किह जमरायहों मरणु ढुक्कु ।
हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणगु दोहग्गु पत्तु ।
हा ! चचल हूयउ केम मेरु । हा ! केम जाउ णिद्धणु कुवेरु ।
घत्ता । हा ! णिव्विसु किह धरणेंदु[2] थिउ, णिप्पहु ससि-सिहि-सीयलउ ।
टलटलि हूई केम महि, केम समीरणु णिब्बलउ ॥११॥
लब्भइ रयणायरें रयण-खाणि । लब्भइ कोइल-कुलें महुर-वाणि ।
लब्भइ चदणु-सिरि मलय-सिगें । लब्भइ सुहवत्तणु जुवइ-अंगें ।
लब्भइ धणुधणऍं धरापवण्णु । लब्भइ कचणें परवऍं सवण्णु ।
लब्भइ पेसेंण सामिऍं पसाउ । लब्भइ किऍं-विणऍं जणाणुराउ ।
लब्भइ सज्जणें गुण दाणें कित्ति । सिय अभिवरें गुरु-उलें परम-तित्ति ।
लब्भइ वसियरणें कलत्त-रयणु । महकव्वें सुहासिउ सुकइ-वयणु ।
लब्भइउ वयार-मइहि सुमित्तु । मद्दवें हि विलासिणि चारु चित्तु ।
लब्भइ परतीरि महग्घु भंडु । वरवेणु-मूलें वेलुज्ज-खडु[3] ।
घत्ता । गय- मोत्तिउ सिघलदीवें मणि, वइरागरहो वज्ज पउरु ।
आयइ सव्वइ लब्भति जइ, णवर ण लब्भइ भाइवरु ॥१२॥

—रामायण ६९।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

तं णिसुणेवि दसाणण हल्लिउ । णं वच्छत्थलें सूलें सल्लिउ ।
थिउ हेट्ठामुंहु रावण-राणउ । हिम-हय-सयवत्तु'व विद्दाणउ ।
रुवइ सदुक्खउ गग्गर-वयणउ । वाह भरतु णिरतर वयणउ ।
हा हा कुभयण्ण ! एक्कोयर । हा हा मय-मारिच्च-सहोयर ।

---

[1] इन्द्र [2] शेषनाग [3] हरितकांति वैदूर्यमणिका टुकड़ा

हा भायर ! एकहि देँहि वाच । हा तैँ विनु जयश्री विभव जाय ।
हा भ्रातर ! मम श्री पडिय गगन । हा हियहु फूटु डाहै वदन ।
हा भायर ! मधुकर मधुर-वाणि । मम निपतेँउ तुम दाहिनउ पाणि ।
हा ! का समुद्र-जल-निवह खुट्ट । हा ! का दृढ कुंभकडाह फुट्ट ।
हा ! किमु सुरपति लक्ष्मियेहि मुञ्चु । हा ! किमु यमराजहँ मरन ढुक्कु ।
हा ! किमु दिनकर-कर-निकर-त्यक्त । हा ! किमु अनंग दौर्भाग्य-प्राप्त ।
हा ! चचल होयउ केम मेरु । हा ! केम वनेँउ निर्धन कुवेरु ।
घत्ता । हा ! निर्विष किमु धरणीद्र ठिउ, निष्प्रभ शशि शिखि शीतलउ ।
टलटलि हूइ केम महि, केम समीरण निर्बलउ ॥११॥
लब्भै रतनाकरेँ रतनखानि । लब्भै कोकिल-कुलेँ मधुरवाणि ।
लब्भै चंदन श्रीमलयशृंगेँ । लब्भै सुखवत्त्वउ युवति-अंगेँ ।
लब्भै धन-धान्य-धरा प्रपन्न । लब्भै कंचन-पर्वतेँ सुवर्ण ।
लब्भै दासेहिँ स्वामिय प्रसाद । लब्भै कृतविनये जन'नुराग ।
लब्भै सज्जनेँ गुण, दानेँ कीर्त्ति । सित ऋषिवरेँ, गुरुकुलेँ परम तृप्ति ।
लब्भै वशिकरणेँ कलत्र-रतन । महकव्येँ सुभाषित सुकवि-वचन ।
लब्भै उपकार-मइहि सुमित्त । मार्दवेँहिँ विलासिनि चारुचित्त ।
लब्भै परतीरेँ महार्घ भांड । वर-वेणु-मूलेँ वेलुज्ज[२]-खंड ।
घत्ता । गजमोतिउ सिंहलद्वीपेँ मणि, **वैरागरहु** वज्र ।
आगतेँ सर्वइ लब्भति यदि, पर नहिँ लब्भै भाइवरु" ॥१२॥
—रामायण ६९।१०-१२

(घ) कुंभकर्णके लिये रावणका विलाप

सो सुनिय दशानन हिल्लेउ । जनु वक्षस्थल मूलेहि सालेउ ।
ठिउ हेट्ठामुँह रावण राणा । हिम-हत-शतपत्रि 'व विद्राणा ।
रोव सदुःखउ गद्गद-वदना । वाह भरंत निरंतर वचना ।
"हा हा कुभकर्ण एकोदर ! हा हा मम मारीच-सहोदर !

---

[१] पेस=प्रेष्य (दूत, संदेशवाहक) [२] वंश-रत्न

हा इंदइ हा तोयदवाहण । हा जमहट अणिट्ठिय-साहण[1] ।
हा केसरि-णियव-दणु-दारण । जबुमालि हा सुअ हा सारण ।
दुक्खु दुक्खु पुणु मणु विणिवारिउ । सोय-समुद्दहों अप्प उतारिउ ।

—रामायण ६७।६

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

अप्पणु हणइ विहीसणु जावेंहिं । मुच्छइँ णाइ णिवारिउ तावेंहिं ।
णिवडिउ धरणि वट्टि णिव्वेयणु । दुक्खु समुट्ठिउ पसरिय वेयणु ।
चरण धरेवि रोएँवएँ लग्गउ । हा भायर महँ मुएँवि कहि गउ ।
हा हा भायर ! ण किउ णिवारिउ । जण-विरुद्धु ववहारिउ णिरारिउ[2] ।
हा भायर ! सरीरें सुकुमारएँ । केम विआरिउ चक्कएँ धारएँ ।
हा भायर ! दुण्णिहएँ मत्तउ । सिज्जें मुएँवि कि महियलें सुत्तउ ।

घत्ता । कि अवहेरि करेवि थिउ , सीसें चडाविय चलण तुहारा ।
अच्छमि मुट्ठुम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगि भडारा ॥२॥

रुअइ विहीसणु सोयक्कमियउ । तुहु ण त्थमिउ वसु अत्थमियउ ।
तुहु ण जिऊसि सयलु जिउ तिहुयणु । तुहु ण मुऊसि मुयउ वदिज्जणु ।
तुहु पडिऊसि ण पडिउ पुरदरु । मउडु ण भग्गु भग्गु गिरि-कदरु ।
दिट्ठि ण णट्ठ णट्ठ लकाउरि । वयण ण णट्ठ णट्ठ मंदोयरि ।
हारु ण तुट्टु तुट्टु तारायणु । हियय ण भिण्णु भिण्णु गयणगणु ।
चक्कु ण ढुक्कु ढुक्कु एक्कतरु । आउ ण खुट्टु खुट्टु रयणायरु ।
जीउ ण गउ गउ आसापोट्टल । तुहु ण सुत्तु सुत्तउ महिमंडल ।
सीय ण आणिय आणिय जमउरि । हरि-वल कुद्ध कुद्ध ण केसरि ।

—रामायण ७६।२-३

---

[1] अपार रण साधन वाले [2] निरेही

हा इंद्रजि(त्) हा तोयदवाहन ! हा यमघंट अनिष्ठित-साधन !
हा केसरि-नितंव-दनु-दारण । जबुमालि हा शुक हा सारण" ।
"दुःख दुःख" पुनि मन विनिवारिउ । शोक-समुद्रहों आय उतारिउ ।
—रामायण ६७।९

(ङ) रावणके लिये विभीषणका विलाप

आपुहिँ हनै विभीषण जब्बे । मूर्छे जनुक निहारिउ तब्बैं ।
निपतेंउ धरणि घूमि निर्वेदन । दुःख समुट्ठिउ पसरिउ वेदन ।
चरण धरिय रोअवै लागउ । "हा भायर ! मम मुइय कहाँ गउ ।
हा हा भायर ! न किउ निवारेंउ । जनविरुद्ध व्यवहरिउ निरारिउ ।
हा भायर ! शरीर सुकुमारा । केम विगारेउ चक्रहिँ धारा ।
हा भायर ! दुर्निद्रे मुक्तउ । शय्य मुएँउ का महितलें सुत्तउ ।

घत्ता । का अवहेल करेबि ठिय, सीस चढाइव चरण तुहारा ।
रहौं सुठि उन्माथियउ हृदय फूट आलिगु भट्टारा[1]" ॥२॥

रोंवैं विभीषण शोक-क्रमियउ । तुहु न अस्तमिउ वश'स्तमियउ ।
तुहु न जोवसि सकल जिउ त्रिभुवन । तुहु न मुयउ मुयेंउ वँदनिय-जन ।
तुहुँ पडियेउ न पडेंउ पुरदर । मुकुट न भंगु भगु गिरिकदर ।
दृष्टि न नष्ट नष्ट लकापुरि । वचन न नष्ट नष्ट मंदोदरि ।
हार न टूटु टूटु तारागण । हृदय न भिदु भिदु गगनागण ।
चक्र न ढुक्कु[2] ढुक्कु एकतर । आयु न खुट्टु[3] खुट्टु रतनाकर ।
जीव न गउ गउ आशा-पोट्टल । तुहुँ न सुत्तु सुत्तु महिमडल ।
सीय न आनेंउ आनेंउ यमपुरि । हरि-बल क्रुद्ध क्रुद्ध जनु केसरि ।
—रामायण ७६।२-३

---

[1] महाराजा [2] चीर कर भीतर घुसा [3] खतम हुई

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

माणुसु देहु होइ घिणि-विट्टलु । सिरें हि णिवद्धउ हडुह पोट्टलु ।
चलु कुजंतु माय-मउ कुहें डउ । मलहों पुजु किमि-कीडहु सूडउ ।
पूइगंध[1] रुहिरामिस-भंडउ । चम्म-रुक्खु दुग्गंध-करंडउ ।
अंतहों पोट्टलु पक्खिहिं भोयणु । वाहिहि भवणु मसाणहों भायणु ।
आयहु कलुसियऊ जहि अंगउ । कवण पएसु सरीरहों चंगउ ।
अण्णुइ मुण्णरूव दुप्पेच्छउ । कडियलु पच्छाहर-सारिच्छउ ।
जोव्वणु गंडहों अणुहरमाणउ । सिरु णालियर-करक-समाणउ ।
—रामायण ५४।११

एण सरीरें अविणय-थाणे । दिट्ठ णट्ठ जलबिंदु-समाणे ।
सुर-चावेण'व अथिर सहावें । तडि फुरणें ण'व तक्खण-भावें ।
रभा-गब्भेण'व णीसारें । पक्क-फलेण'व सउणाहारें ।
मुण्णहरेण'व विहडिय-वधें । पच्छहरेण'व अइदुग्गंधें ।
उक्करुडेण'व कीलावासें । अकुलीणेण'व मुकिय-विणासे ।
परिवाहेण'व किमि-कोट्ठारें । असुइहि भवणं भूमिहि भारें ।
अट्ठिय-पोट्टलेण वस-कुडे । पूय-तलाये आमिस-उंडे ।
मलकूडेण रुहिर-जलघरणें । लसि-विवरेण पेम्म-णिज्झरणे ।
कुहिय-करंडएण घिणिवनें । चम्ममएण इमें ण कूजंतें ।
—रामायण ७७।४

तं चल्लणु जुअलु गय-मथरउ । सउणहि खज्जंतु भयकरउ ।
तं सुरय-णियंव सुहावणउँ । किमि बुडबुडंति चिलसावणउँ ।

---

[1] दुर्गंधि

८. कविका संदेश

(१) काया नरक

मानुष देह होइ घृण-विट्टल[1]। शिराइँ बाँधेउ हाडह पोट्टल।
चलु सडत मायामय-कचरउ। मलहँ पुज कृमि-कीटहु सूडउ।
पूतिगध रुधिरामिष-भडा। चर्मवृक्ष दुर्गध-करडा।
आंतह पोटल पक्षिहिँ भोजन। काढहिँ भवन मसानेहु भायन।
आयहु कलुषीयहु जहि अगउ। कवन प्रदेश शरीरह चंगउ।
अन्यइँ शून्य-रूप दुष्प्रेक्ष्यउ। कटितल पच्छाघर सादृश्यउ।
जोवन गंडहुं अनुहरमानउ। शिर नारियर-करक-समानउ।
—रामायण ५४।११

एहि शरीरे अविनय-थाने। दृष्ट-नष्ट जलविंदु-समाने।
सुर-चापा इव अथिर-स्वभावा। तडि-स्फुरणि[2] इव तत्क्षण भावा।
रभागर्भ इवा निस्मारा। पक्वफल इव शकुनाहारा।
शून्यघर इव विघटित-बधा। पच्छा घर[3] इव अतिदुर्गधा।
कूडापुजि[4] इव कीटावासा। अकुलीना इव सुकृत-विनाशा।
परिवाधा इव कृमि-कोट्ठारा। अशुची-भवना भूमिहि भारा।
अस्थिय पोट्टलका वसकुडा। पूति-तलावा आमिष-कुडा।
मल-कूटऊ रुधिर-जल छरना। लसि-विवरा पीव-निर्झरणा।
कुथित करंडाऊ घृणवता। चर्ममया एते कूजता।
—रामायण ७७।४

सो चरण-युगल गजमथरउ। शकुनेहिँ खाद्यंत भयंकरउ।
सो सुरत-नितब-सोँहावनऊ। कृमि बुजबुजंति चिरसाइनऊ।

---

[1] गंदा विटलाहा (मल्लिका) [2] फोड़ा [3] पाखाना [4] पेटी

तं णाहि-पयेसु किसोयरउ । खज्जतमाणु थिउ भासुरउ ।
तं जोव्वणु अवरुडणमणउ । सुज्जत नवर भीसावणउ ।
तं सुदरुवयणु जियंताहुँ । किमि कप्पिउ णवर मरताहुँ ।
तं अहर-विबु वण्णुज्जलउ । लुचतु सिवेँहिं घिणि-विट्टलउ ।
त णयणु-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ कायहिँ कप्परिउ ।
सो चिहुर-भारु कोडावणउ । उड्डंतु णवर भीसावणउ ।
घत्ता । तं माणुसु त मुह-कमलु, ते थण त गाढालिगणउ ।
णवरि धरेविणु णा सउहु, बोलिज्जइ धिधि चिलिसावणउ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहिँ तेहइ रस-वस-भूय-भरे । णव मास वसेँव्वउ देहघरे ।
णव णाहिकमलु उत्थल्लु जहिँ । पहिलउ जेँ पिंडु सबंधु तहिँ ।
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलु । कणु जेम पईयउ धरणियलु ।
विहि दस-रत्तिहि समुट्ठिअउ । णं जलेँ डिडीर समुट्ठिअउ ।
तिहि दस-रत्तिहिँ बुव्वुड घडिउ । ण सिमिर-विदु ककुम पडिउ ।
दस-रत्ति चउत्थहेँ वित्थरिउ । णावइ पवलंकुरु णीसरिउ ।
पंचमेँ दस-रत्ति जाउ वलिउ । ण सूरण-कदु चउप्पलिउ ।
दस-दस-रत्तेँहि कर-चरण-सिरु । वीसहि णिप्पण्णु सरीर थिरु ।
णव-मासिउ देहहोँ णीसरिउ । वट्टतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । जेण दुवारेँ आइयउ, जो त परिहरे ण सक्कइ ।
पंतिहि जुत्तु वइल्लु जिह, भव-संसारेँ भमंतु ण थक्कइ ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

इउ जणेँवि धीरहि अप्पणउँ । करेँ ककणु जोवहि दप्पणउ ।
चउगइ[1] संसार भमंतएँण । आवंता जंत मरंतएँण ।

---

[1] देव, मानुष, तिर्यक् (पशु पंछी), नरक

सो नाभिप्रदेश कृशोदरऊ। स्वाद्यतमान ठिउ भासुरऊ।
सो यौवन अवरुडन[1]-मनऊ। सुज्जत अती-भीषावणऊ।
सो सुंदर वदन जियंतेही। कृमि-काटिय तुरत मरंतेही।
सो अधर-विंव वर्णोज्वलऊ। नोचंत शिवेँहिँ[2] घृण-विट्टलऊ।
सो नयन-युगल विभ्रमभरिऊ। विच्छायउ[3] कायहँ खप्परिऊ।
सो चिकुर-भार हर्षावणऊ। उड्डुत तुरत भीषावणऊ।

घत्ता। सो मानुष सो मुखकमल, सो स्तन सो गाढालिगनऊ।
तुरत धरंते नासकुटू, बोलिय धिक् चिरसाइनऊ ॥७॥

(२) गर्भवास दुःख

तहँ तेहिहि रस-वस-भूत-भरे। नव मास वसेयउ देहघरे।
नव नाभिकमल उच्छल्ल जहाँ। पहिलहिहि पिंड संबध तहाँ।
दस दिवस परिट्-ठिउ रुधिर-जलू। कण जेम पडेऊ धरणितलू।
दोउ दशरात्रेँहिं सम्-उट्ठियऊ। जनु जलेँ डिंडीर[4] सुमुट्ठियऊ।
तेँहिदश रात्रे बुद्बुद गडेँऊ। जनु शिशिरविंदु कुंकुम पडेऊ।
दशरात्रि चउत्थेहिं विस्तरिऊ। न्याई प्रवलांकुर निस्सरिऊ।
पँचयेँ दशरात्रे जायोँ वली। जनु सूरन-कद चऊपहली।
दश दशरात्रेहिं कर-चरण-शिरु। बीसहिं निष्पन्न शरीर थिरू।
नवमासे देहा नीसरिऊ। वर्त्तन्त प्रतीउ वीसरिऊ।

घत्ता। जेहि दुवारेँ आयऊ, जो तेहि परि-धारयउ न सक्कै।
पाँतिहि जुतो बइल्ल जिमि, भव-संसार भ्रमंत न थाकै ॥८॥

(३) आवागमन दुःख

एँहु जानवि धीरेहि आपनऊ। कर-ककण जोवै दर्पणऊ।
चउगति संसार भ्रमंतएहि। आवंत-जांत-मरतएहिं।

---

[1] अवरुंडन=आलिंगन [2] सियारों से [3] कुरूप [4] रहेउ [5] कमलनाल

जगें जीवें कोण रुवाविअउ । को गरुय धाह ण मुआवियउ ।
को कहिमि णाहि संताविअउ । को कहिमि ण आवइ पावियउ ।
को कहि ण ढुक्कु[1] को कहि न मुउ । को कहि ण भमिउ को कहिँ ण गउ ।
कहि णवि मोयणु कहि णवि सुरऊ । जगें जीवहों किंपि ण वाहिरऊ ।
तइलोउ विअसिउ असतएण । महि सयल डज्झइ ढुंढतएण ।
घत्ता । सायरु पीयउ पियतएण, अंसुएँहि रुयंतेहि भरिउ ।
हड्ड-कलेवर-संचएँण, गिरि-मेरु सोवि अतरिउ ॥९॥
अह पइ किं वहु चविएण राम । भवें भमिउ भयंकरें तुहुमि ताम ।
णड् जिहें तिहें वहु रूवतरेहिं । जर-जम्मण-मरण-परपरेहिं ।
सा सीय वि जो णिसएहिं आय । तुहुं कहिमि वप्पु सा कहिँमि माय ।
तुहु कहिमि भाउ सा कहिमि वहिणि । तुहु कहिमि दइउ सा कहिमि घरिणि ।
तुहु कहिमि णरएँ सा कहिमि सग्गें । तुहु कहिमि महिहिँ सा गयण-मग्गें ।
तुहु कहिमि णारि सा कहिमि जोहु । कि सुइणा-रिद्धिहि करहि मोहु ।
उम्मेट्ट विऊअ गइदएसु । जगडतु भमइँ जगु णिरवसेसु ।
जइ ण धरिउ जिण-वयणंकुसेण । तो खज्जइ माणुस-माणुसेण ।
घत्ता । एम भणेप्पिणु वेवि मुणि, गय कहिमि णह-गण-पथें ।
रामु परिट्ठिउ किविणु जिह, धणु इक्कु लएवि सहत्थें ॥१०॥

—रामायण ३९।९-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुयंगहों उव्वरइ । जो जगु जें सव्वु उवसहरइ ।
तहों जहि जहि कहिमि दिट्ठि रमइ । तहि तहि ण भइय वट्ट भमइ ।
केंवि गिलइ गिलइ केंवि उग्गिलइ । काहिमि जम्मावसाणि मिलइ ।
केंवि णरय-विलेहि पइसे विगसइ । काहिवि अणुलग्गउ जे वसइ ।

---

[1] ढूकना=प्रवेश करना

जगें जीवहि को न रोंवाइयऊ। कों गरुअ धाह न मुवाइयऊ।
को काहिहिँ ना सतावियऊ। को काँहि न आवइ पाबियऊ।
को कहँ न ढुक्कु को कहँ न मुऊ। को कहँ न भ्रमेंउ को कहँ न गऊ।
कहँ नहिँ मोदन कह नहि सुरतू। जगें जीवहँ ना किय बाहिरऊ।
तिहु लोक विकसेंउ अशांतएहिँ। महि सकल दग्ध दड्ढतएहि।
घत्ता। सागर पियेउ पियंतएहि, अँसुएहि रोवतेहि भरेंऊ।
हाड-कलेवर-सचयेहि, गिरि-मेरु सोउ अंतरिऊ[1] ॥९॥
अथ तोहिँ का वहु वचनेहिँ राम! भवें भ्रमिउ भयकरें तुहुज नाम[2]।
नट जहँ तहँ वहु-रूपांतरेहिँ। जर-जन्म-मरण-परपरेहिँ।
सो सीतउ योनिशतेहिँ आय। तुहुँ कतहुँ बाप ऊ कतहुँ माय।
तुहुँ कतहुँ भाय ऊ कतहुँ बहिनि। तुहुँ कतहुँ दयित ऊ कतहुँ घरिनि।
तुहुँ कतहुँ नरकें ऊ कतहुँ सरगें। तुहुँ कतहु महिहिँ ऊ गगन-मगे।
तुहुँ कतहु नारि ऊ कतहु जोध। का स्वपन-ऋद्धिहीं करहि मोह।
उन्मेंठ[3]-वियुक्त गजेंद्रएस। भगडत भ्रमें जगें निरवशेष।
यदि न धरिय जिन-वचनांकुशहीं। तो खाइय मानुष मानुषहीं।
घत्ता। इमि भनिया दोऊ मुनि, गयउ कतहुँ नभगण-पथे।
राम बईठेउ कृपण जिमि, धनु एकलहू स्वहत्थे ॥१०॥

—रामायण ३९।९-१०

(४) संसार तुच्छ

को काल-भुजंगतें ऊबरई। जो जग सर्वेहँ उपसहरई।
तहँ जहँ जहँ कतहुँ दृष्टि रमई। तहँ तहँ जनु भयावर्त्त भ्रमई।
कोइँ गिलइ गिलइ कोइ ऊगिलई। कतहूँ जन्मावसान मिलई।
कोइ नरक-विलेहिँ पइसै निकसै। केतहँ अनुलग्न एव बसई।

---

[1] ढाँक दिया [2] तहाँ [3] महावत

केँवि कड्ढइ सग्गहोँ वरि चडेवि । केँवि खय होणेँइ उप्परेँ चडेवि ।
केवि घारइ थोरइ पाव विसेण । केवि भक्खइ णाणाविहमसेँण ।
घत्ता । तहो कोवि ण चुक्कइ भुक्खियहोँ, काल-भुयंगहोँ दूसहहो ।
जिण-वयण-रसायणु लहु पियहोँ, जिं अजरामर-पउ लइहो ॥२॥

जइ काल-भुअंगु णउल डसइ । तो किं सुर-वइ सग्गहोँ खसइ ।
—रामायण ७८।२,३

विरहाणल-जाल-पलित्त-तणु । चिंतेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ।
सच्चउ संसारि ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाण दुहु ।
सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जलबिंद-सउ ।
कहोँ घरु कहो परियणु बधु जणु । कहोँ माय-वप्पु कहोँ सुहि-सयणु ।
कहोँ पुत्तु-मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय-सहोयरु कहोँ वहिणि ।
फलु जाव ताव वंधव-सयण । आवासिय पायवि जिह मउण ।
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवंतु पडीवउ वीसरिउ ।
घत्ता । णिद्धणु लक्खण-वज्जिअउ, अण्णु'वि वहु असणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअंगु जिह, वणेँ "हा हा सीय" भणंतउ ॥११॥

हिंडतेँ मग्ग मडप्फरेण । वणदेवय पुच्छिय हलहरेण ।
"खणेँ खणेँ वेयारहिँ काइँ मइँ । कहिँ कहिमि दिट्ठु जइ कंतयइँ" ।
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । ता वग्गएँ वण-गयदु मिलिउ ।
"हे कुंजर-कामिणि-गइ-गमणा । कहेँ कहिमि दिट्ठु जइ मिगणयणा" ।
णिय-पडिरवेण वेआरियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारिअउ ।
कत्थइ दिट्ठइँ इंदीवरइँ । जाणइ-धण-णयणइँ दीहरइँ[1] ।

---

[1] दीरघ

कोंइ निकसि सर्ग ऊपर चढई । कोंइ क्षय-होवन ऊपर चढई ।

कोइ धारै थूरै पाप विषहिँ । कोइ भख्खै नानाविध मंसहिँ ।

घत्ता । तहँ कोइ न वाँचै भूखियहीं, काल-भुजंगह दुस्सहहीं ।

जिन-वचन-रसायन लघु पियहू, जिमि अजरामर-पद लहहू ॥२॥

यदि काल-भुजग नहीं डँसई । तो किमि सुरपति स्वर्गहँ खसई ।

—रामायण ७८।२,३

विरहानल ज्वाल-प्रलिप्त तनू । चिता इव लागु विषण्ण-मनू ।

साँचै संसारें न अहै सुखू । साँचै गिरि-मेरु-समान दुखू ।

साँचै जर-जन्मा-मरण-भवा । साँचै जीवित जलविंदु-समा ।

कहँ घर कहँ परिजन बंधुजना । कहँ माय-बाप कहँ हित-सजना ।

कहं पुत्र-मित्र कहं पुनि घरिनी । कहँ भाय-सहोदर कहं बहिनी ।

फल जबै तबै बाधव-स्वजना । आवासैं पादपें जिमि शकुना ।

बल[1] ऐसेंहि भनिया नीसरेऊ । रोवत पडीयउ बीसरिउ ।

घत्ता । निर्धनु लक्ष्मण वर्जितउ, अन्यहु बहुत सनेहि त्यक्तऊ ।

राघव भ्रमै भुजग जिमि, वने "हा हा सीय" भनतऊ ॥११॥

हिडतो भग्न गर्वणहिं । वनदेवत पूछिय हलधरेहिं ।

"क्षण-क्षण विकारा काह मई । कहिँ कतहुँ दीस यदि कांतॉ तई ।"

बल[2] भनिया ऐसे संचलेऊ । तव आगेंइ वन-गयद मिलेऊ ।

"हे कुजर कामिनि-गति-गमना ! कहिँ कतहुँ दीस यदि मृगनयना ।"

निज प्रतिरवेहिँ वीचारियऊ । जानै सीता हक्कारियऊ[3] ।

कतहूँ दीसैं इंदीवरहीं । जानै धनि-नयनि-दीवरहीं ।

---

[1] राम पिछला [2] राम [3] पुकारा

कत्थइँ असोय-दलु हल्लियउ । जाणइ धण-वाहा डोल्लिअउ ।
वणु सयलु गवेसवि सयल महिँ । पल्लट्टु पडीवउ दासरहि ।
—रामायण ३९।७–१२

(५) कोई किसीका नहीं

जगें जीवहो णाहिँ सहाउ कोवि । रइ वंधइ मोह-वसेण तोवि ।
इय घरु इउ परियणु इउ कलत्तु । णउ वुज्झइ जिह सयलेहिँ चित्तु ।
एक्केण कणुव्वउ विहुरकालें । एक्केण सुयेव्वउ जरपयालें ।
एक्केण वसेव्वउँ तहि णिगोएँ । एक्केण रुइव्वउ पिय-विऊएँ ।
एक्केण भमेव्वउ भवसमुद्दें । कंमोह मोह जलयर-रउद्दें ।
एक्कहों जें दुक्खु एक्कहों जें सुक्खु । एक्कहों जें वंधु एक्कहों जें मोक्खु ।
एक्कहों जें पाउ एक्कहों जें धम्मु । एक्कहों जे मरणु एक्कहों जे जम्म ।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुणिवर कहिवि लग्गु विउलाइँ । किं जणेण णियहि धम्मे फलाइँ ।
धम्मे भड-थड-हय-गय-सदण । पावें मरण-विऊय-क्कंदण ।
धम्मे सग्गु भोग्गु सोहग्गु । पावें रोगु सोगु दोहग्गु ।
धम्में रिद्धि-विद्धि सिय-सपय । पावें अत्थहीण णर-विद्दय ।
धम्में कडय-मउड-कडिसुत्ता । पावें णर-दालिद्दें मुत्ता ।
धम्में रज्जु करंति णिरुत्ता । पावें परपेसण-संजुत्ता ।
धम्में वर-पल्लंकें सुत्ता । पावें तिण-सथारें विभुत्ता ।
धम्में णर देवत्तणु पत्ता । पावें णरय-घोरें संकंता ।
धम्में णर रमंति वर-निलयउ । पावें दुह-विऊय दुह-णिलयउ ।
धम्में सुंदरु अंगु णिवद्धउ । पावें पंगुलउ'वि वहिरं'धउ ।
—रामायण २८।९

कतहूँ अशोक-दल हिल्लियऊ। जानै धनि-बाहहँ डोलियऊ।
वन सकल गवेषेँउ सकल मही। पलटेउ पाछहूँ दाशरथी।
—रामायण ३९।७-१२

(५) कोइ किसीका नहीं

जगेँ जीवहँ नाहिँ सहाय कोँऊ। रति बाँधै मोहवशेहिँ तऊ।
एँहु घर एँहु परिजन एँहु कलत्र। ना बूझै जिमि सकलेहिँ चित्र।
एँकलेहि कानिबउ विधुर-कालेँ। एँकलेहि सोँईबउ जरठ-कालेँ।
एँकलेहि बसीवउ तहँ वियोगेँ। एँकलेहि रोँइब्बउ प्रिय-वियोगेँ।
एंकलेहि भ्रमेवउ भव-समुद्रेँ। कर्मोघ-मोह-जलचर-रउद्रेँ।
एँकलेहिहि दुख एकलेहिहि सुक्ख। एकलेहिहि बँध एकलेहिहि मोक्ष।
एकलेहिहि पाप्-एकलेहि धर्म। एकलेहिहि मरन एकलेहि जन्म।
—रामायण ५४।७

(६) सामाजिक भेदभाव धर्म-अधर्मके कारण

मुनिवर कहन लागु विपुलाइँ। का जनेहिँ निज-धर्म-फलाइँ।
धर्मेँ भट-ठट-हय-गज-स्यंदन। पापेँ मरन-वियोग-क्रंदन।
धर्मेँ स्वर्ग-भोग-सौभाग्य। पापेँ रोग-शोक-दौर्भाग्य।
धर्मेँ ऋद्धि-वृद्धि सित-संपत। पापेँ अर्थहीन नर-विद्रय।
धर्मेँ कटक-मुकुट-कटि-सूत्रा। पापेँ नर दारिद्रचे क्षिप्ता।
धर्मेँ राज्य करंति निचिता। पापेँ पर-प्रेषण-संयुक्ता।
धर्मेँ वर-पर्यके सुप्ता। पापेँ तृण-साथरेँ विमुक्ता।
धर्मेँ नर देवत्त्वहिँ प्राप्ता। पापेँ नरक-घोर-संक्राता।
धर्मेँ नर रमंति वर-निलये। पापेँ दुख-वियोग-दुख-निलये।
धर्मेँ सुदर अंग निबंधा। पापेँ पंगुल अरु वहिरंधा।
—रामायण २८।९

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

काल—८०० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४९) । देश—नालंदा ।

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेरि घेणि मेलि अच्छहु कीस । वेठिल हाक पडअ चउदीस ।
अप्पण मांसे हरिणा बइरी । खणह ण छाडअ **भूसुकु** अहेरी ।
तिण ण छूपइ पिबइ ण पाणी । हरिणा हरिणीर णिलअ ण जाणी ।
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तोँ । ए वन छाडि होहु भान्तो ।।
तरसँत हरिनार खुर न दीसइ । **भूसुकु** भणइ मढ ! हिअहिँ ण पइसइ ।।६।।

(२१—राग वराडी)

णिशि अंधारी मूसा करअ अचारा । अमिअ-भखअ मूसा करअ अहारा ।।
मार रे जोइया ! मूसा-पवना । जेण तूटइ अवणा-गवणा ।।
भव विदारअ मूसा खणअ गाती । चचल मूसा कलिआँ णासअ थाती ।।
काला मूसा उह ण वाण । गअणे उठि करअ अमिअ पाण ।।
तब्बे मूसा अंचल चंचल । सद्गुरु बाहे करह सो निच्चल ।।
जब्बे मूसा अचार तूटअ । **भूसुकु** भणइ तब्बे बंधण फिट्टइ ।।२१।।

(२३—राग बडारी)

जइ तुम्ह **भूसुकु** अहेरी जाइव मरिहसि पंच जना ।
णलिणीवन पइसन्ते होहिसि एक्कु मणा ।।
जीवँत मा विहणि मएल ण अणिहिलि ।
णउ विणु मांसे **भूसुकु** पउमवण पइसहिलि ।।
माआजाल पसारी बाँधेलि माआ हरिणी ।
सदगुरु बोहेँ बूझि रे कासु (काहिणी ।।)

§ ४. भूसुकुपा (शांतिदेव)

कुल—राजपुत्र (राउत) भिक्षु, सिद्ध (४६)। कृतियाँ (हिन्दी)—सहज-गीति

(रहस्यवाद)

(६—राग पटमंजरी)

काहेर भक्ष्य मेलि रहोँ कईस। वेठिल हाक पडै चौदीस॥
अपने माँसे हरिना वैरी। क्षणहुं न छाडै **भूसुक** अहेरी॥
तृण न छुवै पियै न पानी। हरिना हरिनी-निलय न जानी॥
हरिनी बोलै सुनु हरिना तोँ। ई बन छाडि होवहू भ्रमन्तो॥
तृषित धावत हरिना खुर ना दीसै। **भूसुक** भनै मुढ ! हियहिँ न पइसै॥६॥

(२१—राग वराडी)

निशि अँधियारी मूसा करै सँचारा। अमृत-भक्ष्य मूसा करै अहारा॥
मारु रे जोँगिया ! मूसा पवना। जासे टूटै अवना-गवना॥
भव विदारै मूसा खनै गाती। चचल मूसा खाइ नाशै थाती॥
काला मूसा रोम न वर्ण। गगने उठि करै अमिय पान॥
तब्बै मूसा अंचल-चंचल। सद्गुरु-बोधे करहु सो निश्चल॥
जब्बै मूस-सँचारा टूटै। **भूसुक** भनै तब्बै बंधन छूटै॥२१॥

(२३—राग बराडी)

यदि तुम भूसुकु अहेरे जइबा, मरिहो पाँच जना।
नलिनीवन पइठन्ते, होइहा एकमना।
जीवत न हनिहा मरल न अनिहा।
न विनु मांस भूसुक पदुमवन पइठिहा॥
माया-जाल पसारी बधिहा माया-हरिनी।
सद्गुरु-बोधेँ बुझि रे कासु (एहु) कहनी॥

(अप्पण काये छड्डुवि णउ मइलि खाअइ कालाकालें लेइ।
पाणी-वेणी णाहि हरिणा पाणि अवेक्खउ ॥
चचल चचल चलिआ सुण्ण माँझे अत्थगऊ ॥)२३॥

(२७—राग कामोद)

अध राति भर कमल विकसिउ, बतिस जोइणी तासु अँग उल्हसिउ।
चालिअउ ससहर-गउ णिब्बाणे। कमलिनि कमल बहइ पणालें ॥
विरमानद विलक्खण सुद्ध। जो एथु बुज्झइ सो एथु बुद्ध।
भूसुकु भणइ मइँ बूझिय मेलें। सहजाणद महासुह लीलें ॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणामेह निरन्तर फारिआ। भावाभाव द्वंदल दालिआ।
उइउ गअण माज्झ अदभूआ। पेख रे भूसुकु ! सहज सरूआ ॥
जासु सुणन्ते तुट्टइ इँदआल। णिहुए णिज मण देइउ उल्लाल।
विसअ विसुज्झे मइँ बुज्झिउ आणंदे। गअणहँ जिम उजोली चन्दे ॥
ए तिलोए एत वि सारा। जोइ **भूसुकु** फइइ अंधआरा ॥३०॥

(४१—राग कण्हू-गुंजरी)

आइएँ अनुअनाएं जग रे भन्तिएं सो पडिहाइ।
रज्जु-सप्प देखि जो चमकिउ, साँचे जिम लोअ खाइउ[1] ॥
अकट जोइआरे मा कर हाथ लोण्हा। अइस महावेंजइज बुज्झसि तूटइ वासना तोरा ॥
मरु-मरीचि गंधव-नअरी दापण-पडिविबु जइसा।
वातावत्तें मो दिढ भइआ, आयें पाथर जइसा ॥
बांझिसुआ-जिम केलि करई खेलइ वहुविह खेला।
वालुअ-तेले सस-सिंगे आकाश फूलिला ॥
राउतु भणइ वढ **भूसुकु** भणइ वढ सअला अइस सहावा।
जइ तो मूढा अच्छसि भान्ती पुच्छहु सदगुरु पावा ॥४१॥

---

[1] **साचे कित वोड़ो खाई** J.D.L.

(आपन काये छडिहा ना मैली। खाय कालाकालें लेई।
पानी-वेणी नहिं हरिना पानी चाहेउ।
चंचल- चंचल चलि शून्य-मध्ये अथयेउ)[1] ॥२३॥

(२७—राग कामोद)

आधीराति भर कमल विकसें उ। वतिस जोगिनी तासु अंग हुलसें उ॥
चालहु शशधर मग अवधूती। रतने सहज कहौं मैं॥
चालिय शशधर गयें उ निर्वाणे। कमलिनि कमलहिं बहै प्रणाले॥
विरमानद विलक्षण शुद्ध। जो एहु जानै सो एहिं बुद्ध।
भूसुक भनै मै बूझयों मेला। सहजानद महासुख-लीला॥२७॥

(३०—राग मल्लारी)

करुणा-मेघ निरन्तर फारी। भावाभाव द्वन्दहीं दारी॥
उयें उ गगनमाँझ अदभूता। पेखु रे **भूसुकु** सहज-स्वरूपा॥
जासु सुनत टूटै इन्द्रजाल। नि-धुए निजमन देइ उलास॥
विषय विशुद्धे मैं बूझें उं आनदा। गगनहिं जिमि उजाला चंदा॥
एहि तिलोके एहुहि सारा। जोइ **भूसुकु** फटै अँधियारा॥३०॥

(४१—राग कण्हू गुजरी)

आदिहिं अजन्मते जग ई भ्रान्ति सों प्रतिभाइ।
रज्जु-सर्प देखि चमकें उ साँचै जिमि लोग खाइ॥
अहह जोगिया ! न कर हाथ लोना। ऐस स्वभाव यदि बूझसि टुटइ वासना तोरा॥
मरु-मरीचि गधर्व-नगरी दर्पण -प्रतिबिंब जैसा।
वातावर्त्त सो दृढ होई, पानिहिं पाथर जैसा॥
बाँझसुता जिमि केली करै, खेलै बहुविध खेला।
बालू-तेले शश-शृंगे आकाश फुलेला॥
राउतु भनै मूढ **भूसुकु** भनै मूढ सकल ऐस स्वभावा।
यदि तैं मूढा हवै भ्रान्त पूछहु सद्गुरुपावा॥४१॥

---

[1] अस्त हो गया

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु फरिअइ तिलोए। खसम सहावे वाणते मुक्क कोइ।
जिम जले पाणिअ टलिआ भेउ न जाअ। तिम मण-रअणा समरसे गअण समाअ॥
यासु णाहि अप्पा तासु परेला काहि। आइ-अन्तअ ण, जाममरण भव नाहि।
भूसुकु भणइ बढ ! **राउतु** भणइ बढ ! सअला एह सहाव।
जाइ ण आवइ रे ण तहिँ भावाभाव॥४३॥

(४६—राग मल्लारी)

राअ-नावडी पँउअखँडे वाहिउ। अदअ वंगाल देसह लूटेँउ।
आजि **भूसुक** वंगाली भइली। णिअ घरिणी चंडाली लेली॥
डहिउ जे पँच पाटन इन्दि-विसआ णठा। ण जानमि चिअ मोर कँहि गइ पइठा॥
सोण-रूअ मोर किंपि ण थाकिउ[1]। णिअ परिवारे महासुह थाकिउ।
चउकोडि भँडार मोर लइउ असेस। जीवँते मइलेँ णाहि विसेस॥४६॥

—चर्यापद

२ : नवीं सदी

§ ५. लुईपा

काल—८३० ई० (धर्मपाल-देवपाल ७७०-८०६-४६)
देश—मगध। कुल—कायस्थ, सिद्ध (१)

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काआ तरुवर पंच' बि डाल। चंचल चीए पइट्ठा काल॥
दिढ करिअ महासुह परिमाण। **लुई** भणइ गुरु पुच्छिअ जाण॥

---

[1] रहा

(४३—राग बंगाल)

सहज महातरु स्फुरै (फड़ै?) त्रिलोके । ख-सम स्वभावे बँध-मुक्त कोइ ॥
जिमि जले पानी डाले भेद न जान । तिमि मन रतन समरस गगन-समान ॥
जासु न आपा तासु पराया काह । आदि-अन्त न जन्म-मरण भव नाहि ॥
भूसुकु भनै मूढ ! **राउतु** भनै मूढ ! सकल एह स्वभाव ।
जाइ न आवै रे ना तहँ भावाभाव ॥४३॥

(४६—राग मल्लारी)

राजनावडी पदुमखंडे चलायेँउ । अ-दय बँगल-देश लूटेउ ।
आज **भूसुकु** बंगाली भइली[1] । निज घरनी चंडाली लेली ॥
डहेँउ पाँच पाटन इन्द्रि-विषया नष्टा । न जानोँ चित्त मोर कँह जाइ पइठा ॥
सोना-रूपा मोर किछुअ न रहेँऊ । निज-परिवारे महासुख रहेऊ ॥
चौकोटि भँडार मोर लियउ अशेष । जियले मुअले नाहि विशेष ॥४६॥

—चर्यापद

२ : नवीँ सदी

§ ५. लुईपा

कृतियाँ—अभिसमय-विभंग, तत्व स्वभाव-दोहा कोष । बुद्धोदय भगवद्-अभिसमय, गीतिका ।

रहस्यवाद

(१—राग पटमंजरी)

काया तरुवर पाँचउ डाल । चंचल चित्ते पइठा काल ॥
दृढ करि महासुख परिमान । लुई भनै गुरु पूछिय जान ॥

---

[1] आज भूसुक युद्ध में हरली—भाटे

सअल-समाहिहि काह करिअइ । सुख-दुखेतें निचित मरिअइ ॥
छडिअउ छंद बांधकरण कपटेर आस । सुण्ण-पक्ख भिडि लेहु रे पास ॥
भणइ **लुई** आम्हे झाणे दिट्ठा । धमण-चमण वेणि उपरि बइट्ठा ॥१॥

(३९—राग पटमंजरी)

भाव ण होइ अभाव ण जाइ । अइस मँबोहें को पतिआइ ॥
लुई भणइ बढ ! दुलख विणाणा । तिधातुए विलइ ऊह लागेना ।
जाहिर वण्ण-चिन्ह-रूअ ण जाणी । सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी ॥
काहे रे किस भणि मइँ दिवि पिच्छा । उदक-चंद जिम सांच न मिच्छा ।
लुई भणइ मइँ भावइँ कीस । जा लेइ अच्छम ताहेर ऊह न दीस ॥२९॥

—चर्यापद[1]

§ ६. विरूपा

काल ८३० ई० (**देवपाल** ८०६-४९) **देश**—त्रिउर (मगध ?) । **कुल**—भिक्षु, सिद्ध (३) । **कृतियाँ**—**अमृतसिद्धि, दोहा-कोष, कर्मचंडालिका-रहस्यवाद**

(३—राग गबडा)

एक से शोंडिनि दुइ घरे साँधअ । चीअ न वाकलअ वारुणी बाँधअ ॥
सहजे थिर करि वारुणि सांधअ । जें अजरामर होइ दिढ़ काँधअ ॥
दसमी दुआरते चिन्ह देखइआ । आइल गराहक अपने बहिआ ॥
चउशटि घडिये देल पसारा । पइठल गराहक नाहि निसारा ॥
एक घडुल्ली सरूइ नाल । भणइ **विरूआ** थिर कर चाल ॥३॥

—चर्यापद

---

[1] J.S.L. Cal. XXX

सकल समाधिहिँ काह करिज्जै । सुख-दुःखनतेँ निचित मरिज्जै ॥
छाडि छंद-बंध कर ना कपटकी आश । शून्य-पक्ष भीडि लेहु रे पाश ॥
भनै **लुई** मैँ ध्याने दीठा । धमन-चमन दोँउहि ऊपर बैठा ॥१॥

(३९—राग पटमंजरी)

भाव न होइ अभाव न होइ । ऐस सँबोधिहिँ को पतियाइ ।
लूइ भनै मूढ ! दुःलेख विज्ञाना । त्रिधातुहिँ विलसै ऊह लागै ना ॥
जाहि वर्ण-चिन्ह-रूप न जानी । से कैसे आगम-वेद बखानी ।
काहे रे कैसे भनि मैँ देबोँ पूछा । उदक-चंद जिमि साँच न मिथ्या ॥
लूई भनै मै भावौँ कैसे । जे लेइ रहौ तेहि ऊह न दीसै ॥२९॥

—चर्यापद

§ ६. विरूपा

दोहाकोष, विरूप-गीतिका, विरूप-वज्र-गीतिका, विरूप-पद-चतुरशीति, मार्ग-फलान्विता ववादक, सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश ।

रहस्यवाद

(३—राग गबडा)

एक से सूँडिन[1] दुइ घरे साँधै । चीअ न बाकल वारुणी बाँधै ॥
सहजे थिर करि वारुणि साँधा । जे अजरामर होइ (न) दृढ स्कंधा ॥
दशम दुवारे चिन्ह देखि कहँ । आयउ ग्राहक अपन लेन कहँ ॥
चौँसठ-घडिया देल पसारा । पइठु गराहक नाहिँ निसारा ॥
एक घडुल्ली स्वरूपी नाल । भनै **विरूपा** थिर करु चाल ॥३॥

—चर्यापद

---

[1] शराब बेँचने वाली

§ ७. डोम्बिपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—मगध कुल—क्षत्रिय,

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गंगा-जउँना-माँझे वहइ नाई। तँहि बुडिली मातंगी पोइआ लीलें पार करेइ।
बाहतु **डोम्बी** बाहलो डोम्बी, वाट भइल उछारा।
संदगुरु-पाअ-प(सा)ए जाइव पुनु जिनउरा॥
पाँच केडुआल पडन्ते माँगे पीठत काच्छी बाँधी।
गअण-दुखोलें सिञ्चहू पाणी न पइसइ साँधी॥
चंद-सूज्ज दुइ चक्का सिठि-संहार-पुलिन्दा।
वाम दहिन दुइ भाग न चेवइ वाहतु छन्दा॥
कवड़ी न लेइ वोडी न लेइ सुच्छडे पार करई।
जो एथे चड़िया बाहब न जा(न)इ कूलें कूल बुड़ाई॥१४॥

—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०)। देश—सालिपुत्र (उड़ीसा)

रहस्यवाद

(३४—राग बराडी)

सुन-करुण अभिन्ने चारें काअवाअचीअे।
विलसइ **दारिक** गअणत पारिमकूले॥
अलक्ख लक्खइ चिए महासुहे।
विलसइ **दारिअ** गअणत पारिम कूलें॥

§ ७. डोम्बिपा

सिद्ध (४)। कृतियाँ—अक्षरद्विकोपदेश, गीतिका, नाड़ी-विंदु-द्वारे योग-चर्या।

रहस्यवाद

(राग धनसी)

गगा-यमुना-माँझे चलै नाई। तँह बूडल मातंगी पुतिया लीलें पार करेइ॥
ने चल डोम्बी ले चल डोम्बी-वाट सोझारा।
सद्गुरु-पाद-प्रसादे जायेब पुनि जिन-पूरा॥
माँच केडुआल पडत माँगेमें पीठसे कच्छी बंधी।
गगन-दुखोलेहिं सीँचहु पानी न पइठै संधी॥
वद्र-सूयं दुइ चक्रा सृष्टिसहार-पुलिन्दा।
वाम-दहिन दोँउ मार्ग न दीसइ (नाव) चलाव स्वछंदा॥
कौडी न लेइ वौडी न लेइ छूछै पार करेइ।
जो एहिँ चढि चलावन न जानै कूलहिँ कूल बुडेइ॥१४॥
—चर्यापद

§ ८. दारिकपा

कुल—राजा, सिद्ध (७७)। कृतियाँ—महागुह्य तत्त्वोपदेश, तथताद्दृष्टि, सप्तम सिद्धांत

रहस्यवाद

(३४—राग बरांडी)

शून्य करुणा अभिन्न काय-वाक्-चित्ते।
विलसै **दारिक** गगनतें पारिमकूले॥
प्रलय लखै चित्त महासुखे।
विलसै **दारिक** गगनतें पारिमकूले॥

किन्तो मन्तो किन्तो तन्ते किन्तो झाण-बखाणे ।
अप्प पइट्ठा महासुह लीलें दुलक्ख परम-निवाणे ।।
दुःखें सुखें एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी ।
स्वपरापर न चेवइ **दारिक** सअलानुत्तर मानी ।
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे बाधा ।
लुइपाअ-पए **दारिक** द्वादश भुअणे लाधा ।।३४।।

—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—डिसुनगर ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तिअड्डा चापि जोइनि दे अँकवाली । कमल-कुलिश घोंटि करहु विआली ।।
जोइनि तइँ विनु खनहि न जीवमि । तो मुह चुम्बि कमल-रस पीवमि ।
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ । मणि-कुले वहिआ उडिआने समाअ ।।
सासु घरें घालि कोचा-ताल । चाँद-सूज बेण्णि पखा फाल ।
भणइ **गुन्डरी** अम्हे कुन्दुरे वीरा । नर अ नारी माझे उभिल चीरा ।।४।।

—चर्यागीति

§ १०. कुक्कुरीपा

काल—८४० ई० (देवपाल ८०९-४९) । देश—कपिलवस्तु । कुल—ब्राह्मण

रहस्यवाद

(२—राग गबडा)

दूलि दूहि पिटा धरण न जाइ । रूखेर तेंतुलि कुंभीरे खाइ ।
आँगन घर पण सुन हे भोविआती । कानेट चोरी निल अधराती ।।

की तोर मंत्रे की तोर तंत्रे की तोर ध्यान बखाने ।
आप पईठा महसुख लीले दुर्लख परम-निवाणे ॥
दुःख-सुख एक करी भक्षै इन्द्रजाली ।
स्व-परापर न चीन्है **दारिक** सकल अनुत्तर मानी ॥
राजा राजा राजा अवर राजा मोह बँधाया ।
लूईपाद-पद्मे **दारिक** द्वादश भुवनहिँ पाया ॥३४॥
—चर्यापद

§ ९. गुंडरीपा

कुल—लोहार, सिद्ध (४) । कृतियाँ—गीति ।

रहस्यवाद

(४—राग अरुण)

तियड़ा चाँपि जोगिनि दे अँकवारी । कमल-कुलिश घोँटि करहु बियाली ॥
जोगिनि तोहि विनु क्षणहुँ न जीयौँ । तव-मुख चूमि कमल-रस पीयौँ ॥
फे केहु जोगिनि लेप न जाय । मणि-कुडल बहि उडचानेँ समाय ॥
सासु घरे डाली कुजी-ताल । चाँद-सूर्य दोउँ पाखहिँ फाल ॥
भनै **गुंडरी** मैँ कुन्दुरे वीरा । नर-नारी-भाँभे दीनेँउँ चीरा ॥४॥
—चर्यागीत

§ १०. कुक्कुरीपा

सिद्ध (३४) । कृतियाँ—योगभावनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन ।

रहस्यवाद

(२—राग गबडा)

कूर्म दूहि पात्र धरन न जाय । वृक्षेर इम्ली कुंभीर खाय ।
आँगन घर पुनि सुनु कुविज्ञाती । कानेट चोरि लियेँउ अधराती ॥

ससुरा निंद गेल बहुडी जागअ । कानेट चोरे निल का गइ मागअ ॥
दिवसइ बहुडी काग-डरे भाअ । राति भइले कामरू जाअ ।
अइसन चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ । कोडि माझे एकु हिअहिँ समाइउ ॥२॥

(२०—राग पटमंजरी)

हँउ निरासी खमन भतारी । मोँहोर विगोआ कहण न जाई ।
फिटल गो माए ! अन्तउडि चाहि । जा एथु बाहुम सो एथु नाहि ॥
पहिल विआण मोर वासना पूडा । नाडि विआरन्ते सेव वापुडा ।
जाण जौवण मोर भइले से पूरा । मूलन खलि वाप सघारा ॥
भणथि कुक्कुरीपाए भवथिरा । जो एथु बूझइ सो एथु वीरा ॥२०॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

काल ८४० ई० (देवपाल ८०९-४९ ई०) । देश—उडीसा । कुल—राजकुमार

रहस्यवाद

(८—राग देवश्री)

मोने भरिती करुणा नावी । रूपा थोड नाहिक ठावी ॥
वाहनु **कामलि** गअण-उवेसेँ । गेला जाम वाहुइइ कइसेँ ॥
खुटि उपाडी मेलिलि काच्छि । वाहतु **कामलि** सद्गुरु पुच्छि ॥
मांगत चढ़िले चउदिस चाहअ । (नाव-पीठ चढि विलहिँ पडअ) ।
केडुआल नाहि केँ कि (नाविक) बाहब के पारअ ॥
वाम दाहिण चाँपि मिलि मिलि (चढ़ि) माँगा । बाटत मिलिल महासुह साँगा ॥८॥

—चर्यापद

सासु नीदि गइल बहुवा जागै । कानेट चोरि लिय कागहिँ माँगै ॥
दिवसहिँ बहू काग डर खाय । राति भइले कामरूप जाय ॥
ऐसन चर्या **कुक्कुरि** गाये । कोटि माँझ एक हियहिँ समाये ॥२॥

(२०—राग पटमंजरी)

हौं निराशी ख-मन भतारी । मोर विज्ञान कहल न जाई ।
फूटल रे माई ! अन्त मैं देखौं । जो एहिँ गिरेंउ सो ऍहि नाहीँ ॥
प्रथम विज्ञाने मोरि वासना टूटी । नाडी विचारने सोइ बापुड़ी ॥
नवयौवन मोर भइल से पूरा । मूल निखूटि पाप संहारा ॥
भनै **कुक्कुरीपा** भव थिरा । जो एहि बूझे सो एहिँ वीरा ॥

—चर्यापद

§ ११. कमरि(कंबल)पा

भिक्षु, सिद्ध (३०) । कृतियाँ—असंबंध-दृष्टि, असंबंध-सर्गदृष्टि, गीतिका ।

रहस्यवाद

(८—राग देवश्री)

सोनेंहिँ भरती करुणा नावी ।
रूपा थापँ नाहिक ठाँवी ॥
ले चल **कामलि** गगन-उदेसे ।
गैला जन्म बहुरिहै कैसे ।
खूंटी उपाडि फेंकल काछी ।
ले चल **कामलि** सद्गुरु पूछी ॥
माँगे चढल चतुर्दिश देखै ।
(नाव-पीठ चढि बलहीँ पड़ई) ।
केडुआल नाहीँ कैसे चलायब पारै ॥
वाम-दहिन चाँपि मिलि(चढ़ि)माँगा ।
वाटेहिँ मिलल महासुख-सगा ॥८॥

—चर्यापद

§ १२. कण्हपा

(कृष्णपाद, चर्यापाद, कृष्णवज्रपाद), काल—८४० (देवपाल ८०६-४६ ई०)। देश—कर्नाटक : निवास—विहार और बंगाल (सोमपुरी)।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोअह गब्ब समुब्बहइ, हउँ परमत्थें पवीण।
कोडिअ-मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण ॥१॥
आगम-वेअ-पुराणें (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क-सिरीफलें अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति ॥२॥
खिति-जल-जलण-पवण-गअण बि माणह।
मण्डल-चक्क विसअ-बुद्धि लइ परिमाणह ॥६॥

(२) सहज-मार्ग

णित्तरंग-सम सहज-रूअ सअल-कलुस-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहिए कुच्छ णाहि **काण्ह** फुट कहिए ॥१०॥
वहिणिक्कालिआ सुण्णासुण्ण पइट्ठ।
सुण्णासुण्ण-वेणि मज्झें रे बढ़ ! किम्पि ण दिट्ठ ॥११॥
सहज एक्कु पर अत्थि तहि फुड़ **काण्ह** परिजाणइ।
सत्थागम बहु पढइ सुणइ बढ़ ! किम्पि ण जाणइ ॥१२॥
अह ण गमइ ऊह ण जाइ। वेण्णि-रहिअ तसु णिच्चल ठाइ।
भणइ **काण्ह** मण कहबि ण फुट्टइ। णिचल पवण घरिणि-घर वट्टइ ॥१३॥
वरगिरिकन्दर गुहिरे जगु तहिँ सअल' बि तुट्टइ।
विमल सलिल सोंस जाइ, कालग्गि पइट्ठइ ॥१४॥
पह वहन्ते णिअ-मणा, बन्धण किअऊ जेण।
तिहुअण सअल' बि फारिआ, पुणु सांरिअ तेण ॥१७॥

---

§ १२. कण्हपा

कुल—ब्राह्मण-भिक्षु, सिद्ध (१७)। कृतियाँ—गीतिका, महादुंदुन, वसंत तिलक, प्रसंबंध-दृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष[1]।

(१) पंथ-पंडित-निंदा

लोगा गर्व समुद्वहै, हौं परमार्थ-प्रवीण।
कोटी-मध्ये एक यदि, होइ निरंजन-लीन ॥१॥
आगम-वेद-पुराणहीँ, पण्डित मान वहंति।
पक्व-सिरीफल अलिय जिमि, बाहरहीँहि भ्रमन्ति ॥२॥
क्षिति-जल-ज्वलन-पवन, गगनहु मानहु।
मंडल-चक्र विषय-बुद्धि लेइ परिमाणहु ॥९॥

(२) सहज-मार्ग

निस्तरग सम सहज रूप, सकल-कलुष-विरहिए।
पाप-पुण्य-रहित किछु नाहि, **काण्हे** फुर कहिये ॥१०॥
बाहर निकालिय शून्याशून्य प्रविष्ट।
शून्याशून्य दोउ मध्ये, मूढ़ा ! किछुअ न दृष्ट ॥११॥
सहज एक **पर** अहै तहँ फुर **काण्ह** परि-जानै।
शास्त्रागम बहु पढै सुनै मूढ ! किछुउ न जानै ॥१२॥
अधो न जाइ ऊर्ध्व न जाइ। द्वैत-रहित तासु निश्चल ठाइ।
भनै **काण्ह** मन कैसहु न फूटै। निश्चल पवन घरनी-घरे बाटै ॥१३॥
वर-गिरि-कन्दर-कुहरे, जग तँह सकलउ टुट्टै।
विमल-सलिल सुखि जाइ, काल-अगिन पइट्ठै ॥१४॥
प्रभा वहन्ता निज मन, बंधन कियेऊ जेहिँ।
त्रिभुवन सकलउ फारिया, पुनि संहारिय तेहिँ ॥१७॥

---

[1] Vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसें णिअ-मण-राअ ।
सिद्धो सो पुण तक्खणे, णउ जरामरणह भाअ ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

णिच्चल णिब्बिअप्प णिब्बिआर । उअअ-अत्थमण-रहिअ सुसार ।
अइसो सो णिब्बाण भणिज्जइ । जहिँ मण माणस किम्पि ण किज्जइ ॥२०॥
जइ पवण-गमण-दुआरे, दिढ तालाबि दिज्जइ ।
जइ तसु घोरान्धारें, मण दिवहो किज्जइ ॥
जिण-रअण उअरें जइ, सो वरु अम्बरु छुप्पइ ।
भणइ **काण्ह** भव भुञ्जन्ते, णिब्बाणो'वि सिज्झइ ॥२२॥
वर-गिरि-सिहर उतुग मुणि, सबरें जहिँ किअ वास ।
णउ सो लघिअ पँचाणणेहि, करि-वर दुरिआ आस ॥२५॥
एहु सो गिरिवर कहिअ मँइ, एहु सो महसुह ठाव ।
एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव ॥२६॥
सब जगु काअ-वाअ-मण मिलि विफुरइ तहि सो दूरे ।
सो एहु भगे महासुह णिव्वाण एक्कु रे ॥२७॥
एक्कु ण किज्जइ मन्त ण तन्त । णिअ-घरणी लइ केलि करन्त ॥
णिअ-घरे घरणी जाव ण मज्जइ । ताव कि पञ्च वण्ण विहरिज्जइ ॥२८॥
एमो जप-होमे मण्डल कम्मे । अणुदिण अच्छसि काहिउ धम्मे ॥
तो विणु तरुणि णिरन्तर णेहें । बोहि कि लब्भइ एण'वि देहें ॥२९॥
जें किअ णिच्चल मण-रअण, णिअ-घरणी लइ एत्थ ।
मोह वाजिरा-णाहु रे, मयिँ वुत्तो परमत्थ ॥३१॥
जिमि लोण विलिज्जइ पाणिएँहि, तिम घरिणी लइ चित्त ।
समरस जाई तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त ॥३२॥
—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. vol. XXVIII, pp. 24-27

सहजे निश्चल जेँहिँ किय, सम-रस निज-मन राग।
सिद्धा सो पुनि तत्क्षणे, न जरामरणहँ भाग ॥१९॥

(३) निर्वाण-साधना

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार। उदय-अस्तमन-रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै। जँह मन-मानस कछुउ न किज्जै ॥२०॥
यदि पवन-गमन-दुआरे, दृढ तालाहू दीजै।
यदि तँह घोर अन्हारे, मन-दीपहु कीजै ॥
जिन-रतन उये यदि, सो वर-अंवर छूवै।
भनै **काण्ह** भव भोगतहिँ, निर्वाणहु सीझै ॥२२॥
वर-गिरि-शिखर-उतुग मुनि, शबरा[1] जँह किउ वास।
ना सो लाँघेँउ पाच मुख, करिवर दूरेँउ आस ॥२५॥
एहु सो गिरि-वर कहेँउँ मैँ, एहु सो महसुख-ठाँव।
एक रजनि सहज क्षणे, लभै महासुख जाव ॥२६॥
सब जग काय-वाक्-मन मिलि, स्फुरै नाहि सो दूरे।
सो एहि भगेँ महासुख निर्वाण एक रे ॥२७॥
एक न कीजै मन्त्र न तन्त्र। निज घरनी लेइ केलि करन्त।
निज घरे घरनी जौ न मज्जै। तौ की पच वर्ण विहरीजै ॥२८॥
एँहु जप-होमे मंडल कर्मे। अनुदिन रहौ काहे धर्मे।
तो विनु तरुणि निरन्तर स्नेहे। बोधि कि लब्भै अन्यहिँ देहे ॥२९॥
जो किउ निश्चल मन-रतन, निज घरनी लेइ एत्थ।
सोँई बज्जरनाथ रे, मैँ बोलेँउँ परमार्थ ॥३१॥
जिमि नोन विलाय पानियहिँ, तिमि घरनी लेइँ चित्त।
सम-रस जाये तत्क्षण, यदि पुनि सो सम नित्त्य ॥३२॥
—दोहाकोष

---

[1] वजधर=निरंजन=परमतत्व

(४) रहस्य-गीत

(२) गीते[1]

(९—राग पटमंजरी)

एवंकार दिढ वाखोंड़ मोड़िउ । विविह विआपक बाँधन तोडिउ ॥
काण्ह विलसिआ आसव-माता । सहज-नलिनि-वन पइसि निवाता ॥
जिम जिम करिणा करिणिरें रीझअ । तिम तिम तथता-मअगल वरिसअ ॥
छड गइ सअल सहावे सुद्ध । भावाभाव वलाग न छुद्ध ॥
दशवल रअण हरिअ दश दीसें । अविद्यकरिकूं दम अकिलेसें ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर वाहिरे डोम्वि तोहोरि कुडिआ । छाइ छोंइ जाइं सो बाम्हण नाडिया ।
आलो डोम्वि तोए सम करिव म सग । निघिण **काण्ह** कपालि जोई लाँग ॥
एक सो पदुम चौषठि पाखुड़ी । तहिँ चडि णाचअ डोम्वि वापुडी ॥
हालो डोम्वि तो पूछमि सद्भावे । आइसमि जासि डोम्वि काहरि नावें ॥
ताँति विकणअ डोम्बी अवर न चँगेडा । तोहोर अन्तरे छड़ि नड़ पेड़ा ॥
तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली । तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि हाडेरि माली ॥
सरवर भाँजिअ डोम्बी खाअ मोंलाण । मारमि डोम्बी लेमि पराण ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नाडि शक्ति दिढ धरिआ खाटे । अनहा डमरु वजइ विरनाटे ॥
काण्ह कपाली जोइ पइठ अचारे । देह न अरि विहरइ एककारें ॥
अलि-कलि घंटा नेउर चरणे । रवि-शशि-कुडल किउ आभरणे ॥
राग-दोष-मोहे लाइअ छार । परम मोख लवएँ मुत्ताहार ॥
मारिअ सासु नणँद घरें शाली । मा मरिअ **काण्ह** भइल कपाली ॥११॥

---

[1] J.D.L XXX (115—56)

(४) रहस्य-गीत

(२) गीतें

(९—राग पटमंजरी)

ऍहि विधि दोउ खम्भा मोडी । विविध-व्यापक बंधन तोडी ।

काण्ह विलासै आसव-माता । सहज नलिन-वन पइठि नि-वाता जिमि जिमि करिणा करिणिहिँ रीझै । तिमि तिमि तथता मद-कण वरसै षड्गति सकल स्वभावे शुद्ध । भावाभाव बालाग्र न शुद्ध ॥
दशबल-रतन-भरित दश दीसा । अविद्या-करिहिँ दम अक्लेशा ॥९॥

(१०—राग देशारव)

नगर-बाहिरे डोम्बी[1] तोहर कुटिका । छुइ छुइ जाइ सो बाभन-लडिका ।

अरे डोम्बी तोरे साथ करब न सग । निर्घृण **काण्ह** कपाल-जोगि नंग एकउ पदुम चौसठ पाँखुरी । तँह चढि नाचै डोम्बि बापुरी ।

हे रे डोम्बी ! तोहिँ पूँछौं सद्भावे । आवै जाय डोम्बी ! केकरि नावें तत्री विकिनै डोम्बी और चंगेरा । तोहर कारण छाडी नल पेरा ।

तैं रे डोम्बी मैं कपाली । तोहोंर कारण मैं लेलों हाडकै माली सरवर भाँगि डोम्बी खाइ मृणाल । मारहुँ डोम्बि लेई पार ॥१०॥

(११—राग पटमंजरी)

नारी शक्ति दृढ धरिके खाटे । अनहद डमरू बजै वीर-नादे ॥

काण्ह कपाली जोगी पइठो आचारे । देह-नगरी विहरै एकाकारे आली-काली-घटा-नूपुर चरणे । रवि-शशि-कुडल कियउ आभरणे ॥

राग-द्वेष-मोहे लाई छार । परम-मोक्ष लिये मुक्ताहार मारें उसासु-ननद घरें साली । मातु मारि **काण्ह** भइल कपाली ॥११॥

---

[1] सुरति=चित-एकाग्रता

(१८—राग गउडा)

तीन-भुअण मइँ बाहिअ हेलें। हउँ सूतेलि महासुह लीलें॥
कइसनि डोम्बि तोहोरि भाभरि आली। अन्तें कुलिण जण माँझें कवाली॥
तंइ लो डोम्बी सअल बिटालिउ। काज ण कारण ससहर टालिउ।
केहों केहों तोंहोरे विरुआ बोलइ। विदु जन लोअ तोरे कण्ठ न मेलइ॥
काण्हे गाइ नू कामचंडाली। डोम्बि तआगलि नाहि छिनाली॥१८॥

(१९—राग भैरवी)

भव-णिब्वाणे पडइ माँदला। मण-पवण-वेण्णि करंउ कशाला॥
जअ जअ दुन्दुहि सद्द उछलिला। काण्हे डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि विवाहिअ अहारिउ जाम। जउतुके किअ आणूतु धाम॥
अहणिसि सुरअ-पसंगे जाअ। जोइणि जाले रअणि पोंहाअ॥
डोंबिएँ सगे जोई रत्तो। खणह ण छाडअ सहज-उमत्तो॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

सुण्ण वाह तथता पहारी। मोह-भँडार लइ सअल अहारी॥
घुमइ न चेवइ स-पर-विभागा। सहज-निदालु **काण्हिला** लाँगा॥
चेअण ण वेअण भर निद गेला। सअल मुकल करि सुहे सुतेला॥
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण। घोलिअ अवनागवण विहूण॥
साखि करिब **जालंधरि**-पाए। पाखि न चहइ मोंरि पँडिआचाए॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चिअ सहजे सुण्ण सँपुण्णा। कांधवियोएँ मा होहि विसन्ना॥
भण कइसे **काण्हा** नाही। फरइ अणुदिण तिलोएँ समाई॥

(१८—राग गउडा)

तीन भुवन मैं गयरू हेलैं। मैं सूतलि महासुखें लीलैं॥
कैसन डोम्बि! तोर भाभर आली। अन्त कुलीन जन-मध्ये कपाली॥
नैं रे डोम्बी! मकल विटालेंउ। कार्य न कारण शशधर टालेंउ॥
केंहु केंहु तोकहँ बरुआ बोलै। वड जन तोंके कठ न मेलै॥
काण्हा गावै तू काम-चडाली। डोम्बी त आगे नाहिं छिनाली॥

(१९—राग भैरवी)

भव-निर्वाणे पटह मॉदला। मन-पवन दोऊ करौं कशाला॥
'जय' 'जय' दुदुभि शब्द उचरिला। **काण्हे** डोम्बि-विवाहे चलिला॥
डोम्बि वियाहि अहारेंउ जन्म। जौतुक कियउ अनुत्तर-धर्म॥
अहनिशि सुरत-प्रसंगे जाय। जोगिनि-जाले रजनि विताय॥
डोम्बी-संग जोउ रक्त। क्षण ना छाडै सहजुन्मत्त॥१९॥

(३६—राग पटमंजरी)

शून्य वाहे तथता प्रहारिय। मोह-भंडार लेंइ सकल अहारी॥
सुतै न चिन्तै स्व-पर-विभगा। सहज-निद्रालु **काण्हिला** नगा॥
चेतन न वेदन भर-नींदि गेला। सकल मुक्त करि सुखे सुतेला॥
स्वप्ने मैं देखल त्रिभुवन शून्य। घोरि के अवनागवन-विहून॥
साखि करव **जालंधर**पाद। पास न देखौं मोंर पडिताचार॥३६॥

(४२—राग कामोद)

चित्त सहजेहिं शून्य-सँपूर्णा। स्कध-वियोगे ना होहु विषण्णा॥
भनु कैसे **काण्हा** नाहीं। फिरै अनुदिन तिलोक-समाई॥

मूढा दिठ नाठ देखि काअर। भाँग तरग कि सोषइ साअर॥
मूढ! अछन्ते लोअण पेक्खइ। दूध माँझेँलउ अच्छन्ते ण देक्खइ॥
भव जाई ण आवइ ण एथु कोई। अइस भावे विलसइ **काण्हिल** जोई॥४२॥

(४५—राग मल्लारी)

मण-तरु पाँच इन्दि तसु साहा। आसा-बहल पात फल बाहा॥
वर-गुरु-वअणेँ कुठारेँ छिज्जअ। **काण्ह** भणइ तरु पुण ण उइजअ॥
बढइ सो तरू सुभासुभ पाणी। छेवइ विदु-जन गुरु-परिमाणी॥
जो तरु छेवइ भेउ ण जाणइ। सडि पडिआँ मुढ[1] ना भव माणइ॥
सुण्णा तरुवर गअण-कुठार। छेवइ सो तरु-मूल ण डाल॥४५॥
—चर्यापद[1]

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला।
घणे किपिट्टहोँ वज्जइ, करुणेकि अई न रोला॥
तहि बल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुरु बज्जिअई॥
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई॥
मालइ-इंधन सलील तहि भरु खाइअई॥
पेंखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ॥
निरेँ सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ॥
मलअज कुन्दुरु वट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ॥
—चर्यापद[2]

---

[1] J.D.L. Cal. XXX, p. 36 [2] J.D.L. Cal. XXVIII, p. 36

मूढ ! दृष्ट नष्ट देखि कातर । भाग तरंग कि सोखै सागर ।।
मूढ ! अछतै लोग न पेखै । दूध माँझ घृत अछत न देखै ।।
भव जाइ न आवै न ऍहिँ कोई । ऐस भावहिँ विलसै **काण्हिल** योगी ।।२४।

(४५—राग मल्लारी)

मन तरु पाँच इन्द्रि तसु साखा । आशा-वहुल पत्र-फल-वाहा ।।
वरगुरु-वचन कुठारेँहिँ छीजै । **काण्ह** भनै तरु पुनि न उपजै ।।
बढै सो तरू शुभाशुभ पानी । छेवै विदु-जन गुरु-परिमाणी ।।
जो तरु छेवै भेद न जानै । मड पड़ेँ उघो मुढ ! न भव मानै ।।
शून्या तरुवर गगन-कुठार । छेवै सो तरु-मूल न डार ।।

—चर्यापद

(५) वज्रगीति[1]

कोल्लयि रे ठिअ बोला, मुम्मुणि रे कक्कोला ।
घणे किपिट्टहोँ वज्जइ, करुणेकि अई न रोला ।
तहि वल खज्जइ गाढ़े, मअ णा पिज्जिअई ।
हले कलिञ्जल पणिअइ दुद्दुर बज्जिअई ।
चउसम कस्तुरि सिहला कप्पुर लाइअई ।
मालइ-डॅधन सलील तहि भरु खाइअई ।
पेखण खेट करन्ते सुद्धासुद्ध ण माणिअइ ।
निरँ सुह अङ्ग चडाविअइ जस नावि पणिअइ ।
मलअज कुन्दुरु बट्टइ, डिंडिम तहिँ णा वज्जिअइ ।।

—चर्यापद

[1] J.D.L. Cal XXVIII, p. 36

§ १३. गोरखनाथ (गोरक्षपा)

काल—८४५ (देवपाल ८०९–४९)। **देश**—गोरखपुर(?)। **कुल**....
कृतियाँ—(१) गोरखवानी[1], (२) वायुतत्त्वोपदेश[2]

१. आत्म-परिचय[3]

(१) मछेन्द्र (मत्येन्द्र)के शिष्य—

प्यंडे होइ तो मरै न कोई। ब्रह्मंडै देषै सब लोई।
प्यंड ब्रह्मंड निरतर वास। भणत **गोरष मछंद्रका** दास॥ (२५।७०)
गुदडी जुग च्यारि तैं आई। गुदडी सिध-साधिका चलाई।
गुदडीमैं अतीतका वासा। भणत **गोरख मछंद्रका** दासा॥ (६६।१९७)[4]

(२) चौरासी सिद्धोंसे संबंध

मन मछिंद्रनाथ पवन ईस्वरनाथ चेतना **चौरंगी**नाथ।
ग्यान श्रीगोरखनाथ। (पृष्ठ २०४)
नाद हमारै वाहै कवन। नादं वजाया तूटै पवन।
अनहद सबद वाजन रहै। सिध-सकेत श्रीगोरख कहै॥ (३७।१०६)
नौ नाथा नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूव॥ (१३३।५)
आदिनाथ[5] नाती मछिंद्रनाथ पूता। व्यद तोलै रापीले गोरष अवधूता॥ (पृ० ९१)

---

[1] डाक्टर पीतांवरदत्त बडथ्वाल सम्पादित—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (सवत् १९९९) [2] भोट-भाषानुवाद (तनजुर ४८।१५१)
[3] सब उद्धरण गोरखवाणी से पृष्ठ और पद्यांक
[4] ष का उच्चार ख और श दोनों होता है, यहां ख है।
[5] गोरखवानीकी भाषा ९वीं सदी नही पंद्रहवीं-सोलहवीं की है।
[6] जलंधरपाद (दे० पुरातत्त्व-निबंधावली, पृ० १६३)

२. दर्शन (चौरासी सिद्धोंका)

(१) सहजयान

हवकि न बोलिबा ठबकि न चालिबा धीरै धोखा पाँव ।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरषराव ॥ (११।२७)
गिरही सो जो गिरहै काया । अभि-अंतरकी त्यागै माया ।
सहज-सीलका धरै सरीर । सो गिरही गगाका नीर ॥ (१७।४५)
निद्रा सुपनै विन्दु कूं हरै । पथ चलंता आतमाँ मरै ।
वैठा षटपट ऊभा उपाधि । गोरष कहै पूता सहज-समाधि ॥ (७०।२१२)
जिहि घर चद-सूर नहिँ ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा ।
तिहा जे आसण पूरौ तौ सहजका भरौ पियाला मेरे ज्ञानी ॥ (६०।४)
सहज-पलांण पवन करि घोडा, लै लगाम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यान गुरू करि, और तजौ सब ढबका ॥ (१०३।३)
सहज गोरखनाथ वणिजे कराई, पच बलद नौ गाई ।
सहज सुभावै वाषर ल्याई, मोरे मन उडियानी आई ॥ (१०४।१)
भणत गोरखनाथ मछिंद्रका पूता, एद्वा वणिज ना अरथी ।
करणी अपणी पार उतरणा, वचने लेणा साथी । (१०४।३)
काया गढ़ लेवा जुगे-जुग जीवा ॥टेक॥
काया गढ़ भीतरि नौ लष खाई , जत्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।१।
ऊचे नीचे परवत भिलमिल षाई, कोठड़ीका पाणी पूरण गढ़ जाई ।
इहा नही उहा नही त्रिकुटी-मझारी, सहज-सुनि मै रहनि हमारी ।३।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ जीति ले गोरष अवधूता ।४। (१४३।३६)
त्रिभुवन डसती गोरखनाथ डीठी ॥टेक॥
मारौ स्रपणी जगाई ल्यौ भौरा,
जिनि मारी स्रपणीं ताकौं कहा करै जौंरा ।१।
स्रपणी कहै मैं ' अबला बलिया,
ब्रह्मा विस्न महादेव छलिया ।२।

माती माती स्रपनी दसौ दिसि धावै,
गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै । (१३६।३)
अवधू सहज हंसका षेल भणीजै, सुनि हसका बास ।
सहजै ही आकार निराकार होइसी, परम-ज्योति हंसका निवास । (१६१।४०)
अवधू सहज-सुनि उतपना आइ । समि सुनि सतगुरु बुझाइ ।
अतीत सुनिमैं रह्या समाइ । परम-तत्व मैं कहू समझाइ । (१६३।६२)
बांफ न निकसै बूद न ढलके, सहजि अगीठी भरि भरि राधै ।
सिध-समाधि योग-अभ्यासी, तब गुरु परचै साधै । (२१८।४४)

(२) मध्य-मार्ग

षांये भी मरिये अणषांये भी मरिये । गोरख कहै पूता सजमि ही तरिये ।
मधि निरंतर कीजै बास । निहचल मनुवां थिर होइ सांस । (५१।१४६)

(३) अलख और निरंजन-तत्त्व—

घरबारी सो घरकी जाणै । बाहरि जाता भीतरि आणै ।
मरब निरंतरि काटै माया । सो घरबारी कहिये निरंजनकी काया । (१६।४४)
पच तत्त ले सिधा मुडाया, तब भेटि ले निरजन-निराकार ।
मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू, तब लूटि ले अषै भडार । (२७।७७)
अलेष लेषंत अदेष देषत, अरस-परस ते दरस जाणी ।
सुनि गरजंत वाजंत नाद, अलेष लेषत ते निज प्रवाणी । (३२।६१)
उदय न अस्त राति न दिन, सरबे सचराचर भाव न भिन्न ।
सोई निरजन डाल न मूल, सर्वव्यापिक सुषम न अस्थूल । (३६।१११)
माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरजन-निराकार ।
गुरु हमारै अतीत बोलिये, जिन किया पिण्डका उधारं । (६७।२०२)
नाद-विन्द गांठि प्रवानां । कवण घटि जोति कवण अस्थानां ।
कहा निरंजन बासा करही । कहाँ काली नागनी मीडक धरही ।। (१६६।१०)
कहाँ जलधर पवना मेला । उंद्र कहाँ बिलइया घेरा ।
सींगी नाद कहाँ जोगी पूरा । जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा ।। (१६६।११)

(४) शून्य और आकाशतत्त्व

आकाश-तत सदा-सिव जांण । तसि अभिअंतरि पद-निरबाण ।
प्यंडे परचानैं गुरमुषि जोइ । बाहुडि आवागवन न होइ । (५७।१६८)
जोगी सो जो राषै जोग । जिभ्या यन्द्री न करै भोग ।
अंजन छोड़ि निरंजन रहै । ताकू गोरख योगी कहै ॥ (७३।२३०)
मुनि ज माई सुनि ज बाप । सुनि निरंजन आपै आप ।
मुनिकै परचै भया सथीर । निहचल जोगी गहर-गभीर ॥ (७३।२३१)
अवधू मनका सुनि रूप, पवनका निरालभ आकार ।
दमकी अलेख दसा, साधिबा दसवै द्वार ॥ (१८७।८)
अवधू हिरदा न होता तब सुनि रहिता मन ।
नाभी न होती तब निराकार रहिता पवन ॥
रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद ।
गगन न होता तब अंतरष रहिता चद ॥ (१८९।२८)
स्वामी कौण तेज थैं जोति पलटै । कौण सुनि थे बाबा फुरै ।
कौण सुंनि थैं त्रिभुवन सार । कौण सुनि थैं उतरिबा पार ॥ (१९४।६९)
अवधू सुनै आवै सुनै जाइ । सुनै चीया रहे समाइ ।
सहज-सुनि मन-तन थिर रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१९५।७८)
अवधू सबद अमाहद सुरति सोचित । निरति निरालभ लागै बध ।
दुबध्या मेटि सहजमें रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै । (१९६।८४)

(५) रहस्यवाद

सिष्टि-उतपती बेली प्रकास, मूल न थी, चढी आकास ।
उरध गोढ़ कियौ विसतार, जाणनै जोसी करै विचार । (११९।१)
भणत गोरखनाथ मछिंद्रना पूता, मारयौ मृघ भया अवधूता ।
याहि हियाली जे कोई बूझै, ता जोगीको त्रिभुवन सूझै । (११९।५)

गुरु जी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी-महारस छीजै ॥ टेक ॥
दिवसैं बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै ।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि-घरि बाघणि पोषै ॥
नदी तीरै विरषा नारी संगै पुरषा अलप-जीवनकी आशा ।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध विनासा ॥
गोड़ भये डगमग पेट भया डीला, सिर बगुलाकी पँखियाँ ।
अमी-महारस वाघणी सोष्या घोर मथन जैसी अंखिया ॥
बाँघिनीको निदिलै बाघनीको विदिलै बाघनी हमारी काया ।
बाघनी घोषि घोषि सुदर षाये भणत गोरखराया ।३।
(१३७।४३)

बाधौ बांधौ वछरा पीओ पीओ षीर । कलि अजरावर होइ सरीर । टेक ।
आकासकी धेन बछा जाया । ता धेनकै पूछ न पाया ।१।
बारह वछा सोलह गाई । धेन दुहावत रैन बिहाई ।२।
अचरा न चरै धेन कटरा न षाई । पच ग्वालियाँकौ मारण धाई ।
याही धेनक दूध जु मीठा । पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ॥ (१४७।५१।)
साँभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुणै अनोपम वाणी जी ।
निरगुण नारी सू नेह करता । भवकै रैणि विहाणी जी । टेक ।
डाल न मूल पत्र नहि छाया । विण जल पिंगुला सीचै जी ।
बिणही मढ़ीया मदला बाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।
चीटयां परवत ढोल्या रे अवधू । गायां बाघ बिडारचा जी ।
सुसलै समदा लहरि मनाई । मृघा चीता मारचा जी ॥
ऊभड़ि मारगि जाता रे अवधू । गुर विन नही प्रकासा जी ।
जीत्या गोरष अब नही हारै । समझि ररालै पासा जी । (१५३।५७।)
गोरष बालड़ा बोलै सतगुरु वाणी रे ।

जीवता न पररायाँ तेन्हे अगनि न पांणी रे ॥ टेक ॥
षीलौ दूभै भैसि बिरोलै, सासूड़ी पालनडै बहुड़ी हिडोलै ।१।
कोयल मोरी आंबौ वास्यौ, गगन मछलड़ी वगलौ ग्रास्यौ ।२।
करसन पाकू रषवालू षाधू, चरि गया मृघला पारधी वांधू ।३।
सींगी नादै जोगी पूरा, गोरखनाथ परन्या तिहाँ चद न सूरा । (१५५।६०)

३–साधना और उलटवाँसी

(१) साधना

बैठा अवधू लोकी षूँटी, चलता अवधू पवनकी मूठी ।
सोवता अवधू जीवता मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा । (२५।७१)
दृष्टि अग्रे दृष्टि लुकाइबा सुरति लुकाइबा कान ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा, तब रहि गया पद निर्वान । (२७।७५)
उलट्या पवना गगन समोइ, तब बालरूप परतषि होइ ।
उदै ग्रहि अस्त हेम ग्रहि पवन मेला, बँधिलै हस्तिया निज साल भेला ॥ (३१।८८)
अहकार तूटिबा निराकार फूटिबा, सोषीला गग-जमनका पानी ।
चद-सूरज दोऊ मनमुषि राखीला, कहो हो अवधू तहाँकी सहिनाणी ॥
(३६।११३)
अवधू रवि अमावस चद सु पड़िवा । अरधका महारस ऊरध ले चढ़िवा ॥
गगन अस्थानें मन उनमन रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥ (१८८।१८)
षरतर पवना रहै निरतरि । महारस सीझै काया अभिअंतरि ।
गोरख कहै अम्हे चंचल ग्रहिया । सिव-सक्ती ले निज घर रहिया ॥ (४५।१३०)

(२) उलटवाँसी

गगनि-मंडलि मैं गाय बियाई कागद दही जमाया ।
छाछि छाँडि पिंडता पीनी सिधा माषण खाया ॥ (६६।१९६)

नाथ बोले अमृत वाणी वरिषैगी, कंबली भीजैगा पाणी । टेक ।
गड़ि पड़रवा बाँधिलै षटा, चलै दमामा बाजि ले ऊँटा ।१।
कउवाकी डाली पीपल बासै, मूसाकै सबद बिलइया नासै ।२।
चले बटावा थाकी बाट, सोवे डुकरिया ठौरे षाट ।३।
ढूकि ले कूकुर भूकि ले चोर, काढै धणी पुकारै ढोर ।४।
ऊजड़ षेड़ा नगर-मझारी, तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।५।
मगरी परि चूंल्हा धूधाइ, पोवणहाराकौ रोटी खाइ ।६।
कामिनि जलै अँगीठी तापै, बिच वैसंदर थरहर काँपै ।७।
एक जु रढिया रढती आई, बहू बिबाई सासू जाई ।८।
नगरीकौ पाणी कई आवै, उलटी चरचा गोरख गावै । (१४१।४७)

४–गोरखका संदेश

(१) रुढि-खण्डन

अवूझि वूझि लै हो पडिता, अकथ कथिलै कहाणी ।
सीसनवावत सतगुरु मिलिया, जागत रैण विहाणी । (७२।२२२)
मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहाँ गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ।। टेक ।।
कुम्हराकै घरि हाँडी आछै, अहीराके घरि साँडी ।
बमनाकै घरि राड़ी आछै, राड़ी, साँडी हाँडी ।१।
राजाकै घरि सेल आछै, जंगल-मधें बेल ।
तेलीके घरि तेल आछै, तेल-बेल-सेल ।२।
अहीरकै घरि महकी आछै, देवल-मध्ये ल्यग ।
हाटी-मधे हीगें आछै, हीगें, ल्यंग, स्यंग ।३।
एकै सुत्रै नाना वणियाँ, वहु भाति दिखलावै ।
भणत गोरष त्रिगुणी माया, सतगुर होइ लषावै ।
(१३६।४२)

सयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवनका काल।
छाड़ौ तंत-मंत वेदत। जंत्रं गुटिका धात पषंड।
(१७०।४)

जड़ी-बूटीका नाव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।
थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ ओचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभकी बाट।
(१७०।५)

नैण महारस फिरौ जिनि देस। जटा भार वँधौ जिनि केस।
रुष-विरष-वाड़ी जिनि करो। कूवा-निवाण षोदि जिनि मरौ। (१७६।७)
छोड़ौ बैद-वणज-व्यौपार। पढ़िवा गुणिबा लोकाचार। (१७०।६)
पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि विटबौ आप।
जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली राँड वैदकी होइ।
जडी-बूटी अमर जे करे। तौ वैद धनतर काहे को मरै। (१७७।१७)
सोनै रूपै सीझै काज। तौ कत राजा छोडै राज।
पसुवा होइ जपै नहिँ जाप। सो पसुवा भोंषि क्यों जात। (१७७।१८)

(२) राजा-प्रजाको समान देखना—

निसपती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।
राजा-परजा सम करि देष। तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष। (४८।१३६)

(३) भोगमें योग

भग-मुषि ब्यंद अगनि-मुष पारा। जो राखै सो गुरू हमारा। (४६।१४२)
षाये भी मरिये अणषायें भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरियै।
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ साँस। (५१।१४६)
आओ देवी बैसो। द्वादिस अंगुल पैसो
पैसत पैसत होइ सुष। तब जनम-मरनका जाइ दुष। (५३।१५५)
स्वामी काची बाई काचा जिंद। काची काया काचा विंद।
क्यूं करि पाकै क्यूं करि सीझै। काची अगनी नीर न षीजै॥ (५४।१५६)

§ १४. टेंडण(तंति)पा

काल—८४५ (देवपाल-विग्रहपाल ८०९–४९–५४)। देश—अवंतिनगर

(३३—राग पटमंजरी)

टालत (नगरत) मोर घर नाहि पडिवेशी।
हाँडीत भात नाहि निति आवेशी॥
वेङ्गस साप वड्हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि वेन्टे समाअ॥
बलद बिआअल गविआ बाँझे।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे॥
जो सो बुधी सोध नि-बुधी।
जो सो चोर सोई साधी।
निति सिआला सिहे सम जूझअ।
टेण्टण पाएर गीत बिरले बूझअ॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०–५४–९०८)। देश—मगध।

(१६—राग भैरवी)

तीनिए पाटें लागेलि अणहअ सन घण गाजइ।
ना सुनि मार भयंकर विसअ-मडल सअल भाजइ॥
मातेल चीअ-गएन्दा धावइ। निरँतर गअणँत तुसे (रवि-ससि) घोलइ॥
पाप-पुण्ण वेणि तोडिअ सिँकल मोडिअ खम्भा ठाणा।
गअण-टाकली लागेलि रे चित्त पइट्ठ णिवाणा॥
महरस पाने मातेल रे तिहुअन सअल उएखी।
पंच विसअ-नायक रे विपख कोबि न देखी॥
खर रवि-किरण सँतापें रे गअणङ्गण जइ पइठा।
भणन्ति **महिआ** मइ एथु बुडन्ते किम्पि न दिठ॥१६॥
—चर्यापद

§ १४. टेंडण(तंति)पा

(उज्जैन)। कुल—तँतवा (कोरी), सिद्ध (१३)। कृति—चतुर्योग-भावना।

(३३—राग पटमंजरी)

नगर-माँझ मोर घर, नाहि पडोसी।
हाँडीते भात नाही नित्य आवेशी॥
बेँगेहिँ साँप बधिल जाय।
कच्छू दूध कि मेँटे समाय॥
बरध बियाइल गैया बाँझी।
मेँटहि दूहिय तीनोँ साँझी॥
जो सो बुद्धी सोइ निर्बुद्धी।
जो सो चोर सोई साहु॥
नित्य सियारा सिह से जूझै।
टेंटणपा कै गीति बिरलै बूझै॥३३॥

§ १५. मही(महीधर)पा

कुल—शूद्र। कृतियाँ—वायुतत्त्व-दोहागीतिका।

(१६—राग भैरवी)

तीन पाटे लागल अनहद-स्वन घन गाजै।
तेहि सुनि मार भयंकर विषय-मंडल सकल भाजै॥
मातल चित्त-गयन्दा धावै, निरंतर गगनतें तुष (रवि-शशि) घोलै।
पाप-पुण्य द्वैत तोडि साँकल मरोडी खम्भा-थान।
गगन टकटकी लागलि रे चित्त पइठ निर्वाण॥
महारस पाने मातल रे त्रिभुवन सकल उपेक्षी।
पंच विषय-नायकरे विपख काहु न देखी॥
खर-रवि किरण सतापेहिँ गगनांगण जाइ पइठा।
भणै **महीआ** मैँ एहिँ बूडत किछू न दीठा॥१६॥
—चर्यापद

§ १६. भादे(भद्र)पा

काल—८७५ (विग्रहपाल-नारायणपाल ८५०-५४-९०८)। देश—श्रावस्ती।

(३५—राग मल्लारी)

एत काल हाँउ अच्छिल स्वमाहें।
एवें मइ बूझिल सद्गुरु-बोहें॥
एवें चिअ-राअ मोकू णठा।
गअण-समुद्दे टलिआ पइठा॥
पेखमि दह दिह सर्वइ सुन्न।
चिअविहुन्ने पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पणिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला।
चिअ-राअ मइ अहार कइला॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

काल—८७५ ई० (विग्रहपाल - नारायणपाल ८५०-५४-६०)। देश—विक्रमशिला (भागलपुर)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१६)।

(४७—राग गुर्जरी)

कम-कुलिश माँझे भमई लेली।
समता-जोएँ जलिल चण्डाली॥
डाह डोम्बिघरे लागेलि आगी।
ससहर लइ सिंचहु पाणी॥

§ १६. भादे(भद्र)पा

कुल—चित्रकार, सिद्ध (३२)। कृतियाँ—चर्यापद (गीति)

(३५—राग मल्लारी)

एतन काल हौं रलों स्वमोहे।
अब मैं बुझलों सद्गुरु-बोधे॥
अब चित्त-राग मोरा नष्टा।
गगन-समुद्रे टलिके पइठा॥
पेखों दश-दिशि सर्वहि शून्य।
चित्त-विहूने पाप न पुण्य॥
बाजुल ने दीलो मोहिँ लक्ष्य भानी।
मैं आहारिल गगनसें पानी॥
भादे भनै [अभागे लियेंउ।
चित्त-राग मैं आहार कियेंउ॥३५॥

—चर्यापद

§ १७. धाम(धर्म)पा

कृतियाँ—कालि-भावना-मार्ग, सुगतदृष्टि-गीतिका, हुँकार-चित्त-विंदु-भावना-क्रम।

(४७—राग गुर्जरी)

कमल-कुलिश माँझे भ्रमई लेली।
समता-योगेहि ज्वलिल चँडाली॥
डाह डोम्बि-घरे लागलि आगी।
शशधर लेइ सींचहु पानी॥

णउ खरे जाला धूम ण दीसइ ।
मेरु-सिहर लइ गअण पईसइ ॥
दाढ़इ हरि-हर-ब्रह्मण नाडा (भट्टा) ।
दाढइ नव-गुण-शासन पाडा (पट्टा) ॥
भणइ **धाम** फुड़ लेहु रे जाणी ।
पञ्चनालेँ उठे (ऊध) गेल पाणी ॥
—चर्यापद

३ : दसवीँ सदी

§ १८. देवसेन

काल—९३३ ई० । देश—धारा (मालवा) में रहे । कुल—जैन साधु ।

(१) सदाचार-उपदेश

दुज्जणु सुहियउ होउ जगि, सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ विसे वासस तमिण, जिम मरगउ कच्चेण ॥२॥
महु आसायउ थोडउबि, णासइ पुण्णु बहुत्तु ।
वड्माणरहँ निडिक्कडॅइ, काणणु डहइ महन्तु ॥२३॥
जूँए धणहु ण हाणि पर, वयहँ मि होइ विणासु ।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर, इयरहँ डहइ हुयासु ॥३८॥
बेसहिं लग्गइ धनिय धणु, तुट्टइ बधउ मित्तु ।
मुच्चइ णरु सव्वइँ गुणहँ, बेसाघरि पइसन्तु ॥४४॥
मुक्कइँ कूड़-तुलाइयइँ, चोरी मुक्की होइ ।
अह न वणिज्जइँ छाडियइँ, दाणु ण मग्गइ कोइ ॥४९॥
मण-वय-कामहि दय करहिँ, जेम ण ढुक्कइ पाउ ।
उरि सण्णाहि वद्धउण, अवसि न लग्गइ धाउ ॥६०॥

नहिँ खरेँ ज्वाल धूम न दीसै ।
मेरु-शिखर लेइ गगन पईसै ॥
डाहै हरि-हर-ब्रह्म भट्टा ।
डाहै नव-गण-शासन पट्टा ॥
भनै **धाम** फुर लेहु रे जानी ।
पच नालेहिँ उठि गइल पानी ॥४७॥

—चर्यापद

३ : दसवीँ सदी

§ १८. देवसेन

कृतियाँ—सावयधम्म-दोहा ।

(१) सदाचार-उपदेश

र्जन सुखियहु होहु जग, सुजन पकासेँउ जेहि ।
अमृत विषे वासर तमसि, जिमि मर्कत कांचेन ॥२॥
द-आस्वादन थोडहू, नाशइ पुण्य वहुत्त ।
वैश्वानर चिगारियउ, कानन डहै महन्त ॥२३॥
ूएँहि धनको हानि पुनि, धर्महु होत विनाश ।
लागो काठ न डहइ वरु, अन्यहु डहइ हुताश ॥३८॥
ेश्यहि लागहिँ धनिक-धन, छूटइ बाधव-मित्र ।
मुचइ नर सर्वहि गुणहि, वेश्या-घर पइसन्त ॥४०॥
ुँचै कूट-तुलादिते, चोरी-मुक्ती होइ ।
अथन वणिज्जहि छांड तो, दान न माँगइ कोइ ॥४२॥
न-वच-कर्महि दया करु, जिमिना ढुक्कइ पाप ।
उर सन्नाहे बाँधतो, अवशि न लागइ घाव ॥६०॥

भोगहँ करहि पमाणु जिय, इंदिय म करिसि दप्प ।
हुंति ण भल्ला पोसिया, दुद्धें काला सप्प ॥६५॥
लोह लक्ख विसु सणु मयणु, दुट्ठ-भरणु पसु-भार ।
कंडि अणत्थइं पिडि-पडिइ, किमि तरइहि संसार ॥६७॥
एहु धम्मु जो आयरइ, बंभणु सुद्दु वि कोइ ।
सो सावउ कि सावयहँ, अण्णु कि सिरिमणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

जइ गिहत्थ दाणेण विणु, जगिव भणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थ पखि वि इवइ, जें घरु ताइवि होइ ॥८७॥
धम्म करउँ जइ होइ धणु, इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभटतणउ, आवइ अज्जु कि कल्लि ॥८८॥
काइँ बहुत्तइ संपयइँ, जइ किविणहँ घर होइ ।
उयहि-णीरु खारें भरिउ, पाणिउ पियइ न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धम्मे सुहु पावेण दुहु, एक पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि, जेहिय इंछिउ होइ ॥१०१॥
काइँ बहुत्तइँ जंपियइँ, जं अप्पह पडिकूल ।
काइँ मि परदु ण तं करहि, एहजि धम्महु मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर, जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलह, जं आवइ णाएण ॥११३॥
रूवहु उप्परि रइ म करि, णयण णिवारइ जंत ।
रूवासत्त पयंगडा, पेक्खइ दीवि पडंत ॥१२६॥
गुणवन्तह मइ संगु करि, भल्लिम पावहि जेम ।
सुमण सुपत्त विवज्जियउ, वरतरु वुच्चइ केम ॥१४१॥

भोगहिँ मात्रा करहु जिय, इन्द्रिय ना करु दर्प ।
होत भला नहि पोसिया, दूधेँ काला सर्प ॥६५॥
लोह, लाख, विष-सन, मयन, दुष्ट-भरण पशु-भार ।
छाडि अनर्थहि पिड पडि, किमि तरिहै संसार ॥६७॥
एहि धर्महि जो आचरइ, ब्राह्मण, शूद्रहु कोइ ।
सो श्रावक कि श्रावकहिँ, अन्य कि सिर-मणि होइ ॥७६॥

(२) दान-महिमा

यदि गृहस्थ दानहि विना, जगमे भणियत कोइ ।
तो गृहस्थ पंछिहु इवै, जे घर ताहउ होइ ॥८७॥
धर्म करौ यदि होइ धन, एँहु दुर्वचन न बोल ।
हंकारउ जम-भटनते, आवइ आज कि कालि ॥८८॥
काह बहूतहिँ संपदहि, यदि कृपणहिँ घर होइ ।
उदधि-नीर खारे भरेँउ, पानिउ पियै न कोइ ॥८९॥

(३) धर्माचरण-महिमा

धर्महि सुख पापहि दुख, एह प्रसिद्धउ लोक ।
ताते धर्म समाचरहु, जे हिय-वांछित होइ ॥१०१॥
काइ बहूते जल्पने, जो अपने प्रतिकूल ।
काहू दुख सो ना करइ, एँहु जे धर्मकोँ मूल ॥१०४॥

(४) धर्माचरण

धर्म विशुद्ध सोइ पर, जो कीजइ कामेन ।
अथवा सो धन उज्ज्वल, जो आवइ न्यायेन ॥११६॥
रूपहि ऊपर रति न करु, नयन निवारहु जांत ।
रूपासक्त पतंगडा, पेखहु दीप पडन्त ॥१२६॥
गुणवानैँ सह सग करु, भल्लो पावइ जेमु ।
सुमन-सुपत्रन-वर्जितउ,, वरतरु कहियतु केमु ॥१४१॥

अण्णाएँ आवंति जिय, आवइ धरण ण जाइ।
उम्मग्गें चल्लत यहँ, कंटइँ मज्जइ पाउ ॥१४५॥
कूड-तुला-माणाइयहं, हरि-करि-खर-विस-मेस।
जो णच्चइ णटु पेखणउ, सो गिण्हइ बहु-वेस ॥१६२॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ, भोयह पेरिउ जेण।
लोह कंजि दुत्तर तरणि, णाव विदारिय तेण ॥२२१॥

§ १९. तिल्लोपा[1]

काल—९६० ई० (राज्यपाल-गोपाल द्वि०-विग्रहपाल द्वि० ९०८-४०-६०-८०)। देश—भिगुनगर (मगध)। कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (२२)

(१) सहज-मार्ग

सहजें भावाभाव ण पुच्छह। सुण्ण करुण तहि समरस इच्छअ ॥२॥
मारह चित्त णिवाणें हणिआ। तिहुअण सुण्ण णिरंजन पलिआ ॥३॥
आइ-रहिअ एहु अन्तर-हिअ। वर-गुरु-पाअ अदृअ कहिअ ॥६॥
बढ़ ! अणें लोअ-अगोअर तत्त, पडिअ लोअ अगम्म।
जो गुरु पाअ पसण्ण..,तहिँ की चित्त अगम्म ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

सअ-संवेअण तत्त-फल, **तीलोपाअ** भणन्ति।
जो मण-गोअर पइठई, सो परमत्थ ण होन्ति ॥९॥
सहजें चित्त विसोहहु चङ्गा। इह जम्महि सिधि मोक्खा भंगा ॥१०॥
अदृअ-चित्त तरुअरा, गउ तिहुअण वित्थार।
करुणा फुल्लिअ फलधरा, णउ परता ऊआर ॥१२॥

---

[1] J.D.L. XXVIII, pp. 1—4

अन्याये आवइ यदि, आवइ धरेँउ न जाइ ।
उन्मार्गें चल्लन्त कहं, कंटक भंजइ पाउ ॥१४५॥
कूट-तुला-मानादि कह, हरि-करि-खर-विष-मेष ।
जो नाचइ नट प्रेक्षणउ, सो गृण्हइ बहु-वेष ॥१६२॥
दुर्लभ लहि मनुजत्व कहं, भोगेहि प्रेरेँउ येन ।
लोह-लाइं दुस्तर तरणि, नाव विगाडेँउ तेन ॥२२१॥

§ १९. तिलोपा

कृतियाँ—निवृत्तिभावनाक्रम, करुणाभावनाधिष्ठान, दोहा-कोष, महामुद्रोपदेश ।

(१) सहज-मार्ग

सहजे भावाभाव न पूछिय । शून्य-करुण तँह सम-रस इच्छिय ॥२॥
मारहु चित निर्वाणे हनिया । त्रिभुवन शून्य निरंजन पेलिया ॥३॥
आदि-रहित एहु अन्त-रहित । वर-गुरु-पाद अद्वय कथित ॥६॥
मूढ-जन-लोग-अगोचर तत्त्व, पडित लोग-अगम्य ।
जो गुरुपाद प्रसन्न (हो), तेहि की चित्त-अगम्य ॥८॥

(२) निर्वाण-साधना

स्वक-संवेदन[१] तत्त्व-फल, **तीलोपाद** भणन्ति ।
जो मन-गोचर पइठै, सो परमार्थ न होन्ति ॥९॥
सहजे चित्त विशोधहु चगा । इहँ जन्महि सिद्धि मोक्षा भंगा ॥१०॥
अद्वय-चित्त तरूवरा, गउ त्रिभुवन विस्तार ।
करुणा फूली फलधरा, नहि परतो उपकार ॥१२॥

---

[१] स्वकीय अनुभव

पर अप्पाण म भन्ति करु, सअल णिरन्तर बुद्ध ।
तिहुअण णिम्मल परम-पउ, चित्त सहावें सुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल णिचल जो सअलाचार । सुण्ण णिरंजन म करु विआर ॥१४॥
एहु से अप्पा एहु जगु जो परिभावइ । णिम्मल चित्त सहाव सो कि बुज्झइ ॥१५॥
हउँ जग हउँ बुद्ध हउँ णिरंजण । हउँ अमणसिआर भव-भंजण ॥१६॥
मणह भअवा खसम म अवई । दिवाराति सहजे राहीअइ ॥१७॥
जम्म-मरण मा करहु रे भन्ति । णिअ-चिअ तहीं णिरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तित्थ तपोवण म करहु सेवा । देह सुचीहि ण मन्ति पावा ॥१९॥
बम्हा-विहणु-महेसुर देवा । बोहिसत्त्व मा करहू सेवा ॥२०॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा । देवपुजाहीं मोक्ख ण पावा ॥२१॥
बुद्ध अराहहु अविकल-चित्तें । भव णिब्बाणे म करहु थित्तें ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता ।
तिम भव भुञ्जइ भवहि ण जुत्ता ॥२४॥
खण आणद भेउ जो जाणइ । सो इह जम्महि जोइ भणिज्जइ ॥२८॥
हउँ सुण्ण जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण । णिम्मल सहजें ण पाप ण पुण्ण ॥३४॥
जहि इच्छइ तहि जाउ मण, एत्थु ण किज्जइ भन्ति ।
अघ उघाडि आलोअणे, झाणें होइ रे थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष[1]

---

[1] J.D.L. Cal. XXVIII, pp. 1—4

पर-आपा न. भ्रान्ति करु, सकल निरन्तर बुद्ध ।
त्रिभुवन निर्मल परम-पद, चित्त स्वभावे शुद्ध ॥१३॥

(३) निरंजन-तत्त्व

सचल निचल जो सकलाचार । शून्य-निरंजन न करु विचार ॥१४॥
एँहु सो आपा एँहु जग जो परिभावै । निर्मल चित्त-स्वभाव सो का वूझै ॥१५॥
हौं जग हौं बुद्ध हौं निरंजन । हौं अ-मनसिकार भव-भंजन ॥१६॥
मन भगवान् ख-सम[1] भगवती । दिवा-रात्रे सहजे रहई ॥१७॥
जन्म-मरण न करहु रे भ्रान्ति । निज चित्त तहाँ निरन्तर होन्ति ॥१८॥

(४) तीर्थ-देव-सेवा बेकार

तीर्थ-तपोवन न करहु सेवा । देह शुची ना होवै पापा ॥१९॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर-देवा । बोधिसत्त्व ना करहु रें सेवा ॥२०॥
देव न पूजहु तीर्थ न जावा । देवपूजतें मोक्ष न पावा ॥२१॥
बुद्ध अराधहु अ-विकल चित्ते । भव-निर्वाणे न करहु स्थित्वे ॥२२॥

(५) भोग छोड़ना बुरा

जिमि विष भक्षै विषहिँ प्रलुप्ता ।
तिमि भव भोगै भवहिँ न युक्ता ॥२४॥
क्षण-आनद भेद जो जानै । सो एहि जन्महिँ जोगि भनीजै ॥२८॥
हौं शून्य जग शून्य त्रिभुवन शून्य । निर्मल-सहजे न पाप न पुण्य ॥३४॥
जँह इच्छै तँह जाउ मन, एहिँ न कीजै भ्रान्ति ।
अधो उघारि अवलोकने, ध्याने होइ रे स्थित्ति ॥३५॥
—दोहाकोष

---

[1] शून्य समान

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

काल—९५९-७२ (राष्ट्रकूट कृष्ण[1] तृतीय खोट्टिग[2] के समकालीन)। देश—ब्रज या यौधेय (दिल्ली) में जन्म, मान्यखेट[3] (मालखेड़, हैदराबाद-दक्खिन) में रचना।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

उब्बद्ध-जूडु भू-भग-भीसु। तोडेप्पिणु **चोड**हो तणउ सीसु।
भुवणेक्कराम रायाहिराउ। जहिँ अच्छहि **तुडिगु**[4] महाणुभाव।
तं दीण दिण्ण-धण-कणय-पयरु। महि परिभमंतु **मेपाडि**[5]-णयरु।
अवहेरिय-खल-यणु गुण-महंतु। दियहेहिँ पराइयु पुप्फयंतु।
दुग्गम दीहर-पंथेण रीणु। णव-यदु जेम देहेण खीणु।
तरु कुसुम-रेणु-रंजिय-समीरि। मायंद-गोंछ-गो दलिय-कीरि।
णदण-वणि किर वीसमइ जाम। तहिँ विण्णि पुरिस संपत्त ताम।
पणवेप्पिणु तेहिँ पवुत्तु एँव। "भो खंड-गलिय-पावावलेव।
परिभमिर-भमर-रव-गुमगुमंति। किंकर णिवसहि णिज्जण-वणंति।
करि सर वहिरिय-दिच्चक्कवाल। पइसरहि ण किं पुरवरि विसालि?"

---

[1] ९३९ में गद्दी पर बैठा। चोल-युवराज राजादित्यको ९४९ ई०में मार कर कुमारी तक सारे दक्षिण पर प्रभाव। इसके परमार श्रीहर्ष (मालव-राज सीयक), और कलचूरी भी आधीन सामन्त। ९६८ (?) में मृत्यु। अपने समय-का सबसे बड़ा भारतीय राजा।

[2] खोट्टिग, कृष्णका पुत्र, शासनकाल ९६८-७२। ९७२में मालवराज श्रीहर्ष (सीयक ९४९-७२, वाक्पतिराज मुंजका पिता) ने मान्यखेटको ध्वस्त किया। राष्ट्रकूट-शक्ति (५७०-७२) समाप्त।

[3] राष्ट्रकूट-राजधानी ८१५-९७२ ई०

[4] राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय

[5] मेलपाटी (उत्तरी-अर्काट)

§ २०. पुष्पदंत (पुप्फयंत)

कुल—ब्राह्मण, दर्बारी कवि। कृतियाँ[1]—महापुराण[2] (तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकार), जसहर चरिउ[3] (यशोधर-चरित), णायकुमार-चरिउ[4] (नागकुमार-चरित)।

१—आत्म-परिचय

(१) कृष्णराजके स्कंधावार (सेना-केम्प)में

उद्द-बद्ध-जूट भ्रूभग-भीष। तोडेंबियउ **चोल**हिंकेर सीर्ष।

भुवन्-एकराम राजाधिराज। जहें आछैं **तुडिग** महानुभाव। सो दीन दत्त-धन-कनक-प्रवर। महि परिभ्रमत **मेपाडि** नगर।

अवधीरिय खल-जन गुण-महंत। दिवसेंहिं तहें आयेंउ पुष्पदन्त। दुर्गम-दीरघ-पथे [5]वतीर्ण। नव-चद्र जिमी देहेंहिं क्षीण।

तरु-कुसुम-रेणु-रंजित समीर। माकद-गुच्छ गोदलिय[6] कीर। नदनवन फुरि विश्रमै जहाँ। तव दोउ पुरुष आयेउ तहाँ।

प्रणमीया तेहीं कहेंउ एम। "हे खड-गलित-पापावलेप! परिभ्रमत भ्रमर-रव-गुणगुमंत। क्यों कर निवसहु निर्जन-वनात?

करि सर वाहिर-दिक् चक्रवाल। पइसहू न क्यों पुर-वर-विशाल?"

---

[1] **भरत और नल दोनों पिता पुत्र (राजमंत्री) पुष्पदन्तके आश्रयदाता।**

[2] **डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-माला (बंबई)में संपादित (१९३७, १९४०, १९४१) तीन जिल्द।**

[3] **डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, बरार) में संपादित १९३१ ई०**

[4] **प्रो० हीरालाल जैन द्वारा देवेन्द्र-जैन-ग्रंथ-माला (करंजा, वरार) में सम्पादित १९३३ ई०**

[5] **है** [6] **चबाया**

तं सुणिवि भणइ अहिमाण-मेरु । "वरि खज्जइ गिरि-कदरि-कसेरु ।
णउ दुज्जण-भउँहा-वंकियाइँ । दीसंतु कलुस-भावकियाइँ ।
घत्ता । वर णरवरु धवलच्छिहे होउ, मा कुच्छिहे मरउ सोणि मुहणिग्गमे ।
खल-कुच्छिय-पहु-वयणइँ भिउडिय णयणइँ म णिहालउ सूरुग्गमे ॥३॥
चमराणिल उड्डाविय-गुणाइ । अहिसेय-धोय-सुयणत्तणाइ ।
अविवेयइ दप्पुत्तालियाइ । मोहंधइ मारण-सीलियाइ ।
विससह जम्मइ जड रत्तियाइ । कि लच्छिइ विउस-विरत्तियाइ ।
संपइ जणु णीरसु णिव्विसेसु । गुणवतउ जहिं सुरगुरु' वि वेसु ।
तहिँ अम्हइ काणणु जि मरणु । अहिमाणे सहुँव वरि होउ मरण ।"
.....पडिवयणु दिण्णु णायर-णरेहिं ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता । "जण-मण-तिमिरोसारण मय-तरु वारण, णिय-कुल-गग्रण-दिवायर ।
भो भो केसव-तणुरुह ! णव-सररुह-मुह कव्व-रयण-रयणाग्रर ! ।
बंभड-मंडवाल्ढ-कित्ति । अणवरय-रइय-जिणणाह-भत्ति ।
सुहतुग-देव-कम-कमल-भसलु । णीसेस-सकल-विण्णाण-कुसलु ॥
पायय-कइ-कव्व-रसाव उद्धु । संपीय सरासइ-सुरहि-दुद्धु ।
कमलच्छ ग्रमच्छरु सच्च-सधु । रण-भर-धुर-धरणुग्धुद्धु-खंधु ॥
सविलास-विलासिणि-हियय-थेणु । सुपसिद्ध-महाकइ-कामधेणु ।
काणीण-दीण-परिपूरियासु । जस-पसर-पसाहिय-दस-दिसासु ॥
पर-रमणि-परं-मुहु मुद्ध-सीलु । उण्णय-मइ सुयणुद्धरण-लीलु ।
गुरु-यण-पय-पणविय-उत्तमंगु । मिग्गिदेवि-यंव-गब्भुब्भवंगु ॥
ग्रण्णइय-तणय-तणुरुहु पसत्थु । हत्थि'व दाणोल्लिय-दीह-हत्थु ॥
दुव्वसण-सीह-संघाय-सरहु । ण वियाणहि किं णामेण **भरहु** ॥

' पुष्पदंतका उपनाम भी शायद

मो मुनिय भनै अभिमान-मेरु[1]। "वरु खाइय गिरि-कंदरें कसेरु।
नहिँ दुर्जन-भौँहाँ-वंकिमाइँ। देखहुँ कलुष-भावांकिताइँ।
घत्ता। वरु नरवर धवलक्षिम होँउ, न कुक्षिहि, मरौ शोणित मुँह निर्गमें।
खल-कुक्षित-प्रभु-वचना भृकुटिन-नयना न निहारौँ सूरोद्गमे ॥३॥
चमरानिलही उडेँऊ गुणाइँ। अभिषेक-धोँइ सुजनत्तनाइँ[2]।
अविवेकह दर्पोत्तालियाइँ। मोहांधतां-मारण-शीलियाइँ।
विषमँग जनमी जड रक्तियाइ। की लक्ष्मी विदुष-विरक्तियाइ।
संप्रति जन नीरस निर्विशेष। गुणवन्तउ[3] जहँ सुरगुरुहु वेष।
तहँ हमरेँहिं काननही शरणा। अभिमान-सहित वरु होँहु मरणा।"
.....। प्रतिउत्तर दियेँउ नागर-नरेहिँ।

(२) आश्रयदाता मंत्री भरतकी प्रशंसा

घत्ता। "जन मन-तिमिर-अपसारण मदतरु-वारण, निज-कुल-कमल-दिवाकर।
हे हे केशव-तनुरुह-नव सररुह मुख काव्य रतन-रतनाकर!
ब्रह्माड-मंडपारूढ-कीर्त्ति। अनवरत-रचित-जिननाथ-भक्ति।
शुभतुग-देव-क्रम-कमल-भ्रमर। निःशेष-सकल-विज्ञान-कुशल।
प्राकृत-कवि-काव्य-रसावलुब्ध। संपीय सरस्वति-सुरभि-दुग्ध।
कमलाक्ष अमत्सर सत्यसध। रणभर-धुर-धरण्-उद्घुष्ट-स्कध।
सविलास-विलासिनि-हृदय-स्तेन। सुप्रसिद्ध-महाकवि-कामधेनु।
कानीन-दीन-परिपूरिताश। यशप्रसर-प्रसाधित-दश-दिशास।
पररमणि-पराङ्मुख शुद्धशील। उन्नत-मति सुजनोद्धरण-ज़ील।
गुरुजन-पद-प्रणमित-उत्तमाग। **श्रीदेवि**-अंब-गर्भोद्भवाग।
अम्मइय-केर-तनुरुह प्रशस्त। हस्ति 'व दानोल्लित-दीर्घहस्त।
दुर्व्यसन-सिह-संघात-शरभ। न विजानसि का नामही **भरत**।

---

[1] पुष्पदंत [2] सुजनता [3] गणहीनउ

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवतु दिट्ठु भरहेण केम । वाई-सरि-सरि-कल्लोल जेम ।
पुणु तासु तेण विरइउ पहाणु । घर आयहों अब्भागय विहाणु ।
संभासणु पिय-वयणेहिं रम्मु । णिम्मुक्क-डंभु णं परमधम्मु ।
"तुहुँ आयउ ण गुण-मणि-णिहाणु । तुहुँ आयउ णं पंकयहों भाणु ।"
पुण एव भणेप्पिणु मणहराइँ । पहरीण-झीण-तणु-सुहयराइँ ।
वर-ण्हाण-विलेवण-भूसणाइँ । दिण्णइँ देवंगइँ णिवसणाइँ ।
अच्चंत-रसालइँ भोयणाइँ । गलियाइँ जाम कडवय-दिणाइँ ।
देवी-सुण्ण कइ भणिउ ताम । "भो पुप्फयन्त ! ससिलिहिय-णाम !
णिय-सिरि-विसेस-णिज्जिय-सुरिंदु । गिरि-धीरु-वीरु भइरव-णरिंदु ।
पइँ मण्णिउ वण्णिउ वीर-राउ । उप्पण्णउ जो मिच्छत्त-राउ ।
पच्छित्त तासु जइ करहि अज्जु । ता घडइ तुज्झु परलोय-कज्जु ।।"
. . . . . । ता जंपइ वर-वाया-विलासु ।
"भो देवी-णंदण जयसिरीह ! किं किज्जइ कव्वु सुपुरुस-सीह ।
घत्ता । "णउ महु बुद्धि-परिग्गहु णउ सय-सगहु णउ कामुवि करेउ वलु ।
भणु किह करमि कइत्तणु ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुण-सय-सकुलु ।"
—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कोंडिण्ण-गोत्त-णह-दिणयरासु । **वल्लह**-णारिद-घर-महयरासु ।
णण्णेहो मंदिरि णिवसंतु संतु । अहिमाण-मेरु कइ पुप्फ-यंतु ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भणु भणु सिरिपंचमि-फलु गहीरु । आयण्णहिं णायकुमार-वीरु ।
ता **वल्लह**-राय-महंतएण । कलि-विलरिय-दुरिय-कयंतएण ।
कोंडिण्ण-गोत्त-णह-ससहरेण । दालिद्द-कंद-कंदल-हरेण ।
वर-कव्व-रयण-रयणायरेण । लच्छी-पोमिणि-माणस-सरेण ।
कुदव्व-भरह-दिय-तणुरुहेण । . . . . . .
णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव । . . . . . .
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

(३) भरतके घरमें स्वागत

आवंत दीस भरतेहिँ किमी । वापी-ससि-सर-कल्लोल जिमी ।
पुनि तासु तेहिँ विरचे प्रधान । घर आयेँहु अभ्यागत विहान ।
संभाषण प्रिय-वचनेहिँ रम्य । निर्मुक्त-दभ जनु परमधर्म ।
"तुहुँ आयउ जनु गुण-मणि-निधान । तुहँ आयउ जनु पकजहु भानु ।"
पुनि ऐस भनियई मनहराइँ । प्रहरीण भीन-तनु-सुखकराइँ ।
वर-स्नान-विलेपन-भूषणाइँ । दीनी देवांगहिँ निवसनाईँ ।
अत्यंत-रसालइँ भोजनाइँ । बीतेहु जिमि कतिपय-दिनाइँ ।
देवी-सुत कविहिँ भनेउ तब्ब । "भो पुष्पदत ! शशि-लिखित नाम ।
निज-श्री-विशेष-निर्जित-सुरेन्द्र । गिरि-धीर वीर भैरव-नरेन्द्र ।
तैँ मानेँउ वर्णेउ वीर-राज । उत्पादेँउ जो मिथ्यात्व-राग ।
प्रा'श्चित्त तासु यदि करसि आज । तो घटै तोर परलोक-कार्य । "
..... । तो जल्पै वरवाचा-विलास ।
"हे देवीनंदन जय-सिरीह ! का कीजै काव्य सुपुरुष-सींह ।
घत्ता । ना मम बुद्धि-परिग्रह न सत-सग्रह ना काहु केरेँउ बल ।
भनु किमि करौँ कवित्वन न लहौँ कीर्त्तन, जगहु पिशुन-शत-सकुल ।।"

—आदिपुराण (महापुराण, पृ० ५-६)

कौंडिन्य-गोत्र-नभ-दिनकरास । **वल्लभ**-नरेन्द्र-गृह-मख-करास ।
नान्यहु मदिरेँ निवसत संत । अभिमान-मेरु कवि **पुष्पदंत** ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३)

भनु भनु श्री-पंचमि-फल गँभीर । आकर्णहिँ नागकुमार-वीर ।
तो वल्लभराय-महतकेहिँ । कलि-विरलिय-दुरित-कृतात केहिँ ।
कौंडिन्य-गोत्र-नभ-शशधरेहिँ । दारिद्रच-कंद-कंदल-धरेहिँ ।
वर-काव्य-रतन-रतनाकरेहिँ । लक्ष्मी-पद्मिनि-मानससरेहिँ ।
कुदँ इव भरत द्विज-तनुरुहेहिँ । . . . . .
नान्येहिँ प्रवृत्तु महानुभाव । . . . . .

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४)

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अत्थमिइ दिणेसरि जिह सउणा । तिह पंथिय थिय माणिय-सउणा ।
जिह फुग्गियउ दीवय-दित्तियउ । तिह कंताहरणह-दित्तियउ ।
जिह सभा-राएँ रंजियउ । तिह वेसा-राएँ रंजियउ ।
जिह भुवणुल्लउ मंताविय उ । तिहँ चक्कुल्लुवि[1] संताबियउ ।
जिह दिसि-दिसि तिमिरइँ मिलियाइँ । तिह दिसि-दिसि जारइ मिलियाइँ ।
जिह रयणिहि कमलइँ मउलियाइँ । तिह विरहिणि-वयणइँ मउलियाइँ ।
जिह घरहँ कवाडइँ दिण्णाइँ । तिह वल्लह-सवइँ दिण्णाइँ ।
जिह चंदे णिय-कर पसरु किउ । तिह पिय-केसहिँ कर-पसरु किउ ।
जिह कुवलय-कुसुमइँ वियसियइँ । तिह कीलय-मिहुणइँ वियसियइँ ।
जिह पीयइँ पाणइँ महुराइँ । तिह अहरहँ महु-रस-महुराइँ ।
जिह जिह गलति जामिणि-पहर । तिह तिह विडण्ण मउरइ पहर ।
जिह णहि मुक्कुग्गमु दरिसियउ । तिह चिडि मुक्कुग्गमु दरिसियउ ।
घत्ता । ता चक्क-उलहँ पकयहं तव-किरण-पूरिय-भुवणोयरु ।
विरयहँ णर-णारी-यणहँ जीविउ देंतु समुग्गउ दिणयरु ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विस-कालिंदि-काल-णव-जलहर-पिहिय-णहंतरालओ ।
धुय-गय-गंड-मंडलुड्डाविय-चल-मत्तालि-मेलओ ।
अविरल-मुसल-सरिस-थिरधारा-वरिस-भरंत-भूयलो ।
हय-रवियर-पयाव-पसरुग्गय-तरु तण-णील-सद्दलो ।
पडु-तडि[2]-वडण-पडिय-वियडायल-रंजिय-सीह-दारुणो ।
णच्चिय-मत्त-मोर-गलकल-रव-पूरिय-सयल-काणणो ।

---

[1] चकवा-चकई [2] तडित्

२—काल-और ऋतु-वर्णन

(१) संध्या-वर्णन

अस्तमे दिनेश्वरें जिमि शकुना । तिमि पंथिक ठिउ माणिक शकुना ।
जिमि फुरियेउ दीपक-दीप्तियऊ । तिमि कांताभरणहिँ दीप्तियऊ ।
जिमि संध्या-रागें रंजियऊ । तिमि वेश्या-रागें रजियऊ ।
जिमि भुवनल्लउ मतापियऊ । तिमि चक्कुल्लौ संतापियऊ
जिमि दिशि-दिशि तिमरहिँ मिलियाईं । तिमि दिशि-दिशि जारहि मिलियाइँ ।
जिमि रजनिहिँ कमलिनि मुकुलिताइँ । तिमि विरहिनि-वदनइँ मुकुलिताइँ
जिमि घरह कपाटउ दिन्नाइँ । तिमि वल्लभ-सपति दिन्नाइँ ।
जिमि चदें हि निज-कर-प्रसर-कियें उ । तिमि पिय-केशहिँ कर-प्रसर कियें उ
जिमि कुवलय-कुसुमा विकसियऊ । तिमि कीरय-मिथुना विकसियऊ !
जिमि पीयें पानहिँ मधुराईं । तिमि अधरह मधुरस-मधुराईं
जिमि जिमि बीतें यामिनि-प्रहरा । तिमि तिमि विकीर्ण मृदु-रति-प्रहरा ।
जिमि नहिँ शुक्रोदय दरसियऊ । तिमि चिडि शुक्रोद्गम दरसियऊ
घत्ता । तो चक्रकुलहँ पकजहँ ताम्रकिरण-पूरित-भुवनोदर ।
विरही नर-नारीजनह जीवन देत सम्-ऊगेउ दिनकर ॥८॥

—आदिपुराण (पृ० २२८-२९)

(२) पावस-ऋतु-वर्णन

विश-कालिदि-काल-नवजलधर-छादित नभतरालआ ।
धुत-गज-गड-मडल-उड्डाविय चल-मत्ता-लि-मेलआ ।
अविरल-मुसल-सदृश थिर धारा वर्ष भरंत-भूतला ।
हत-रविकर-प्रताप-प्रसर-उद्गत-तरु कँह नील शाद्वला ।
पटु तडि[1]-पतन-पतित-विकट-शैल कुपित सिह-दारुणा ।
नाचत मत्त-मोर-कलकल-रव-पूरित-सकल-कानना ।

---

[1] बिजली

गिरि-सरि-दरि-सरंत-सरसर-भय-त्राणर-मुक्क-णीसणो ।
महियल-घुलिय-मिलिय-दुद्दुह-सयवय-मालूर[1]-पोसणो ।
घण-चिक्खल्ल-खोल्ल-खणि-खेड्डय-हरिण-मिलिव-कय-वहो ।
वियसिय-णव-कलब-कुसुमुग्गय-रय-पिजरिय-दिसिवहो ।
सुर-वइ-चाव-तोरणालंकिय-घण-करि-भरिय-गहरुहो ।
विवर-मुहोयरंत-जल-पवहारोसिय-सविस-विसहरो ॥
"पिय-पिय-पिय"-लवत-वप्पीहय-मग्गिय-तोय-विदुओ ।
सर-तीरुल्ललत-हसावलि-झुणि-हल-बोल-मंजुओ ॥
चंपय-चूय-चार-चव-चदण-चिंचिणि-पीणियाउसो ।
वुट्ठो भत्ति जम्म कालम्मि जाए सुहयारि पाउसो ॥
मुग्ग-कुलत्थ-कंगु-जव-कलव-तिलेसी-वीहि-मासया ।
फलभर-णविय-कणिस-कण-लपड-णिवडिय-सुय-सहासया ॥
ववगय-भोय-भूमि-भव-भूरुह-सिरि-णरवइ-रमा मही ।
जाया विविह-धण्ण-दुम-वेल्ली-गुम्म-पसाहणा मही ।
—आदिपुराण (२६-३०)

खंधावारहु उप्परि अहणिसु । ता णायहिं वेउव्विउ पाउसु ।
मय-उलु तमइ रमइ वरिसइ घणु । पीयलु सामलु विरसइ सुरधणु ।
महि-णीहरिउ हरिउ बड्ढइ तणु । पवसिय-पियहि पियहि तप्पइ मणु ।
फुल्ल-कलव-तरु दीसइ वणु । तिम्मइ तम्मइ मणि जूरइ जणु ।
तडि तडयडइ पडइ रुजइ हरि । तरु कडयडइ फुडइ विहडइ गिरि ।
जलु परियलइ घुलइ घुम्मइ दरि । अइरय सरइ भरइ पूरें सरि ।
जलु थलु सयलु जलुजि सजायउ । मग्गु अमग्गु ण किपि वि णायउ ।
सरु कूसुम-सरु णिरारिउ मधइ । विरहें पथिय पथिय विधइ ।
—आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] एक प्रकारका कंद

गिरि-सरि-दरि सरंत सरसर-भय-वानर मोचु निःस्वना ।
महियल घुलेउ-मिलेँउ दुदुभि शतपत्र-शालूर-पोषणा ।
घन-कीचड़-खोल-खन-खेदित हरित-शिलिंध्र-कदंब-वहा ।
विकसित-नवकदंब-कुसुम-ोद्गत-रज-पिंजरेउ दिशि-पथा ।
सुर-पति-चाप-तोरणालकृत घन-करि-भरित नभ-थला ।
विवर-मुख-ोदरांत-जलप्रवह-रोमेँउ सविष-विषधरा ।
"पिय पिय पिय" लपत पपीहा मांगेँउ तोय-विदुआ ।
सरतीर-ोल्ललत-हंसावलि-ध्वनि-हलहल-सयुता ।
चपक-चूत-चार-चव-चदन-चिचिनि-प्रीणितायुषा ।
उट्ठेँउ झट जासु कालेँहिं जो सुखकारि पावसा ।
मूँग-कुल्थि-कॉगुन-जौ-करॉय-तिल-तीसी-धान-माषआ ।
फल-भर नमेँउ मँजरि कण लपट निवडेँउ शुक सहस्रआ ।
व्यपगत-भोग भूमि-भव-भूरुह-श्री-नरपति-रमा-सखी ।
हुई विविध-धान्यद्रुम-वेली-गुल्म-प्रसाधना मही ।
——आदिपुराण (२६-३०)

स्कंधावारेँह[1] ऊपर अहनिश । तो नादहिं विकारिया पावस ।
मृगकुल त्रसै-रसै वरसै घन । पीयल श्यामल विलसै सुर-धनु ।
महि नीखरिउ हरित वाढे तनु । प्रवसित-प्रियहि पियहिं तप्पै मन ।
फुल्लु कदव ताम्र दीसै वन । तीमै तामै मणि झूरै जनु ।
तड़ि तड़तड़ै पडै रागै हरि । तरु कड़कडै फुटै विहरै गिरि ।
जल परिचलै घुरै घूमै दरि । अतिरय सरै भरै पूरै सरि ।
जल-थल सकल जलहि सं-जायेँउ । मार्ग-अमार्ग न कछुअहु जानेँउ ।
शर-कूसुम-सर नितात सांधै । विरहे पंथिक पंथिय बिधै ।
——आदिपुराण (पृ० २४०)

---

[1] फौजी पड़ाव

३–भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीयल्ल-वेल्लि-तरुवर-गहणि । हिमवतहों दाहिण-गिरि-गहणि ।
जहिं वग्घ-सीह-गय-गडयाइँ । मय-दुग्गह-करि-भल्लू-सयाइँ ।
सवर-वेउल्लइँ रोहियाइँ । एणइँ जहिं पुल्लिहिं छोहियाइँ ।
जहिं मच्चरति वहु-मुग्गसाइँ । गत्ताइँ जॉह णिरु घग्घुसाइँ ।
जहिं परडा कोक्कता भमंति । भिल्लिरि खच्चेल्लइं गुमगुमंति ।
जहिं भिल्ल-पुलिदइं णाहलाइँ । वीणनइँ तरु-वेल्ली-हलाइँ ।
जहिं कुक्कुरति साहामयाइँ[1] । झुल्लनइं तरु-साहा-गयाइँ ।
उड्डुणसीला नवोल-लग्ग । जहिं हरि खज्जता कहिँ 'मि भग्ग ।
जहिं घुरुहरंत दाढा-कराल । सूलच्छहिं सहुँ जुज्झंसि कोल ।
कदुल्ल-गहर-गद्दब्भु जेत्थु । हरि-हुल्लिहिँ जहिं दूसियउ पंथ ।
पत्तामहिँ थूणइ दारियाइँ । जहिँ भिल्ली हरिणइँ मारियाइँ ।
जहिँ गहिरइं धारइँ परिभमंति । णिरु वायड-उल(ई) चुमचुमंति ।
जहिं वेल्लिहिँ वेठिय तरुवराइँ । णं कीलहिं अवरुंडण-पराइँ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेणा-सेणाहिय,परियरिय । हिमवनु धरेप्पिणु संचलिय ।
मोहइ गच्छंती पुव्वमुह । कुरुवंस-णाह-पत्थिव-पमुह ।
दीसइ मेलत्थलि काणणउँ । महिसी-दुद्ध'व साहा-घणउँ
णाणा-महिरुह-फल-रस-हरइँ । कत्थइ किलिगिलियइँ वाणरइँ ।
कत्थइ रडरत्तइँ सारसइँ । कत्थइँ तव-त्तत्तइँ तावसइँ ।
कत्थइ झरझरियइँ णिज्झरइँ । कत्थइ जल-भरियइँ कंदरइँ ।
कत्थइ वीणिय वेल्ली-हलइँ । दिट्ठइँ भज्जंतइँ णाहलइँ ।
कत्थइ हरिणइँ उल्ललियाइँ । पुणु गोरी-गेयहु वलियाइँ ।

---

[1] वानर

३—भौगोलिक वर्णन

(१) हिमालय-वर्णन

सीतल्ल-वेलि तरुवर-गहना। हिमवतहु दक्षिण-गिरि-गहना।

जहँ व्याघ्र-सिंह-गज-गैंड आइँ। मृग दुर्ग्रह करि-भालू-शताइँ। साँभर वेकुल्ला रोहिताइँ। एणी जहँ पुलकित कूदियाइँ।

जहँ मचरईं बहु मूँगुसाइँ। गत्तांइँ जहाँ निर घर्घसाइँ। जहँ परडा कोक्कंता भ्रमंति। भिल्ली खच्चेल्लें गुमगुमंति।

जहँ भील-पुलिदा नाहराइँ। बीनता तरु-बल्ली-फलाइँ। जहं कुक्करति शाखामृगाइँ। भूलता तरु-शाखा-गताइँ।

उट्टुन-शीला ताबूल-लागु। जहँ हरि खादता कतहुँ भागु। जहँ घुरघुरति दाठा-कराल। शूलाक्षहिँ संग जूझति कोल[1]।

कंदुल्ल-गहर गर्दभा जहाँ। हरि हुल्लिहिं जहँ दूषियेंउ पंथ। पचागहु थूनें विदारिताइँ। जहं भीली हरिनहिं मारियाइँ।

जहं गहिरै धारें परिभ्रमति। नित बादल-कुलहीं चुमचुमंति। जहं बेली-वेष्टित तरुवराइं। जनु क्रीडै अवगुठन पराइँ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ४०-४१)

सेना सेनाधिप-परिचरिता। हिमवत धरा-वन-सचलिता।

सोहै सो जांती पूर्वमुखा। कुरुवशनाथ-पार्थिव-प्रमुखा। दीसै शैल-स्थलि-काननऊ। महिषी दुग्ध् इव शाखा-घनऊ।

नाना महिरुह-फल-रस-धरइँ। कतहूं किलकिलहीं वानरहीं। कतहूं रसरक्ता सारसईं। कतहूं तप तप्पें तापसईं।

कतहूं झरझरिया निर्झरईं। कतहूं जल-भरिया कदरईं। कतहूँ बीनें बेली-फलईं। दीसें भाजना नाहरईं।

कतहूँ हरिना उल्ललियाइँ। पुनि गौरी-गोहहु बलियाइँ।

---

[1] सूअर

कत्थइ हरि-णह-रुक्कत्तियइँ । करि-कुभुच्छलियइँ मोत्तियइँ ।
कत्थइ सुम्मइ जक्खिणि-झुणिउँ । खयरी-कर-वीणा रणरणिउँ ।
कत्थइ भमल-उलहिँ रुणरुणिउँ । कत्थइ सुएण किं कि भणिउँ ।
घत्ता । कत्थइ किण्णरहिँ गाइज्जइ सवण-पियारउ ।
रिसह-णाह-चरिउ फणि-णर-सुर-लोयहु सारउ ॥१॥
—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सेंधव-कोंकण-कोसल । टक्क-हीर-कीर-खस-केरल ।
अंग-कलिंग-गग-जालधर । वच्छ-जवण-कुरु-गुज्जर-बब्बर ।
दविड-गउड-कण्णाड-वराड'वि । पारस-पारियाय-पुण्णाडवि ।
सूर-सुरट्ठ-विदेहा लाड'वि । कोंग-वंग-मालव-पंचाल'वि ।
मागह-जट्ट-भोट्ट णेवाल'वि । उड्ड-पुड-हरिकुरु-भगाल'वि ।
—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुरसिंधु सरिहिँ देहलिय धरिवि, पइसरणु करिवि ।
पुव्वावरेसु परिसंठियाइँ, वइरट्ठियाइँ ।
वेयड्ढ गिरिहि ओइल्लयाइँ, सुधणिल्लयाइँ ।
चडाइँ मेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दोसाहियाइँ ।
करवाले णिज्जिउ अज्ज-खडु, पट्टविवि दडु ।
मालव-मागह-वंगं-गगंग, कालिग - कोंग ।
पारस-बब्बर-गुज्जर-वराड, कण्णाड-लाड ।
आहीर-कीर-गंधार-गउड, णेवाल - चोड ।
चेईस-चेर-मरु-ददुरंडि, पंचाल-पडि ।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरुव, सिहल पहूय ।
जालंधर-जायव-पारियाय, णिज्जिणिवि राय ।
पच्चंत-वासि णीसेस लेवि, णिय-मुद्द देवि ।
हेलाइ तिखडावणि हरेवि, असि करि करेवि ।
—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

कतहूँ हरि-नख-फारियइँ । करि-कुभ उछरिया मौक्तिकाइँ ।
कतहूँ सुनियै यक्षिणि-धुनिऊ । खेचरि-करें वीणा हनहनिऊ ।
कतहूँ भ्रमर-कुल रुन-झुनिऊ । कतहूँ शुकेहिँ का का भनिऊ ।
घत्ता । कतहुँ किन्नरहिँ गाइऊ, श्रवण-पियारहूँ ।
ऋषभनाथ-चरित, फनि-नर-सुर-लोकह सारऊ ।
—आदिपुराण (पृ० २४४)

(२) देश-विजय

पल्लव-सैंधव-कोकण-कोसल । टक्क-अहीर-कीर-खस-केरल ।
अंग-कलिंग-गंग-जालंधर । वत्स-यवन-कुरु-गुर्जर-बर्बर ।
द्रविड-गौड-कर्नाट-बराडउ । पारस-पारियात्र-पुन्नाडउ ।
शुर-सौराष्ट्र-विदेहा लाटउ । कोंग-वंग-मालव-पंचालउ ।
मागध-जाट-भोट-नेपालउ । उड्र-पुड्र-हरिकेल-भँगालउ ।
—आदिपुराण (पृ० ८८)

सुर्रासधु-सरिहिँ देहलिय धरव, प्रतिसरन करवी ।
पूर्वावरेहिँ परिमस्थिताइँ, वैरस्थिताइँ ।
वेताढ़ गिरिहिँ ओइल्लयाइँ, सुधनिल्लयाइँ ।
चंडाइँ म्लेच्छ-खंडाइँ ताइँ, दुःसाधियाइँ ।
करवालें जीतेंउ आर्यखड, प्रस्थापि दड ।
मालव-मगध-वंग-'ङ्ग-गंग, कालिंग-कोंग ।
पारस-बर्बर-गुर्जर, बराड, कर्नाट-लाट ।
आभीर-कीर-गंधार-गौड़, नेपाल-चोल ।
चेदीश-चेर-मरु-वर्बुरंडि, पंचाल-पंडि ।
कोंकण-केरल-कुरु-कामरूप, सिंहल प्रभूय ।
जालंधर-यादव-पारियात्र, जीतेंहू राय ।
प्रत्यंतवासि निःशेष लेइ, निज मुद्रा देइ ।
हेलहिँ तिरखंडा'वनि हरेइ, असि करें करेइ ।
—आदिपुराण (पृ० २३०-३१)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

वित्थिण्णए जंवुदीवि भरहेँ । खर-किरण-करावलि-भूरि-भरहेँ ।
जोहेयउ णामि अत्थि देसु । णं धरणिएँ धरियउ दिव्व वेसु ।
जहिँ चलइँ जलाइँ स-विब्भमाइँ । ण कामिणि-कुलइँ स-विब्भमाइँ ।
भगालइँ ण कुकडत्तणाइँ । जहिँ णील-णेत्त-णिद्धहिँ तणाइँ ।
कुसुमिय-फलियइँ जहिँ उववणाइँ । ण महि-कामिणि-णव-जोव्वणाइँ ।
गोवाल-मुहालुखिय-फलाइँ । जहिँ महुरइँ ण सुकयहोँ फलाइँ ।
मंथर-रोमंथण[1]-चलिय-गंड । जहिँ सुहि णिसिण्ण गो-महिसि-संड ।
जहँ उच्छु-वणइँ रस-दसिराइँ । ण पवण-वसेउ पणच्चिराइँ ।
जहँ कण-भर-पणविय पक्क-सालि । जहिँ दीसइ सयदलु सदलु सालि ।
जहिँ कणिसु कीर-रिछोलि चुणइ । गहवइ-सुयाहि पडिवयणु भणइ ।
छोक्करण-राव-रंजिय-मणेण । पहि पउ ण दिण्ण पंथिय-जणेण ।
जहिँ दिण्णु कण्णु वणि मयउलेण । गोवाल-गेय-रंजिय-मणेण ।
जहिँ जण-धण-कण-परिपुण्ण गाम । पुर-णयर-सुसीमाराम साम ।
घत्ता । रायउरु मणोहरु रयणचिय घरु, तहिँ पुरवरु पवणुद्धयहिँ ।
चल-चिंधहि मिलियहिँ णहयलि घुलियहिँ, छिवइ'व सग्गु सयंभुअहिँ ।
जं छण्णउँ सरसहिँ उववणेहिँ । ण विद्धउँ वम्महु-मग्गणेहिँ ।
कय-सद्दहिँ कण्ण-सुहावएहिँ । कणइ'व सुर-हर-पारावएहिँ ।
गय-वर-दाणोल्लिय वाहियालि । जहिँ मोहइ चिरु पवमिय पियालि ।
सर-हंसइँ जहिँ णेउर-रवेण । मउ चिक्कमंति जुवई-पहेण ।
ज णिय-भुयासि-वर-णिम्मलेण । अण्णुवि दुग्गउ परिहा-जलेण ।
पडिखलिय-वइरि-तोमर-झसेण । पडुर-पायारि ण जसेण ।
णं वेढिउ वहु-सोहग्ग-भारु । णं पुंजीकय-संसार-सारु ।
जहिँ विलुलिय-मरगय-तोरणाइँ । चउदारइँ णं पउराणणाइँ ।

---

[1] चर्वितचर्वण (जुगाली करना)

(३) यौधेय-भूमि-वर्णन

विस्तीर्णे जंबुद्वीप-भरते । खरकिरण-करावलि भूरि भरित ।

यौधेय नाम है (एक) देश । जनु धरणी धारेंउ दिव्य-वेष ।
जहँ चलैं जलाइँ स-विभ्रमाइँ । जनु कामिनि-कुलइँ स्व-विभ्रमाइँ ।
भृगालैं[1] जनु कुकवित्तनाइँ । जहँ नीलनेत्र-स्निगधतनाइँ ।
कुसुमित-फलितहँ जहँ उपवनाइँ । जनु महि कामिनि नवयौवनाइँ ।
गोपाल-मुखा चुनिया फलाइँ । जहँ मधुरइँ सुकृतहू फलाइँ ।
मंथर-रोमंथन-चलित-गंड । जहँ सुख-निषण्ण गोमहिष-सड ।
जहँ इक्षु-वनइँ रस-दशिराइँ । जनु पवन बसेउ पनच्चिराइँ ।
जहँ कण[2]-भर-प्रनमी पक्वशालि । जहं दीसै शतदल-सदल-शालि ।
जहँ मंजरि कीर-पंक्ती चुनै । गृहपति-सुताहिँ प्रतिवचन भनै ।
छोक्करन-राज-रजित-मनेहिँ । पथ पद न दीन पथिक-जनेहिँ ।
जहँ दीय कर्ण वनें मृगकुलेहिँ । गोपाल-गीत-रजित-मनेहिँ ।
जहँ जन-धन-कण-परिपूर्ण ग्राम । पुर-नगर-सुषीमाराम श्याम ।

घत्ता । राजपुर मनोहर रत्नांचित घर, तहँ पुरवर पवनोद्धतहिँ ।
चल-चिन्हहिँ[3] मिलिया नभतले घुरियहिँ, छुवें इव सर्ग स्वयभुजहिँ ॥३॥

जो छादित सरसेंहिँ उपवनेहिँ । जनु विद्धे उ मन्मथ-मार्गणेहिँ[4] ।
कल-शब्दहिँ कर्ण-सुखावहेहिँ । क्वणें इव सुरघर-पारावतेहिँ ।
गज-वर-दानोल्लित-बाँहिय-नालि । जहँ सोहै चिर-प्रवसित-प्रियालि ।
सर-हंसहँ जहँ नूपुर-रवेहिँ । सृग चिक्कमति युवती-प्रभेहिँ ।
जो निज-भुज-असि-वर-निर्मलेहिँ । अन्यउ दुर्गह परिखा-जलेहिँ ।
प्रतिखलित-वैरि-तोमर-झषेहिँ । पाडुर प्राकारा जनु यशेहिँ ।
जनु बेठें उ वहु-सौभाग्य-भार ! जनु पुंजीकृत संसार-सार ।
जहँ विलुलित-मरकत-तोरणाइँ । चौद्वारहिँ जनु पौराननाइँ ।

---

[1] भृंग-आलय [2] दाना [3] ध्वजा [4] तीर

जहिं धवल-मंगलुच्छव-सराइँ। दु-ति-पंच-सत्त-भोमइँ[1] घराइँ।
णव-कुंकुम-रस-छडयारुणाइँ। विक्खित्त-दित्त-मोत्तिय-कणाइँ।
गुरु-देव-पाय-पंकय-वसाइँ। जहिं सव्वइँ दिव्वइँ माणुसाइँ।
सिरिमंतइँ सतइँ सुत्थियाइँ। जहिं कहि 'मि ण दीसहि दुत्थियाइँ।
--जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगधभूमि-वर्णन

खेडाम-गाम-पुरवर-विचित्तु। तहों दाहिणि दिसि थिउ **भरह** खेत्तु।
तहिं **मगह**-देसु सुपसिद्ध ग्रन्थि। जहिं कमल-रेणु-पिंजरिय हत्थि।
जहिं सुरवर-तरु-णंदण-वणाइँ। जहिं पक्क-सालि धण्णइँ तणाइँ।
वय-सय-हंसावलि-माणियाइँ। जहिं खीरसमाणइं पाणियाइँ।
जहिं कामधेणु-सम गोहणाइं। घडदुद्धइँ णेहारोहणाइँ।
जहिं सयल-जीव-कय-पोसणाइँ। घण-कण-कणि-सालइँ करिसणाइँ
जहिं दक्खा-मंडवि दुहु सुयंति। थलपोमोवरि पथिय सुयंति।
जहिं हालिणि-कलरव-मोहियाइँ। पहि पहियइँ-हरिणा इव थियाइँ।
पुडुच्छु-वणइँ चउ-दिसु चलंति। जहिं महिस-सिंग-हय रस गलंति।
जहिं मणहर-मरगय-हरिय-पिंछ। मायद-गोंछि गोंदलिय रिछ।
घत्ता। तहिं पुरवरु णामें **रायगिहु**, कणय-रयण-कोडिहिं घडिउ।
वलिवड धरंतहों सुरवइहिं, ण सुर-णयरु गयण-पडिउ ॥६॥
--णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

एत्थत्थि **अवंती** णाम विसउ। महिवहु भुजाविय जेण'वि सउ।
घत्ता। णंदंतहिं गामहिं विउलारामहिं, सरवरकमलहिं लच्छि-सही।
गलकल-केक्कारहिं हंसहिं मोरहिं, मडिय जेत्थु सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] **दो-तीन-पांच-सात तल्लेवाले (मकान)**

जहँ धव-मंगल-उत्सव-सराइँ । दुइ-पंच-सप्त-भूमिक घराइँ ।
नव-कुंकुम-रस-छट-आरुणाइँ । विखरीय-दीप्त-मौक्तिक-कणाइँ ।
गुरु-देव-पादपकज-वशाइँ । जहँ सब्बै दिव्यै मानुषाइँ ।
श्रीमन्तहिँ संतहिँ सुस्थिताइँ । जहँ कतहुँ न दीसै दुःस्थिताइँ ।
——जसहर-चरिउ (पृ० ४, ५)

(४) मगध भूमि-वर्णन

खेड़ाउ-ग्राम-पुरवर-विचित्र । तहँ दक्षिणदिशि ठिउ **भरत**-क्षेत्र ।
तहँ **मगध**-देश सुपसिद्ध अस्ति । जहँ कमल-रेणु-पिजरित हस्ति ।
जहँ सुरवर-तरु-नदनवनाइँ । जहँ पक्व-शालि धान्यहिँ तनाइँ[1] ।
व्रज-शत-हमावलि-माणिकाइँ । जहँ क्षीरसमाना पानियाइँ ।
जहँ कामधेनु-सम गोधनाइँ । घट-दूधी स्नेहारोधनाइँ ।
जहँ सकल-जीव-कृत-पोषणाइँ । धन-कण-कणिशालहिँ कर्षणाइँ ।
जहँ द्राक्षामंडपेँ दुध-मुचति । स्थलपद्मोपरि पथिक सोँवति ।
जहँ हालिनि[2]-कल-रव-मोहिताइँ । पथेँ पथिक हरिना इव ठिताइँ ।
पुड्-इक्षु-वना चौदिशि चलति । जहँ महिष शृग-हत रस गिरति ।
जहँ मनहर-मरकत-हरित-पिच्छ । माकद-गुच्छ चर्विता वृक्ष ।
घत्ता । तहँ पुरवर नामे राजगृह, कनक-रतन-कोटिहिँ गढेँऊ ।
बलिवड-धरतह सुरपतिहँ, जनु सुर-नगर गगन पड़ेँऊ ॥६॥
——णायकुमार-चरिउ (पृ० ६)

(५) मालव-ग्राम

इहँ अहे **अवंती** नाम विषय । महि वहु भोगेँउ जेहिहि सबय ।
घत्ता । नंदतेँहिँ ग्रामेँहिँ विपुलारामेँहिँ, सरवर-कमलेहिँ लक्ष्मि-सखी ।
कलकल-केकारेँहिँ हंसेहिँ मोरेँहिँ, मंडित यत्र सुहाइ मही ॥२०॥

---

[1] तनाइ=केरी [2] फल-मंजरी [3] हलवाहेकी बहू

जहिँ चुमचुमंति केयार-कीर । वर-कलम-सालि-सुरहिय-समीर ।
जहिँ गोउलाइँ पउ विक्किरंति । पुडुच्छु[1]-दंड-खंडइँ चरंति ।
जहिँ वसह-मुक्क-ढेक्कार-धीर । जीहा-विलिहिय-णंदिणि-सरीर ।
जहिँ मंथर-गमणइँ माहिसाइँ । दह-रमणुड्डाविय-सारसाइँ ।
काहलिय[2]-वंस-रव-रत्तियाउ । बहुअउ घर कम्मि गुत्तियाउ ।
सकेय-कुडुंगण-पत्तियाउ । जहिँ झीणउ विरहिँ तत्तियाउ ।
जहिँ हालिणि-रूव-णिवद्ध-चक्खु । सीमावडु ण मुअइ कोवि जक्खु ।
जिम्मइ जहिँ ऍंवहि पवासिएहिँ । दहि कूरु खीरु घिउ देसिएहिँ ।
पव-पालियाइ जहिँ बालियाइ । पाणिउ भिंगार-पणालियाइ ।
दिंतिऍं मोहिउ णिरु पहिय-विंदु । चंगउ दक्खालि'वि वयण-चंदु ।
जहिँ चउपयाइँ तोसिय-मणाइँ । धण्णइ चरति णहु पुणु तिणाइँ ।
उज्जेणि णाम तहिँ णयरि अत्थि । जहिँ पाणि पसारइ मत्त-हत्थि ।

—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

रज्जहु कारणि पिउ मारिज्जइ । बंधवहू मी संचारिज्जइ ।
जिह अलि-गंधे गउ संघारहु । तिह रज्जेण जीउ तं वारहु ।
भड-सामंत-मंति-कय-भायउ । चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंडुल-पसयहु कारणि राणा । णरइ पडंति काइँ अ-वियाणा ।
इज्झउ रज्जु'जि दुक्खु गुरुक्कउ । जइ सुहु किं ताएँ मुक्कउ ।

—आदिपुराण (पृ० २६५)

---

[1] लाल लाल और मोटे गन्ने [2] झांझ (थालीनुमा कांसेका बाजा)

जहँ चुमचुमंति केदार-कीर । वर-कलम-शालि-सुरभित-समीर ।
जहँ गोकुलाइँ पय विक्षरंति । पुड्-ईख-दंड खंडहिँ चरंति ।
जहँ वृषभ मुक्त-होक्काड-धीर । जीभा-विलिहित-नंदिनि-शरीर ।
जहँ मथर गमनै माहिषाइँ । ह्रद-रमण्-उड्डायउ सारसाइँ ।
काहली वंशि-रव-रक्तियाउ । बधुआ घरकर्मे गुप्तियाउ ।
संकेत-कुडच-ंगण-पंक्तियाउ । जहँ भीनउ विरहे तप्तियाउ ।
जहँ हालिनि-रूप-निवद्ध-चक्षु । सीमावट न मुवै कोइ यक्ष ।
जेवै जहँ ऐस प्रवासिनेहिं । दधि-गुड-क्षीर-घिउ-दुस्सए[1]हिं ।
प्रप-पालिकाहिं जहँ बालिकाहिँ । पानिय-भृगार[2]-प्रणालिकाहिँ ।
देतिअँ मोहेंउ अति पथिकवृन्द । चगा द्राक्षालि'व वदनचन्द्र ।
जहँ चौपदाइँ तोषित-मनाइँ । धान्यै चरति नहि पुनि तृणाइँ ।
उज्जेनि नाम तहँ नगरि अस्ति । जहँ पाणि प्रसारै मत्त-हस्ति ।
—जसहर-चरिउ (पृ० १७)

४—सामन्त-समाज

(१) राजत्वके दुर्गुण

राज्यहि कारणे पितु मारिज्जै । बांधवहँ (पुनि) सचारिज्जै ।
जिमि अलि-गंधे गउ संहारा । तिमि राज्येहि जीवितऊँ वारा ।
भट-सामंत-मत्रि-कृत भायउ । चिंतीयंतउ सब उपरागउ ।
तडुल-पसरहँ कारणे राना । नरक पडति काइँ अ-विजाना ।
जारहु राज्यहु दुःख-गुरूकउ । यदी सुक्ख का तेहीं मूकउ ।
—आदिपुराण (पृ० २६५)

---

[1] कपड़ा थान [2] पौसरेपर पानी पिलानेवाली [3] जलकी झारी

(२) राज-दर्बार[1]

अत्थाण-भूमि[2] गउ मणि विसण्ण । कणय-मय-रयण-विट्ठरि णिसण्णु ।
दो-वासइँ चमरइँ महु पडति । वहु-दुक्ख-सहासइँ णं घटंति ।
सह-मंडवि खुज्जय-वावणाइ । णच्चतइ णिरु कोड्डावणाइँ ।
वीणा-वसइँ गेयइँ भुणंति । वेयालिय फफावय थुणंति ।
एयाइँ जइवि णिरु सुहयराइँ । महु पुणु सुविरत्तहों दुहयराइँ ।
पोत्थय-वायणु आढत्त सरसु । मण-सवणहँ जं जणि जणइ हरिसु ।
तहिं अवसरिं पडिहारि वरेण । कणय-मय-दड-मडिय-करेण ।
पइसारिय भड-सामत-मति । अणवरय भमइ जगि जाँह कित्ति ।
पय-जुयलु णविउ महु णरवरेहि । मउडग्ग-कोडि-चुविय-धरेहि ।
अवलोइय णर-वइ मइँ णवत । पडियावयाइँ णावइ कुमित्त ।
गोविट्ठि-णिविट्ठ णरिंद सव्व । णिविडत्थवत ण सुकइ-कव्व ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

काम-भोय-सुह-रस-वसहों । तहु वसुमइहि काइँ वण्णिज्जइ ।
जं ज चितइ किंपि मणे । तं त सयलु वि खणि संपज्जइ ॥
जक्ख-पंको दढ वल्लहालिगणं । मालई-मालिया कुंकुमालेवण ।
उंचओ मंचओ चारु-सेज्जा-यल । आवरोहारि सोम्ह थणाणं थलं ।
उण्हयं भोयणं तुप्प-धारा-हरं । रत्तओ कवलो छण्णरध घर ।
पुव्वपुण्णेण सव्वं पि मजुत्तय । सीय-यालम्मि तेणेरिसं भुत्तयं ।
चंदणं चंदपाया पिया णेहली । मल्लिया-दामय तार-हारावली ।
दाहिणो मंथरो मारुओ सीयलो । रुक्ख-कीलाणिओ पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मंडवो पोमजुत्तो सरो । वीयणं दोलणालीणओ सीयरो ।
थद्ध-थद्धं दहिं सीययं पाणियं । उण्हयालम्मि तेणेरिसं माणियं ।

---

[1] राजकुल [2] राजप्रांगण

(२) राज-दर्बार

आस्थान[1]-भूमि गउ मन-विषण्ण । कनकमय-रतन-विस्तर-निषण्ण ।
दो पासेँहि चमरा मुहु पडति । वहु-दुःख सहसैँ जनु घडति ।
सभ-मडपेँ कुब्जा-वामनाइ । नाचतै अतिकोटावनाइँ[2] ।
वीणा-वशिहि गीतहि ध्वनंति । वैतालिक फंफावै स्तुवंति ।
एताइँ यदपि वहु सुख-कराइँ । मुहु पुनि सुविरक्तह दुखकराइँ ।
पुस्तक-वाचन आरभेँउ सरस । मन-श्रवहँ जनु जनेँ जनै हरष ।
तेँहि अवसर प्रतिहारेँहिँ वरेहिँ । कनकमय-दंड-मडित-करेहिँ ।
पइसारेउ भट-सामंत-मत्रि । अनवरत भ्रमै जग जाह कीर्त्ति ।
पद-युगल नमेँउ मुहु नरवराहिँ । मुकुटाग्र-कोटि-चुवित-धराहिँ ।
अवलोकेँउ नरपति मोहिँ नमंत । आ-पड़िईँ न्याइँ कुमित्र ।
गोष्ठीहिँ निविष्ट नरेन्द्र सर्व । निविडार्थवत जनु सुकवि-काव्य ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३२)

(३) सामंती भोग

कामभोग-सुख-रस-वसहु, तेँहि वसुमतिहिँ किमि वर्णिज्जै ।
जो जो चितै कछु मने, सो सो सकलहु क्षणेँ संपज्जै ॥
यक्षपंको (?) दृढं वल्लभालिगन । मालती-मालिका कुकुमालेपनं ।
ऊँचओ मचओ चारु-शय्यातल । आवरोहारि सूक्ष्म स्तनाहूँ तलं ।
उष्णओ भोजना तोपि धाराधर । रक्तओ कवलो वद-रंध्रं घरं ।
पूर्वपुण्येहिँ सर्व हि संयुक्तकं । शीतकालेहि तेँहि इं दृश भुक्तकं ।
चंदनो चद्रपादा प्रिया स्नेहिली । मल्लिका-दामक तार-हारावली ।
दाहिने मथरो मारुतो शीतलो । वृक्षक्रीडानियो पल्लवो कोमलो ।
वल्लरी-मंडपो पद्म-युक्तो सरो । वीजना-दोलना नीरको शीकरो ।
गाढ-गाढं दही शीतलं पानियं । उष्णकाले हि तेँहिँ ईदृशं मानियं ।

---

[1] दर्बार [2] उत्साहनाइँ

फूल्लियासा-कयबोह-धूलीरओ । मत्त-माऊर-वंदस्स केयारओ ।
णीर-धारा मुयंतंबु-वाहज्झुणी । संगया सूहवा पासि सीमंतिणी ।
णिग्गलं मंदिरं णिक्किंयं भूयल । धावमाण रयालं पणाली-जलं ।
इट्ठ-गोट्ठी-विसिट्ठेहिं विण्णायय । दिव्व-गंधव्वयं कव्वय पायय ।
विज्जु-माला-फुरंतं णह दिप्पहं । तस्स मेहागमे तपि सोक्खावह ।.....
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेसा-वाडइँ भत्ति पइट्ठउ । मयरकेउ पुरवेसहिँ दिट्ठउ ।
कावि वेस चिंतइ गय-मुण्णा । ए थण एयहोँ णहहिँ ण भिण्णा ।
कावि वेस चिंतइ कि वड्ढिय । णीलालय एएण ण कड्ढिय ।
कावि वेस चिंतइ कि हारेँ । कंठु ण छिण्णउ एण कुमारेँ ।
कावि वेस अहरग्गु समप्पइ । भिज्जइ खिज्जइ तप्पइ कपइ ।
कावि वेग रइ-सलिलेँ सिंचिय । वेवइ वलइ घुलइ रोमंचिय ।...
घत्ता । ता वीणा-कलरव-भासिणिए देवदत्तए रायविलासिणिए ।
हिय-उल्लए कामदेउ ठविउ कय-पंजलि-हत्थेँ विण्णविउ ॥१॥
"परमेसर ! कारुण्णु वियप्पहि । जिह मणु तिह घर-पंगणु सप्पहि ।
त णिसुणिवि उवयरियउ तेत्तहेँ । तं तहेँ रमणिहेँ मंदिरु जेँत्तहेँ ।
आणु दिण्णु णिसण्णउ रयणिहिँ । णिव्वत्तिय-मज्जण-भूसण-विहि ।
भोयणु भुत्तउ मत्ता-जुत्तउ । सरसु कइंदेँ कव्वु'व उत्तउ ।
कामेँ कामिणि भणिय हसेप्पिणु । .....
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुयर-सहुँ चलिउ जाव । पारभिय थुइ णग्गुडिहिँ ताव ।
णच्चति विलासिणि गीउ रम्मु । गायण गायंतिहिँ सुकिय-कम्मु ।
गय णंदण-वणि मंडव-दुवारु । वर-तोरण-मंडिउ रयण-फारु ।
तहिँ किउ ज जोग्गु पुरोहिएण । आयारु कुमग्गणि रोहिएण ।

फूलि-आशा कदंब-ोघ-धूली-रजो । मत्त-मायूर-वृन्दोँकाँ केकारवो ।
नीरधारा मुचंत्-अंबुवाह-द्-धुनी । संगता सूद्भवा पास सीमंतिनी ।
नि'र्गलं मंदिरं निष्क्रियं भूतलं । धावमानं रजालं प्रणाली-जलं ।
इष्ट-गोष्ठी-विशिष्टेहिँ विद्याचयं । दिव्यगंधर्वकं काव्यियं पाययं ।
विज्जुमाला-फुरंतं नभं दिक्प्रभं । तासु मेघागमे सोउ सौख्यावहं ।

—आदिपुराण (पृ० ४०७)

(क) (वेश्या-बाजार)

वेश्यावाटहिँ झट्ट पइट्ठेँउ । मकरकेतु-पुरवेषहिँ देखेँउ ।
कोइ वेश्य चिंतै गति-शून्या । ए थन एतहँ नखेँहि न भिन्ना ।
कोइ वेश्य चिन्तै का वाढिय । नीलालक एतेहिँ न काढिय ।
कोइ वेश्य चिन्ता की हारेँ । कंठ न छिन्देँउ एहिँ कुमारेँ ।
कोइ वेश्य अधराग्र समर्पै । भिज्जै-खीभै-तापै-कंपै ।
कोइ वेश्य रति-सलिलेँ सीँचिय । वेपै वलै घुरै रोमांचिय ।
घत्ता । तो वीणा-कल-रव-भाषिणिया देवदत्तआ राज-विलासिनिया ।
हिय-उल्लया कामदेव थापेँउ कृत-प्राजलि-हाथेँ विज्ञापिया ।।१।।
"परमेश्वर ! कारुण्य-वियापै । जेँहि मन तेँहि घर-आँगन प्रापै ।"
सो सुनिया उपकरियउ तेँत्तहिँ । सो तेँहि रमणिहिँ मंदिर जेँतहिँ ।
अन्यो दीनु निषण्णउ रजनिहिँ । पूरावेँउ मज्जन-भूषण-विधि ।
भोजन भुक्तउ मात्रायुक्तउ । सरस कवीन्द्रेँ काव्य'व उक्तउ ।
कामेँ कामिनि भनियो हंसिके । .....

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४८-४९)

(ख) विवाह-वर्णन

समवयस-कुमर-सँग ले चलेँउ जब्ब । प्रारभेउ स्तुति नग्गुडिहिँ तब्ब ।
नाचंति विलासिनि गीत रम्य । गायन गायती सुकृत-कर्म ।
गउ नंदनवन-मंडप-दुवार । वरतोरण-मंडित रतन-स्फार ।
तहँ किउ जो योग्य पुरोहितहीँ । आचार कुमार्ग-निरोधिहहीँ ।

सुपइट्ठउ मंडव-मज्झि जाम । वरु दिट्ठउ सज्जण-जणहिं ताम ।
चउरिइ[1] णिविट्ठ कंदप्प-मुत्ति । पासेहि णिवेसिय तासु पत्ति ।
अग्गइ पयक्खु किउ धूमकेउ । किउ होमु हुणेप्पिणु तिव्व-तेउ ।
अम्मय-मइ पाणि करेण गहिउ । सीयारु पमेल्लिउ ताह अहिउ ।
तहोँ दिण्ण कण्ण विरइउ विवाहु । सव्वेहिँ उच्चरिउ "साहु साहु" ।
णवयारिवि मायरि कण्ण सहिउ । णिग्गउ वरु एहु विवाहु कहिउ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

क'वि अलय-तिलय देविहि करइ । क'वि आदसणु अग्गइ धरइ ।
क'वि अप्पइ वर-रयणाहरणु । क'वि लिप्पइ कुंकुमेण चरणु ।
क'वि णच्चइ गायइ महुर-सरु । क'वि पारभइ विणोउ अवरु ।
क'वि परिरक्खइ णिसियासि करी । क'वि वारि परिट्ठिय दंडधरी ।
अक्खाणउ कावि किपि कहइ । दिण्णउँ कणइल्लु कावि वहइ ।
क'वि वार वार विणएँ णवइ । क'वि सुरसरि-सर-सलिलहिँ ण्हवइ ।
क'वि मालउ चेलिउ उज्जलउ । ढोयइ सब-लहणु सुपरिमलउ ।
—आदिपुराण (पृ० ३६)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरणि **मरुएवि** भडारी । जाहि रूव-सिरि अइ-गरुयारी ।
अमरहँ पंतिइ पय-पणवंतिइ । लघियाइँ अम्हइँ णहयंतिइ ।
कमयलराएँ काइँ गविट्ठउ । एम णाइं णेउरहिँ पघुट्ठउ ।
पण्हिहि रत्तउ चित्तु पदंसिउँ । अंगुलियहिँ सरलत्तु पयासिउँ ।
अंगुट्ठुण्णईइ जं गूढइँ । गुप्फइँ तं किर पिसुणइँ मूढइँ ।
णीरोमउ विसिरिउ वट्टुलियउ । मसिणउ मोहियाउ उज्जलियउ ।
जंघउ कमहाणिइ ओहरियउ । दिट्ठउ णं खल-मित्तहँ किरियउ ।

---

[1] चबूतरेपर

सु-पईठेउ मंडप-माँझ जब्ब । वर देखेँउ सज्जन-जनेँहिँ तब्ब ।
चउरेँ निविष्ट कंदर्प-मूर्त्ति । पासेहिँ निवेसेउ तासु पत्नि ।
आगेँहिँ प्रदक्षणेँउ धूमकेतु । किउ होम होँमावन तीव्र-तेज ।
अंमृतमय-पाणि करेहिँ गहेँउ । शीत्कार प्रमेलत[1] स हि अहिउ ।
तहँ दियउ कन्याँ विरचेँउ विवाह । सर्वेहिँ उच्चरेँउ "साधु साधु" ।
नवकारिहु मायेर कन्याँ-सहित । निर्-गउ **वर एहु** विवाह कथित ।

—जसहर-चरिउ (पृ० २१)

(ग) रानियोंका जीवन

कोँइ मलय-तिलक देविहिँ करई । कोँइ आरसिहीँ आगे धरेँई ।
कोँइ अर्पै वर-रतनाभरना । कोँइ लेपै कुंकुमहीँ चरणा ।
कोँइ नाचै गावै मधुर-स्वरा । कोँइ प्रारंभै विनोद अपरा ।
कोँइ परि-रक्षै निशित-असि करी । कोँइ द्वारेँ परिट्-ठिउ दंडधरी ।
आख्यानहु कोँइ किछू कहई । दीनेँउ कनइल्लु[2] कोँइ बहई ।
कोँइ बार बार विनये नमई । कोँइ सुरसरि-सर-सलिलेँहिँ **स्नपई** ।
कोँइ मालउ चोलिउ उज्ज्वलऊ । धोवै सब लहण[3] सुपरिमलऊ ।

—आदिपुराण (पृ० ३९)

(घ) नारी-सौंदर्य-वर्णन

ताहि घरनि मरुदेवि भटारी[4] । जाहि रूपश्री अति गुरुकारी ।
अमरन् पक्तिहिँ पद-प्रणमंतिइ । लघायऊ हमरो नख-पंक्तिइ ।
कमतल राये काह गवेषिउ । एँहि न्याईँ नूपुरेहि प्रघोषिउ ।
पण्णिहिँ रक्तउ चित्त प्रदर्शेउ । अंगुलियहिँ सरलत्त्व प्रकाशिउ ।
अंगुठ-उन्नति ही जिमि गूढा । गुल्फउ सो फुर पिशुना मूढा ।
नी-रोमउ विसिरिउ वर्त्तुलियउ । मसृणउ सोहियाउ अंगुलियउ ।
जंघउ क्रमहानी अव-धरियऊ । दीसेँउ जनु खल-मित्रहँ किरियउ ।

---

[1] छोडती [2] कर्ण-फूल [3] लहँगा (१) [4] भट्टारिका=महाराणी

गूढइँ णरवइ-मंता भासइँ। वायरणाइँ व रइय-समासइँ।
णिविड-संधि-बंधइँ णं कव्वइँ। देविहि जण्हुयाइँ[1] अइभव्वइँ।
ऊरुय-खंभ-णराहिव-दमणहु। तोरण खंभाइँ व रइ-भवणहु।
जेण स-सुर-णरु तिहुयणु जित्तउ। कामतच्चु जं देवहिँ वुत्तउ।
दिण्ण थत्ति तहु सोणी बिंबहु। किं वण्णमि गरुयत्तु नियं वहु।

घत्ता। गंभीर णाहि तहि मज्झु किसु, उयरु स-तुच्छउ दिट्ठ मइँ।
संसग्गवसे गुणु कासु हुउ, जो णवि जायउ जम्मि सइँ ॥१५॥

तिवली-सोवाणेहिँ चडेप्पिणु। रोमावलि-कुहिणी लँघेप्पिणु।
सिहिण-गिरिदारोहण-दोरइ। लग्गहु वम्महु मोत्तिय-हारइ।
पिय-वसियरणु वसइ भुय-मूलइ। सुइ-सोहग्गु जाहि हत्थयलइ।
णेह-बंधु मणि-बधि परिट्ठिउ। लायण्णे समुद्दु णं संठिउ।
जाहि तणउँ तं जणिय-वियारउँ। महुरउ इयरउ केरउ खारउ।
कंठलीह णउ कंबु पावइ। पर-सास-ऊरिउ कहँ जीवइ।
णियउ णिविट्ठउ जिय-ससि-कंतिहि। धोयहि धवलहि णाइँ पवालउ।
अहर-बिंबु रेहइ रायालउ। मुक्तावलियहि णाइँ पवालउ।
अम्हहँ ठाइ कयाइ ण संमुहु। उज्जुहु णासावसु वि दुम्मुहु।
भउँहउँ वंकत्तणु' वि ण सहियउ। णयणहिँ जपि'व कण्णहुं कहियउ।
णिमि-दिणि ससि रवि गयण विलविय। विण्णि'वि गडयलइ पडिबिंबिय।
कुंडल-मिरि वहंति धवल-च्छिहि। जिण-जणणियहि सलक्खण-कुच्छिहि।
कुडिलालय भाल-यलि णिरंतर। मुह-कमलहु घुलंति णं महुयर।
अवरु' वि नाहँ भारु विवरेरउ। मुह-ससहर-भएण णं तमरउ।
तरुणिहे पिट्ठि पइट्ठउ दीसइ। कुसुम-रिक्ख-मीसियउ विहासइ।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] जाह्नवी (गंगा)

गूढा नरपति-मंत्रा भाषा । व्याकरणहिँ इव रचित-समासा ।
निविड-संधि[1]-बंध जनु काव्या । देवि जाह्नवी इव अतिभव्या ।
ऊरू-खंभ नराधिप-दमनहँ । तोरण-खंभा इव रति-भवनहँ ।
जातेँ स-सुर-नर-त्रिभुवन जीतउ । कामतत्त्व जो देवेँहिँ उक्तउ ।
दीन थाप तेँहि श्रोणीबिबहु । का वरनौ गरुअत्त्व नितंबहु ।

घत्ता । गभीर नाभि तहि माँझ कृश, उदर स-तुच्छउ देखु मईँ ।
संसर्ग वशे गुण कासु हुयेउ, जो नहि जायेउ जन्मतेँईँ ॥१५॥

त्रिवली-सोपानेहि चढेविय । रोमावलि केँहुनी लंघेविय ।
स्तनक-गिरीन्द्रारोहण-डोरा । लागहु मन्मथ मौक्तिकहारा ।
प्रिय-वशिकरण वसै भुज-मूलहिँ । शुचि सौभाग्य जाहि हत्थतलहिँ ।
स्नेहबंध मणिबंध परिट्-ठिउ । लावण्ये समुद्र ना सं-ठिउ ।
जाहिकेर सो जनित-विकारा । मधुरउ इतरहु-केरउ खारा ।
कंठलीहिँ नहिँ कंबू पावै । पर-श्वासा-पूरित किमि जीवै ।
निकट-निविष्टउ जित-शशि-कान्तिहिँ । धोवै धवलहि न्याइ प्रवालहिँ ।
अधर-विव रोचै रागालउ । मुक्तावलियहिँ न्याइँ प्रवालउ ।
हमरे ठहर कदाचि न समुख । ऋज्जुहु नासा-वशउ दुर्मुख ।
भौँहउँ वकपनहु नहि सहियउ । नयनहिँ जल्पिय कर्णहँ कहियउ ।
निशि-दिन रवि-शशि गगने लविउ । दोऊ गंड-तलैँ प्रतिविवउि ।
कुडल-श्री वहत धवलाक्षिहिँ । जिन-जननियहि स-लक्षण-कुक्षिहिँ ।
कुटिलालक भालतले निरंतर । मुखकमलहु घुरंति जनु मधुकर ।
अवरउ ताहँ भार विवरेरउ । मुख-शशधरभरेहिँ जन तमसउ[2] ।
तरुणिहिँ पृष्ठ पईठेउ दीसै । कुसम-ऋक्ष-मिश्रितउ विभासै ।

—आदिपुराण (पृ० ३१-३२)

---

[1] सर्ग (अपभ्रंश काव्योंमें संधि और कडवका क्रम होता है) [2] अंधकार

राएँ गउ णिय-सिविरहु तरंतु । . . . । पत्तउ सुरसरि-जल-मज्झ-ठाणु ।
जोयवि गंगहि सारसहँ जुयलु । जोयइ कतहि थण-कलस-जुयलु ।
जोयवि गंगहि सुललिय-तरग । जोयइ कंतहि तिवली-तरंग ।
जोयवि गंगहि आवत्त-भवँणु । जोयइ कतहि वर-णाहि-रमणु ।
जोयवि गंगहि पप्फुल्ल-कमलु । जोयइ कंतहि पिउ-वयण-कमलु ।
जोयवि गगहि वियरंत मच्छ । जोयइ कंतहि चल-दीहरच्छ ।
जोयवि गंगहि मोत्तियहु पंति । जोयइ कंतिहि सिय-दसण-पंति ।
जोयवि गगहि मत्तालि-माल । जोयइ कतहि धम्मेल्ल णील ।
घत्ता । णिय-गेहिणि वम्मह-वाहिणि, देवि सुलोयण जेही ।
मंदाइणि जण-सुह-दाइणि, दीसइ राएँ तेही ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० ४६)

(क) नारी-नख-शिख—

णिय वणिणा कणय-उरहोँ मयच्छि । दिट्ठा वरेण णं मयणलच्छि ।
जो कंतह णह-यलि दिट्ठु राउ । मुहु भावइ सो णह-यर-णिहाउ ।
चारत्तु णहहँ एए कहंति । अगुट्ठय परमुण्णय वहंति ।
गुप्फइँ गूढत्तणु ज धरंति । णं भुअणु जिणहु मंतु'व करंति ।
जंघा-जुयलउ णेउर-दुएण । वण्णिज्जइ णं घोसेँ हुएण ।
वग्गइ वम्महु वहु-विग्गहेण । जण्हुय सधाएँ परिग्गहेण ।
ऊरू-थंभहिँ रइघरु अणेण । रेहइ मणि-रसणा[1] तोरणेण ।
कडियल-गरुयत्तणु त पहाणु । जं धरिया मयण-णिहाण-ठाणु ।
मणि चिंतवंतु मय-खडु जोहि । तुच्छोयरि किह गंभीर-णाहि ।
सो सिय मसि-वयणहेँ तिवलि-भंग । लायण्ण-जलहोँ णावइ तरंग ।
थण-थड़ ढत्तणु परमाण णासु । भुय-जुयलउ कामुय-कंठ-पासु ।
गीवहेँ गइवेयउ हियय-हारि । वद्धउ चोरु'व रूवावहारि ।
अहरुल्लउ वम्मह-रस-णिवासु । दंतहि णिज्जिउ मोत्तिय-विलासु ।

---

[1] कांची (करधनी) = कटिका आभूषण

राय गऊ निज शिविरेहिँ तुरंत । . . .।. पायउ सुरसरि-जल-माँझ थान ।

जोयउ गंगहिँ सारसहँ युगल । जोवै कांता-स्तन-कलश-युगल
जोयउ गंगहिँ सुललित-तरंग । जोवै काता-त्रिवली-तरंग ।

जोयउ गगहिँ आवर्त्त-भ्रमण । जोवै कांता-वर-नाभि-रमण ।
जोयउ गंगहीँ प्रफुल्ल कमल । जोवै कांता-प्रियवदन-कमल ।

जोयउ गगहिँ विचरत मच्छ । जोवै कान्ता-चल-दीर्घ-अक्ष ।
जोयउ गंगहिँ मोतियहु पाँति । जोवै कान्ता-सित-दशन-पाँति ।

जोयउ गंगहिँ मत्तालिमाल । जोवै कान्ता-धम्मिल्ल[1]-नील ।
घत्ता । निज-गेहिनि मन्मथ-वाहिनि, देवि सुलोचन जैसी ।
मदाकिनि जन-सुख-दायिनि, दीसै राजहिँ तैसी ॥७॥

--आदिपुराण (पृ० २६)

(क) नारी-नख-शिख--

निज वर्ण कनक-उरहोँ मृगाक्षि । दीसति वरेहि जिमि मदन-लक्ष्मि ।

जो कंतह नभ-तल देखु राव । मुहु भावै सो नभचर-निधाव ।
चारुत्व नभहँ ईँहै कहंति । अगुट्ठक-परमुन्नत वहति ।

गुल्फा गूढत्तन जो धरंति । जनु भुवन-विजय मंत्र इव करति ।
जघा-युगलउ नूपुर-द्वयेहिँ । वर्णिज्जै जनु घोषेँ हुयेहिँ ।

वल्गै मन्मथ वहु-विग्रहेहिँ । जानू संधान-परिग्रहेहिँ ।
ऊरू-थभहिँ रतिघर एँहीहिँ । राजै मणि-रसना-तोरणेहिँ ।

कटितल गरुत्तन सो प्रधान । जनु धरिय मदन-निधान-थान ।
मणि चितवत शतखंड जाह । तुच्छोदरि कहँ गंभीर नाभि ।

शेषिय शशिवदनहँ त्रिवलि-भंग । लावण्य जलहँ नदिही तरंग ।
स्तन-कठिनत्वहु परमान-नाश । भुज-जुगलउ कामुक-कंठपाश ।

ग्रीवहेँ गतिवेगउ हृदयहारि । बद्धउ चोर इव रूपापहारि ।
अधरुल्लउ मन्मथ-रस-निवास । दंतेहिँ जीतेँउ मौक्तिक-विलास ।

---

[1] केशपाश

घत्ता। जइ भउहाँ-कुडिलत्तणेण, णर सुरधणुरुहेण पहयमय।
तो पुणु वि काइँ कुडिलत्तणहों, सुंदरि-सिरि धम्मिल्ल-गय ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

'हेट्ठामुह बहु वरेण भणिया। कि हुइ तुहं मलिणाणणिया।
घणु सोहइ एक्कइ विज्जुलइ। वणु सोहइ एक्कइ कोइलइ।
इह सोहमि हउँ एक्काइ पइँ। गुरु-वयणु करेवउ तोवि मइँ।
मा रूसहि सज्जण-वच्छलिइ। अलि-णील-कुडिल-भउँ-कोंतलिइ।
तें वयणें रोस-णियत्तणउँ। जायउँ तहि रम्मु पेम्मु घणउँ।
वप्पिल संपाइउ रमण-वसा। तडि-रय-तडि-वेयहु तणिय ससा।
चल-णयण-जुयल-णिज्जिय-हरिणि। रइकंता मयणवई तरुणि।
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

ते णव बधव सहुँ परिवारें। सोउ करंति दुक्ख-वित्थारें।....
सा सिवएवि रुयइ परमेसरि। "हा देवर! पर-भड-गय-केसरि।
हा किं जीविउँ तिणु परिगणियउँ। कोमल-वउ हुय-वहि किं हुणियउँ।
हा पयाइ किं किउँ पेमुण्णउँ। हा किं पुरि-परिभमहुँ ण दिण्णउं।
हा कुल-धवल केव विद्धंसिउ। हा जय-सिरि विलासु किं णिरसिउ।
हा पइँ विणु सोहइ ण घरंगणु। चंद-विवज्जिउँ ण गयणंगणु।
हा पइँ विणु दुक्खें पुरु रुण्णउँ। हा पइँ विणु माणिणि-मणु सुण्णउँ।
हा पइँ विणु को हारु थणंतरि। को कीलइ सरहसु'व सरवरि।
पइँ विणु को जण-दिट्ठिउ पीणइ। कंदुय-कील देव को जाणइ।
हा पइँ विणु को एवहिँ सूहउ। पइँ आपेक्खवि मयणु'वि दूहउ।

---

[१] निम्नमुख, नतमुख

घत्ता। यदि भौहाँ-कुटिलत्तनेहिँ, नर सु-धनु रुहेहिँ प्रभामय।
तो पुनिहु काइँ कुटिलत्तनहीँ, सुदरि श्री-धम्मिल्ल-गत ॥१७॥
—णायकुमार-चरिउ (पृ० १२)

(च) कुपिता नायिका—

हेट्ठामुँह बधु वरेहिँ भनियाँ। "का हुइ तुहूँ मलिनाननिया।
घन सोहै एकइ विज्जुलई। वन सोहै एकइ कोइलई।
ऍहिँ सोहौँ मै एकइ तुहईँ। गुरुवचन करेवउ तोउ मईँ।
ना रूसहु सज्जन-वत्सलिई। अलि-नील-कुटिल-भौँ-कुन्तलिई।
तव वदने रोषयित्तनऊ। जायउ तहँ रम्य-प्रेम-घनऊ।
बप्पिल स-पायेउ रमण-वशा। तडि-रज-तडि-वेगहँकेर श्वसा।
चल-नयन-युगल-निर्जित-हरिनी। रतिकता मदनवती तरुणी।"
—आदिपुराण (पृ० ५६१)

(छ) नारी-विलाप—

सो नव-वांधव-सँग परिवारेँ। सोउ करति दुःख विस्तारेँ।
सा शिवदेवि रोँवै परमेश्वरि। "हा देवर! परभट-गज-केसरि।
हा का जीवित तृण परिगणियउ। कोमल-वय हुतवहेँ का होँमियउ।
हा प्र-जाइ का किउ पैशुन्यउ। हा का पुरि-परिभ्रमउ न दीनेँउ।
हा कुल-धवल कैस विध्वंसेँउ। हा जयश्री विलास का निरसेँउ।
हा तैँ विनु सोहै न घरांगन। चद्र-विवर्जित जनु गगनांगन।
हा तैँ विनु दुःखे पुर रुन्नउ[1]। हाँ तैँ विनु मानिनि-मन सुन्नउ।
हा तैँ विनु को हार थनंतरेँ। को क्रीडै सरहंस'व सरवरेँ।
तैँ विनु को जनदृष्टिहिँ प्रीणै। कंदुक-क्रीड देव! को जानै।
हा तैँ विनु को ऐसो सूखउ। तैँ आपेक्षिय मदनउ दूखउ।

---

[1] रोयेउ

हा पइँ विणु णिय-गोत्त-ससकहु । को भुय-वलु समुद्द-विजय-कहु ।
हा पइँ विणु सुण्णउँ हियउल्लउँ । को रक्खइ मेरउ कडउल्लउँ ।
छार-रासि हूयउ पविलोयउ । एव वंधुवग्गेँ सो सोइउ ।
पजलीहिँ मीणावलि-माणिउँ । ण्हाइवि सव्वहिँ दिण्णउँ पाणिउँ ।
—उत्तरपुराण (प० ३४)

(५) युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु-सगाम-भेरि । णं भुक्खिय तिहु-यण गिलिवि मारि ।
छुडु णिग्गउ भुय-वलि साहिमाणि । छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि ।
छुडु कालेँ णीणिय दीह-जीह । पसरिय माणुस-मंसासणीह ।
थिय लोयवाल जीविय-णिरीह । डोल्लिय गिरि रुजिय गहणि सीह ।
छुडु भड-भारेँ ढलहलिय धरणि । छुडु पहरण-फुरणेँ हरिउ तरणि ।
छुडु चदबलाइँ पलोइयाइँ । छुडु उहयवलाइँ पधावियाइँ ।
छुडु मच्छर-चरियइँ बड्ढियाइँ । छुडु कोसहु खग्गहिँ कड्ढियाइँ ।
छुडु चक्कइँ हत्थुग्गमियाइँ । छुडु सेल्लइँ भिच्चहिँ भीमयाइँ ।
छुडु कोंतइँ धरियइँ समुहाइँ । धूमधइँ जायइँ दिम्मुहाइँ ।
छुडु मुट्ठि-णिवेसिय लउडि-दड । छुडु पुखुज्ज-गुणि णिहिय कड ।
छुडु गय कायर थरहरिय-प्राण । छुडु ढोइय सदण ण विमाण ।
छुडु मेठ-चरण-चोइय-मयंग । छुडु आसवार-वाहिय-तुरग ।
घत्ता । छुडु छुडु कारणि वसुमइहि सेण्णइँ जाम हणंति परोप्परु ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जयसिरि[1]-रामालिगण-लुद्धहँ । एक्कमेक्क पहरतहँ कुद्धहँ ।
असि-संघट्टणि उट्ठिउ हुयवहु । कढकढंतु सोसिउ सोणिय-दहु ।
दसवि दिसा सइँ तेण पलित्तइँ । पक्खर-चमरइँ चिंधइँ छत्तइँ ।
ता पडिवक्ख-पहर-भय-तट्ठउँ । महुमहबलु दस-दिसि वह णट्ठउँ ।

---

[1] कृष्ण-जरासंधका युद्ध

हा तैं विनु निजगोत्र-शशाकहु । को भुज-बल-समुद्र-विजयाकहु ।
हा तैं विनु सुन्नउ हृदयुल्लउ । को राखै मेरो कडयल्लउ ।
क्षार-राशि होयउ प्र-विलोकउ । इमि वधू-वर्ग सो सोयउ ।
प्राजलीहिं मीनावलि-मानिउ । स्नाइब सर्वहिं दिन्नउ पानिउ ।
—उत्तरपुराण (पृ० ३४)

(५) युद्ध

यदि गर्जिय गुरु-सग्राम-भेरि । जनु भुक्खिय त्रिभुवन गिलवि मारि ।
यदि निग्गउ भुजबलें साभिमान । यदि एतहिं आयउ चक्रपाणि ।
यदि कालें लेलिय दीर्घ-जीह । पसरिय मानुष-मासाशनीह ।
ठिय लोकपाल जीवित-निरीह । डोलिय गिरि गर्जिय गहनें सीहें ।
यदि भटभारें दलदलिय धरणि । यदि प्रहरणु-फुरणे हरेंउ तरणि ।
यदि चंद्र-बलाइं प्रलोकिताइं । यदि उभय-बलाइं प्रधाविताइं ।
यदि मत्सर-चरितहं बद्धियाइं । यदि कोपहें खड्गहु कड्ढियाइं ।
यदि चक्रें हाथ्-उट्ठाइयाइं । यदि सेलइं भूत्येहिं भ्रमियाइं ।
यदि कुन्तइं धरियइं संमुखाइं । धूमंधा जावैं दिग्मुखाइं ।
यदि मुष्टि-निवेशिय लउरि-दड । यदि पुख्-उज्-ज्यागुणें निहित-काड ।
यदि गज कायर थरहरिय प्राण । यदि ढोइय स्यदन जनु विमान ।
यदि मेंठ[2]-चरण-चोदित-मतग । यदि आसवार-चालिय-तुरग ।
घत्ता । यदि यदि कारणे वसुमतिहि, सेनइ जब्ब हनति परस्पर ।
—आदिपुराण (पृ० २८८)

जय-श्री-रामा-'लिगन-लुब्धहें । एक-एक प्रहरंतेंह क्रुद्धहें ।
असि-संघट्टनें उट्ठेंउ हुतवह । कडकडंत शोषेंउ शोणित-दह ।
दसउ दिशाशइं तेहिं प्रलिप्तहें । पक्खर-चमरें चिन्हें छत्रहें ।
सो प्रतिपक्ष-प्रहर-भय-त्रस्तउ । मधुमथ-बल दशदिशि पथ नष्टउ ।

---

[1] नरमांसभक्षी [2] महावत

पोरिस-गुण-विभाविय-वासउ । "हणु" भणंतु सइँ धाइउ केसउ ।

णरहरि तुरय-रहिण संचूरइ । मारइ दारइ मारइ जूरइ ।
धीरइ हक्कारइ पच्चारइ । हणइ वणइ विहुणइ विणिवारइ ।

दमइ रमइ परिभमइ पयट्टइ । सघट्टइ लोट्टइ आवट्टइ ।
सरइ धरइ अवहरइ ण संचइ । खंचइ कुचइ लुचइ वंचइ ।

उल्लालइ बालइ अप्फालइ । रुमइ दूसइ पीलइ हूलइ ।
ईहइ संखोहइ आवाहइ । रोहइ मोहइ जोहइ साहइ ।

अत ललतइँ गाढइँ ताडइ । रुड-मुड-खडोहइँ[1] पाडइ ।
वेढइ उव्वेढइ संदाणइ । रक्खइ भुक्खारीणइँ पीणइ ।

वग्गइ रगइ·णिग्गइ पविसइ । दलइ मलइ उल्ललइ ण दीसइ ।

घत्ता । कुस-पास-विलुचइ हय-वरहँ, गल-गिज्जउँ तोडइ गयवरहँ ।
वर-वीर रणंगणि पडिखलइ । मडलियहँ रयण-मउड दलइ ॥८॥

—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्धवंत वहुमच्छरो भडो । हत्थि-खभ-हत्थो महाभडो ।

चरण-चार-चालिय-धरायलो । धाइयो भुया-तुलिय-मयगलो ।
ना कयतेहि तेण दारुण । परियलंत-वण-रुहिर-सारुणं ।

मलिय-दलिय-पडिखलिय-संदण । णिविड-गय-घडा-वीढ-मद्दण ।
अरिदमणु पधायउ साहिमाणु । "हणु हणु" भणंतु कड़ढिवि किवाणु ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

संगाम-भेरीहिँ, ण पलयमारीहिँ । भुअणं गमंतीहिँ, गहिरं रमंतीहिँ ।

सण्णद्ध-कुद्धाइँ; उद्धुद्ध-चिंधाइं । उववद्ध-तोणाइँ, गुण-णिहिय-वाणाइँ
करि-चडिय-जोहाइँ, चल-चामरोहाइं । छत्तंधयाराइँ, पसरिय-वियाराइं ।

वाहिय-तुरंगाइँ, चोइय-मयंगाइँ । चल-धूलि-कविलाइँ, कप्पूर-धवलाइँ ।
मयणाहि-कसणाइँ, कय-वइरि-वसणाइँ । भड-दुण्णिवाराइँ, रह-दिण्ण-धाराइँ ।
रोसाव उण्णाइँ, चलियाइँ सेण्णाइँ । तिहुअण-रईसस्स, अतर-णरिन्दस्स ।

---

[1] टुकड़े-टुकड़े करता है

पौरुष-गुण-वीभावित-वासव। "हन" भनंत स्वं धायेँउ केशव।
नरहरि तुरग-रथेहिँ स-चूरै। सारै दारै मारै जूरै।
धीरै हक्कारै प्रच्-चारै। हनै वनै विधुनै विनिवारै।
दमै रमै परिभ्रमै-प्रवर्तै। संघट्टै लोटै आवर्त्तै।
सरै धरै अपहरै न संचै। खचै कुचै नोचै वंचै।
उल्लालै बालै आस्फालै। रूषै दूषै पीडै हूलै।
ईहै संक्षोभै आबाधै। रोधै मोहै जोधै साधै।
अत ललतै गाढेँ ताडै। रुंड-मुंड-खडोघेँ पाटै।
बेठै[1] उद्बेठै सदानै[2]। रक्खै भूखापीडिय प्रीणै।
वल्गै रगै निर्-गै प्रविशै। दलै मलै उल्ललै न दीसै।
घत्ता। कुशपाशउ नोचै हयवरहँ, गलगिज्जउँ तोडै गजवरहँ।
वरवीर-रणंगनेँ प्रतिस्खलै। मण्डलिकहँ रत्नमुकुट दलै ॥८॥
—उत्तरपुराण (पृ० १०८)

उद्-धावंत वहुमत्सरा भटा। हस्ति-खभ-हस्ता महाभटा।
चरन-चार-चालित-धरातला। धायऊ भुजा-तुलित-मदकला।
तो कृतान्तेँहिँ तेहि दारुणं। परिचलत-व्रण-रुधिर-सारुण।
मलिय दलिय प्रति-स्खलिय स्यदन। निविड-गजघटा-पीठ-मर्दनं।
अरिदमन प्रधायउ साभिमान। "हन हन" भनत काढे कृपाण।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ४७-४८)

सग्राम-भेरिहिँ जनु प्रलय-मारीहिँ। भुवनहँ ग्रसतीहिँ, गभिर-रसंतीहिँ।
सन्नद्ध-क्रुद्धाइँ उर्ध्वोर्ध्व चिन्हाइँ[3]। उपबद्ध-तूणाइँ, गुण-निहित-वाणाइँ।
करि-चढिय-योधाइँ चल-चामरोघाइँ। छत्रं-धकाराहिँ, प्रसरिय विकाराहिँ।
चालिय तुरंगाइँ, चोदिय मतंगाइँ। चूल-धूलि-कपिलाइँ, कर्पूर-धवलाइँ।
मृगनाभि-कृष्णाइँ, कृत-वैरि-वसनाइँ। भट-दुर्विवाराइँ, रथे दीय-धाराइँ।
रोषावपूर्णाइँ, चलिताइँ सेनाइँ। त्रिभुवन-रतीशाह, अन्तर-नरेन्दाह।

---

[1] घेरे [2] चढ़ाई करे [3] पताका

दुग्गावहारेण, जण-पाय-भारेण । धरणी'वि संचलइ, मंदरु'वि टलटलइ ।
जलणिहि'व, झलझलइ, विसहरुवि चलचलइ ।
जिगि-जिगिय खग्गाइँ, णिद्दलिय मग्गाइँ ।
समरेक्क-चित्ताइँ, गिरि-णयरु-पत्ताइँ । सुकयाइँ फलियाइँ, मित्ताइँ मिलियाइँ ।..
घत्ता । आयउ चडप-पजोउ, अरिवम्मु'वि सण्णज्झइ ।
धीय ण देइ महतु, बलवंतें सह जुज्झइ ॥५॥
सण्णज्झंतु भणइ भडु वच्चमि । अज्जु वइरि-सीसें रणु अच्चमि ।
कड्ढिवि अज्जु वइरि-वण-सोणिउ । बद्दहउ अमिवरें मेरउ[1] पाणिउ ।
कोवि भणइ उज्जुय-पय देप्पिणु । पिसुण-कव्वु पहु-पुरउ लुणेप्पिणु ।....
कोवि भणइ लइ सत्थइँ सिक्खिवउ । अज्जु वराणणें हउं रणें दिक्खिवउ ।.
कोवि भणइ खल वेसावाडउं[2] । खाउ अज्जु सिव हियउ महारउ ।
सामिहें केरउ रिणु आवग्गउ । कोवि भणइ मइं वट्टइ लग्गउ ।
खट्टा-मरणे काइँ करेसिमि । कोवि भणइ सर-सयणें मरेसमि ।
भड-मुह-मुक्क-हक्क-लल्लक्कइँ । भोसिय-मुक्क-मक्क-चदक्कहिँ ।
वज्ज-मुट्ठि-चूरिय-सीसक्कइँ । उर-यल-भरिय-फुरिय-चल-चक्कइँ ।
सुरकामिणि-यण-णयण-णिरिक्कइँ । विजयलच्छि-सुर-गणिय-मिरिक्कइँ ।...
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७८-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दावनु दंत करु करि धिवइँ । आलिगइ सव्वगइँ छिवइ ।
मणु रक्खइ मेलेप्पिणु दमइ । पुणु ढुक्कइ चउपासहिँ भमइ ।
स-रयण-वहु-रयण-विहूसणहु । अणुहरइ हत्थि कामिणि जणहु ।
चलु चतु-चरणंतरि पइसरइ । हक्कइ हुंकारइ णीसरइ ।
लंघइ आसंघइ कुंभयलु । पावइ पुच्छुप्पलु वच्छयलु ।
दस-दिसिहिँ 'वि हिडइ कुजरहु । पहु विज्जु-पुजु णं जलहरहु ।

---

[1] मेलउ [2] वेशवाट (नगरका प्रधान पथ)

दुर्गा-'पहारेहिँ, जन पाद-भारेहिँ । धरणीउ संचलै, मंदरहु टलटलै ।
जलनिधिउ झलझलै, विषधरउ चलचलै ।
जिगजिगिय खड्गाइँ, निर्दलिय मार्गाइँ ।
समर्-एक-चित्ताइँ गिरि-नगर प्राप्ताइँ । सुकृताइँ फलिताइँ मित्राइँ मिलिताइँ ।. .

घत्ता । आयउ चडप्रजोत. अरिवर्मउ सन्नद्धई ।
धीयाँ न देइ महंत, बलवतें सँग जुज्झई ॥५॥

"सन्नद्धहहु" भनंत भट वर्चौं । आज वैरि-शीशे रण अर्चौं ।
वाढबि आज वैरि-व्रण-शोणित । वाढहु असिवर मेरहु पाणिउ ।
कोइ भनै "ऋज्जुअ पद देइय । पिशुन-काव्य प्रभु-पुरब लुनेविय ।"
कोइ भनै "लेइ शस्त्रइँ मीखेउ । आज वरानने हौं रणें देखेंउ ।". . .
कोइ भनै "खल वेश्या-वाटउ । खाउ आज सोंइ हृदय हमारउ ।
स्वामिहिँ केरउ ऋण आवग्गउ" । कोइ भनै "मैं वाटे लग्गउ ।
खाटे मरने काइँ करीहौं" । कोइ भनै "शर-शयन मरीहौं ।". . . .
भट-मुँह मुच हाँक-ललकारइँ । भीषित शुक्र-शक्र-चंद्रार्कइँ ।
वज्र-मुष्टि चूरिय शीशक्कइँ । उर-तल भरिय फुरिय चल-चक्कइँ ।
सुर-कामिनि-जन-नयन-निरीक्षें । विजय-लक्ष्मि सुर गनिय पुलक्कैं[1] ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ७४-७५)

(६) हस्ति-युद्ध-क्रीड़ा

दाबंत दंत कर करि देवई । आलिगै सर्वागहँ छुवई ।
मन राखै मेलियई दमई । पुनि ढूकै चौपासे भ्रमई ।
स-रचन-वहुरतन-विभूषणहीं । अनुहरै हस्ति कामिनि जनहीं ।
चलु चतु-चरणातर पइसरई । हक्कै हुंकारै निःसरई ।
लंघै आसंघै कुम्भ-तलू । पावै पुच्छोत्पल-वक्षतलू ।
दशदिशहिँहु हिडै कुजरहू । प्रभु-विज्जु-पुज जनु जलधरहू ।

---

[1] मुस्कराये

णिम्महइ गहीर-सरेण सरु । रंगंतु धरेइ करेण करु ।
आकुचिय-तणु वंचण-कुसलु । अक्कमि'वि कमेण दसण-मुसलु ।
बलिणा बलेण णिब्बूढ-बलु । जुज्झेप्पिणु सुइरु महंत-बलु ।
—आदिपुराण (पृ० ३९)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

वणि-वाणिज्जारउ जाणियउँ । किसियरु हलधारउ भाणियउ ।....
सो सोत्तिउ जो ण दुट्ठु भणइ । सो सोत्तिउ जो णउ पसु हणइ ।
सो सोत्तिउ जो हियएण सुइ । सो सोत्तिउ जो परमत्थ-रुइ ।
सो सोत्तिउ जोँ ण माम गसइ । सो सोत्तिउ जो ण सुयणि भसइ ।
सो सोत्तिउ जो जणु पहि थवइ । सो सोत्तिउ जो सुतवें तवइ ।
सो सोत्तिउ जो मतहूँ णवइ । सो सोत्तिउ जो ण मिच्छु चवइ ।
सो सोत्तिउ जो ण मज्जु पियइ । सो सोत्तिउ जो वारइ कुगइ ।
सो सोत्तिउ जो जिण-देसियउ । पण्णा-सतिकिरियहिँ भूमियउ ।
घत्ता । जो तिल-कप्पासहँ दव्वविसेसहँ, हुणिवि देव गह पीणइ ।
पसु-जीव ण मारइ मारय वारइ, परु अप्पु'वि समु जाणइ ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ३०९-१०)

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहि जगह भयाउल अलिय-रासि । भइरउ-अहिणामि मव्वगासि ।
तहि भमइ भिक्ख अरु देइ सिक्ख । अणुगयहँ जणहँ कुल-मग्ग-दिक्ख ।
बहु-सिक्खहिँ सहियउ डंभधारि । घरि घरि हिंडइ हुंकारकारि ।
सिरि टोप्पी दिण्णर वण्ण-वण्ण । सा झंपवि संठिय दोण्णि कण्ण ।
अंगुल-दुतीस-परिमाणु दंडु । हत्थें उप्फालिवि गहइ चंडु ।
गलि जोग-वट्टु सज्जिउ विचित्तु । पाउडिय जुम्मु पइँ दिण्णु दित्तु ।

निर्मथै गँभीर स्वरेहिँ सरा। रंगंत धरेइ करेहिँ करा।
आकुंचित-तनु वंचन-कुशला। आक्रमेउ क्रमेँहिँ दशन-मुसला।
बलिना बलेन निर्व्यूढ-बला। जुज्झेबिउ स्वरै महंत-बला।

—आदिपुराण (पृ० ३६)

५—धार्मिक आचार

(१) श्रोत्रिय कौन ?

बनिय-बनिजारउ जानियऊँ। कृषिकर-हलधारउ भानियऊँ।
सो श्रोत्रिय जो न दुष्ट भनई। सो श्रोत्रिय जो ना पशु हनई।
सो श्रोत्रिय जो हृदयेहिँ शुची। सो श्रोत्रिय जो परमार्थ-रुची।
सो श्रोत्रिय जो न मास ग्रसई। सो श्रोत्रिय जो न सुजनेँ भषई।
सो श्रोत्रिय जो जन पथेँ थपई। सो श्रोत्रिय जो सुतपेँ तपई।
सो श्रोत्रिय जो सन्तहँ नमई। सो श्रोत्रिय जोँ न मिथ्य बोँलइ।
सो श्रोत्रिय जोँ न मद्य पिवइ। सो श्रोत्रिय जो वारै कुगती।
सो श्रोत्रिय जो जिन-देशितऊ। प्रज्ञा-सत्किरियहिँ भूषितऊ।
घत्ता। जो तिल-कप्पासेँ द्रव्य-विशेषेँ, हुतिय देव-ग्रह प्रीणई।
पशु-जीव न मारै मारत वारै, पर-आपन सम जानई ॥६॥

—उत्तरपुराण

(२) कापालिकोंका धर्म-कर्म

तहँ जगहँ भयाकुल अलिक-राशि। भैरव अभि-नामी सर्वग्रासि।
तहँ भ्रमै भिक्ष अरु देइ शिक्ष। अनुगतहँ **जनहँ** कुल-मार्ग-दीक्ष।
वहु-शिक्षहिँ सहितउं दंभधारि। घर-घर हिंडै हुंकार-कारि।
शिरेँ टोपी दीनेहु वर्ण-वर्ण। तहि झंपेँउ सं-ठिय दोउ कर्ण।
अंगुल-बत्तिस-परिमाण दंड। हाथे उत्फालिबि गहेँउ चंड।
गलेँ योगपट्ट साजेँउ विचित्र। पावडी-युग्म पद दियोँ दीप्त।

तड-तड-तड-तड-तडतडिय सिंगु । सिगग्गु छेवि किउ तेण चंगु ।

अप्पि अप्पहों माहप्पु दप्पु । अण-उंछिउ जंपइ थुणइ अप्पु ।
"महु पुरउ पमप्पिय जुय चयारि । हँउ जरइँ ण घिप्पमि कप्प-धारि ।

णल-णहुस-वेणु-मंधाय जेवि । महि भुजिवि अवरइँ गयइँ तेवि ।
मइँ दिट्ठ राम-रावण-भिडत । संगाम-रंगि णिमियर पडंत ।

मइँ दिट्ठु जुहिट्ठिलु बंधु-सहिउ । दुज्जोहणु ण करइ विण्हु[1]-कहिउ ।
हँउ चिरजीविउ मा करहु भंति । हँउ सयलहं लोयहं करमि संति ।

हँउ थभमि रविहि विमाण जंतु । चदस्स जोण्ह छायमि तुरंत ।
सव्वउ विज्जउ महु विप्फुरंति । वहु तंत-मंत अग्गइ सरंति ।'

पेसियउ महल्लउ गुण-वरिट्ठ । गउ तेण **भइरवाणंदु** दिट्ठु ।
"आएसु करेविणु" भणइ मंति । "तुह दंसणि रायहों होउ संति" ।

सिग्घउ गउ जहिं ठिउ णरवरिंदु । सह-मज्झि परिट्ठिउ ण उविंदु ।
दिट्ठउ जोईसरु णरवरेण । सीहासणु मेल्लिवि हासिरेण ।

संमुहु जाएविणु धरणि पडिउ । दडुव्व दंडपडिवाइ णडिउ ।
आसीसिउ णरवइ भइरवेण । "हँउ भइरव तुट्ठउ णियमणेण ।"

उच्चासणि वइसाविवि तुरंतु । सलहणहँ लग्गु तहों पइ पडंतु ।
"तुहुँ देव ! सिट्ठि-संहार-कारि । तुहुँ जोईसरु कुल-मग्ग-चारि ।

तुहुँ चिरजीविउ ज हुवउ किंपि । पयउहि जं होसइ कज्जु तंपि ।
तुहुँ महु उप्परि साणंद भाउ । वियरहि हो सामि महापसाउ ।"

घत्ता । जोईसरु मणि तुट्ठउ चिंतइ, "दुट्ठउ इंदिय-सुहु महु पुज्जइ ।
जं जं उद्देसमि त भुजेसमि 'आएसहु संपज्जइ ॥६॥

ता चवइ जोइ "महु सयल रिद्धि । विप्फुरइ खणंतरि विज्ज-सिद्धि ।
हउँ हरण-करण-कारण-समत्थु । हउँ पथडु धरायलि गुण--पसत्थु ।
जं जं तुहुँ मग्गहि किंपि वत्थु । तं त हउँ देमि महापयत्थु ।"

पप्फुल्ल वयणु ता चवइ राउ । "महु खेयरत्त करिवि हिय-छाउ ।"

---

[1] कृष्ण

तड़-तड़-तड़-तड़-तड़तड़िय शृंग । शृंगाग्र छेदि किउ तेन चंग ।

आपुहिँ आपन माहात्म्य-दर्प । अन-पूँछेँउ जल्पै स्तुवै आप ।
"मम सँमूहाँ बीतेँउ युग चतारि हौँ जरौँन, ठहरौँ कल्पधारि ।

नल-नहुष-वेणु-मंधात जोउ । महि भुजिय औरेउ गयउ सोउ ।
मैँ दीखु राम-रावण-भिडंत । संग्राम-रंगेँ निशिचर पड़त ।

मैँ दीखु युधिष्ठिर बंधु-सहित । दुर्योधन न करै विष्णु-कथित ।
हौँ चिरजीवी ना करहु भ्रांति । हौँ सकलहँ लोकहँ करौँ शांति ।

हौँ थाम्हौँ रविहि विमान-यत्र । चंद्रह ज्योत्स्ना छादौँ तुरत ।
सर्वा विद्या[1] मम विस्फुरंति । वहु तंत्र-मत्र आगे मरति ।". . . .

प्रेषेँऊ महल्लक गुण-गरिष्ट । गउ सोउ भैरवानंद दृष्ट ।
"आयसु करेबी" भनै मंत्रि । "तव दर्शनेँ राजह होइ शांति ।"

शीघ्रै गउ जहँ ठिउ नर-वरेन्द्र । सभ-माँझ बईठो जनु उपेन्द्र ।
दीखेँउ योगीश्वर नरवरहीँ । सिहासन मेलेँउ[2] रभसरहीँ ।

संमुख जाईय धरणि पडेँउ । दड व दड-प्रतिपात नटेँउ ।
आशीषेँउ नरपति भैरवेहिँ । "हौँ भैरव तुष्टउँ निज-मनेहिँ ।"

उच्चासनेँ वैसायो तुरंत । श्लाघहीँ लागु तहँ पद-पडत ।
"तुहँ देव ! सृष्टि-संहार-कारि । तुहुँ योगीश्वर **कुल**मार्ग-चारि ।

तुहुँ चिरजीवी जो हुओ किछुउ । प्रकटहु जो होइहि कार्य सोउ ।"
तुहुँ मम ऊपर सानंद भाव । विचरहु होँहु स्वामि-महाप्रसाद ।"

घत्ता । योगीश्वर मनेँ तुष्टउ चितै, दुष्टउ इंद्रियसुख मोँहिँ पूज्यइ ।
जो जोँ उदेसौ सोँ भोगेबौँ, आदेशहु संपद्यइ ॥६॥

तब बंदै योगि "मोहिँ सकल ऋद्धि । विस्फुरै क्षणंतरेँ विद्यॉसिद्धि ।
हौँ हरन-करन-कारन-समर्थ । हौँ प्रथित धरातलेँ गुण-प्रशस्त ।
जो जो तू माँगै कोइ वस्तु । सो सो हौ देउँ महापदार्थ ।"
प्रफुल्ल-वदन तब वदै राव । "मम खेचरत्व करब हिये छाव ।"

---

[1] **मंत्र-विद्या** [2] **छोडेँउ**

"तुइ खेयरत्तु[1] हउँ करमि वप्प ! परमोवएसु जइ णिव्वियप्प ।

भो भो णिव-कुल-कुवलय-मयक ! दुव्वार-वइरि-वारण असंक ।
मा णिसुणहि णिय-परिवार-वयणु । णिस्सके लब्भइ गयण-गमणु ।

जइ देवि पुज्ज आगमिण उत्त । जइ जुयल-जुयल जीवेहिँ जुत्त ।
णहयर थलयर जलयर अणेय । पसु-पक्खि-मिहुण बहु-वण्ण-भेय ।

जइ णर-मिहुणुल्लउ अवय-पुण्णु । देवी-मडउ तुहुँ करहि पुण्णु ।
तुह एम करतहो वलिविहाणु । हउँ तूस मित्तु चडियममाणु ।

ता तुज्झ होइ खेयग्गि-सत्ति । विज्जाहर सेविहिँ अतुल-सत्ति ।
तुह खग्गि वसइ जयसिरि सछाय । अमरत्तु होइ तह अजर काय ।".....
छेल-मिहुण-सूयरा । रोझ-हरिण-कुजरा ।

वाल-वसह-रासहा । मेस-महिस-रोसहा ।
घोड-करह-भल्लुया । सीह-सरह-गडया ।

वग्घ-समय-चित्तया । एवँ बहु-चउप्पया ।
कक-कुरर-मोरया । हस-वलय-चउरया ।

घूय-सरढ-काउला । कोडि - पूस - कोइला
कुम्म-मयर-गोहया । गाझ-झसय-रोहया ।

जीव सयल जाणिया । तीएँ पुरउ आणिया ।..
कडिवद्ध-चल-चीरिया-चिंध-जालाइँ । कर-धरिय-विप्फुरिय-कत्तिय-कवालाइँ ।

पायडिय-णिय-गुरुकमारूढ-लिगाइँ । कुल-घोसमय चम्म-पच्छाइ अंगाइँ ।
मुद्दा विसेसेण दूरं णमताइँ । पय-घग्घरोलीहिँ घव-घव-घवताइँ ।

कह-कह-कहंताइँ सवियार-वेसाइँ । मुक्कट्ठ हासाइँ झंपडिय-केसाइँ ।
जहिँ विविह-भेयाइँ कउलाइँ मिलियाइँ । कीलति ढड्ढरइँ अट्ठंग-वलियाइँ ।

जहिँ करड-पटहाइँ वज्जति वज्जाइँ । इट्ठाइँ मिट्ठाइँ पिज्जंति मज्जाइँ ।
छिज्जंति सीसाइँ णिवंडंति भीसाइँ । रस-वस-विमीसाइँ खज्जंति माँसाइँ ।

गिज्जंति गेयाइँ चामुड-चंडाइँ । गहिऊण तुंडेण रुंडस्स खंडाइँ ।

---

[1] आकाशगामिता

तोंहि खेचरत्व हौं करौं बाबु । परमोपदेश यदि निर्विकल्प ।
हे हे निजकुल-कुवलय-मृगांक । दुर्वार-वैरि-वारन-अशंक ।
मति सुनिहौ निज-परिवार-वचन । निःशंकें लब्भै गगन-गमन ।
यदि देवि पूजु आगमे उक्त । यदि युगल-युगल-जीवेहिं युक्त ।
नभचर-थलचर-जलचर अनेक । पशु-पक्षि-मिथुन वहु-वर्णभेद ।
यदि नर-मिथुनुल्लौ वयव'-पूर्ण । देवी-मंडप तुहुँ करहि पूर्ण ।
तुहुँ ऐस करंतह बलि-विधान । हौ तूष मित्र ! चंडी-समान ।
तब तोहिं होइ खेचरी-शक्ति । विद्याधर सेवहिं अतुल-शक्ति ।
तव खड्गें बसै जयश्री सछात् । अमरत्व होइ तिमि अजर-काय ।".....
छेरि-मिथुन-शूकरा । रोज'-हरिन-कुजरा ।
बाल-वृषभ-रासभा । मेष-महिष-रोसहा ।
घोड-करभ-भल्लुआ । सिह-शरभ-मैंडआ ।
बाघ-शशक-चित्तआ । एहि विध चतुष्पदा ।
कंक-कुरर-मोरआ । हंस-वलक-चतुरका ।
घूच-शरट-काउला । कोटि-पूस-कोइला ।
कूर्म-मकर-गोहआ । गाभ-भूषक-रोहआ ।
जीव सकल जानिया । तेहिं सँमुख आनिया ।...
कटिबद्ध-चल-चीरिया-चिन्ह-जालाइँ । कर धरिय विस्फुरित-कृत्तिक-कपालाइँ ।
प्राकटिय निज गुरु-क्रमारूढ लिगाइँ । कुल-घोष-मद-चर्म प्रच्छादि अंगाइँ ।
मुद्रा-विशेषेहिं दूरं नमंताइँ । पद-घर्घरोलीहिं घव-घव-घवंताइँ ।
कह-कह-कहंताइँ सविकार-वेषाइँ । मुक्त-'ट्टहासाइँ झंपडिय केशाइँ ।
जहँ विविध-भेदाइँ कौलाइँ मिलिताइँ । क्रीडंति ढड्ढरैं अष्टांग-बलियाइँ ।
जहँ करड-पटहाइँ बाजंति वाद्याइँ । इष्टाइँ मिष्टाइँ पीयंति मद्याइँ ।
छिद्यन्त शीशाइँ निपतंति भीषाइँ । रस-वश-विमिश्राइँ खाद्यंत मांसाइँ ।
गीयंत गीताइँ चामुड-चंडाइँ । गहियाउ तुडेहिं रुंडाइ खंडाइँ ।

---

[1] **घोडरोज (नीलगाय)**

दुप्पेच्छ-रत्तच्छ-विच्छोह-दाइणिउ । णच्चंति जोइणिउ साइणिउ डाइणिउ ।
पसु-रुहिर-जल-सित्त-पंगण-पएसम्मि । पसु-दीह-जीहा-दल'च्चण-विसेसम्मि ।
पसु-अट्ठि-कय-पिट्ठ-रंगावलिल्लम्मि । पसु-तेल्ल-पज्जलिय-दीवय-जुइल्लम्मि । . . .
——जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

दुवई । धूलीधूसरेण वर-मुक्क-सरेण तिणा मुरारिणा ।
कीला-रस-वसेण गोवालय-गोवी-हियय-हारिणा ।।
रंगंतेण रमत-रमंते । मथउ धरिउ भमतु अणते ।
मंदीरउ तोडिवि आ-वट्टिउं । अद्धविरोलिउं दहिउं पलोट्टिउं ।
कावि गोवि गोविदहु लग्गी । एण महारी मथणि भग्गी ।
एयहि मोल्लु देउ आलिगणु । णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु ।
काहि'वि गोविहि पंडुरु चेलउं । हरि-तणु तेएँ जायउं कालउं ।
मूढ जलेण काइं पक्खालइ । णिय-जडत्तु सहियहिं दक्खालइ ।
थण्णरसिच्छिरु छायावतउ । मायहिं ममुहुं परिधावतउ ।
महिस-सिलंवउ हरिणा-धरियउ । ण कर-णिबंधणाउ णीसरियउ ।
दोहउ दोहण-हत्थु समीरइ । मुइ मुइ माहव कीलिउं पूरइ ।
कत्थइ अगण-भवणा-लुद्धउ । वालवच्छु वालेण णिरुद्धउ ।
गुंजा-भेदुय-रइय-पओएं । मेल्लाविउ दुक्खेहिं जसोएं ।
कत्थइ लोणिय-पिंडु[1] णिरिक्खिउ । कण्हें कसहु ण जमु भक्खिउं ।
घत्ता । पसरिय-कर-यलेहिं सद्दणिहिं मुइ-मुहकारिणिहिं ।
भद्दिइ णियडि थिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिं ।।६।। . .
——उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] नवनीत-पिंड

दुष्प्रेक्ष्य-रक्ताक्ष-विच्छोभ-दायिनिउ । नाचंति योगिनिउ शाकिनिउ डाइनिउ ।
पशु-रुधिर-जल-सिक्त-प्रांगण-प्रदेशेहिँ । पशु-दीर्घजिह्वा-दलार्चन-विशेषेहिँ ।
पशु-अस्थि-कृत-पिष्ट-रगावलिल्लंहि । पशु-तैल-प्रज्वलित-दीपक-द्युतिल्लंहि ।...
—जसहर-चरिउ (पृ० ६-१३)

६—कृष्ण-लीला

(१) गोपियोंके साथ

द्विपदी । धूली-धूसरेहिँ वर-मुक्त-शरेहिँ तेँहि मुरारिहीँ ।
क्रीडा-रस-वशेहिँ गोपालक-गोपी-हृदय-हारिहीँ ॥
रगंतेहिँ रमंत-रमते । पंथअ धरिउ भ्रमत अनंते ।
मंदीरउ[1] तोडिय आ-वट्टिउँ । अर्ध-विलोनिय दधिय पलोट्टिउँ ।
कोउ गोपि गोविंदहँ लागी । "इनहिँ हमारी मंथनि भाँगी ।
एतहँ मोल देउ आलिगन । ना तो न आवहु मम आँगन ।"
कोइहु गोपिहि पाडुरु चोली । हरि तनु तेँही जायउ काली ।
मूढ जलेहिँ काइँ प्रक्षालै । निज-जडत्व सखियन देक्खावै ।
स्तन्य-रसि-स्थिर छायावंतउ । मातहिँ समुख परिधावतउ ।
महिष-शृगहू हरिहीँ धरियउ । न कर-निबंधनाउ नीसरियउ ।
दोहहु दोहन-हाथ समीरै । मुदि मुदि माधव क्रीडिउ पूरै ।
कतहूँ आँगन-भवन-लुब्धउ । बाल-वत्स वालेहिँ निरुद्धउ ।
गुजा-गुच्छक-रचित प्रयोगेँ । मेल्लाबिउ दुःखेहिँ यशोदेँ ।
कतहूँ नैनू-पिड निरेखेँउ । कृष्णेँ कंसहु जनु यश भक्षेउ ।
घत्ता । प्रसरित करतलेहिँ शब्दंतिहिँ शुचि-सुखकारिणिहीँ ।
भद्रिइ निकट स्त्री धरइ न लागै नारिहीँ ॥६॥
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-६५)

---

[1] मथानी

(२) पूतना-लीला

जाणिइ अरिवरि, ता तहिं अवसरि । कसाएसें, माया-वेसें ।
वल मायाविणि, धाइय जोइणि । वच्छर-वाउलु, गय तं गोउलु ।
जयसिरि-तण्हहु, णव-महु कण्हहु । पासि पवण्णी, भत्ति णिसण्णी ।
पभणइ **पूयण**, "हे महुसूयण । पिय-गरुडद्धय, आउ थणद्धय ।
दुद्ध-रसिल्लउ, पियहि थणुल्लउ[1]।" त आयण्णिवि, चगउ मण्णिवि ।
चुय-पय-पडुरि, वयणु पयोहरि । हरिणा णिहियउं, राहु गहियउं ।
ण ससि-मंडलु, सोहइ थणयलु । सुरहिय परिमलु, णं णीलुप्पलु ।
सिय-कलसुप्परि, विभिउ मणि हरि । कडुएं खीरें, जाणिय वीरें ।
"जणणि ण मेरी, विप्पियगारी । जीविय-हारिणि, रक्खसि वइरिणि ।
अज्जु'जि मारमि, पलउ समारमि ।" इय चितते, रोसु वहते ।
माण महंते, भिउडि करते । लच्छीकते, देवि अणते ।
दंतहिं पीडिय मुट्ठिइ ताडिय । दिट्ठिइ तज्जिय, थामें णिज्जिय ।
अणुवि ण मुक्की, णहहिं विलुक्की । खलहि रसंतहि, सुण्णु हसंतहि ।
भीमें वालें, कयकल्लोलें । लोहिउं सोसिउं, पलु आकरिसिउं ।
दाणव-सारी, भणइ भडारी । "हिय-रुहिरासव, मुइ मुइ केसव ।
णदाणंदण, मेल्लि जणद्दण । कंसु ण सेवमि, रोसुण दावमि ।
जहिं तुहुं अच्छहि, कील-समिच्छहि । तहिं णउ पइसमि, छलु ण गवेसमि ।"

घत्ता । इय रुयंति कलुणु कह , कहव गोविदें मुक्की ।
गय देवय कहिंमि, पणु णंद-णिवासि ण ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

दुवइ । वर-काहलिय-वंस-रव-वहिरए, गाइय गेय-रस-सए ।
रोमंथंत - थक्क - गो - महिसि - उल - सोहिय - पएसए ॥

---

[1] सुन कर

(२) पूतना-लीला

जानिय अरिवर, सो तेहि अवसर । कंसादेशें, मायावेषें ।
वल-मायाविनि, धाइय जोगिनि । वत्सर बावल, गउ सो गोकुल ।
जयश्री-तृष्णहें, नवमधु कृष्णहें । पास प्रवर्णी, झट्ट निषण्णी ।
प्रभनै पूतन, "हे मधुसूदन ! प्रिय गरुडध्वज, आउ थनध्वज ।
दूध-रसिल्लउ, पियहु स्तनुल्लउ ।" . . सो आकर्णिय, चगा मानिय ।
चुव-पय-पांडुर, वदन-पयोधर । हरिहीं निहितउ, राहुहि गहियउ ।
जनु शशि-मंडल, सोहै स्तनतल । सुरभित परिमल, जनु नीलोत्पल ।
सित-कलशोपरि, विस्मेउ मनें हरि । कडुये क्षीरें, जानिय वीरें ।
जननि न मेरी, विप्रियकारी । जीवित-हारिणि, राक्षसि वैरिणि ।
आजुहि मारौं, प्रलय समारौं ।" इमि चितंता, रोष वहंता ।
मान महंता, भृकुटि करता । लक्ष्मीकता, देव अनता ।
दाँतहिं पीडिय, मुट्ठिहिं ताडिय । दृष्टिइं तर्जिय, स्थामें[1] जीतिय ।
भनहु न मुक्की[2], नभहिं वि-लुक्की । खलहिं रसतहिं, शून्य हसंतहिं ।
भीमा बाला, किउ कल्लोला । लोहिउ शोषें उ, बल आकर्षें उ ।
दानव सारी, भनै भटारी । "हिय-रुधिरासव, मुइ मुइ केशव ।
नदानदन, छोडु जनार्दन । कंस न सेवौं, रोष न देवौं ।
जहें तुहें आछहि[3], क्रीडा-इच्छहि । तहें ना पइसौं, छल न गवेषौं ।"

घत्ता । इमि रोवति करुण कथ, कहब गोविदें मुक्की[4] ।
गइ देवत कहँहि, पुनि नंद-निवास न ढुक्की ॥६॥

(३) ओखल-बंधन

द्विपदी । वर-काहलिय-वंशि-रव-बधिरए, गाइय गीत-रस-सए ।
रोमंथंत थाक[5] गो-माहिषि-कुल-शोभित-प्रदेशए ॥

---

[1] बलसे [2] छूटी [3] रहो [4] छोड़ी [5] रहे

अण्णहिं पुणु दिणि, तहिं णिय-पंगणि । जण-मणहारी, रमइ मुरारी ।
घोट्टइ खीर, लोट्टइ णीरं । भंजइ कुभं, पेल्लइ डिंभं ।
छडइ महियं, चक्खइ दहियं । कड्ढइ चिच्चि, धरइ चलच्चि ।
इच्छइ केलि, करइ दुवालि । तहिं अवसरए, कीलाणिरए ।....
दुवइ । मरु-हय-महीरुहेहिं पहि चप्पिउ गद्दह-तुरय चूरिओ ।
अवरु उइहलम्मि पइँ बद्धउ जाणहुँ वाल् मारिओ ॥
धाइय तासु जसोय विसंठुल । कर-यल-जुयल-पिहिय-चल-थण-यल ।
बद्धउ उक्खलु मेल्लिवि घल्लिउ । महु जीविएण जियहि सिसु वोल्लिउ ।
फणि-णर-सुरहँमि अइ सइयउ । हरि-मुहि चुविवि कडियल लइयउ ।
किं खरेण किं तुरएँ दट्ठउ । मायइ सयलु अंगु परिमट्ठउँ ।.....

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गई

महुरापुरि घरि घरि वण्णिज्जइ । णद-गोट्ठि पत्थिवहु कहिज्जइ ।
तहु **देवइ** मायरि उक्कठिय । पुत्तसिणेहें खणु विणु सठिय ।
गो मुह-कूवउ महउ चउत्थी । लोयहु मिसु मडिवि वीसत्थी ।
चलिय णद-गोंउलि महुं णाहें । सहुं रोहिणि-सुएण चदाहें ।
घत्ता । मायइ महु-महणु वहु गोवहं मज्झि णिरिक्खिवउ ।
वय-परिवेठियउ कलहसु जेम ओलक्खिवउ ॥१३॥...
भायउ मिसु कीला-रय-रगिउ । हलहरेण दिट्ठिइ आलिगिउ ।
भुय-जुयलउँ पसरंतु णिरुद्धउँ । जायउँ हरिसे अगु मिणिद्धउँ ।
चितिवि तेण कंस-पेसुण्णउँ । आलिगणु देंतेण ण दिण्णउं ।
गाढ़-सिणेह-वसेण णवतइ । आणाविय रसोइ गुणवंतइ ।
गध-फुल्ल-दीवउँ सजोइउ । भोयणु मिट्ठउँ मायइ ढोइउँ ।
अल्लय-दल-दहि-ओल्लिय-कूरहिं । मंडय-पूरणेहिं घियपूर[1]हिं ।
णाणा-भक्ख-विसेसहिं जुत्तउँ । सरसु भावि भूणाहें भुत्तउँ ।....

---

[1] घेवर

अन्यहि पुनि दिन, तहँ निज प्रांगने । जन-मन-हारी, रमै मुरारी ।
घोट्टै क्षीरं, लोट्टै नीरं । भंगै कुभं, पेल्लै डिभं ।
छाडै महियं, चाखै दहियं । काढै चीं चीं, धरै चल-र्चि ।
इच्छै केलि, करै दुवारि । तेंहि अवसरए, क्रीडा निरते । . . .
द्विपदी । मरुहत-महिरुहेहिं पथि चाँपेउ गद्दह तुरग चूरिया ।
अवर ओखलिहिं नैं बाँधेउ, जानहु बाल मारिया ॥
धाइय ताहँ यशोद विसस्थुल[1] । करतल-युगल-ढाँकि चल-स्तनतल ।
"बाँधेंउ ओखलि मेल्लिय घालेंउ । मम जीवनहिं जियै शिशु" बोलेउ ।
फणि-नर-सुरहँहु अतिशय यउ । हरि-मुख चुबी कटितल लइयउ ।
की खरेंहिं की तुरगें देखेउ । मातइ सकल-अग परिमर्षेंउ । . . .

(४) देवकी पुत्र देखने नंद घर गईं

मथुरापुरि घर घर वर्णिज्जै । नंद-गोष्ठें पार्थिवहँ कहिज्जै ।
तहँ देवकि माता उत्कंठिय । पुत्र सिनेहें क्षण विनु सं-ठिय ।
गोमुख-कूप उत्सवइ चतुर्थी । लोकहँ मिस मंडिय विश्वस्ती ।
चलिय नंद-गोकुल-सँग नाथे । सँग रोहिणि-सुतेहिं चद्राभें ।
घत्ता । मायइ मधुमथन वहु गोपहँ माँझ निरेखियऊ ।
वत परिवेठियउ, कलहंस-जिमि ओलख्-खियऊ ॥१३॥
भाइय शिशु क्रीडा-रज-रगिउ । हलधरेहिं देखिय आलिगउ ।
भुज-युगलउ पसरत निरुद्धउ । जायउ हर्षे अंग सिनिग्धउ ।
चिंतिय सोइ कंस-पैशुन्यउँ । आलिगन देतऊ न दिन्नउँ ।
गाढ - सिनेह - वशेहिं नमंतै । ले आइय रसोइ गुणवंतै ।
गंध-फूल-दीपउँ संजोयउ । भोजन मिट्ठउँ मायें देयउ ।
अल्लयदल-दधि ओल्लिय गूडहिं । मंडा-पूरणेहिं घृतपूरहिं ।
नाना भक्ष्य-विशेषेहिं युक्तउ । सरस भावें भू-नाथें भुक्तउ ।

---

[1] अस्तव्यस्त

(५) गोवर्धन-धारण

जलु गलइ, झलझलइ । दरि भरइ, सरि सरइ ।
तडयडइ, तडि पडइ । गिरि फुडइ, सिहि णडइ ।
मरु चलइ, तरु घुलइ । जलु थलु'वि, गोउलु'वि ।
णिरु रसिउ, भय-तसिउ । थरहरइ, किरमरइ ।
जाव ताव, थिर भाव–। धीरेण, वीरेण ।
सर - लच्छि - जयलच्छि - तण्हेण, कल्लेण ।
सुर थुइण, भुय-जुइण । वित्थरिउ, उद्धरिउ ।
महिहरउ, दिहियरुउ । तम जडिउँ, पायडिउँ ।
महि-विवरु, फणि-णियरु । फुप्फुवइ, विसु मुयइ ।
परिघुलइ, चलवलइ । तरुणाँइ, हरिणाइँ ।
तट्ठाइँ, णट्ठाइँ । कायरइँ, वणयरइँ ।
हिसाल - चंडाल - चंडाइँ, कंडाइँ ।
तावसइँ, परवसइँ । दरियाइँ जरियाइँ ।

घत्ता । गो-वद्धण-परेण गो-गोमि-णिभारु व जोइउ ।
गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइयउ ॥१६॥

(६) कालिय-दमन

वइरि जसोयहि पुत्तु, इय कंसें मणि परिच्छिण्णउ ।
कमलाहरणु रउद्दु तें, णंदहु पेसणु दिण्णउँ ॥ ध्रुवकं ॥
सिहि-चुरुलि-भूउ, गउ राय-दूउ । तें भणिउ णंदु, मा होहि मंदु ।
जहिँ गरल-गाहि, णिवसइ महाहि । जउणा सरंतु, तं तुहुँ तुरंतु ।
जायवि जपेण, कय-जण-रवेण । आणहि वराइँ, इन्दीवराइँ ।
ता णंदु कणइ, सिर-कमलु धुणइ । जहिँ दीण-मरणु, तहिँ ढुक्कु[1] मरणु ।

---

[1] प्रविष्ट हुआ

(५) गोबर्धन-धारण

जल गलै झलझलै। दरि भरै, सरि सरै।
तड़तड़ै तडि पड़ै। गिरि फुटे शिखि नटै।
मरु चलै तरु घुरै। जल-थलहु, गोकुलहु।
अतिरसित भय-त्रसित। थरथरै किलमिलै।
जाव ताव स्थिर भाव, धीरेहिँ वीरेहिँ।
सर - लक्ष्मि - जयलक्ष्मि - तृष्णेहिँ कृष्णेहिँ।
सुर-स्तुतिहिँ भुजयुगहिँ, विस्तारेउ उद्धारेउ।
महिधरउ दिशिचरउ, तम जडेँउ प्राकटेँउ।
महि-विवर फणि-निकर, फुफ्फुवै विष मुचै।
परि-घुरैँ चलवलैँ, तरुणाइँ हरिनाइँ।
तत्-स्थाइँ नष्टाइँ, कातरइँ वनचरइँ।
पडियाइँ रडियाइँ, क्षिप्ताइँ त्यक्ताइँ। हिसाल-चडाल-चंडाइँ काँण्डाइँ।
तापसैँ परवशैँ, दारिताइँ जीर्णाइँ।

घत्ता। गो-बर्धन परेहि गो-गोपिणि[1] भार इव-जोयउ।
गिरि गोबर्धनउ गोवर्धनेहिँ ऊँचाइयउ ॥६॥

(६) कालिय-दमन

वैरि यशोदापुत्र, एँहु कंसह मनेँ परि-आइयउ।
कमलाहरण रउद्र तैँ, नंदह प्रेषण दीनेऊ ॥ ध्रुवक ॥
शिखि चुरुकि भूत, गउ राजदूत। सो भनेउ "नंद ! ना होहु मंद।
जहँ गरले-ग्राहि, निवसै महा'हि। जमुना सरंत तहँ तुहुँ तुरंत।
जायवि जवेहिँ कृत-जन-रवेहिँ। आनहि वराइँ इन्दीवराइँ।
तब नंद क्रँदै, शिरकमल धुनै। जहँ दीन शरण, तहँ ढुक्कु मरन।

---

[1] गोपाल

जहिँ राउ हणइ, अण्णाउ कुणइ । कि धरइ अण्णु, तहिँ विगय-मण्णु ।
हउँ काइँ करमि, लइ जामि मरमि । फणि सुट्ठु चडु, तं कमल-संडु ।
को करिण छिवइ, को झेँप घिवइ । धगधगधगंति, हुयवहि जलति ।
उप्पण्ण-सोय, कंदइ जसोय । "महु एक्कु पुत्तु, अहिमुहि णिहित्त ।
मा मरउ बालु, मइँ गिलउँ कालु ।" इय जा तसंति, दीहर मसति ।
पियरइँ रसति, ता विहिय संति । अलिकाय-कति, रणधीरु मति ।
पभणइ उविंदु[1], "णिहणवि फणिदु । णलिणाइँ हरमि, जलकील करमि ।"

घत्ता । इय भाणिवि कण्हु सप्पाइउ जउणा सरवरु ।
उब्भड-फड-वियडगु यम-पासु वाव धाइउ विसहरु ॥१॥

ण कंस-कोव-हुयवहहु धूमु । ण णइ-तरुणी-कडि-सुत्त-दाम ।
ण ताहि जि केरउ जल-तरगु । ण कालमेहु दीही कयगु ।
सिय-दाढा-विज्जुलियहिँ फुरतु । चल-जमल-जीहु विस-लव मुयतु ।
हरि सउहुँ फडंगुलि रयण णक्खु । पसरिउ जमेण करु घाय-दक्खु ।
णं दड-दाणु सर-सिरिइ मुक्कु । गइ-वेयउ कण्हहु पासि ढुक्कु ।
फणि फुप्फुयंतु चल जुज्झ-लोलु । ण तिमिरहु मिलियउ तिमिर-लोलु ।
दीसइ हरि दहि भसलउल-कालु । णं अजण-गिरिवरि णव-तमालु ।
तणु-कति-पर्रज्जिय-घण-तमासु । णक्खइँ फुरति पुरिसोत्तमासु ।
सिरि माणिक्कइँ विसहर-वरासु । दीसंतइँ देति 'व देहणासु ।
तबेहिँ कुसुम-मणि-यरहिँ तंबु । णं सरि वेल्लिहि पल्लउ पलंबु ।
अहि घुलिउ अंगि महुसूयणासु । ण कत्थूरी-रेहा-विलासु ।

घत्ता । विसहर-घोलिर-देहु, सरि भमंतु रेहइ हरि ।
कच्छालंकिउ तुंगु, णं मयमत्तउ दिस-करि ॥२॥....

---

[1] विष्णु, कृष्ण

जहँ राव हनै, अन्याय करै। की धरै अन्य तहँ विगत-मन्यु।
हौं काहँ करौं, लेहँ जाउँ मरौं। फणि अतिव चंड, सो कमल-षंड।
को करेंहिं छुवै, को झंप देंवै। धगधगधगंत हुतवह ज्वलंत।
उत्पन्न-शोक क्रंदै यशोद। "मम एकपुत्र अहिमुख नि-क्षिप्त।
ना मरउ बाल, मैं गिरौं काल।" इमि त्रसंति दीरघ श्वसति।
पियरहिँ रसंति तो विहित-शांति। अलिकाय-काति रणधीर मंति।
प्रभनै उपेन्द्र निहनब फणीद्र। नलिनाइँ हरौं, जलक्रीड करौं।

घत्ता। इमि भनिय कृष्ण (तहँ) गयऊ यमुना-सरिवर।
उद्भट-फण-विकटांग यमपाश इव धायेंउ विषधर ॥१॥

जनु कंस-कोप-हुतवहह धूम। जनु नदि-तरुणी-कटि-सूत्रदाम।
जनु ताहिय केरउ जलतरंग। जनु कालमेघ दीर्घीकृतरांग।
सित-दाढा विज्जुलियहिँ फुरत। चल-यम-जीभ विषलव मुचंत।
हरि सँमुहँ फणांगुलि-रतन-नक्ख। पसरेंउ जमहीं कर घात-दक्ष।
जनु दंडदान सर-श्रीहि मुक्क। जा वेगहिँ कृष्णहँ पास ढुक्क।
फण फुफ्फुवंत चल युद्धलोल। जनु तिमिरहँ मिलियौ तिमिर लोल।
दीसै हरि तहँ भसल[1]-कुल-काल। जनु अजन-गिरिवरें नवत-माल।
तनु-काति-पराजिय घन-त मास। नक्खैं फुरंति पुरुषोत्तमास . . .।
शिर माणिक्यहिँ विषधर-वराहँ। दीसतै देति'व देह-नाश।
ताम्रेहिँ कुसुम-मणि-करहिँ ताम्र। जनु सरें वेल्लिहि प्रलंब।
अहि घूरेंउ अंग मधुसूदनाहँ। जनु कस्तूरी-रोवा-विलास।

घत्ता। विषधर-घोलिर देह, शिर भ्रमंत राजै हरि।
कक्षालंकृत तुंग-जनु मदमत्तउ दिश-करि ॥२॥ . . . .

---

[1] भ्रमर

(७) कृष्ण-महिमा

कण्हेण समाणउ कोवि पुत्तु । सजणउ जणणि विद्दविय-सत्तु ।
दुर्धर-भर-रण-धुर-दिण्ण-खधु । उद्धरिय जेण णिवडंत वंधु ।
भंजिवि नियलइँ गय-वर-गईह । सहुं माणिणीइ पोमावईह ।
कइवय दियहहिँ रइ-कीलिरीहिं । बोल्लाविउ पहु गोवालिणीहिं ।

७-कविका संदेश

"संगुत्तउँ पइँ माहव सुहिल्लु । कालिदितीरि मेरउँ कडिल्लु ।
एवहिँ महुरा-कामिणिहिँ रत्तु । महुं उप्परि दीसहि अथिर चित्तु ।"
क'वि भणइ "दहिउ मथंतियाइ । तुहुँ मइं धरियउ उब्भंतियाइ ।
लवणीय-लित्तु करु तुज्झ लग्गु । क'वि भणइ पलोयइ मज्झु मग्गु ।
"तुहुँ णिसि णारायण सुयहिँ णाहिँ । आलिंगिउ अवरहिँ गोवियाहिँ ।
सो सुयरहि कि ण पउण्ण-वंधु । सकेय-कुडगुट्टीणु रिच्छु ।"
घत्ता । कावि भणइ "णामतु उद्धरिवि खीर-भिगारउ ।
कि वीसरियउ अज्जु ज मइं सित्तु भडारउ ॥१०॥
इय गोवी-यण-वयणाइं सुणतु । कीलइ परमेसरु दरहसंतु ।
सभासिउ मेल्लिवि गव्व-भाउ । "इह जम्महु महुँ तुहुँ ताय ताउ ।
परिपालिउ थण-थण्णेण[1] जाइ । वीसरमि ण खणु मि जसोय माइ ।.....
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(१) गरीबी

वक्कल-णिवसणु कंदर-मंदिरु । वण-हल-भोयणु वर त सुदरु ।
वर दालिद्दु सरीरहु दडणु । णउ पुरिसह अहिमाण-विहंडणु ।
पर-पय-रय-धूसर किकर-सरि । अमुहाविणि णं पाउस-सिरि-हरि ।
णिव-पडिहार-दंड-संघट्टणु । को विसहइ केरण उर-लोट्टणु ।

---

[1] स्तन्य=दूध

(७) कृष्ण-महिमा

कृष्णहिँ समानो कोइ पुत्र । संजनेँउ जननि विद्रविय शत्रु ।
दुर्धर-भर-रणधुर दीनु खध । उद्धरिय जेहिँ निपतन बधु ।
भजवि नियरैँ गजवर-गईह । सँम्मननीहि पद्मावतीह ।
कतिपय-दिवसैँ रति क्रीडिरीहिँ । वोलावेड प्रभु गोपालिनीहि ।

७–कविका संदेश

"-मगुप्तउ तैँ माधव सुहिल्ल । कालदि तीरेँ मेरउ करिल्ल[1] ।
अब्बहिँ मथुरा कामिनिहिँ रक्त । मम ऊपर दीसै अथिर-चित्त ।"
कोँइ भनै "दही मथतियाई । तुहुँ मोहिँ धरियउ उद्भ्रतियाइ ।
नवनीत-लिप्त कर तोहिँ लाग ।" कोँइ भनै विलोकै मध्य मार्ग ।
"तुहुँ निशि नारायण सुतहि नाहिँ । आलिगेँउ अपरहिँ गोपियाहिँ ।
सो-सुकरहि की न प्रद्युम्न-वधु । सकेत-कुडग[2]-उड्डीन रिच्छ[3] ।
घत्ता । कोइ भनै "नाशत उद्धरिव क्षीर-भृंगारउ ।
की विसरियउ आज, जो मैँ सिचु भटारउ[4] ॥१०॥
एहु गोपीजन वचनइँ सुनंत । क्रीडै परमेश्वर दर हसंत ।
संभाषेँउ मेलिय गर्वभाव । "ऍहि जन्महुँ मम तव ताप नाउ ।
परिपालेँउ स्तन-स्तन्येहिँ जाहि । विसरौँ न क्षणहुँ यशोद माइ ।". . . .
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(७) गरीबी

वल्कल निवसन कंदर मदिर । वन-फल भोजन वर सो सुदर ।
वर दारिद्र शरीरह दडन । नहिँ पुरुषह अभिमान-विखडन ।
परपद-रज-धूसर-किकर-सर । अ-सोँहावनि जनु पावस-श्री-धर ।
नृप-प्रतिहार-दंड-सघट्टन । को विसहै करेहिँ उर-लोट्टन ।

---

[1] उत्सव उत्कर्ष [2] एक खेल [3] कल्लोलना [4] भट्टारक

को जोयइ मुँहु भूभगालउ। कि हरिसिउ कि रोसें कालउ।
पहु आसण्णु लहइ धिट्ठत्तणु। पविरल-दसणु णिण्णेहत्तणु।
मोणें जडु भडु खंतिइ कायरु। अज्जवु वसु पंडियउ पलाविरु।
—उत्तरपुराण (पृ० २६७-६८)

(२) नीति-वचन

जो रसंतु वरिसइ सो णव-घणु। ज वंकउँ दीसइ तं सुरधणु।
जो गिरि दलइ चलइ साविज्जुल। चचरीय-चुविय कोमलदल।
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वट्टं बहिरे गीयं। ऊसर-छेत्ते बबिय बीयं।
संढे[1] लग्गं तरुणि-कडक्खं। लवण-विहीण विविह भक्ख।
अण्णॉणें तिब्बं तव चरण। बल-सामत्थ-विहीणे सरणं।
असमाहिल्ले सल्लेहणयं। णिद्धण-मणुए णव-जोव्वणय।
णिब्भोइल्ले[2] संचिय-दविण। णिण्णेहे वर-माणिणि-रमणं।
अविय अपत्ते दिण्ण दाणं। मोह-रयधे धम्म-क्खाण।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहइ जलहरु सुर-धणु-छायएँ। सोहइ णर-वरु सच्चएँ वायएँ।
सोहइ कइ-यणु कहएँ सुबद्धएँ। सोहइ साहउ विज्जएँ सिद्धएँ।
सोहइ मुणि-वरिंदु मण-सुद्धिएँ। सोहइ महि-वइ णिम्मल-बुद्धिएँ।
सोहइ मंति मंतविहि दिट्ठिएँ। सोहइ किकरु असि-वर-लट्ठिएँ।
सोहइ पाउसु सास-समिद्धएँ। सोहइ विहउ स-परियण-रिद्धिएँ।
सोहइ माणुसु गुण-संपत्तिएँ। सोहइ कज्जारंभु समत्तिएँ।
सोहइ महिरुह कुसुमिय-साहए। सोहइ सुहडु सुपारिस-राहएँ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] नपुंसक [2] कंजूस

को जोवै मुख भ्रूभंगलऊ । की हर्षेउ की रोषे कालउ ।
प्रभु आसन्न लहै धृष्टत्त्वन । प्रविरल दर्शन निःस्नेहत्वन ।
मौने जड भट क्षंतिइँ कायर । आर्जव पशु पडितउ पलायिर ।
—उत्तरपुराण (पृ० ६४-८६)

(२) नीति-वचन

जो रसंत बरिसइ सो नवघन । जो वकउ दीसै सो सुरधनु ।
जो गिरि दलै चलै सो विज्जुल । चंचरीक-चुवित कोमल-दल ।. .
—आदिपुराण (पृ० ३०)

अंधे वाटउ बहिरे गीत । ऊसर खेत्ते बीजव बीज ।
षंढे लग्गा तरुणि-कटाक्ष । लवण-विहीना विविधा भक्ष ।
अज्ञाने तीव्रं तपचरनं । वल-सामर्थ्य-विहीने शरणं ।
असमाधिल्ले सल्लेखनय[1] । निर्धनमनुजे नवयौवनय ।
निर्भोगिल्ले सचित-द्रविणं । निर्नेहे वर-मानिनि-रमण ।
अपि अपात्रे दिन्न दान । मोह-रजांधे धर्माख्यान ।
—जसहर-चरिउ (पृ० १६)

(३) सोहै

सोहै जलधर सुरधनु-छायएँ । सोहै नरवर साँचहि वाचएँ ।
सोहै कवि-जन कथइ सुबद्धइ । सोहै साधक विद्यहिँ सिद्धए ।
सोहै मुनिवरेन्द्र मन-शुद्धिएँ । सोहै महिपति निर्मल-बुद्धिएँ ।
सोहै मंत्रि मंत्रविधि दृष्टिएँ । सोहै किकर असिवर-लट्ठिएँ ।
सोहै पावस सस्य-समृद्धिएँ । सोहै विभव स्वपरिजन-ऋद्धिएँ ।
सोहै मानुष गुण-संपत्तिएँ । सोहै कार्यारंभ समाप्तिएँ ।
सोहै महिरुह कुसुमित-शाखैँ । सोहै सुभट सु-पौरुष-राधएँ ।
—आदिपुराण (पृ० ४०७)

---

[1] भूखे मरना

(४) दर्शन-वेदान्त

"कि खण-विणासि किं णिच्चु एक्कु । कि देहत्थुवि कम्मेण मुक्क ।
कि णिच्चेयणु चेयण-सरूउ । किं चउभूयहँ संजोय-भूउ ।
कि णिग्गुणु णिक्कलु णिव्वियारि । कि कम्महँ कारउ कि अकारि ।
ईसर-वेसण कि रय-वसेण । संसरइ देव ! संसारिकेण ।
परमाणु-मेत्तु किं सव्वगामि । अप्पउ कहेँउ भणु भुवण-सामि ।"
. . . . . । "जइ[1] खण-विणासि अप्पउ णिरुत्त ।
तो कि जाणइ णिहियउँ णिहाणु । वरिसहँ सएवि णिहिदव्वठाणु ।
णिच्चहु किर कहिं उप्पत्ति मच्चु । जंपइ जणु रइ-लंपडु, असच्चु ।
जइ एक्कु जि तइ को भग्गि सोक्खु । अणुहुंजइ णरइ महंतु दुक्ख ।
जइ भूय-वियारु भणंति भाउ । तो फिर कि लब्भइ मइ-विहाव ।
णिक्किरियहु कहिं करणइँ हवंति । कहि पयइ-बंधु जुत्ति'वि थवंति ।
जइ सिव-वसु हिंडइ भूय-सत्थु । तो कम्म-कडु सयलु'वि णिरत्थु ।
घत्ता । जइ अणुमेत्तउ जीवो एहउ । तो सज्जीवउ किह करि देहउ ॥७॥
—उत्तरपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

माणुस-सरीरु दुह-पोट्टलउ । धायेउ धायेउ अइ-विट्टलउ ।
वामिउ वामिउ णउ सुरहि मलु । पोसिउ पोसिउ णउ धरइ बलु ।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ । मोसिउ मोसिउ धरभायणउ ।
भूमिउ भूसिउ ण सुहावणउ । मंडिउ मंडिउ भीसावणउ ।
बोल्लिउ बोल्लिउ दुक्खावणउ । चच्चिउ चच्चिउ चिलिसावणउ ।
मंतिउ मंतिउ मरणहो तणइ । दिक्खिउ दिक्खिउ साहहुँ भसइ ।
सिक्खिउ सिक्खिउ 'वि ण गुणि रमइ । दुक्खिउ दुक्खिउ 'वि ण उवसमइ ।
वारिउ वारिउ 'वि पाउ करइ । पेरिउ पेरिउ 'वि ण धम्मि चरइ ।

---

[1] बौद्ध दर्शनके क्षणिकवादकी आलोचना

(४) दर्शन-वेदान्त

"की' क्षण-विनाशि की नित्य एक । की देहस्थउ कर्मेहिं मुक्त ।
की निश्चेतन चेतन-स्वरूप । की चतु-भूतहँ संयोग-भूत ।
की निर्गुण निष्कल निर्विकार । की कर्महँ कारक की अ-कार ।
ईश्वर-वसेहिं की रज-वशेहिं । संसरै देव ! संसारिकेहिं ।
परमाणु-मात्र की सर्वगामि । आत्मा कहेँउ, भनु भुवन-स्वामि ?"
. . . . . । "यदि क्षण-विनाशि आत्मा कहिय ।
तो की जानै निहितउँ निधान । वर्षह शतेउ निधि द्रव्य थान ।
नित्यहु फुर कहँ उत्पत्ति-मृत्यु । जल्पै यदि रज-लंपट असत्त्य ।
यदि एकै ता को सर्गे सौख्य । अनुभोगै नरकें महंत दुःख ।
यदि भूत-विकार भनंत भाव । तो फुर की लब्भै मति-विभाव ।
निष्क्रियहू कहँ करणेहि[1] भवंति । कहँ प्रजावंधु युक्तिउ थपंति ।
यदि शिव-वश हिडै भूत-सत्त्य । तो कर्मकाड सकलहु निरर्थ ।
घत्ता । यदि अणुमात्रे जीव एहौ । तो सज्जीवउ कहँ करें देहौ ॥७॥

—आदिपुराण (पृ० १२७)

(५) काया नरक

मानुष-शरीर दुख-पोट्टलऊ । धोयो धोयो अति विट्टलऊ[2] ।
वासेँउ वासेँउ ना सुरभि मलू । पोसेँउ पोसेँउ ना धरै बलू ।
तोषेउ तोषेउ ना आपनऊ । मोषेँउ मोषेँउ धर भायनऊ ।
भूषेउ भूषेउ न सोँहावनऊ । मंडेउ मंडेउ भीषावनऊ ।
बोलेँउ बोलेँउ दुःखावनऊ । चर्चेँउ चर्चेँउ चिरियावनऊ ।
मंत्रेँउ मत्रेँउ मरणहँ भसई । दीक्षेँउ दीक्षेँउ साधुहिं भषई ।
शिक्षेँउ शिक्षेँउ न गुणे रमई । दुःखेँउ दुःखेँउ ना उपशमई ।
वारेँउ वारेँउ हू पाप करै । प्रेरेँउ प्रेरेँउ हु न धर्म चरै ।

---

[1] क्या [2] उपचार [3] मलिन

अब्भंगिउ[1] अब्भंगिउ फरिसु । रुक्खिउ रुक्खिउ आमइ-सरिसु ।
मलियउँ मलियउँ वाएँ घुलइ । सिंचिउ सिंचिउ पित्ति जलइ ।
सोसिउ सोसिउ सिंभि गलइ । पच्छिउ पच्छिउ कुट्ठहँ मिलइ ।
चम्मे बद्धु 'वि कालि सडइ । रक्खिउ रक्खिउ जममुहि पडइ ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतेउरु अंतेउरु हणइ । खय-कालहो आयहो कि कुणइ ।
सण्णाहु-कय तहो किं करइ । छत्तें छायहु कि उवयरइ ।
णउ कहिँ मि मरण-दिणें उव्वरइ । चमराणिलु सासाणिलु धरइ ।
सुहु राय-पट्ट-बंधे वसइ । कि आउ-णिबंधणु णउ ल्हसई ।
ण रहेहिँ रहिज्जइ जमहु वहु । किं मणुयहँ लग्गउ रज्जगहु ।
होइवि जाइवि सहसत्ति किह । रायत्तणु सभाराउ जिह ।
—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बाहिल्ल ते मिल्ल ते मूअ ते लल्ल । ते पंगु ते कुट बहिरंध ते मंट ।
ते काण काणीण धण-हीण ते दीण । दुहरीण बल-खीण ।
णिक्काम णिद्धाम णिच्छाम णिण्णाम । णित्तेय णिप्पाण चंडाल ते पाण ।
ते डोंब कल्लाल मच्छंधि णीवाल । दाढाल ते कोल ते सीह-सद्दूल ।
ते सिंगि वियराल ते णह-पहराल । ते पक्खि पिंछाल ।
ते सप्प रत्तच्छ मसासिणो मच्छ । छिंधणइँ रुंधणइँ बंधणइँ वंचणइँ ।
लुचणइँ खंचणइँ कुचणइँ लुट्टणइँ । कुट्टणइँ घट्टणइँ वट्टणइँ ।
पउलणइँ पीलणइँ हूलणइँ चालणइँ । तलणाइँ दलणाइँ मलणाइँ गिलणाइँ ।
निरएसु णरएसु मणुएसु रुक्खेसु । दुक्खाइँ भुजति मग्गं कहं जति ।
—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] मालिश

अभ्यंगेंउ अभ्यंगेंउ परुषा । रोकेंउ रोकेंउ आम्रइ-सरिसा ।

मलियेंउँ मलियेंउँ वातें घुलई । सिंचेंउ सिंचेंउ पित्तें जलई ।
शोषेंउ शोषेंउ श्लेष्महिँ गलई । पाछेंउ पाछेंउ कुष्टहँ मिलई ।

चर्मे बद्धउ काले सड़ई । रक्षिय रक्षिय यम-मुखें पड़ई ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३०-३१)

(६) संसार तुच्छ

अंतःपुर अतः उर हनई । क्षय-कालह आयउ की करई ।

सन्नाहकृत तहु की करई । छत्ते छायउ की उपकरई ।
ना कतहुँ मरन-दिन ऊबरइ । चमरानिल श्वासानिल धरइ ।

सुख राजपट्ट-बधे वसई । की आयु निबंधन ना ह्रसई ।
न रथेहिँ रहिज्जै यमहुँ वहू । की मनुजहँ लागउ राज्य-ग्रहू ।

होइव जाइव सहसाहि किमि । राजत्वन सध्याराग-जिमि ।

—णायकुमार-चरिउ (पृ० ६०)

(७) भाग्य और पूर्वकर्मवाद

बहेल्ल[1] ते भिल्ल ते मूक सो लल्ल[2] । ते पगु ते कुट वधिर अंध ते मंट ।

ते कानाँ कनीन धन-हीन ते दीन । दुखरीन बलहीन ।
निकाम निधाम नि-छाम नि-नाम । नि-तेज नि-प्राण चँडाल ते प्राण ।

ते डोम कलाल मछंधि नि-वाल[3] । दढाल तें कोल ते सींह-शदूल ।
ते शृँगी विकराल ते नभ-पधराल । ते पक्षि पिछाल ।

ते सर्प रक्ताक्ष मांसाशिन माच्छ । छिन्दनें रुंधनें वंधनें वंचनें ।
लुचनें खंचनें कुंचनें लुट्टनें । कुट्टनें घट्टनें वट्टनें ।

प्रोलनें पीडनें हूलनें चालनें । तलनाइँ दलनाइँ मलनाइँ गिलनाइँ ।
तिर्यकेनारके मनुजे औ वृक्षे । दुःखाइँ भुंजंति स्वर्ग कहाँ जांति ।

—जसहर-चरिउ (पृ० ३४)

---

[1] बहेलिया [2] लोलुप, सतृष्ण [3] मच्छीमार बच्चे

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु[1] द्वीप

घत्ता । णिच्चु जि उच्छवु णिच्च दिहि, णिच्चु जि तणु तारुण्णु णवल्लउ ।
भोय - भूमिरुह - माणुसहँ, ज जं दीसइ त त भल्लउ ।

ण दुज्जणु दूसिय सज्जण-वासु । ण खासु ण सोसु ण रोसु ण दोसु ।
ण छिक ण जिंभणु णालसु दिट्ठ । ण णिद्द ण णेत्त-णिमीलणु सुट्ठ ।

ण रत्ति ण वासरु धनु ण घम्मु । ण इट्ठ-विओउ ण कुच्छिय कम्म ।
अयालि ण मच्चु ण चिंतु ण दीणु । कयाइ कहिपि सरीरु ण झीणु ।

पुरीस-विसग्गु ण मुत्त-पवाहु । ण लालु ण सिंभु ण पित्ति वि डाहु ।
ण रोउ ण सोउ ण सेउ विसाउ । **किलेसु ण दासु ण कोइवि राउ** ।

सुरूव सुलक्खण माणव दिव्व । अगव्व सुभव्व **समाण जि सव्व** ।
सुहाउ विणीसउ सासु सुयधु । कलेवरि वज्ज समट्ठिय-बधु ।

ति-पल्ल-पमाणु थिराउ-णिबंधु । करीसर केसरि तेविहु बधु ।
ण चोरु ण मारि ण घोरु वसग्गु । अहो कुरु-भूमि निससइ सग्गु ।

—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

(कलिकाल-सर्वज्ञ रत्नाकरशान्ति) । काल—१००० ई०
(विग्रहपाल-महीपाल ९६०–८८–१०३८) ।

(रहस्यवाद)

(राग रामक्री)

सअ-सवेअण-सरूअ विआरें अलक्ख लक्ख ण जाइ ।
जे जे उजुवाटे गेला[2] अण्ण वाटे भइला सोइ ।।

---

[1] आर्योंका पूर्वनिवास [2] मैथिली

(८) साम्यवादी उत्तर-कुरु द्वीप

घत्ता । नित्यहिँ उत्सव नित्य देहि, नित्यहि तनु तारुण्य नवल्ल ।
भोग-भूमि रुह मानुषहँ, जो जो दीसै सो सो भल्ल ।
न दुर्जन-दूषित सज्जन-वास । न खाँस न शोष न रोष न दोष ।
न छीँक न जम्भा न आलस दृष्ट । न निद्र न नेत्र निमीलन सुष्ट ।
न राति न वासर धंद न घाम । न इष्ट-वियोग न कुक्षिय काम ।
भयासि न मृत्यु न चित न दीन । कदापि कहेँहु शरीर न झीन[1] ।
पुरीष-विसर्ग न मूत्रप्रवाह । न लाल न श्लेष्म न पित्तह डाह ।
न रोग न शोक न सेतु विषाद । **किलेश न दाश न कोउह राज** ।
सुरूप सुलक्षण **मान दिव्य** । अगर्व सुभव्य **समानहिँ सर्व** ।
मुखाह विनीमै श्वास सुगध । कलेवरे वज्र समस्थिय बध ।
त्रिपल्ल प्रमाण थिराय-निबध । करीश्वर केसरि तेहुअउ बंधु ।
न चोर न मार न घोर उपसर्ग[2] । अहो कुरु भूमि निसंशय स्वर्ग ।
—उत्तरपुराण (पृ० ४०६-१०)

§ २१. शान्तिपा

देश—मगध । कुल—ब्राह्मण, भिक्षु, सिद्ध (१२), राजगुरु ।
कृति—सुखदुःखद्वय-परित्यागदृष्टि ।

(रहस्यवाद)

(१५—राग रामक्री)

स्वसंवेदन स्वरूप विचारे । अलख लख्यो ना जाई ।
जो जो ऋजुवाटे गइला, अन्यवाटे भइला सोई ॥

---

[1] क्षीण [2] उपद्रव, खुराफात

काअरूअ ण बुज्झिअ मूढहि उजुवाट ससारा।
(महुअरेहि एक्क अन्न राजहि कणकधारा।)
माआ मोह समुद्द अन्त बुज्झसि ताहा।
आगे णाव नभेला दीसइ भन्ति न पुच्छसि णाहा॥
सूनापान्तर ऊह न दीसइ, भान्ति न वासने जान्ते।
एषा अट्ठ महासिज्झि सिज्झइ उजुवाटे जाअन्ते॥
वाम दाहिण दो बाटा छाडी **शान्ति** बोलथेउ सकेलिउ।
घाट ण शुक्क खडतडि ण होइ आँखें बुज्झिअ वाट जाइउ॥१५॥

(२६—राग शबरी)

तुला धुणि धुणि अंशूहि अंशू। अशू धुणि धुणि णिरवर सेसू।
तउ से हेतुअ ण पाविअइ। **शान्ति** भणइ कि स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुण्णे आहारिउ। पुण लइअ अप्पण चटारिउ।
वहल वढ! दुइ भाग ण दीशअ। **शान्ति** भणइ वालग्ग ण पइसइ।
काज ण कारण ण एहु जुत्ती। सअ-संवेअण बोलथि[1] **सान्ती**॥२६॥
—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

काल १०००। देश—राजस्थान (?)। कुल—जैन साधु। कृतियाँ—

(१) ज्ञान-समाधि

जो जाया झाणग्गिएँ, कम्म-कलक डहेवि।
णिच्च-णिरंजण-णाणमय ते परमप्प णवेवि॥१॥
ते हउँ वंदउँ सिद्ध-गण, अच्छहिँ जे वि हवंत।
परम-समाहि-महग्गियएँ, कम्मि-धणइँ हुणंत॥३॥

---

[1] मगही क्रियापद

कायरूप ना बूझै मूढहिँ ऋजु वाटा संसारा ।
मधु-करहिं एक भक्ष्य , राजहिं कनकधारा ।।
मायामोह समुद्रहि अन्त न बूझसि थाहा ।
आगे (न) नाव नभेला दीसै, भ्रान्तिहिँ पूछसि न नाथा ।।
शून्य-प्रान्तर ऊह न दीसै भ्रान्ति न वासने जाये ।
एही अष्ट महासिद्धि सिद्धै, ऋजुवाटेहीँ जाये ।।
बायँ दहिन दो बाट छाडी शान्ति बोलेउ संकेरिय ।
घाटे न शुल्क खरतरी न होइ , आँखि बुयझिबाट जाइय ।।१५।।

(२६—राग शबरी)

तुला धुनि धुनि रेशहि रेशा । धुनि धुनि निरवर शेषू ।
तउ सो हेतु न पाइयइ । शान्ति भनै की सो भवियइ ।
तुल धुनि धुनि शून्ये धारेउ । पुनि लेइय आपन चट्टारिउ ।
बहुत मूढ़ ! दुइ भाग न दीसै । शान्ति भनै बालाग्र न पइसै ।
कार्य न कारण न एहु जुगती । स्वक-संवेदन बोलै शान्ती ।।२६।।

—चर्यापद

§ २२. योगीन्दु (जोइंदु)

परमात्म-प्रकाश दोहा, योगसार-दोहा[1]।

(१) ज्ञान-समाधि

जे जायेँउ ध्यानाग्नियेहिँ, कर्म-कलक डहाइ ।
नित्य-निरंजन-ज्ञानमय, ते परमात्म नमामि ।।१।।
तिन हौँ वन्दौ सिद्धगण, रहेँ जोउ होवन्त ।
परम-समाधि महाग्नियेहिँ, कर्मेन्धनहिँ होमन्त ।।३।।

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित (श्री रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला १०, बम्बई १९३०)

भावि पणविवि पंचगुरु, सिरि-**जोइंदु**-जिणाउ ।
भट्टपहायरि विण्णविउ, विमलु करे विणु भाउ ॥८॥
गउ संसारि वसंतहँ, सामिय काल अणतु ।
पर मइँ किंपि ण पत्तु सुहु, दुक्खुजि पत्तु महंतु ॥९॥

(२) अलख निरंजन

तिहुयण-वंदिउ सिद्धि-गउ, हरि-हर झायहिँ जोजि ।
लक्ख, अलक्खेँ धरिवि थिरु, मुणि परमप्पउ सोजि ॥१६॥
णिच्चु णिरंजणु णाणमउ, परमाणंद-सहाउ ।
जो एहउ सो सतु सिउ, तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥
जो णिय-भाउ ण परिहरइ, जो पर-भाउ ण लेइ ।
जाणइ सयलुवि णिच्चु पर, सो सिउ संतु हवेइ ॥१८॥
जासु ण वण्णु ण गंधु रसु, जासु ण सद्दु ण फासु ।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि, णाउ णिरंजणु तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ, जासु ण माय ण माणु ।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय, सोजि णिरंजणु जाणु ॥२०॥
अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु, अत्थि ण हरिसु विमाउ ।
अत्थि ण एक्कुवि दोसु जसु, सोजि णिरंजणु भाउ ॥२१॥
जासु ण धारणु धेउ णवि, जासु ण जंतु ण मंतु ।
जासु ण मइलु मुद्द णवि, सो मुणि देउँ अणतु ॥२२॥

(३) आत्मा

हँउ गोरउ हँउ सामलउ, हँजि विभिण्णउ वण्णु ।
हँउ तणु-अंगउं थूलु हउँ, एहउँ मूढउ मण्णु ॥८०॥
हँउ वरु बंभणु वइसु हँउ, हँउ खत्तिउ हँउ सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि हउँ, मण्णइ मूढु विसेसु ॥८१॥
अप्पा गोरउ किण्हु णवि, अप्पा रत्त ण होइ ।
अप्पा सुहुमु वि थूलु णवि, णाणिउ जाणेँ जोइ ॥८६॥

भावहिँ प्रणवों पंचगुरु, श्री **योगीन्दु** जिनाव।
भट्टप्रभाकर वीनवेँउ, निर्मल करिके भाव ॥८॥
गयउ संसार वसंतहीँ, स्वामी काल अनन्त।
पर मै किछु पायउँ न सुख, दुःखइ पायउँ महन्त ॥९॥

(२) अलख-निरंजन

त्रिभुवन-वंदित सिद्धिगत, हरि-हर ध्यावे जेहि।
लक्ष्य अलक्ष्ये धरिबि थिर, मुनि परमात्मा सोइ ॥१६॥
नित्य निरंजन ज्ञानमय, परमानंद स्वभाव।
जो ऐसो सो शान्त शिव, तासु मनिज्जै भाव ॥१७॥
जो निज भाव न परिहरै, जो परभाव न लेइ।
जानै सकलउ नित्य पर, सो शिव शान्त हवेइ ॥१८॥
जासु न वर्ण न गंध रस, जासु न शब्द न स्पर्श।
जासु न जन्म न मरणहु, नाम निरजन तासु ॥१९॥
जासु न क्रोध न मोह मद, जासु न माय न मान।
जासु न थान न ध्यान जिय, सोइ निरंजन जान ॥२०॥
अहै न पुण्य न पाप जसु, अहै न हर्ष विषाद।
अहै न एकहु दोष जसु, सोइ निरंजन भाव ॥२१॥
जासु न धारण ध्येय नहिँ, जासु न यंत्र न मंत्र।
जासु न मडल मुद्र नहिँ, सो माँनु देव अनन्त ॥२२॥

(३) आत्मा

हौँ गोरो हौँ सामलो, हौँ हि विभिन्नउ वर्ण।
हौँ तनु-अंगौ स्थूल हौँ, ऐसो मूढै मन्व ॥८०॥
हौँ वर-ब्राह्मण वैश्य हौँ, हौँ क्षत्रिय हौँ शेष।
पुरुष नपुसक इस्त्रि हौँ, मानै मूढ विशेष ॥८१॥
आत्मा गोरा कृष्ण नहि, आत्मा रक्त न होइ।
आत्मा सूक्ष्महु स्थूल नहिँ, ज्ञानी ज्ञाने जोइ ॥८६॥

अप्पा पंडिउ मुक्खु णवि, णवि ईसरु णवि णीसु ।
तरुणउ बूढउ बालु णवि, अण्णुवि कम्म-विसेसु ॥९१॥

पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु, धम्माधम्मु वि काउ ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि, मेल्लिवि चेयण-भाउ ॥९२॥

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि ।
अण्णुजि देउ म चिंति तुहुँ, अप्पा विमलु मएवि ॥९५॥

अप्पा णिय-मण णिम्मलउ, णियमे वसइ ण जासु ।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु, मुक्खुवि करहिँ कि तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

दुट्ठें तुट्टंति लहु, कम्मइँ पुव्व कियाइँ ।
सो परु जाणहि जोइया, देहि वसंतु ण काइँ ॥२७॥

देहा-देवलि जो वसइ, देउ अणाइ-अणंतु ।
केवल णाण-फुरंत-तणु, सो परमप्पु णिभंतु ॥३३॥

देहें वसंतुवि णवि छिवइ, णियमें देहुवि जोजि ।
देहें छिप्पइ जोवि णवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥३४॥

जसु अब्भंतरि जगु वसइ, जग-अब्भंतरि जोजि ।
जगिजि वसंतुवि जगु जिणवि, मुणि परमप्पउ सोजि ॥४१॥

जसु परमत्थें बंधु णवि, जोइय णवि संसारु ।
सो परमप्पउ जाणि तुहुं, मणि मिल्लिवि ववहारु ॥४६॥

णवि उप्पज्जइ णवि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया, जिणवरु एउँ भणेइ ॥६८॥

छिज्जउ भिज्जउ जाउ खउ, जोइय एहु सरीरु ।
अप्पा भावहि णिम्मलउ, जिं पावहि भवतीरु ॥७२॥

जोइय अप्पें जाणिएँण, जगु जाणियउ हवेइ ।
अप्पहँ केरइ भावडइ, बिबिउ जेण वसेइ ॥९९॥

आत्मा पंडित मूर्ख नहिँ, नहि ईश्वर न अनीश ।
तरुण वूढ बालहु नही, अन्यहु कर्मविशेष ॥९१॥

पुण्यउ पापउ काल नभ, धर्माधर्महु काय ।
एकहु आत्मा होइ नहिँ, छडि ऍक चेतनभाव ॥९२॥

अन्यहि तीर्थ न जाहि जिय, अन्यहिँ गुरुहिँ न सेव ।
अन्यहिँ देव न चिंत तुहुँ, छाँडि एक विमलात्माहिँ ॥९५॥

आत्मा निजमन निर्मले, नियमेहिँ वसै न जासु ।
शास्त्र-पुराणहु तप-चरण, मोक्ष कि करिहै तासु ॥९८॥

(४) परमात्म-तत्त्व

जेहि देखे टूटैँ तुरत, कर्मा पूर्वकृताइँ ।
सो **पर** जानहि जोगिया, देह वसंत कि नाहिँ ॥२७॥

देह-देवले जो वसै, देव अनादि अनन्त ।
केवल ज्ञान-फुरंत-तनु, स परमात्म निर्भ्रान्त ॥३३॥

देह वसंतहु नहि छुवै, नियमेहिँ देहेँ जोइ ।
देहे छिप्यो जोइ नहिँ , माँनु परमात्मा सोइ ॥३४॥

जासु भीतरे जग वसै, जगत्-भीतरे जोइ ।
जगहिँ वसतहु जग जोँ नहिँ, माँनु परमात्मा सोइ ॥४१॥

जसु परमार्थे वंध नहिँ, जोगी ! नहिँ संसार ।
तहि परमात्मा जान तुम, मन छाडी व्यवहार ॥४६॥

नहि उपजै नाही मरै, बंध न मोक्ष करेइ ।
जिउ परमार्थे जोगिया, जिनवर ऐस भनंति ॥६८॥

छीजहु भीजहु जाहु क्षय, जोगी एहु शरीर ।
आपा भावै निर्मलहिँ, जेहिँ पावे भवतीर ॥७२॥

जोगी ! आपा जानिये, जग जानियत हवेइ ।
आत्मा केरी भावनहि, विंवित येन वसेइ ॥९९॥

अप्पु पयासइ अप्पु परु, जिम अंबरि रवि-राउ ।
जोइय एत्थु म भंति करि, एहउ वत्थु-सहाव ॥१०१॥
तारा-यणु जलि बिंबियउ, णिम्मलि दीसइ जेम ।
अप्पएँ णिम्मलि बिवियउ, लोयालोउ 'वि तेम ॥१०२॥
सो पर बुच्चइ लोउ परु, जसु मइ तित्थु वसेइ ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँजि, णियमेँ जेण हवेइ ॥१११॥
जहिँ मइ तहिँ गइ जीव तुहुँ, मरणु वि जेण लहेहि ।
तेँ परबभु मुए वि मँह, मा पर-दब्बि करेहि ॥११२॥
जइ णिविसद्धुवि कुवि करइ, परमप्पइ अणुराउ ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठगिरि, डहइ असेसु'वि पाउ ॥११८॥

(५) निरंजन-योग

मेल्लिवि सयल अवक्खडी, जिय णिच्चिंतउ होइ ।
चित्तु णिवेसहि परमपएँ, देउ णिरंजणु जोइ ॥११५॥
जोइय णिय-मणि णिम्मलएँ, पर दीसइ सिउ संतु ।
अवरि णिम्मलि घण-रहिएँ, भाणु जिजेम फुरंतु ॥११६॥
जसु हरिणच्छी हियवउएँ, तसु णवि बभु वियारि ।
एक्कहि केम समंति वढ, वे खंडा पडियारि ॥१२१॥
णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ, णिवसइ देउ अणाइ ।
हंसा सरवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाइ ॥१२२॥
देउ ण देउलेँ णवि सिलएँ, णवि लिप्पइ णवि चित्ति ।
अखउ णिरजणु णाणमउ, सिउ संठिउ सम-चित्ति ॥१२३॥
हरि-हर बंभुवि जिणवरवि, मुणि-वर-विदवि भव्व ।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खुजि झायहिँ सब्ब ॥१३१॥
मुत्ति-विहूणउ णाणमउ, परमाणंदु-सहाउ ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि, णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१४१॥
जो णवि मण्णइ जीउ समु, पुण्णवि पाउवि दोइ ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय, मोहहिँ हिंडइ लोइ ॥१७८॥

आत्म प्रकाशै आत्म पर, जिमि अंबरे रवि-राग ।
जोगी ! इहाँ न भ्रान्ति करु, एही वस्तु-स्वभाव ॥१०१॥
तारागण जलें बिंबित, निर्मल दीसै जेमि ।
आत्महिं निर्मल बिंबितं, लोकालोकउ तेमि ॥१०२॥
सो पर कहियत लोक पर, जसु मति तहाँ वसेइ ।
जहें मति तहें गति जीव की, नियमें हि क्यों कि हवेइ ॥१११॥
जहँ मति तहँ गति जीव तुहुँ, मरणउ क्योंकि लभेइ ।
ता परब्रह्महिं छाडि जनि, मति परद्रव्य करेइ ॥११२॥
यदि निमिषार्द्धउ कोंइ करै, परमात्महिं अनुराग ।
अग्नि कणी जिमि काठें गिरि, डहें अशेषहिं पाप ॥११४॥

(५) निरंजन-योग

मेली सकल अपेक्षडी, जिव निश्चिन्ता होइ ।
चित्त निवेशै परमपदें, देव निरंजन जोइ ॥११५॥
जोगी ! निजमन निर्मले, पर दीसै शिव शान्त ।
अंबरें निर्मल घनरहित, भानू जेमि फुरन्त ॥११६॥
जसु हरिणाक्षी हृदयमे, तासु न ब्रह्म विचार ।
एकहिं मूढ ! समाप किमि, दो खड्गा प्रतिकारि ॥१२१॥
निजमन निर्मलें ज्ञानि के, निवसै देव अनादि ।
हंसा सरवर लीन जिमि, मोहिं ऐसहि प्रतिभाति ॥१२२॥
देव न देवलें नहि शिलहिं, नहि लेप्य नहि चित्र ।
अक्षय निरंजन ज्ञानमय, शिव समचित्ते थित्त ॥१२३॥
हरि-हर ब्रह्महु जिनवरहु, मुनिवर वृन्दहु-भव्य ।
परम-निरंजनें मन धरी, मोक्षहि ध्यावें सर्व ॥१३१॥
मुत्तिविहीना ज्ञानमय, परमानद स्वभाव ।
नियमेहिं जोगी ! आप मनु, नित्य निरंजन भाव ॥१४१॥
जो नहिं मानै जीव सम, पुण्यहु पापहुँ दोय ।
सो चिर दुःख सहंत जिव, मोहेहिं हिंडै लोक ॥१७८॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देवहँ सत्थहँ मुणिवरहँ, भत्तिएँ पुण्णु हवेइ ।
कम्म-क्खउ पुणि होइ णवि, अज्जउ सति भणेइ ॥१८४॥

देउ णिरंजणु इँउ भणइ, णाणि मुक्खु ण भति ।
णाणविहीणा जीवडा, चिरु ससारु भमंति ॥१९६॥

सत्थ पढतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२०६॥

तित्थइँ तित्थु भमन्तहँ, मूढहँ मोक्खु ण होइ ।
णाण-विवज्जिउ जेण जिय, मुणिवरु होइ ण सोइ ॥२०८॥

चेल्ला-चेल्ली-पुत्थियहिँ, तूसइ मूढु णिभतु ।
एयहिँ लज्जइ णाणियउ, बधहँ हेउ मुणतु ॥२११॥

भल्लाहँवि णासंति गुण, जहँ संसग्ग खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, तें पिट्टियइ घणेहिँ ॥२३३॥

रूवि पयगा सद्दि मय, गय फासहि णासति ।
अलि-उल गधहिँ मच्छ रसि, किम अणुरांउ करंति ॥२३५॥

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु ।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इंधणु होसइ सव्वु ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पँचहँ णायकु वसि करहु, जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरहँ, अवसइँ सुक्कहिँ पण्ण ॥२६३॥

मुण्णउँ पउँ झायंतहँ, वलि वलि जोइय जाहँ ।
समरसि-भाउ परेण सहु, पुण्णुवि पाउ ण जाहँ ॥२८२॥

उब्बस बसिय जो करइ, वसिया करइ जु सुण्ण ।
वलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ, जासु ण पाउ ण पुण्ण ॥२८३॥

(६) पंथ-पोथी-पत्राकी निंदा

देव-शास्त्र-मुनिवरन की, भक्तिहिँ पुण्य हवेइ ।
कर्मक्षय पुनि होइ नहिँ, आरज शान्ति भनेइ ॥१८४॥

देव निरंजन योँ भनै, ज्ञानेहि मोक्ष न भ्रान्ति ।
ज्ञानविहीना जीवडा, चिर संसार भ्रमंति ॥१९६॥

शास्त्र पढतौ होइ जड, जो न हनेइ विकल्प ।
देह वसंतउ निर्मलउ, नहि मानै परमात्म ॥२०६॥

तीर्थहिँ तीर्थ भ्रमन्तकहिँ, मूढहिँ मोक्ष न होइ ।
ज्ञानविवर्जित जो कि जिव, मुनिवर होइ न सोइ ॥२०८॥

चेला-चेली-पोथियहिँ, तूषै मूढ निभ्रान्त ।
एतहिँ लज्जै ज्ञानियउ, वंधन हेतु बुझन्त ॥२११॥

भलन केरहू नशैँ गुण, जहँ संसर्ग खलेहिँ ।
वैश्वानर लोहहिँ मिल्लेउ, तेहि पिट्टियइ घनेहिँ ॥२३३॥

रूपेँ पतंगा शब्देँ मृग, गज स्पर्शे नाशंति ।
अलिकुल गन्धे, मत्स्य रसेँ, किमि अनुराग करंति ॥२३५॥

देवल देवउ शास्त्र गुरु, तीर्थहु वेदहु काव्य ।
वृक्ष जोँ दीसै कुसुमित, इंधन होइहै सर्व ॥२५३॥

(७) शून्य-ध्यान

पंच नायकन वश करहु, जेन होहिँ वश अन्य ।
मूल विनष्टे तरुवरहि, अवशि सूखिहै पर्ण ॥२६३॥

शून्य पदहिँ ध्यायन्तहँ, बलि बलि जोगिय जावँ ।
समरसभाव परेन सहँ, पुण्य पाप ना जाहि ॥२८२॥

उवसा वसिया जो करै, वसिया करै जोँ शून्य ।
वलि जाऊँ तेहि जोगियहिँ, जासु न पाप न पुण्य ॥२८३॥

णास-विणिग्गउ सौंसडा, अंवरि जेत्थु विलाइ ।
तुट्टइ मोह तडत्ति तहिं, मणु अत्थवणहँ जाइ ॥२८५॥
मोहु विलिज्जइ मणु मरइ, तुट्टइ सासु-णिसासु ।
केवल-णाणु वि परिणमइ, अवरि जाहँ णिवासु ॥२८६॥
घोरु करंतु'वि तव-चरण, सयल'वि सत्थ मुणंतु ।
परम-समाहि विवज्जियउ, णवि देक्खइ सिउ संतु ॥३१४॥
जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बभुवि बुद्ध ।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्ध ॥३२३॥
—परमात्मप्रकाश[1]

(८) योग-भावना

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसयाहँ ।
अप्पा-सबोहण-कयउ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥
णिम्मलु णिक्कलु सुद्ध जिणु, विण्हु बुद्धु सिव संतु ।
सो परमप्पा जिण भणिउ, एहउ जाणि णिभंतु ॥९॥
जो परमप्पा सो जि हउँ, जो हउँ सो परमप्पु ।
इउ जाणे विणु जोइया, अण्णु म करहु वियप्पु ॥२२॥
जाव ण भवहि जीव तुहुँ, णिम्मल अप्प-सहाउ ।
ताव ण लब्भइ सिव-गमणु, जहिं भावइ तहि जाउ ॥२७॥
मूढा देवलि देउ णवि, णवि सिलि लिप्पइ चित्ति ।
देहा देवलि देउ जिणु, सो बुज्झहि समचित्ति ॥४४॥
धम्मु ण पढियइँ होइ, धम्मु ण पोत्था-पिच्छियइँ ।
धम्मु ण मढिय-पएसि, धम्मु ण मत्थालुंचियइँ ॥४७॥
जेहउ मण विसयहँ रमइ, तिमि जइ अप्प मुणेइ ।
जोइ भणइ हो जोइयहु, लहु णिव्वाणु लहेइ ॥५०॥

---

[1] ए० एन्० उपाध्ये सम्पादित रायचंद्र जैन-शास्त्र-माला, बम्बई १९३७ ई०

नासहिँ निकस्या साँसडा[1], अंवर जहाँ विलाइ ।
टूटै मोह तुरत तहँ, मन अस्तमने जाइ ॥२८५॥
मोह विलाये मन मरै, टूटै श्वास-निश्वास ।
केवल ज्ञानहु परिणमै, अंवर जासु निवास ॥२८६॥
घोर करन्ते तपचरण, सकलहु शास्त्र जानन्त ।
परम समाधि विर्वाजत, नहि देखै शिव-शान्त ॥३१४॥
जो परमात्मा परम-पद, हरि-हर-ब्रह्मा-बुद्ध ।
परमप्रकाश भनति मुनि, सो जिन-देव विशुद्ध ॥३२३॥
—परमात्मप्रकाश

(८) योग-भावना

ससारहँ भयभीत जे, मोक्ष लालसा जाहि ।
आत्मा-संबोधन कियउ, दोहा एकमनाहि ॥३॥
निर्मल निष्कल शुद्ध जिन, विष्णु बुद्ध शिव शान्त ।
सो परमात्मा जिन भन्यो, एहउ जानु निभ्रान्त ॥९॥
जो परमात्मा सोइ हौं, जो हौं सो परमात्म ।
एह जाने विनु जोगिया, अन्य न करहु विकल्प ॥२२॥
जौ न भावै जीव तुहुँ, निर्मल आत्मस्वभाव ।
तौ न लहै शिवगमनहिँ, जहँ भावै तहँ जाव ॥२७॥
मूढ ! देवले देव नहिँ, शिलहिँ लेप्य नहि चित्रे ।
देह देवले देव जिन, सो बूझै समचित्त ॥४४॥
धर्म न पढिया होइ, धर्म न पोथा पिच्छियहिँ ।
धर्म न मठप्रवेश, धर्म न माथा-लुचियहिँ ॥४७॥
जैसे मन विषयहिँ रमै, तिमि यदि आत्म लगेइ ।
योगि भनै हे योगियो, तुरत निबाण लहेइ ॥५०॥

---

[1] श्वास

णासग्गिं अब्भिन्तरहँ, जे जोवहिं असरीरु ।
बहुडि[1] जम्मि ण संभवहिँ, पिवहिँ ण जणणी-खीरु ॥६०॥

जो जिण सो हउँ सोजि हँउ, एहउ भाउ णिभंतु ।
मोक्खहँ कारण जोइया, अण्णु ण तंतु ण मतु ॥७५॥

जो सम-सुक्ख-णिलीणु वहु, पुण पुण अप्पु मुणेइ ।
कम्मक्खउ करि सोवि फुडु, लहु णिब्बाणु लहेइ ॥९३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो सिउसंकरु विण्हु सो, सो रुद्दु वि सो बुद्ध ।
सो जिणु ईसरु बभु सो, सो अणंतु सो सिद्धु ॥१०५॥

एवँहि लक्खण-लक्खियउ, जो पर णिक्कलु देउ ।
देहहँ मज्झहिँ सो वसइ, तासु ण विज्जइ भेउ ॥१०६॥

—योगसार

§ २३. रामसिंह

काल—१००० ई० (?) । देश—राजपूताना (?) । कुल—जैन साधु ।

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

अप्पायत्तउ जोजि सुहु, तेण जि करि सतोसु ।
पर सुह वढ़ ! चिंतंतहं, हियइ ण फिट्टइ सोसु ॥२॥

जं सुहु विसय परंमुहउ, णिय अप्पा झायंतु ।
तं सुहु इंदु वि णउक लहइ, देविहिँ कोडि रमंतु ॥३॥

घर वासउ मा जाणि जिय, दुक्किय वासुउ ऐहु ।
पासु कपंते मंडियउ, अविचल णवि संदेहु ॥१२॥

---

[1] फिर

नासाग्रे अभ्यन्तरहिँ, जे जावै अशरीर।
बहुरि जन्म ना सभवै, पिवै न जननी-क्षीर ॥६०॥
जो जिन सो हौँ सोइहौं, एही भाव निभ्रान्त।
मोक्षइँ कारण जोगिया, अन्य न तंत्र न मंत्र ॥७५॥
जो शम-सुक्ख-निलीन वहु, पुनि पुनि आत्म मनेइ।
कर्मक्षय करि सोइ फुर, तुरत निवाण लहेइ ॥९३॥

(९) सभी देव सम्माननीय

सो शिव-शकर विष्णु सो, सो रुद्रउ सो बुद्ध।
सो जिन ईश्वर ब्रह्म सो, सो अनंत-सो सिद्ध ॥१०५॥
एसे लक्षण-लक्षितउ, जो पर निष्कल देव।
देह-मध्यही सो वसै, तासु नहीँ है भेद ॥१०६॥
—योगसार

§ २३. रामसिंह

कृति—पाहुड-दोहा[1]

(१) जग तुच्छ (वैराग्य)

आत्मायत्तउ जोहि सुख, तेनहि करु सन्तोष।
पर सुख चिन्तत मूढ़ रे, हृदय न छूटइ सोच ॥२॥
जो सुख विषय-पराङ्मुख, निज आत्मा ध्यायन्त।
जो सुख इन्दुहु ना लहइ, देवन् कोटि रमन्त ॥३॥
घरवास हु न जानु जिय, दुष्कृत-वासहु एहु।
पाश कृतांतेहि फेंकियउ, अविचल नहि संदेह ॥१२॥

---

[1] करंजा जैन-ग्रंथमाला, करंजा (वरार)

सप्पि मुक्की कंचुलिय, जं विसु तं ण मुएइ ।
भोय न भाउ न परिहरइ, लिंगग्गहणु करेइ ॥१५॥

अथिरेण थिरा मइलेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारा ।
काएण जा विढप्पइ सा किरिया किण कायव्वा ॥१६॥

वर विसु विसहरु वरु जलणु, वरु सोविउ वणवासु ।
णउ जिणधम्म-परम्मुहउ मित्थत्तिय सहवासु ॥२०॥

हंउ गोरउं हउ सामलउ हउ मि विभिण्णउ वण्णि ।
हउँ तणु-अगउ थूलु हउँ एहउ जीव म मण्णि ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वण्ण-विहूणउ णाणमउ, जो भावइ सब्भाउ ।
सतु णिरजणु सो जि सिउ तहि किज्जइ अणुराउ ॥३८॥

उपलाणहि जोइय करहुलउ, दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखइ णिरामइं गयउ, मणु सो किम बुहु जगिरइ करइ ॥४२॥

पंच वलद्दण रक्खियइं, णदणवणु ण गओसि ।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु'वि, एमइ पव्व इओसि ॥४४॥

पंचहि वाहिरु णेहडउ, हलि सहि लग्गु पियस्स ।
तासु न दीसइ आगमणु, जो खलु मिलिउ परस्स ॥४५॥

मणु जाणइ उवएसडउ, जहिँ सोवेइ अचंतु ।
अचितहो चित्तु जो मेलवइ, सो पुणु होइ णिचिंतु॥४६॥

वट्टडिया अणुलग्गयहँ, अग्गड़ जोयंताहँ ।
कंटउ भग्गइ पाउ जइ, भज्जउ दोसु ण ताहं ॥४७॥

मणु मिलियउ परमेसरहो, परमेसर जि मणस्स ।
विण्णि' वि समरसि हुइ रहिय, पुज चडावउँ कस्स ॥४९॥

देहादेवलि जो वसइ, सत्तिहि सहियउ देउ ।
को तहिँ जोइय सन्तसिउ, मिग्घु गनेसहिँ भेउ ॥५३॥

सर्पहिँ मोची केंचुली, जो विष सो न मुँचेइ ।
भोगहि भाव न परिहरइ, भेस-ग्रहण करेइ ॥१५॥
अथिरेहिँ थिरा मइलेहि निर्मला निर्गुणहिँ गुणसारा ।
कायेहि जा वढइ सा क्रिया कीन कर्तव्या ॥१६॥
वरु विष, विषधर वरु ज्वलन, वरु सेबिब वनपास ।
ना जिन-धर्म-पराङ्मुख, मिथ्याइय-सहवास ॥२०॥
हौ गोरा, हौ श्यामला, हौहि विभिन्नो वर्ण —।
हौ तनु-अंगो, स्थूल हौ, एहउ जीव न मान ॥२६॥

(२) निरंजन-साधना

वर्ण-विहूनहिँ ज्ञानमय, जो भावइ सद्भाव ।
संत निरंजन सोइ शिव, तहिँ कीजइ अनुराग ॥३८॥
उत्पला नहीं जोइ करि कला दामहिँ छोडी जिमि चरइ ।
जस अक्षय निरामहिँ गयउमन, सो किमि वह जगरति करइ ॥४२॥
पाँच वरद्न राखियउ, नन्दन-वन न गयोसि ।
आत्म न जानेँउ नापि पर, एवँइँ प्रव्रज्योसि ॥४४॥
पंचहिँ बहिर नेहड़ा, हे सखि लगेँउ पियेहिँ ।
तासु न दीसइ आगमन, जो खल मिलेँउ परेहि ॥४५॥
मन जानइ उपदेसडहिँ, जहँ सोवई अचिन्त ।
अचिते चित्त जो मेलवइ, सो पुनि होइ निचिन्त ॥४६॥
वटिया अनुसरतन्तहेँ, आगे जोयन्ताहँ ।
काँटा लागइ पाय यदि, लागहु दोष न ताह ॥४७॥
मन मिलिया परमेश्वरहिँ, परमेश्वरहु मनाहिँ ।
दोऊ समरस व्है रहेँउ, पूज चढाउँ काहिँ । ॥४९॥
देह-देवले जो बसइ, शक्ति सहितो देव ।
को तहँ जोगी ! शक्ति-शिव, शीघ्र गवेसहु भेद ॥५३॥

सिव विणु सन्ति ण वावरइ, सिउ पुणु सन्ति-विहीणु ।
दोहिँ मि जाणहिँ सयलु जगु, बुज्झइ मोह-विलीणु ॥५५॥

अब्भिन्तर चिति वे मइलियइ, बाहिरि काइ तवेण ।
चित्ति णिरंजणु कोवि धरि, मुच्चहि जेम मलेण ॥६१॥

देह महेली एह वढ ! तउ सत्ता वइ नाम ।
चित्तु णिरंजणु परिणसिहुं, समरसि होइण जाम ॥६४॥

सइ मिलिया सइ विह डिया जोइय, कम्मणि भंति ।
तरल सहावहिँ पथियहिँ, अण्णु कि गाम वसंति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

वक्खाणडा करंतु बुहु, अप्पि ण दिण्णुणु चित्तु ।
कणहिँ जि रहिउ पयालु जिम, पर मगहिउ बहुत्तु ॥८४॥

पंडिय पंडिय पंडिया, कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठोसि, परमत्थु ण जाणहि मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहिं जि गव्विया, कारु तेण मुणंति ।
वंस-विहत्था डोम जिम, परहत्थडा धुणंति ॥८६॥

बहुयइं पढियइं मूढपर, तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कुजि अक्खरु तं पढहु, सिवपुरि गम्मइ जेण ॥९७॥

हउँ सगुणी पिउ णिग्गुणउ, णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिँ अंगि वसंतयहँ, मिलिउ ण अंगहिँ अंगु ॥१००॥

मूलु छंडि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभासि ।
चीरुणु वुणणहं जाइ वढ ! विणु डहियईं कपासि ॥१०९॥

छह दंसण धंधइ पडिय, मणहं ण फिट्टिय भंति ।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति ॥११६॥

हलि सहि काइं करइ सो दप्पणु । जहिँ पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ । धरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥१२२॥

शिव बिनु शक्ति न व्यापरइ, शिव पुनि शक्ति-विहीन ।
दोउहिँ जानेँ सकल जग, बूझिय मोह-विलीन ॥५५॥

अन्तहि चित्तहि मइलियहि, बाहिर काह तपेहिँ ।
चित्ते निरंजन कोँइ धरु, मुच्चहि जिमी मलेहि ॥६१॥

देह मेहरिया एह मूढ, तोहिँ सतावइ ताव ।
चित्त निरंजन परहिँ सों, समरस होइ न जाव ॥६४॥

स्वयं मिल्लेँउ, स्वयं वीछुडेँउ, योगी ! कर्म न भ्रान्ति ।
तरल स्वभावहि पथिकही, अन्य कि गाँव वसन्ति ॥७३॥

(३) पाखंड-खंडन

व्याख्यानड़ा करन्त वहु, आत्महि दियउ न चित्त ।
कणहिउँ रहित पुआल जिमि, पर सग्रहँउ बहुत्त ॥८४॥

पडित पंडित पडिता, कण छाडेँउ तुष कूटिया ।
अर्थहिँ ग्रंथहिँ तुष्टोसि, परमार्थ न जानइ मूढोसि ॥८५॥

अक्खरडेहिँ जे गर्विया, कारण ते न जाँनंत ।
वांस-विहूनो डोम जिमि, पर हाथडा धुनंत ॥८६॥

बहुतहि पढिया मूढ पर, तालू सूखइ जेहिँ ।
एकइ अक्षर सो पढहु, शिवपुर जावे जेहिँ ॥९७॥

हौँ सगुणी प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण, निस्सग ।
एकहि अंक वसंतहुँ, मिलेँउ न अगहि अग ॥१००॥

मूल छोडि जो डाल चढ़ि, कहँ तेहि योगाभ्यास ।
चीर न बीनेँउ जाइ मुढ़, विनु ओटिया कपास ॥१०९॥

खटदर्शन धंधे पडी, मतहिँ न टूटी भ्रान्ति ।
एक देव छ भेद किय, ताते मोक्ष न यान्ति ॥११६॥

हे सखि ! काह करिय सो दर्पण । जहँ प्रतिबिंब न दीसइ आपन ॥
धंधवाल मोहि जग प्रतिभासइ । घर अछते णा घरपति दीसइ ॥१२२॥

जसु जीवंतहँ मणु मुवउ, पचेन्दियहिँ समाणु ।
सो जाणिज्जइ मोक्कलउ, लद्धउ पहु णिव्वाणु ॥१२३॥

मुडिय मुडिय मुडिया । सिरु मुडिउ चित्तु ण मुडिया ।
चित्तहँ मुडण जि कियउ । ससारह खडणु ति कियउ ॥१३५॥

पोत्था पढणि मोक्खु कहँ, मणुवि असुद्धउ जासु ।
बहुयारउ लुद्धउ णवइ, मूलट्ठिउ हरिणासु ॥१४५॥

भल्ला णवि णासंति गुण, जहिँ सहु सगु खलेहिँ ।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ, पिट्टिज्जइ सघणेहिँ ॥१४८॥

मुडु मुंडाइवि सिक्ख धरि, धम्महँ वद्धी आस ।
णवरि कुडुबउ मेलियउ, छुडु मिल्लिया परास ॥१५३॥

जे पढिया जे पंडिया, जाहिँ मि माण मरट्टु ।
ते महिलाणहि पिडि-पडिय, भमियइँ जेम घरट्टु ॥१५६॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु, पुत्थइँ सव्वइँ कव्वु ।
वत्थुज दोसइ कुसुमियउ, इधणु होसइ सब्बु ॥१६१॥

तित्थइँ तित्थ भमंतयहँ, किण्णेहा फल हूव ।
वाहिरु सुद्धउ पाणियहँ, अब्भितरु किम हूव ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भमेहि वढ़ ! धोयउ चम्मु जलेण ।
एहु मणु किम धाएमि तुहुँ, मइलउ पाव-मलेण ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

ज लिहिउ ण पुच्छिउ कहव जाइ । कहियउ कासु वि णउ चित्ति ठाइ ।
अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ । त तेम धरंतिहि कहिँ मि ठाइ ॥१६६॥

वे भंजेविणु एक्कु किउ, मणह ण चारिय विल्लि ।
तहि गुरुपहि हउँ सिस्मिणी, अण्णहिँ करमि ण लल्लि ॥१७४॥

अग्गइँ पच्छइँ दहदिहहिँ, जहि जोवउ तहि सोइ ।
ना महु फिट्टिय भंतडी, अवसणु पुच्छइ कोइ ॥१७५॥

जासु जीवनहि मनु मुयो, पचेन्द्रियहिँ समान ।
सो जानीयइ मोक्खलउ, लाहेँउ पथनिर्वाण ॥१२३॥

मुँडिया-मुँडिया-मुडिया, सिर मूँडेउ चित्त न मूडिया ।
चित्तहि मुडन जिन कियउ, ससारहि खंडन तिन कियो ॥१३५॥

पोथा पढनी मोक्षकहँ मनहि असुद्धउ जास ।
बधकारक लुब्धक नवै, मूलें ठिय हरिणास ॥१४६॥

भल न काह नाशइ गुण, जहँ लह सग खलेहि ।
वैश्वानर लोहहिँ मिलेँउ, पिट्टीयत सुघनेहिँ ॥१४८॥

मूँड मुँडाडवि सीख धरि, धर्महि बाँधी आस ।
न निक कुटुवहि छोडियह, छोड फेँकान पराश ॥१५३॥

जे पढिया, जे पडिया, जेहि कि मान मर्याद ।
ते मेहरी पिडहि पडी, भ्रमियत जेम घरट्ट ॥१५६॥

देवल पाहन तीर्थ जल, पोथिहि सर्वहि काव्य ।
वस्तु जो दीसइ कुमुमित, इधन होइहै सर्व ॥१६१॥

तीर्थहि तीर्थ भ्रमंतयहँ, किछु नाही फल होत ।
बाहिर सुद्धो पानियहँ, अभ्यन्तर किमि होत ॥१६२॥

तित्थइँ तित्थ भ्रमेँउ मूढ, धोयेँउ चाम जलेहि ।
एहु मन किमि धोयेमि तूहं, मइलउ पाप-मलेहि ॥१६३॥

(४) गुरु-महिमा

जो लिखेँउ न पूछेँउ कहुं पि जाइ, कहियउ काहुपि न चित्त ठाइ ।
अथ गुरु-उपदेसे चित्तु ठाइ, सो तिमि धारंतोहि कहुंपि ठाइ ॥१६६॥

दो भंजाविय एक किय, मनहि न चारी वेलि ।
तेहि गुरुवहिं हउँ शिष्यणी, अन्यहि करउँ न लाल ॥१७४॥

आगेहिं, पाछेहिं, दसदिसिहिं, जहँ जोवउँ तहँ सोइ ॥
सो मम काटी भ्रांतडी, अवश न पूछिय कोइ ॥१७५॥

मूढा जोवइ देवलइँ, लोयहि जाइँ कियाइँ ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय, जहिं सिउ-संतु ठियाइँ ॥१८०॥
वामिय किय अरु दाहिणिय, मज्झइँ वहइँ णिराम ।
तहिं गामडा[1] जु जोगवइ, अवर वसाइव गाम ॥१८१॥
अप्पा परहँ ण मेलयउ, आवागमणु ण भग्गु ।
तुस कंडंतहँ कालु गउ, तडुलु हत्थि ण लग्गु ॥१८५॥
उव्वस वैसिया जो करइ, वसिया करइ न सुण्णु ।
वलि किज्जइ तसु जोइयहि, जासु ण पाउ ण पुण्णु ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंतु ण तंतु ण धेउ ण धारणु । ण'वि उच्छासह किज्जइ कारणु ॥
एमइ परम सुक्खु मुणि सुव्वइ । एही गलगल कासु ण रुच्चइ ॥२०६॥
वे पथेहि ण गम्मइ वे-मुह सूई ण सिज्जए कंथा ।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदिय मोक्ख च मोक्खच ॥२१३॥
वादविवादा जे करहिं, जाहि ण फिट्टिय भंति ।
जे रत्ता गउ पावियइँ, ते गुप्पति भमंति ॥२१७॥
कालहिं पवणहिं रवि, ससिहिँ-चहु एक्कठइँ वासु ।
हउँ तुहिं पुच्छउँ जोइया, पहिले कासु विणासु ॥२१९॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

काल—१००० ई० (?) । देश—माएसर (गुजरात ?) । कुल—धाकड़

१—कवि-परिचय

वसिवि घरासमि हल्लुत्तालि । विरइउ एउ चरिउ धणवालि ।
बिहि खंडहि बावीसहिँ सन्धिहिँ । परिचिंतिय निय हेउनिबंधिहिँ ।

---

[1] राजस्थानी और गुजराती

मूढा ! जोवइ देवलहँ, लोगहिं जाहिं कियाह ।
देह न पेखइ आपणी, जहँ शिव-संत थिताह ॥१८०॥
वामे कियेँउ अरु दाहिने, माँझिय वहइ निराम ।
तहँ गामएँ जो जोगपति ! अवर बसावइ ग्राम ॥१८१॥
आत्मा परहिं न मेलियउ, आवागमन न भाग ।
तुष कूटते काल गउ, तंदुल हाथ न लाग ॥१८५॥
उज्जड बसिया जो करइ, बसिया करइ जो सुन्न ।
बलिहारी तेहि जोगियहिं, जासु न पाप न पुन्न ॥१९२॥

(५) मंत्रतंत्र-ध्यान आदि बेकार

मंत्र न तंत्र न ध्येय न धारण । नापि उच्छासहि कीजिय कारण ॥
इमिहि परम-सुख मुनि सोवइ । एही गडबड कासु न रूचइ ॥२०६॥
दो पथहिं न गमियइ पंथा, दो मुँह सुई न सीइय कंथा ।
दोउ न होहिं अजाना ! इन्द्रिय-सुख अरु मोक्षहू ॥२१३॥
वाद-विवाद जे करहिं, जाह न फाटी भ्रान्ति ।
जे रक्ता गोपायित, ते गोप्यन्त भ्रमन्ति ॥२१७॥
कालहिं पवनहिं रविशशिहि, चहु एकट्ठइ वास ।
हउँ तोहि पूँछउ जोगिया, पहिले कासु विनाश ॥२१९॥
—पाहुड-दोहा

§ २४. धनपाल

वैश्य। कृति—भविसयत्त कहा[1] (भविष्यदत्त-कथा)

१—कवि-परिचय

वसिय गृहाश्रमेँ हल्लुत्तालेँ, विरचेँउ एउ चरित धनपालेइँ ।
दुइ खंड वईसहिं संधिहिं, परिचितिय निजहेतु-निबंधहिं ।

---

[1] गायकवाड ओरियंटल सिरीज, बडोदा, १९२३

घत्ता। धक्कड वणिवंसि माएसरहों समुब्भविण।
धणसिरिदेवि-सुएण,विरइउ सरसइ-संभविण।

——भविसयत्त-कहा पृ० १४८

२–भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल[1] देश

एह भरहखित्ति सुन्दर पएसु। कुरु-जगल नामि मही विसेसु।
वण्णिज्जइ सपय काइं तासु। जहिं निवसइ जणु अमुणिय पयासु।
आरामछित्तघरवित्ति विद्ध। परिपक्ककलमि - गोहण - समिद्ध।
जहिं पुरइं पवड्ढिय कलयलाइं। धम्मत्थ-काम सचिय फलाइं।
जहिं मिहुणइं मयण-परव्वसाइं। अवतुप्प तुप्परिवड्डिया रसाइं।
उवभोय भोय-सुह सेवयाइं। गामइं कुक्कुड सड्ड वयाइं।
जहि जलइं कयावि न सुसियाइं। मयरंद-रेणुवामीसियाइं।
जहिं सरइं कमल-पह-वित्थराइं। कारंड-हस-चय-चुंबिराइं।
जहिं पथिय तत्तु छायहिं भमंति। जत्थत्थमियइं तहिं णिसि गमंति।
पामर वियड्ढि वयणइं णियंति। पुडुच्छु-रसइं लीलइं पियंति।

——वही पृ० २,३

(२) गज (हस्तिना)-पुर

घत्ता। तहिं गयउरु णाउं पट्टणु, जणजणियच्छरिऊ।
णं गयणु मुएवि सग्गखंडु महि अवयरिऊ॥

तं गयउरु को वण्णणहँसमत्थु। ज वुहइह मंडणु ण पसत्थु।
जं भुत्तु मउड-कुंडलधरेहिं। मेहे सराइ बहु-णरवरेहिं।
महवा चक्केसतु जित्थु आसि। जें भुत्त वसुंधरि जेम दासि।
पुणु सणकुमातु णिहिरयणवालु। छक्खंडवसुह सुह सायिसालु।

---

[1] कुरु देश

घत्ता। धक्कड वनिक-वंशें माएसरहें समुद्भवेहिं।
धनश्रीदेवि सुतेहिं विरचेउ सरस्वतिसभवें हिं॥

—भविसयत्तकहा पृ० १४८

२—भौगोलिक वर्णन

(१) कुरु-जांगल देश

एहु भरत-क्षेत्रें सुदर प्रदेश। कुरुजंगल नामे महि-विशेष।
वानिज्जै संपति काइँ तासु। जहँ निवसै जन अमुनिय-प्रयास।
आराम-क्षेत्र - घरवित्त - वृद्ध। परिपक्वकलम - गोधन - समृद्ध।
जहँ परें प्रवद्धिय कलकलाइँ। धर्मार्थ-काम-संचित-फलाइँ।
जहँ मिथुनै मदन-परब्वशाइँ। अवनृप्तेउ पाकरके रसाइँ।
उपभोग - भोग - सुख - सेवयाइँ। ग्रामो कुक्कुट - संसेवयाइँ।
जहँ जलें कदापि न शोषियाइँ। मकरंद-रेणुवा-मिश्रिताइँ।
जहँ सरहिँ कमल-प्रभ-ताम्रकाइँ। कारंड-हंस-चय-चुंविताइँ।
जहँ पथिक तप्त छायहिँ भ्रमंति। यत्र अस्त मिया तहँ निशि गमंति।
पामर विदग्धें वचनै नियंति। पुंड्र-इक्षु-रसें लीलें पिवंति।

—वही पृ० २,३

(२) गज पुर[1]

घत्ता। तहँ गजपुर[1] नामे पट्टन, जन-जनिता श्चरिऊ।
जनु गगन मुँचिय स्वर्ग-खंड, महि अवतरिऊ॥

सो गजपुर को वर्णन-समर्थ। जो पुहुमिह मंडन जनु प्रशस्त।
जो भुक्तु मुकुट-कुडल-धरेहिं। मेघेश्वरादि-वहु-नरवरेहिं।....
मघवा चक्रेशत यत्र आसि[2]। जेहि भुक्तु वसुधर जेम दासि।
पुनि सनकुमार निशिरतन-पाल। छै खंड वसुध शुभ स्वामिसाल।..

---

[1] हस्तिनापुर [2] थे

जहिं अण्णवि णर णरवइ महंत । सग्गापवग्गवर सुहइं पत्त ।
जसु कारणि णिय-सुहि तंडवेहिं । कुरुखेत्ति भिडिउ कुरु-पंडवेहिं ।
घत्ता । जहिं तुंग तवंगि संठिउ संख-कुंद-धवलू ।
जणु सुतुवि उद्धु देखइ गगाणइहिं जलु ॥

—वही पृ० ३

३—वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरिउ गमण-सामग्गि पयासिय । सुइ-सत्थत्थवत सभासिय ।
जाणाविउ भूवाल-णरिंदहों । समइ परिट्ठिउ सण्णणविंदहों ।
हट्ट-मग्गि कुल-सील-णिउत्तहँ । घोसण[1] दिण्ण पुरउ वणिउत्तहँ ।
"चल्लउ जो चल्लइ कयविज्जें । बंधुअत्तु सचलिउ वणिज्जें ।
साहुमाणि वणिउत्तहँ चाहइ । अधणहँ भंडुल्लइ सवाहइ ।"
तं णिसुणेवि पमाय-पउत्तहँ । मतिउ थोव-विहव-वणिउत्तहँ ।
"अहों पुर-जण-मण-णयणाणंदणु । सेवहों धणवइ-सेट्ठिहिं णदणु ।
पइसहुँ अंतरेउ सहुँआएं । अवसि लच्छि होइ ववसाएं ।
वणि-तणुरुह-रहसेण समागय । सज्जिय करह-वसह-महिसह सय ।"

—वही पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

माइ महल्ल महुज्जम विज्जें । बंधुअत्तु संचलिउ वणिज्जें ।
तेण समाण मइँमि जाइव्वउ । तं वोहित्थु तीरि लाइव्वउ ।
देसंतर-पवासु माणिव्वउ । णियपुण्णहँ पमाणु जाणिव्वउ ।
दयिवायत्तु जइवि विलसिव्वउ । तो पुरिसिं ववसाउ करिव्वउ ।
तं णिसुणेवि सगग्गिर-वयणी । भणइँ जणेरि जलद्दिय-णयणी ।
हा इउ पुत्त ! काइँ पइँ जंपिउ । सिविणंतरिवि णाहिं महु जंपिउ ।

---

[1] डुगडुगी पिटवाई=घोषणा की

जहँ अन्यउ नर नरपति महंत । स्वर्गापवर्ग वर सुखहिँ प्राप्त ।
जसु कारणेँ निज-सुखेँ तांडवेहिँ । कुरुक्षेत्र भिडेँउ कुरु-पांडवेहिँ ।
घत्ता । जहँ तुंग तपांगेँ सं-ठिउ, शंख-कुन्द-धवलू ।
जनु सूती ऊर्ध्व देवइ, गंगानदिह जल ॥

—वही पृ० ३

३–वाणिज्य-सार्थ

(१) बंधुदत्तके सार्थकी तैयारी

तुरत गमन-सामग्रि प्रकाशिय । शुचि-सार्थ-नर्थवंत संभाषिय ।
जनवायउ भूपाल-नरेन्द्रहँ । समयहँ पूछेँउ सज्जन-वृन्दहँ ।
हाट-मार्ग-कुल-शील-नियुक्तहँ । घोषण दीन पुरहँ वणि-पुत्रहँ ।
"चल्लो, जो चल्लै क्रय-वेँचे । बंधुदत्त संचलेउ वनिज्जे ।
साधु मानि वणिपुत्तहँ चाहै । अ—धनहँ भंडुल्लइ[1] सं-वाहै[2] ।"
सो सुनियाहि प्रमाद-प्रयुक्तहँ । मंत्रेउँ थोड़-विभव-वणिपुत्रहँ ।
"अहोँ पुर-जन-मन-नयन-नंदना । सेवहु धनपति-श्रेष्टिहिँ नंदन ।
पइसहु अंतरेउ सहुआयेँ । अवशि लक्ष्मि होई व्यवसायेँ ।
वणि-तनुरुह रभसेहिँ[3] समा-गउ । साजेँउ करभ-वृषभ-महिषइ सौ ।

—वही पृ० १६-१७

(२) भविष्यदत्तकी माँका विरोध

"माइ ! महल्ल-महोद्यम-विद्यें । बंधुदत्त सं-चलेउ वनिज्जेँ ।
तेही संगेँ हमहूँ जाइब्बो । सो वोहित-तीरेँ लाइब्बो ।
देशांतर-प्रवास मानिब्बो । निज-पुण्यहँ प्रमाण जानिब्बो ।
दैवायत्त यदपि विलसिब्बउ । तहूँ पुरु व्यवसाय करिब्बउ ।"
सो सुनियाहि सगद्गद-वदनी । भनै जनेरिँ[4] जलार्दित-नयनी ।
हा ई पुत्र ! काह तैँ जल्पेउ । स्वप्नंतरेउ नाहिँ मोहिँ जल्पेउ ।

---

[1] सौदा [2] देवै [3] तुरंत [4] माता

एक्क अकारणि कुविय-वियप्पें । दिण्णु अणतु दाहु तउ वप्पें ।
अण्णुवि पइँ देसंतरु जंतहों । को महु सरणु हियइ पजलंतहों ।
अण्णुवि तेण समउ तउ जंतहों । णिव्वुइ खणु'वि णाहिँ महुचित्तहों ।

घत्ता । को जाणइ कण्ण महाविसइ, अणुदिणु दुम्मइ मोहियइँ ।
सम-विसम-सहावहिँ अतरइँ, दुट्ठसवत्ति'हि दोहियइँ ॥

एक्कुमिक्कु ववसाउ करंतहँ । ममसाहिट्ठिउ भंडु भरंतहँ ।
विहि पडिकूलु अम्ह पडिसक्कइ । अत्थहँ छेउ करिबि को सक्कइ ।
एक-दव्व-अहिलास-विचित्तइ । को जाणइँ दाइयहँ चरित्तइ ।
जइ सरूव दुट्ठत्तणु भासइ । बंधुअत्तु खल वयणहिँ वासइ ।
जो तउ करइ अमगलु जतहों । मूलु'वि जाइ लाहु चितंतहों ।"
जंपइ मामहु महुरकलाएँ । "चंगउ वुत्तु पुत्त ! कमलाएँ ।
अम्हह एत्थु-वसंतहों तेहउ । को'वि ण मित्तु पहाणु सणेहउ ।
बंधुअत्तु पुरमज्झि मइत्तउ । राउलि सण्णमाणु धणयत्तउ ।

घत्ता । जइ-जणणि-वयण विम-विम-मगइ, दाइय-मच्छरु मणि वहई ।
तो तुम्हहँ अम्हहँ सयणहमि, वचिवि कुलि परिहउ करई ॥"

भविसयत्तु विहसेविणु जपइ । "तुम्हहँ भीरत्तणिण समप्पइ ।
अइयारि वामोहु ण किज्जइ । ममवय-जणि पोढत्तणु हिज्जइ ।
अइणाएण जणि कायरु वुच्चइ । अइभाएण जइ-लच्छिएँ मुच्चइ ।
अइमाएण दप्पुब्भडु णावइ । अइघिएण भोयणु'वि ण भावइ ।
अइरूवि तिय-रयणु विणासइ । अइयारि सव्वहों गुणु णासइ ।
जइ ववसाइ दाउ णउ दिज्जइ । तो णायरहँ मज्झि लज्जिज्जइ ।
जइ सो कहब सवत्तिहि जायउ । तो'वि ताँयहों सरीरि संभूयउ ।
एक्कु सरीरु जाउ विहि भायहिँ । तहिँ किर काइँ राय-वेयारहिँ ।

' सौत ' पूंजी

एक अकारण कुपित विकल्पे । दीन अनत-दाह तव बापें ।
अन्यउ तैं देशान्तर जातह । को मम शरण हृदय-प्रज्वलंतह ।
अन्यउ तेहिँ संग तव जातह । निर्वृति[1] क्षणहु नाहि ममचित्तह ।

घत्ता । को जानै कर्ण महाविषइँ, अनुदिन दुर्मति-मोहितइँ ।
सम-विषम स्वभावहिँ अंतरइँ, दुष्ट सौतियह दोहितइँ ॥

एकमेक व्यवसाय करतहँ । सम-माझेहीं भांड भरतहँ ।
विधि-प्रतिकूल समर-प्रतिमक्कै । अर्थहँ छेद करबि को सक्कै ।
एक द्रव्य-अभिलाष-विचित्रा । को जानै दैवयहँ चरित्रा ।
यदि स्वरूप दुष्टत्वउ भासै । बंधुदत्त खल-वचनहिँ वासै ।
जो तव करै अमंगल जाँतह । मूलउ जाइ लाभ चिंततहँ ।"
जंपै मामहँ मधुरकलायें । "चगउ उक्त पुत्र ! कमलायें ।
हमरे इहाँ वसंतह तेही । कोउ न मित्र प्रधान मिनेही ।
बंधुदत्त पुर-माँझ स्वयत्तउ । राउलें सर्व्वमान धनदत्तउ ।

घत्ता । यदि जननि-वचन-विष-विषमगति, दर्शित मत्सर मनें वहई ।
तो तुम्महँ हम्महँ स्वजनहउ, वंचिय कुलें परिभव करई ।"

भविषदत्त विहसि जल्पियई । "तुम्हहँही भीरुता-सर्मापियई ।
अतिचारे व्यामोह न किज्जै । सम-वय-जनें प्रौढत्वं हीज्जै ।
अतिगमने जनें कायर उच्चै । अतिभयेहिँ जयलक्ष्मी मुचै ।
अतिमदेहिँ दर्पोद्भट नावै । अतिघिवेहिँ भोजनउ न भावै ।
अतिरूपें तिय-रतन विनाशै । अतिचारें सर्व्वउ गुण नाशै ।
यदि व्यवसाय दाव ना दिज्जै । तो नागरहँ माँझ लज्जिज्जै ।
यदि सो कहब सौतीको जायो । तोपि तातहँ शरीर-संभूतो ।
एक शरीर जाउ दोउ भाई । तहँ फुर काईं राग-विचारी ।

---

[1] चैन [2] राजकुल (=दर्बार) [3] कम होना

अण्णु'वि तहिँ कुल-सील-निउत्तहँ । होसहिँ पंच-सयइँ वणिउत्तहँ ।....
अण्णुवि अम्हह तेण समाणु । किपि ण पुव्व-विरोह-विहाणु ।
घत्ता । म माइ चित्तु कायरु करहि, फुडु कम्मइँ कम्महु कारणु ।
खुट्टइ जीविज्जइ जेम णवि, तेम अखुट्टइ नउ मरणु ।"

—वही पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता । जोव्वण-वियार-रस-वस-पसरि, मो सूरउ सो पंडियउ ।
चल-मम्मणवयण्ल्लावएहिँ, जो परतियहिँ ण खंडियउ ॥१८॥

पुरिसि पुरिसिव्वउ पालिव्वउ । परधण् परकलत्तु णउ लिव्वउ ।
तं धणु ज अविणासिय-धम्मेँ । लब्भइ पुव्वक्किय-सुह-कम्मेँ ।
त कलत्तु परिओसिय-गत्तउ । ज सुहि पाणिग्गहणि विढत्तउ ।
णिय-मणि जेण संक उप्पज्जइ । मरणति'वि ण कम्मु तं किज्जइ ।
अण्णु-'वि भणमि पुत्त ! परमत्थेँ । जइवि होहि परिपुण्ण महन्थेँ ।
तरुणि तरल लोयण मणि भाविउ । पहु-सम्माण-दाण गुण गाविउ ।
तहिँमि कालि अम्हहिँ सुमरिज्जहि । एक्कवार महु दसणु दिज्जहि ।
पर-धणु पायधूलि भण्णिज्जहि । परकलत्तु मइँ समउ गणिज्जहि ।

—वही पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

अग्गेय दिसइँ मल्हंति जंति । कुरुजंगलु महिमंडलु मुअति ।
लंघंति वियण-काणण-पलंब । पुर - गाम-खेड - कव्वड - मडंब ।
जउणानइ सलिलु समुत्तरेवि । जल-दुग्गइँ थल-दुग्गइँ सरेवि ।
अन्नन्न-देस-भासइँ नियंत । रयणायरेँ वेला-उलइ पन्त ।
लक्खिउ समुद्दु जल-लव-गहीरु । सप्पुरिसु'व थिरु गंभीरु धीरु ।
आसीविसो[1]'व्व विस-विसम-सील । वेला-महल्ल कल्लोल-लील ।

---

[1] साँप

अन्यउ तहँ कुल-शील-संयुक्ता। होइहैं पंचशता वणिपुत्रा।....
अन्यउ हम्मउ तेहि समाना। किछुउ न पूर्व-विरोध-विधाना।
घत्ता। मति मा! चित्त कातर करहि, फुर कर्मइ कर्महँ कारण।
खुट्टइ[1] जीविज्जै जेम नहिँ, तेम अखुट्टइ ना मरण।"
—वही पृ० १७-१८

(३) माताका उपदेश

घत्ता। "यौवन-विकार-रस-वश- प्रसर, सो शूरा सो पंडित।
चल-मन्मथ-वचनोल्लापएहिँ, जो परतियहिँ न खंडित ॥१॥
पुरुषें पुरुषत्त्वउँ पालिब्बउ। परधन-कलत्र नाहीं लिब्बउ।
सो धन जो अविनाशिय धर्मे। लब्भै पूर्वकृत-शुभकर्मे।
सो कलत्र परि-योषित-गात्रउ। जो मुखें पाणिग्रहण विहित्तउ।
निज मनें जातें शक उत्पज्जै। मरतेहूँ न कर्म सो किज्जै।
अन्यउ भनउँ पुत्र! परमार्था। यदपि होइ परिपूर्ण महार्था।
तरुणि-तरल-लोचन मनें भाविउ। प्रभु-सम्मान-दान-गुण गाविउ।
तेंहउ काल मोहिहि सुमरिज्जै। एक वार मोहिँ दर्शन दिज्जै।
परधन पाद-धूलि भन्निज्जै। परलत्र मोंहिँ सम गण्णिज्जै।
—वही पृ० २०

(४) सार्थ (कारवाँ)की यात्रा

आग्नेय दिशहिँ छोडति जांति। कुरुजंगल महिमंडल मुंचंति।
लंघंति विजन-कानन-प्रलंब। पुर-ग्राम-खेड-कव्वड-मडंप।
यमुना नदि सलिल सम्-उत्तरेउ। जल-दुर्गहिँ थल-दुर्गहिँ सरेउ।
अन्यान्य-देश-भाषहिँ नियत्त। रत्नाकर-वेलाकुलहिँ प्राप्त।
लक्खेउ समुद्र जल-लव-गँभीर। सत्पुरुष 'व थिर गंभीर धीर।
आशीविष इव विष-विषम-शील। वेला-महल्ल-कल्लोल-लील।

---

[1] आर्य घटनेपर

दिट्ठइँ विउलइँ वेलावलाइँ । कय-विक्कय-रय-वयणाउलाइँ ।
धम्मत्थ-कामकखिर सुहाइँ । सुवियड्ढ-वयण विलयामुहाइँ ।
तहि थाडवि जलजंतइँ कियाइँ । परिहरिबि वसह-महिसय-सयाइँ ।
जलजंता कम्मतरु करेबि । करणइह पियवयणहिँ सवरेबि ।
वहणहि[1] आरूढ महापहाण । वणिवरहँ सयइँ पचहिँ समाण ।

—वही पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता । णिज्जावयवयणुज्जुअमुहइँ, किव्ववइँ णण भडईँ ।
सचल्लइ रयणायरहोँ जलि, खरपवणाहय-धय-वडईँ ॥

दिढ-बधइँ जिह मल्लर-गणाइँ । णिल्लोहइँ जिह मुणिवर-मणाइँ ।
णिब्भिण्णइँ जिह सज्जण-हियाइँ । अकियत्थइँ जिह दुज्जण-कियाइँ ।
वहणइँ वहंति जलहर-रउद्दि । दुत्तरि अत्थाहि महासमुद्दि ।
लेघनइँ दीवतर - थलाइँ । पिक्खंति विविह कोऊहलाइँ ।
इय लीलइँ वच्चताहँ ताहँ । उच्छाह - सन्ति - विक्कम पराहँ ।
दुप्पवणेँ घणतरुवर-समीवेँ । वहणइँ लग्गइँ मयणाय-दीवेँ ।
कल्लोल-बोल-जलरव वमालेँ । अमगाह-गाह गहणंतरालेँ ।
नीरंतरेँ जं सघट्ट पोय । उत्तरिय तरिव पमुहाइ लोय ॥

घत्ता । न वयणु सुणिवि णायर-जणहु, न गिरि वज्जदंडु पडिऊ ।
वोहित्थइँ लेवि दुरास खलु, गहिर महासमुद्दि चडिऊ ॥२५॥

पमुक्के कुमारे दुरायारिएहिँ । अमोहे जलोहे वहंतेहिँ तेहिं ।
थियं विभियं त वणिदाण विंद । वियप्पाउरं करयलुग्गिण्ण-मुहं ।
अहो सुदरं होइ एयाण कज्ज । अगम्मंपि गंतूण खद्ध अखज्जं ।
गयं णिप्फलं ताम सव्वं वणिज्ज । छुवं अम्ह गोत्तम्मि लज्जावणिज्ज ।

---

[1] बड़ी नाव, महापोत (बजरा)

दीसैं विपुलैं वेलाकुलाइं । क्रय - विक्रय - रत - वचनाकुलाइं ।
धर्मार्थ-काम-काक्षी सुखाइं । सुविदग्ध-वचन वनिता-मुखाइं ।
तहँ थायेंउ[1] जलपोतहिं केताहिं । परिहरेउ वृषभ-माहिष-शताहिं ।
जलपोता कर्मांतर करेउ । करनै प्रियवचनहिं सवरेउ ।
वहन[2]हँ आरूढ महाप्रधान । वणि-वरहँ शतहँ-पचहि समान[3] ।

—वही पृ० २१-२२

(५) बंधुदत्तके साथ समुद्र-यात्रा

घत्ता । विद्या-वय-वचन ऋजुकमुखा, की खला, नाना भटई ।
संचल्लै रत्नाकर जले, खर-पवनाहत-ध्वज-पटई ॥

दृढ बधाइँ जिमि मल्लर[4]-गणाइँ । निर्लोभी जिमि मुनिवर-मनाइँ ।
निर-भिन्ना जिमि सज्जन-हियाइ । अकृतार्था जिमि दुर्जन-क्रियाइँ ।
वहनैं वहति जलधर-रउद्र । दुस्तर अथाह महासमुद्र ।
लंघता द्वीपांतर - थलाइँ । पेखंता विविध कुतूहलाइँ ।
इमि लीलै वाँचत ताँह ताँह । उत्साह-शक्ति-विक्रम-पराह ।
दुप्-पवने घन-तरुवर-समीपें । प्रवहण लागेंउ मैनाकद्वीपें ।
कल्लोल-बोल-जल-रव-भ्रमरे । असंख ग्राह ग्राह गहनं-तरालें ।
तीरंतरे जो संघट्ट पोत । उत्तरेंउ तरी-प्रमुखादि लोग ।

घत्ता । सो वचन सुनिय नागरजनहु, जनु शिरें वज्रदड पडेंऊ ।
वोहितेहिं लेइ दुराश खल, गहिर महासमुद्र चढेंऊ ॥२५॥

प्रमुचे कुमारे दुराचारियेहि । अमोघे जलोघे वहंतेहि तेहि ।
ठिआ विस्मिता सो वणीन्द्रान-वृन्दा । विकल्पातुरा करतलो दृगीर्ण-मुद्रा ।
"अहो सुदरो होइ एहू न काजा । अगम्याह गन्तु अखद्याउ खाद्या ।
गओ निष्फला एह सर्व्वा वनिज्या । छुयो अम्ह गोत्रेहु लज्जावनीया ।

---

[1] रहेउ [2] प्रवहण (जहाज) [3] सहित [4] पहलवान

ण जत्ता ण वित्तं ण मित्तं ण गेहं । ण धम्मं ण कम्मं ण जीयं ण देहं ।
ण पुत्तं कलत्तं ण इट्ठं पि दिट्ठं । गयं गयउरे[1] दूरदेसे पइट्ठं ।
खयं जाइ नूणं अहम्मेण धम्मं । विणट्ठेण धम्मेण सव्व अकम्मं ।
कयं दुक्कियं दोहएण हएण । सुहायारभट्ठेण दुट्ठेण एणं ।
अणिट्ठं कणिट्ठं भुअं सप्पहाये । समुद्दे रउद्दे खयं तुम्ह जाये ।

—वही पृ० २२, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । एत्तहि महुमासहो आगमणु, एत्तहि पियपुत्त-समागमणु ।
परमोच्छवि रोमंचिय भुवहो, मुहु वियसिउ धणयत्तहो सुवहो ॥८॥

जिम तित्थु तेम पंचहि मएहि । किय भवण सोह निव्वइ गएहि ।
घरि-घरि मगलइ पघोसियाइँ । घरिघरि मिहुणइ परिओसियाइँ ।
घरिघरि तोरणइँ पसाहियाइँ । घरिघरि सयणइ अप्पाहियाइँ ।
घरिघरि वहुचंदण-छडय दिन्न । मरु-कुद-वणय-दवणय-पइन्न ।
घरिघरि सरेणु-रइ-पिजरीउ । सोहंति चूयतरु-मजरीउ ।
घरिघरि चच्चरि कोऊहलाइँ । घरिघरि अंदोलय सोहलाइँ ।
घरिघरि कय-वत्थाहरण सोह । घरिघरि आरद्ध-महाजसोह ।
घरिघरि मरूव-रंजिय-मणाइ । जुवइहि जोइयइ सदप्पणाइ ।

घत्ता । घरिघरि जलमंगलकलस किय, घरिघरि घरदेवय अवयरिया ।
घरिघरि सिंगार-वेसु धरिवि, नच्चिउ वर-जुवइहि उत्थरिवि ॥९॥

तं गयउरु सो पउर-समागमु । सो सियपक्खु वसंतहो आगमु ।
ताइ निरंतराइँ चुअ वणइँ । ताइ धवलपुजवियइ भवणइँ ।

---

[1] हस्तिनापुर

न यात्रा न वित्तो न मित्रो न गेहो । न धर्मो न कर्मो न जीवो न देहो ।
न पुत्रो कलत्रो न इष्टोउ दष्टो । गयउ गजपुरे दूरदेशे पइट्ठो ।
क्षयो होइ निश्चय अधर्मेहि धर्मो । विनष्टेहि धर्मेहि सर्वो अकर्मो ।
करेँउ दुष्कृत दोहकेहि हतेहि । शुभाचारभ्रष्टेहि दुष्टेहि एहि ।
अनिष्टो कनिष्टो भुजो सप्रहाइ । समुद्र रउद्रे क्षयो तुम्ह जाइ ।

—वहीं पृ० २, २३

४—सामंती वणिक्समाज

(१) वसंत-वर्णन

घत्ता । इतहू मधुमासह आगमनू । इतहू प्रियपुत्र-समागमनू ।
परमोत्सवें रोमाचित-भुजहू । मुह विकसिउ धनदत्तह सुतहू ॥८॥
जिम तीर्थ तेमि पंचहु शतेहिँ । कियउ भवन मोह निर्वृति-गतेहिँ ।
घरघर मगलइ प्रघोषिताइँ । घरघर मिथुनै परितोषिताइ ।
घरघर तोरणै प्रसाधिताइँ । घरघर स्वजनै अल्पाधिकाइँ ।
घरघर वहुचदन-छटा दीन । मरु-कुन्द-वनय-दवना-प्रकीर्ण ।
घरघर स-रेणु[1]-रज-पिंजरीउ । मोहति चूत तरु-मजरीउ ।
घरघर चर्चरि कौतूहलाइँ । घरघर अदोलै सोहलाइँ ।
घरघर कृत-वास्त्राभरण सोह । घरघर आरब्ध महायशोघ ।
घरघर स्वरूप-रंजित-मनाइँ । युवती जोवैं (मुंह) दर्पणाइँ ।
घत्ता । घरघल जल-मंगल-कलश किय, घरघर देवय अवतदिणा ।
घरघर शृगारवेष धरेँऊ, नाचेउ वरयुवतिहिँ उच्छलिया ॥९॥
सो गजपुर सो पौरसमागम । सो सित-पक्ष वसंतहँ आगम ।
सोइँ निरंतराइँ चूत-वनईं । सोइ धवलपुजवियइँ भवनइँ ।

---

[1] पटवास, सौगंधिक चूर्ण

सो बहु परिमलट्ठु वण-तूरउ । पिय-सुह-सीयलु दाहिण मारुउ ।
सो पुर-सोह कासु उवमिज्जइ । जा पिक्खवि सुर हमिरइ दिज्जइ ।
जहिँ उज्जाण-पुरइ सुहसंचिय । दाहिणपवन पहय-कुसुमंचिय ।
जहिँ मरुकुद-कुसुम संचलियउ । दवणय-मंजरीउ नव हरियउ ।
जहिँ आयंबिर फुल्लप लासउ । सोहइ नाइ पलित्तु हुवासउ ।
जहिँ वहु रस-विसेस-वस-कमलइ । वहु-कुसुमइ धुणति भमर-उलइ ।
घत्ता । जहिँ मालइ-कुसुमामोयरउ, चुबंतु भमइ वणि महुअरऊ ।
अइमुत्तए'वि जहि रइ करइ, सो वरवसंतु को न सरई ॥१०॥

—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दिट्ठि कुमारि वियणि सोवणघरि । लच्छि नाइँ नव-कमल-दलतरि ।
जिण-सासणि छज्जीव दया इव । पडिय-मरणि सुगइ वरिमाइव ।
मुहुमारुइण मलय-वणराइव । सिहलदीवि रयणविख्याइव ।
सोहइ दप्पणि कील करंती । चिहुर-तरंग-भंग विवरती ।
सो फलिहंतरेण सा पिक्खइ । सावि तासु आगमणु न लक्खइ ।
घत्ता । नं वम्महु भल्लि विंधण-सील जुवाण-जणि ।
तहि पिक्खवि कंति , विंभिउ झत्ति कुमारमणि ॥८॥
उप्पल दल-दीहर-पायहिँ । नह-मणि-किरण-करंबिय-छायहिँ ।
जंघोरुय गुज्झंतर पासइँ । सुणियत्थइँ णिझीण परिवासइँ ।
पोतंतर उब्भिन्न पयासइँ । त विहसति पिहिय परिहासइँ ।
वियडु नियंब-बिंबु सोहिल्लउ । रेहइ अद्धाइद्ध कडिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगि विहावइ । थिय पिपीलि-रिंछोलि'व नावइ ।
रसणादाम निबंधणु सोहइ । किंकिणरणझणंतु मणु खोहइ ।
समचक्कलु कडियलु किसु मज्झइ । नज्जइ करयल मुट्ठिहि गिज्झउ ।
तिवलि-तरंगइँ नाही - मंडलु । नं आवत्ता - इद्धु महाजलु ।

सो वहुपरिमलाढ्य-वन-तूर्यउ । प्रिय-सुख-शीतल-दक्षिणमारुतु ।
सो पुर-शोभाँ कासु 'पमिज्जै । जा पेखिय सुर अचरज दिज्जै ।
जहँ उद्यानपुरै सुख-संचित । दक्षिण-पवन-प्रहत-कुसुमंचित ।
जहँ मरु-कुद-कुसुम संचलियउ । दवना-मंजरीउ नव-हिलियउ ।
जहँ आताम्रहु फुल्लपलाशउ । सोहै न्याइँ प्रदीप्त-हुताशउ ।
जहँ-वहुरस विशेष-शव कमलइँ । वहुकुसुमैं धुनंति भ्रमरकुलइँ ।

घत्ता । जहँ मालति-कुसुमामोदरत, चुवत भ्रमैं वनें मधुकरऊ ।
अतिमुक्तएउ जहँ रति करई, सो वर-वसंत को न स्मरई ॥१०॥

—वही पृ० ५६-५७

(२) नारी-सौन्दर्य

दीख कुमारि विजनें सोवनघरें । लक्ष्मि न्याइँ नवकमल-दलंतरें ।
जिन-शासने छै जीव-दया इव । पंडित मरनें सुगति-वरिमा इव ।
मुख-मारुतें मलय-वन-राजि'व । सिंहलद्वीपें रतन-विख्याति'व ।
सोहै दर्पणें क्रीडाँ करंती । चिकुर - तरंग - भंग विवरंती ।
सो स्फटिकातरेहिँ तहिँ पेखइ । सापि तासु आगमन न लक्खई ।

घत्ता । जनु मन्मथ-भल्ल-विंधानशील युवान-जनें ।
ताहि पेखिय कांति, विस्मेउ झट्ट कुमार मनें ॥८॥

उत्पलदल-दीरघ-पायहिँ । नख-मणि-किरण-करवित-छायहिँ ।
जंघ-उरू-गुह्यान्तर-पासइँ । सुनिवसितैं झीन परिवासइँ ।
पोतांतर-उद्भिन्न-प्रयासइँ । तेहिँ वह संति पिहित-परिहासैं ।
विकट - नितब-विंब सोहिल्लउ । राजै अर्द्धोअर्द्ध कटिल्लउ ।
रोमावलि वलि अंगें विभावै । थिउ पिपीलि-रेखा इव नावै ।
रसना-दाम-निबंधन सोहै । किंकिणि रण-झणंत मन क्षोभै ।
सम-चक्कर कटितट कृश-मध्यउ । आवे करतल-मुष्टिहु ग्राह्यउ ।
त्रिवलि-तरंगइ नाभीमंडल । ननु आवंता ऋद्धि-महाजल ।

पीणुन्नय-निबिडइँ थणवट्टइँ । निब्भिदइँ हारावलि थट्टइँ ।
मालइ-माला कोमल-बाहउ । रयण-कडय-केऊर-सणाहउ ।
सरलंगुलि सुरेह कोमल कर । संझा-वयव नाइँ नहतंबिर ।
रयणाहरण विहूसिय कंठि । वेलामिरि'व उयहि-उवकंठि ।
किउ अपमाणु णिउत्तु मुहुल्लउ । अहरउ नावइ दाडिम-हुल्लउ ।
उत्तुगिं तिक्खग्गें नासि । पच्छन्नेण'व अमुणिय सासें ।
कन्निहिँ कुडल-जुअ-गंडयलिहिँ । नयणिहिँ दीह-कसण-चलधवलिहिँ ।
भउहा-जुअलएण सुविहत्तें । भालयलेण अद्ध-ससिपत्तें ।
महुपिय-पेसल महुरालावि । सिरु आवंचिय केस-कलावि ।
सो पिक्खेवि अणोवमरूवें । अच्छेरइँ विब्भम संभूवें ।
बोल्लाविय नायइ-परिहासइँ । मणहर-कामुक्कोवण-भासइँ ।
"हे मालूर[1]-पवर-पीवर-थणि । अच्छहिँ काइँ इत्थु वज्जिय जणि ।
कारणु काइँ नयरु ज मुन्नउँ । मढ-विहार-देहुरहिँ रवन्नउँ ।
राणउ कवणु आसि इह राउलि । धय-तोरण-मणि-खभ-रमाउलि ।"
तं निसुणेवि सलज्जिय-वयणी । थिय हिट्ठामुह पगलिय-नयणी ।
मइल-कवोल कज्जला मीमिय । नियकुल-देवयाइँ मं भीमिय ।
घत्ता । वरइत्तु पुत्तियहु तउनणउ, मुहकमलु निहालहिँ करि विणउ ।
लइ जलु पक्खालहि लोयणइँ, म चिरु करि दुक्खुक्कोयणइँ ॥

—वही पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निय-पुत्त-विढत्तु पिक्खेवि अतुलु महाविहउ ।
वट्टिउ मिगारु पइ परिहरिउ, परिहरिविगउ ॥
कमलइँ पुत्त-पयाव फुरंतिएँ । लइउ दिव्वु आहरणु तुरंतिए ।
बद्धु कडिल्लि अलक्खिय नामउ । उप्परि पीडिउँ रसणादामउ ।

---

[1] कपित्थ (कंथ)

पीनोन्नत-निविडइँ स्तनवट्टैँ । निर्भिदैँ हारावलि ठट्टैँ ।
मालति-माला - कोमल - बाहउ । रतन - कटक - केयूर - सनाथउ ।
सरलांगुलि-सुरेख कोमल कर । सन्ध्या'वयव न्याइँ नभ-तामर ।
रतनाभरण - विभूषित कठे । वेलाश्री'व उदधि - उपकंठे ।
किउ अपमान अनूप-मुखल्लउ । अधरउ नावइ दाडिम-फुल्लउ ।
उत्तुगे तीक्ष्णाग्रे नासेँ । प्रच्छन्नेँहिँ 'व अज्ञात श्वासेँ ।
कर्णे कुंडल-युग गण्ड-स्थले । नयनेहिँ दीर्घ-कृष्ण-चल-धवले ।
भौँहा युगलएहिँ सुविभक्ते । भाल-तलेहिँ अर्ध-शशि-पत्रे ।
मधु-प्रिय-पेशल-मधुरालापेँ । शिर आच्छादिय केश-कलापेँ ।
सो पेखिया अनूपमरूपा । अप्सराँइँ विभ्रमसं-भूता ।
वोलेरू नागर-परिहासइँ । मनहर-कामु-स्कोपन-भाषइँ ।
"हे मालूर प्रवर-पीवर-थनि ! आछेहि[1] काह इहाँ वर्जित-जनेँ ।
कारन काइँ नगर जो सूना । मठ-विहार-देवलहिँ रमन्ना ।
राना कवन आसि[2] एहि राउलेँ । ध्वज-तोरण-मणिखंभ समाकुले ।"
सो सुनियाउ सलज्जिय-वदनी । थिउ हेट्ठामुख पघरिय-नयनी ।
मइल-कपोल कज्जला-मिश्रिय । निजकुलदेवताइँ जनु भीषिय ।
घत्ता । वरयात पुत्रियह तवकेरउ, मुखकमल-निहारहिँ करि विनय ।
लेइँ जल पक्खारै लोचनइँ, जनु चिर करि दुःखुत्कोचनइ ॥
—वही पृ० ३२-३३

(३) आभूषण-सज्जा

निज पुत्र विदग्धता पेखि, अतुल महाविभव ।
वाटेँउ शृंगार पति परिहरेँउ गउ ॥
कमला पुत्र-प्रताप स्फुरंतिएँ । लयेँउ दिव्य-आभरण तुरंतिएँ ।
बाँधु कटिल्लि अलक्षित-नामउ । ऊपर पीडेँउ रसनादामउ ।

---

[1] रमणीय [2] हो

मुक्कउ किंकिणीउ नउ सकिउ । भरिबि रयण-कंचुकउ तडक्किउ ।
मुद्ध मराल-जुयलि किउ छन्नउँ । कंबुकंठ कंदलिए रवन्नउँ ।
पीण-घणत्थण-मंडल-हारि । सिरु धम्मिल्ल-कुसुम-पब्भारि ।
कन्नहिँ कुडलाइँ आइद्धइँ । उप्परि वेढियाइँ पहचिंधइँ ।
पूरिउ रयण-चूडु मणि-वलयहों । दिन्नइँ केंउरइँ बाहु-लयहो ।
अंगुलीय मणि मुज्जावत्तउ । बीसहिँ अंगुलीहिँ पक्खित्तउ ।
पय-मणिवद्धय नेउर-जुयलउ । सुह-सजनिय महुर-रव-मुहलउ ।
जघाजुयलि रयण पज्जत्तउ । कडियलि[1] रसण-कणय-कडि-सुत्तउ ।
मुहि मणि-चूडहों कंकण जुयलउ । सोहिउ अद्धहारि वच्छयलउ ।
एमाहरणु लेवि सविसेसि । थिय नंदणहों बियडि परिओसि ।
—वही पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता । तो वुच्चइ अहरु पुरतियइँ णिवसतिहि तउतणइँ घरि ।
उप्पाइय केणवि भंति पहु, जा सा कहि म हियइ धरि ॥७॥
तुहुँ पुरवरहों सव्व-साहारणु । जाणहिँ कज्जाकज्ज-वियारणु ।
णवर णिरारिउ विप्पियगारउ । सुहियउ होइ संगु तुम्हारउ ।
सेविज्जति विचित्त सणेहउ । मंछुड तुहुँ जिण जम्मिबि एहउ ।
तो वरडत्ति वुत्तु अवकउ[2] । को सक्कइ तउ करिवि कलंकउ ।
हउमि णाहि तउ विप्पिय-गारउ । जाणहिँ तुहुँ जि सगु अम्हारउ ।
णवर ण जाणमि काइमि कारणु । जाउ असत्थ पियम्म निवारणु ।
केम कंतिपइँ मणिण कलकमि । खणमित्तु'बि देक्खणहँ न सक्कमि ।
मउ-चलंति णिघंतहों णयणइँ । अणशमऊ करंति तव वयणइ ।
घत्ता । अच्छंतु ताम पियविप्पियइँ, एक्कंगणिबि म रइ करहि ।
परियाणिबि एही कज्जई, ज जाणहिँ त मणि धरहि ॥८॥

---

[1] कटितल [2] अ-कुटिल

मुक्तउ किंणीउ ना शकेँउ । भरिउ रतन-कंचुकउ तड़क्कउ ।
मूर्ध मराल-युगलेँ किउ छन्नउ । कंबुकठ-कदलिएँ रमन्नउ[1] ।
पीन-घन-स्तनमडल-हारेँ । शिर-धम्मिल-कुसुम-प्रब्-भारेँ ।
कर्णहिँ कुंडलाइँ आबद्धेँ । ऊपर बेठियाइँ प्रभ-चिन्हेँ ।
पूरेँउ रतन-चूड मणि-वलयहोँ । दीनी केयूरइँ वाहुलतहोँ ।
अंगुलीय-मणि मुंजावर्त्तउ । वीसहिँ अंगुलीहि प्रक्षिप्तउ ।
पद-मणि-वद्धेउ नूपुर-युगलउ । सुख-संजनित मधुर-रव-मुखरउ ।
जंघा-युगलेँ रतन-प्रज्-जुत्तउ । कटितलेँ रसन-कनक-कटिसूत्रउ ।
मुखेँ मणि-चूडहोँ कंकण-युगलउ । सोहेँउ अर्धहार वक्षतलउ ।
ए आभरण लेइ सविशेषेँ । ठिय नंदनहोँ विकट परितोषेँ ।
—वही पृ० ६७-६८

(४) विरह-वर्णन

घत्ता । तो वोले अधरफुरंतियइँ, निवसंतिहि तवकेर घरे ।
उत्पादिय कैसेँहुँ भ्रान्ति प्रभु, या सा काहि न हृदय धरे ॥७॥
तव पुरवरहोँ सर्व-साधारण । जानेँ कार्याकार्य-विचारन ।
केवल अत्यन्त विप्रिय-कारउ । सुहृदउ होइ संग तुम्हारउ ।
सेविज्जइँ विचित्र-सनेहउ । मत्सर तोहि न जन्मेँउ एहउ ।
तो वरयातो वोल अवंकउ । को सक्कै तव करव कलंकउ ।
होँहु नाहि तव विप्रिय-कारउ । जानै तुहुँहु संग हम्मारउ ।
केँवल न जानोँ काहुउ कारण । जाउ अस्वस्थ प्रियम्म्[2]-निवारण ।
केम कांति तेइँ मनेहिँ कलंकउँ । क्षणमात्रउ देखवहु न सक्कउँ ।
मद चलंति देखंते नयनइँ । अनरामउ[3] करंति तव वदनइँ ।
घत्तो । रहै ताँह प्रिय-विप्रियइँ, एकांगनेहु न रति करहि ।
परि-जानिय एँहि कार्यगती, जो जानहि सो मनेँ धरहि ॥८॥

---

[1] था [2] प्रेम, प्रियतम [3] अनभीष्ट

णिसुणिवि तासु परम्मुह वयणइँ । मुहुँ मउलिउ जलभरियइँ णयणइँ ।
हियवइ निब्भरु मणु सम्मारिउ । "दुक्खु दुक्खु" पुणु मणु साहारिउ ।
थिय गरुयाहिमाणि मणु लाइवि । मच्छरु माणु मरट्टु पमाइवि ।
णउ पहसइ णउ तणुसिंगारइ ।
णउ केणवि सहु णयण-कडक्खइ । णउ कासुवि गुणदोसइँ अक्खइँ ।
तोबि ताहँ घरवइ ण सुहावइ । अवखेरतु पुणुवि बोल्लावइ ।
अच्छहिँ काइँ एत्थु दुक्कदिरि । णीसरु कंति जाहि पियमदिरि ।
त दुव्वयण वासु असहती । णिग्गय परिमणु आउच्छंती ।
—वही पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार, राजांगण

रायगणंगणि पयडिवि दुट्ठहों दुच्चरिउ ।
तं निसुणहु जेम भविसयत्ति-जसु वित्थरिउ ।
दाइय दुप्पपंचु आयण्णिवि । माण-कसाय-सल्लु मणिमन्निवि ।
हरियत्तहों मकेउ समासिवि । कमलदलच्छि लच्छि सवासिवि ।
नियय जणेरि वयण सपेसिवि । पुव्वावर मकेउ गवेसिवि ।
बहु नवल्ल पाहुडइँ समारिवि । चदप्पहु जिणवरु जयकारिवि ।
निग्गउ वणिवरिंदु पहुवारहों । भडथड-निवह-विसम-सन्चारहों ।
जहिँ गय गुलगुलंति पिहु जगम । हिलिहिलंति तुक्खार-तुरंगम ।
जहिँ मंडलिय मक्क-सामंतहँ । निवडिय कणयदडु पइसंतहँ ।
गलइ माणु अहिमाणु न पुज्जइ । निय-सच्छंद-लील नउ जुज्जइ ।
जहिँ अब्-भोट्ट[1] जट्ट जालंधर । मारुअ-टक्क-कीर-खस-बब्बर ।
मरु-वेयंग-कुंग-वेराडवि । गुज्जर-गोड-लाड-कण्णाडवि ।
इय एमाइ अउव्व-वसुधर । अवसरु पडिवालंति महानर ।

---

[1] देशोंके नाम

सुनिया तासु परामुख-वचनै । मुख मुकुलेँउ जल भरियउ नयनै ।
हियवइ निर्भर मन संभारेँउ । "दुःख दुःख" पुनि मन संधारेँउ ।
ठिउ गरुआभिमान मन लाइय । मत्सर-मान-दर्प प्र-मार्जेउ ।
ना प्रहसै ना तनु शृंगारै । .....।
ना काहुहिँ सँग नयन कटाक्षै । नहि कामुउँ गुण-दोषै आखै[1] ।
तोहु ताहँ घरपति न मोँहावै । अपमानँत पुनिहू बोलावै ।
"अछहि काहँ इहाँ दुष्-कंदिरेँ । नीसरु कांत ! जाहि प्रियमंदिरेँ ।"
सो दुर्वचन-वास असहंती । निर्-गउ परिजन आ-पूछंती ।
—वही पृ० १०-११

५—सामन्त-समाज

(१) राजद्वार राजांगण

राजांगण जाई प्रकटिउ दुष्टहँ दुश्चरितू ।
सो सुनहु जिमि भविषदत्त-यश विस्तरिउ ॥
दर्शिय दुष्प्रपंच आकर्णिय । मान-कषाय-शल्य मनेँ मानिय ।
हरिदत्तहोँ सकेत समासेँउ । कमलदलाक्षि-लक्ष्मि संवासेँउ ।
निजहिँ जनेरि-वचन सप्रेषिय । पूर्वापर संकेत गवेषिय ।
वहु नवल्ल पाहुरइँ[2] सँभारिय । चंद्रप्रभ-जिनवर जयकारिय ।
निर्-गउ वणि-वरेंद्र प्रभु-द्वारहोँ । भट-ठट-निवह-विषम-संचारहोँ ।
जहँ गज गुलगुलंति पृथु जंगम । हिलहिलंति तूषार-तुरंगम ।
जहँ मडलियेँ शक्र-सामन्तहँ । वारेउ कनकदंड पइसंतहँ ।
गलै मान अभिमान न पुज्जै । निज-स्वच्छंद लील ना जुज्जै ।
जहँवाँ **भोट-जट्ट-जालंधर । मारुव-टक्क-कीर-खस-बर्बर ।**
मरुवे - अंग - कुग - वैराटउ । गुर्जर - गौड - लाट - कर्नाटउ ।
ई एताइं अपूर्व-वसुंधर । अवसर प्रतिपालंति महानर ।

---

[1] बोलै [2] प्राभृत (=भेंट)

घत्ता। सामंत-सएँहिं ज सेविज्जइ रत्तिदिणु।
तं रायदुवारु पिक्खिवि कासु न खुट्टइ मणु॥

—वही पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता। चिन्हइँ दरिसंतु महत्तरइँ, सज्जण-जण-हियवउ भरइ।
आणद णंदि-कलयल-रवेण. उज्झासाल पईसरइ॥
तहिवि तेण गुरु वयण णिउत्तिं। परमागम-कल-गुण-सजुत्ति।
पुणि अक्खर संकेय-कयत्थें। बहु वायरण-सद्द-सत्थ-त्थें।
सयलकला-कलाव-परियाणिय। अवगाहण-सत्तिए लहु जाणिय।
जोइस-मत-तंत बहु-भेयइँ। धणु-विन्नाण बाण-गुण-छेयइँ।
विविहाउहइँ विविह-संवरणइँ। रणि हत्थापहत्थ-वावरणइँ।
दिण्ण पहर पडिपहर पमुक्कइ। लक्खण-चलण-चच्चला हुक्कइँ।
मल्लजुज्झ आवग्गण-संचइ। ढोक्कर-कत्तरि करण पवंचइँ।
गय-तुरंग-परिवाहण मन्नइँ। मारासार-परिक्खण [1]गन्नइँ।
घत्ता। एमाइ विसिट्ठइँ अण्णहिँमि अगउ गुणिहिँ तासु वरिउ।
जिण महिम पुज्ज दाणोच्छविण उज्झासालहिँ णीसरउ॥२॥
उज्झासाल मुएँवि घरु आयहों। थिर-गभीर-गुणिहिँ विक्खायहों।

—वही पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

पढमउँ पहरंतएँ सामिसालि। परिभमिय विसम-भंडण-करालि।
भडथडु अप्पं परिहोइ जाम। पाइक्कहों पसरु न होइ ताम।
तं मंतिहु वयण सुणेवि तेण। अवलोइय नर हरिसियभुएण।
दिट्ठइँ सम्माणइँ जोह जाम। पाइक्कहों पसरु न होइ ताम।

---

[1] ग्रहण करते हैं

घत्ता। सामंत शतेँहिँ जो सेविज्जै रात्रिदिन।
सो राजदुवारहँ पेखि कासु न खुट्टै मन॥

—वही पृ० ७१

(२) सामन्ती युगकी शिक्षा

घत्ता। चिन्हैँ दर्शन्न महत्तरहिँ, सज्जन-जन-हृदयउ भरै।
आनंदनंदि-कलकल-रवेहिँ',पाध्या-शाला[1] पईसरै॥

तहोँ तेहिँ गुरुवचन-नियुक्ते। परमागम-कलॉ-गुण-संयुक्ते।
पुनि अक्षर-संकेत-कृतार्थे। वहु व्याकरण-शब्द-शास्त्रार्थे।
सकल-कला-कलाप-परिजानिय। अवगाहन शक्तिएँ वहु जानिय।
ज्योतिष-मंत्र-तंत्र बहुभेदइँ। धनु-विज्ञान वाण-गुण-छेदइँ।
विविध-आयुधइँ विविध-सवरणैँ। रणेँ हस्त-नपहस्त व्यापरणैँ।
दीनु प्रहर प्रतिप्रहर प्रमुचइँ। लक्षण-चलन-चंचला-हुक्कइँ।
मल्लयुद्ध आवल्गन मचइँ। ढोक्कर-कर्त्तरि-करन प्रपंचइँ।
गज-तुरग-परिवाहन मंजइँ। सारासार-परीक्षण गिन्नइँ।

घत्ता। एताइँ विशिष्टइँ, अन्यहँउ अगउ, गुणेहिँ तासु वरिऊ।
जिन-महिम-पूज-दानोत्सवेँहिँ,' पाध्याशालहिँ नीसरिऊ।

पाध्याशाल मुचि घर आयउ। थिर-गंभीर-गुणेँहिँ विख्यायउ।

—वही पृ० ८

(३) युद्ध (भविषदत्तका)

प्रथमउँ प्रहरंतउ स्वामिशाल। परिभ्रमिय विषम-भंडन कराल।
भट-ठट आपा-परिहोइ जाहँ। पायक्कहोँ पसर न होइ ताहँ।
सो मंत्रिहु वचन सुनीय तेहिँ। अवलोकेँउ नर हर्षित-भुजेहिँ।
दृष्टैँ सम्मानैँ योध जाहँ। पाइक्कहोँ प्रसर न होइ ताहँ।

---

[1] उपाध्यायशाला, पाठशाला

पसरइ साकेय-नरिद-सिन्नु । रोमंच उच्च कंचुअ पवन्नु ।
हरि-खर-खुर-रवि खोणी खणंतु । गयपय पहारि धरदरमलंतु ।
"हणु मारि मारि" कलयलु करालु । सन्नद्ध वद्ध भड-थडव मालु ।
त निएँवि सधणु अहिमुहुँ चलतु । धाइउ कुरु साहणु पडिखलंतु ।

घत्ता । कलयल-गभीरइँ दिन्नसरीरइँ, हय-रणभेरि-भयंकरइँ ।
कुरुपोयणवल्लहँ अणिहय-मल्लहँ भिडियइँ बलइँ समच्छरइँ ॥

दुवई । सो हरि-खर-खुरग्ग-सघट्टि छाइउ रणु अतोरणे ।
ण भड-मच्छरग्गि-सधुक्कण धूमतमंधयारणे ॥

धूलीरउ गयणंगणु भरतु । उट्ठिउ जगु अंधारउ करंतु ।
नउ दीसइ अप्पु न परु स-खग्गु । न गडंदु न तुरउ न गयणमग्गु ।
तेहवि काले अविसट्ट-मोह । हुकारहु पहरु मुअति जोह ।
किवि आहणति दिसि बहु मुणेवि । गय-गज्जिउ हय-हिसिउ सुणेवि ।
किवि कोक्किवि पडिसद्दहों चलति । असि-मुट्ठिए निय-लोयण मलति ।
धावतु कोवि अहियाहिमाणु । गयदंतहिँ भिन्नु अपिच्छमाणु ।
कत्थइ पहराउर[1] अयममोह । गयघड पयट्ट निहणति जोह ।
रउ नट्ठु विहिंडिउ भडबलेण । महि मुद्दिय वण-मोणिय-जलेण ।

घत्ता । तो गय-घड पिल्लिउ सुहडहिँ मिल्लिउ अवरुप्परि कप्परियतणु ।
सरजालो मालिउ पहर करालिउ, भमरावत्तिं भमिउ रणु ॥

दुवई । तो इक्कवयकन्न-पगुरणहिं सुहडहिँ नारसिंहहिँ ।
दढ-दाढ़ा-कराल-मुह-भासुर लोललत जीहाहिँ ॥१॥

खज्जंतु भमिउं करवट्ट सिन्नु । ओसारु निविड गयघडहिँ दिन्नु ।
तेहइ वि कालि सोंडीर-वीर । पहरंति सुहड संगाम-धीर ।
केणवि कासुवि असिधाउ दिन्नु । उरु सिरु स-खग्गु भुअ-दंड छिन्नु ।
असि वाहइ कोवि गलद्ध सेसु । हत्थेण धरेवि पडंतु सीसु ।

---

[1] प्रहार से पीडित

पसरै साकेत-नरेन्द्र शीर्ण । रोमांच उच्च-कंचुक प्रॉवरण ।
हरि-खर-खुर-रवें क्षोणी खनंत । गजपदप्रहरें धर दरदरंत ।
"हन, मार,मार" कलकल-कराल । सन्नद्ध बद्ध भटठटहँ माल ।
सो निजहु स-धनु अभिमुख चलंत । धायेंउ कुरु-साधन[1] प्रतिखलंत ।

घत्ता । कलकल-गभीरउँ, दीर्णशरीरउँ, हत-रणभेरि-भयंकरईं ।
कुरुउनवल्लभ, अनिहत-मल्लहँ, भिडियें वलइँ समत्सरईं ॥

द्विपदी । तो हरि-खॉर-खुराग्र-सघट्टें, छाइउ रणुअतोरणे ।
जनु भट-मत्सर-'ग्नि-सधुक्षण धूमनम'न्धया रणे ॥
धूली-रज गगनागणें भरंत । उट्ठेउ जग-अंधारउ करंत ।
ना दीसै आपु न पर स-खड्ग । न गयंद न तुरग न गगन-मार्ग ।
तेहिइ काले अ-विसृष्ट-मोह । हुकारहु "प्रहरु" मुँचति योध ।
केउ आ-हनति दिशि-बधु मॉनेइ । गज-गर्जन हय-हिन्हिन सुनेइ ।
केउ कोक्किउ प्रतिशब्दहु वदति । असि-मुष्टिहिं निज-लोचन मलंति ।
धावंत कोंइ अधिकाभिमान । गजदंतहिं भिन्दु आपृच्छमान ।
कतहूँ प्रहरातुर अयश-मोह । गजघट-प्रवृत्त नि-हनंति योध ।
रज नष्टउ हिंडिउ भटवलेहिं । महि मुद्रिय व्रण-शोणित-जलेहिं ।

घत्ता । गजघट पेल्लेंउ सुभदेहिं मिल्लेंउ, अपरोपरि कर्परिय तनू ।
शरजालो मालेउ, प्रहर करालेउ, भ्रमसावर्त्तें भ्रमेंउ रणू ॥

द्विपदी । तो एकहिं एक प्रागुरणहि सुभटहिं नरसिंहहिं ।
दृढ दष्ट्रा-कराल मुख-भासुर लोललंत जीभहिं ॥
खाद्यंत भ्रमिउ कर-वाहँ-शीर्ण । ओसार निविड गजघटहिँ दिन्न ।
तेहिई काल शौडीर-प्रवीर । प्रहरंति सुभट संग्राम-धीर ।
केहुउ काहुहिं असिघाउ दिन्न । उरु-शिर स-खड्ग भुजदंड छिन्न ।
असि वाहै कोउ गलार्ध-शेष । हाथेहिं धरेउ पडंत-शीश ।

---

[1] सेना

केणवि आरोडिउ लवकन्नु । वचेवि फरसु कुतेण भिन्नु ।
केणवि रणि तज्जिउ एक्कवाउ । विज्जाहर करणिं दिन्नु घाउ ।
केणवि ढुक्कंतु ललतु जीहु । दोखंडिवि पाडिउ नारसीहु ।
कत्थइ कडु आविय गयहँ पंति । परिभमिय सुहड सीसइँ दलंति ।
कत्थइ पहराउर दुन्निवार । हिडिय[1] तुरंग पडि आसवार ।
कत्थइ सरोहु वण सोणियंधु । सुरहिउ करि नरकेसरिहि खधु ।
एहइ वट्टंतए रणि असक्कि । मतणउं जाउ महिवाल चक्कि ।
"अहो ! अच्छइ हु काइँ निरावसन्न । कुरुवइहि ओसारिय लंवकन्न ।
मंछुहु दुज्जउ भूवाल राउ । दीसइ धणपइ-सुउ वहु-पसाउ" ।
तं मंतिवयणु हियवइ धरेवि । उट्ठिय सयलवि समहरु करेवि ।
घत्ता । महिवइ सामंतिहिँ समरि भिडतिहिँ कुरुवइ साहणु ओसरिउ ।
दिढ पहर करालिउ समरस-जालिउ, रणमहि मिल्लिवि नीसरिउ ॥१५॥
दुवई । भग्गइ सामि मिन्नि पइमनए पसरिवि नियथमडले ।
निरु खलभलिय गाम-पुर-पट्टण, नहिँ कुरुभूमि-जगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीं सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२) ।

१—तैलप-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

इणि राजिइँ नहु काजु, भोज-गुणागर तूह विणु ।
काठ दिवारउ आज, जिम जरई भोजह मिलूं ॥

---

[1] भटका फिरता ह

काहुहि आलोडेँउ लंबकर्ण । वंचाइ परशु-कुतेहिँ भिन्न ।
काहुहिँ रणेँ तर्जेँउ एक बाव । विद्याधर-कर्णे, दिन्न घाव ।
काहुहि ढुक्कंत ललंत जीभ । दोखंडउ पातेँउ नारसीह ।
कतहूँ कउ आवी गजहँ पंक्ति । परिभमिय सुभट शीशेँ दलंति ।
कतहूँ प्रहरातुर दुर्निवार । हिंडिय तुरंग, पडिया सवार ।
कतहूँ सरोष व्रण-शोणित'न्ध । सुरभिउ करि नरकेसरिहि खंध ।
ऐसेँइँ होवंते रणेँ असक्केँ । मत्रण हुई महिपाल-चक्र ।
"अहोँ ! आछै काइं निरावसन्न । कुरुपतिहिं ओसारेँउ लवकर्ण ।
निश्चय दुर्जय भूपाल राव । दीसै धनपति-सुत वहु-प्रसाद ।"
सो मत्रिवचन हृदयहिँ धरेइ । उट्ठिय सकलउ समहर करेइ ।

घत्ता । महिपति सामंतहिँ समर-भिडतहिँ, कुरुपति-साधन अपसरेँऊ ।
दृढ-प्रहरकरालउ, समर-मज्वालेँउ, रण-महि, मेलिय नीसरेऊ ॥१५॥

द्विपदी । भागै स्वामि शीर्ण पइसतएँ पसरेँइ निजय-मडले ।
अति-खलबलिय ग्राम-पुर-ट्टपन, तहँ कुरुभूमि-जंगले ॥

—वही पृ० १०२-१०३

४ : ग्यारहवीँ सदी

§ २५. अज्ञात कवि

काल—१०१० (भोज-काल १००९-४२) ।

१—तैलप[1]-पराजित मुंजकी विपदा

(१) मुंजका पश्चात्ताप

एहि राजहिँ नहिँ काज, भोज गुणागर ताहि विनु ।
काठ दिवारउ आज, जिमि जाई भोजहँ मिलौँ ॥

---

[1] चालुक्यराज तैलप

सामिय अतिहिं अजाणु, जं इण परिबोलइ हियइ ।
जाण्या एहु प्रमाणु, कीधउं जं न कयत्थियइ ॥
—[1]प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! अम्हारी सीष, कीजइ अवगणिअइ नहीं ।
तूं चालंती भीष , इणि मंत्रिहिं हुस्यइ सही ॥
रुलियउं रायह राजु, तइं बइठइ मइं लघियइ ।
ए पुणि वडउं अकाजु, तूं जाणे मालव-धणी ॥
सामी मुह तउ वीनवइ, ए छेहलउ जुहारु ।
अम्ह आइसु हिय सीसि, तुह पडतउं देषूं छारु ॥
—प्र० चि० पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

झोली तुट्टवि किं न मुअ, किं हुउ न छारह पुजु !
हिण्डइ दोरी दोरियउ, जिम मकडु तिम मुज ॥
चित्ति विसाउ न चितियइ, रयणायर गुण-पुजु ।
जिम जिम वायइ विहिपडहु, तिम नाचिजइ मुजु ।
सायरु षाईं लंकगढु, गढवइ दसशिरु राउ ।
भग्ग षई सो भंजि गउ, मुंज म करिसि विसाउ ॥
गय गय रह गय तुरयगय, पायक्कडानि भिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मंतणउं, महता रुद्दाइच्च ॥
—प्र० चि०, पृ० २३

---

[1] प्रबंध-चिंतामणि, विश्व-भारती, शांति-निकेतन (संवत् १९८९)

स्वामिय अतिहि अजान, जो इन पर बोलै हिय ।
जान्या एहु प्रमाण, कीधौं जो न कदर्थियइ ॥
—प्रबंध चिंतामणि, पृ० २२

(२) रुद्रादित्यकी तैलप पर न चढ़नेकी सलाह

देव ! हमारी सीख, कीजै औगनियै नहीं ।
तू चालंती भीख, इन मंत्रिहिं होइह सखी ॥
रुलियउ राजहँ राज, तैं बइठै मैं लघियइ ।
ए पुनि वडो अकाज, तू जाने मालव-धनी ॥
स्वामी मुखतें वीनवै, यह पाछिउ जुहार ।
मोहिं आयसु हिय शीश तुह, पडतो देखूं छार ॥
—प्र० चिं०, पृ० २२

(३) मुंजसे तैलपका भीख मँगवाना

भोली टुट्टी की न मुअ, कि हुअ न छारह पुज ।
हिंडै[1] डोरी डोरियउ, जिमि मर्कट तिमि मुंज ॥
चित्तें विषाद न चिंतियइ, रतनाकर गुण-पुंज ।
जिमि जिमि बाजै विधि-पटह, तिमि ना चिज्जै मुंज ॥
सागर खाईं लंक-गढ़, गढपति दश-शिर राव ।
भाग्य क्षयी सो भंजि गउ, मुंज ! न करहि विषाद ॥
गयें गज रथ गयें तुरग गयें पायकडानउ भृत्य ।
सर्गे ठिउ करि मंत्रणा, महता रुद्रादित्य ॥
—प्र० चिं०, पृ० २३

---

[1] घूमता है, भटकता है

२—सुखी कुटुंब

भोली मुन्धि म गव्वु करि, पिक्खवि पहु-रुवाइँ ।
चउदह-सइँ छहुत्तरइँ, मुंजह गयह गयाइँ ॥
च्यारि वइल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बुल्ली नारि ।
काहू मुज कुडंबियहँ, गयवर वज्झइँ वारि ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

३—दासी[1]-प्रेम-निंदा

दासिहिँ नेह न होइ, नाना निग्गहीँ जाणियइ ।
राउ मुंजेसरु जोइ, घरिघरि भिक्खु भमाडियइ ॥[2]
वेसा छंडि वडायती, जे दासिहिँ रच्चंति ।
ते नर मुजनरिन्द-जिम, परिभव घणा सहंति ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

४—नीति-वाक्य

जे थक्का गोला नई, हूँ वलि कीजूं ताह ।
मुज न दिट्ठउ विहलिऊ, रिद्धि न दिट्ठ खलाहँ ॥
जा मति पच्छइ सम्पजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुज भणइ मृणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

५—वैराग्य

कमु करु रे पुत्त कलत्त धी कमु करु रे करमण वाडी ।
एकला आइवो एकला जाइबो हाथ-पग बेहु झाडी ॥
—प्रबंधचिंतामणि, पृ० ५१

---

[1] मृणालवती [2] घुमाती है

२–सुखी कुटुंब

ाली मुग्धे ! न गर्व करु, पेखेँवि प्रति-रूपाइँ ।
चौदहसै छेहत्तरा, मुंजह गजह गताइँ ॥
ारि बहल्ला धेनु दुइ, मिट्ठा-बोली नारि ।
काह मुज ! कुटुंवियइँ, गज-वर बाँधे द्वारि ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

३–दासी-प्रेम-निंदा

सिहिँ स्नेह न होइ, नाना निरखी जानियइ ।
राव मुंजेश्वर जोइ, घर-घर भीख भ्रमावई ॥
ा छाडि वडायती, जे दासिहिँ रंजंति ।
ते नर मुज-नरेन्द्र जिमि, परिभव घना सहंति ॥
—प्र० चिं० पृ० २४

४–नीति-वाक्य

थाके[1] गोदा नदी, हौँ वलि कीजौँ ताह ।
मुज न देखेउ विहरियउ, ऋद्धि न दीसु खलाहँ ॥
मति पाछे ऊपजै, मा मति पहिले होइ ।
मुज भनै मृणालवति, विघन न वाढै कोइ ॥
—प्र० चिं०, पृ० २४

५–वैराग्य

ासुकर रे पुत्र-कलत्र-धी कासुकर रे कर्षण-वाडी ।
एकले आइव एकले जाइव हाथ-पग दोनौँ झाडी ॥
—प्रबंध चिंतामणि. पृ० ५१

---

[1] ठैर रह्यो, ठहर जाय

§ २६. अब्दुर्रह्मान[1]

काल—१०१० ई० । देश—मुल्तान । कुल—जुलाहा (मीरसेन । मीरहसन)

१—परिचय

अणुराइयरयिहरु कामिय-मणहरु, मयण मणह-पह-दीवयरो ।
विरहिणिमइरद्धउ सुणहु विसुद्धउ, रसियह रस-संजीवयरो ॥२२।
अइणेहिण भासिउ रइमइवासिउ, सवणसकुलियह अमिय सरो ।
लइ लिहइ वियक्खणु अत्थह लक्खणु, सुरइ-संगि जु विअड्ढ-नरो ॥२३।

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिकको रोकती है)

धम्मिलउ मुक्कमुह, विज्जंभइ अरु अंगु मोडई ।
विरहानलि संतविअ, ससइ दीह कर-साह तोडई ।
इम मुद्धह विलवंतियह महि चलणेहि छिहंतु ।
अद्धुड्डीणउ तिणि पहिउ पहि जोयउ पवहंतु ॥२२।
तं जि पहिय पिक्खेविणु पिअ-उक्कंखिरिया,
मंथर-गय सरलाइवि उत्तावलि चलिया
तह मणहर चल्लंतिय चचलरमणभरि,
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
तं जं मेहल ठवइ गंठि णिट्ठुर सुहय,
तुडिय ताव थूलावलि णवसर-हारलय ।
सा तिवि किवि संवरिवि चइवि किवि संचरिया,
णेउर चरण-विलग्गिवि तह पहि पंखुडिया ॥२७॥

---

[1] **पच्चाए सि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छ वेसो त्थि ।**
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥३॥

§ २६. अब्दुर्रह्मान

त्त अद्दहमाण) (आरद्द) । कृति—संनेह-रासय (संदेश-रासक), शृंगारी कवि ।

१—परिचय

नुरागी-रतिघर कामी-मनहर, मदनमना पथ-दीपकरो ।
विरहिणि-मकरध्वज सुनहु विशुद्धउ रसिकन रस संजीवकरो ॥२२॥
तिस्नेहहिँ भाषेँउ रतिमतिवासित, श्रवण-शष्कुलिहिँ अमृतसरो ।
लये लिखै विचक्षण अर्थहिँ लक्षण, सुरति-संगेँ जोँ विदग्ध-नरो ॥२३॥

२—प्रोषितपतिकाका संदेश

(प्रोषितपतिका पथिक को रोकती है)

शमुक्तमुख जँभाये अरु अंग मोडई ।
विरहानलेँ संतपिय, श्वसै दीर्घ-कर-शाख तोडई ॥
मि मुग्धा विलपंती महिहिँ चरणेहिँ छुवन्ती ।
अर्धोद्विग्ना सा पथिक पथेँ जोयउ चलतो ॥२५॥
हि पथिकहिँ पेखिया प्रियहिँ उत्कंठितिका,
मंथर-गति सरलाइय उत्तावलि चलिया ।
मि मनहर चल्लन्ती चंचलरमणभरी,
छुटी खिसकि रसनावलि, किंकिणि-रव पसरी ॥२६॥
। मेखलहिँ राखि गाँठेँ निष्ठुर सुभगा,
टुटी तबहिँ स्थूलावलि नव-सर-हार-लता ।
ह तेहिँ किछुक उठाइ किछुक तजि संचलिता,
नूपुर चरण लपटिया इमि पथि आ-पडिया ॥२७॥

ह तणयो कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु ।
ाद्दहमाण पसिद्धो संनेहय रासयं रइयं ॥४॥

—संदेशरासक (भारतीय विद्या (बंबई) मार्च १९४२ ई०)

पडिउट्ठिय सविलक्ख-सलज्जिर संभसिया,
तउ सय सच्छ णियसण मुद्धहवि वलसिया।
तं संवरि अणुसरिय पहिय पावयणमणा,
फुडवि णित्त कुप्पास विलग्गिय दर सिहणा ॥२८॥
छायंती कह कह व सलज्जिर णिय करहीं,
कणय-कलस झंपंती णं इंदीवरहीं।
तो आसन्न पहुत्त सगग्गिर-गिरवयणी,
कियउ सद्दु सविलासु करुण दीहरनयणी ॥२९॥
ठाहि ठाहि णिमिसद्धु सुथिरु अवहारि मणु,
पिसुणि किंपि जं जंपउँ हियइ पसिज्जि खणु।
एय वयण आयन्नि पहिउ कोऊहलिउ,
णेय णिअत्तउ तासु कमद्धु'वि णहु चलियउ ॥३०॥
गाहा तं निसुणेविणु राय-मराल-गइ,
चलणंगुट्ठि धरत्ति सलज्जिर उल्लिहइ।
तउ पंथिउ कणयंगि तत्थ बोलावियउ,
"कहि जाइसि हिव पहिय कहँ व तुह आइयउ" ॥४१॥
"णयरणामु सामोरु सरोरुहदलनयणी,
णायर-जन-संपुन्नु हरिस ससिहरवयणी।
धवल-तुंग-पायारिहिं तिउरिहि मडियउ,
णहु दीसइ कुइ मुक्खु सयलु जणु पंडियउ ॥४२॥
तवण-तित्थु चाउद्दिसि मियच्छि वखाणियइ,
मूलत्थाणु[1] सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।
तिह हुंतउ हउँ इक्किण लेहउ पेसियउ.
खंभाइत्तइँ वच्चउँ पहु-आएसियउ" ॥६५॥

---

[1] मुल्तान (मूलस्थान=मूलत्राण ?)

पडि उट्ठी सविलक्ष सलज्जिल संभ्रमिया,
तब सित-स्वच्छ-वसन मूर्धहिँ खसिया।
ढाँकि ताहि अनुसरी पथिक-मिल्लन-मनसा,
फटी कंचुकी क्षुद्र-छिद्र तहँ झलक कुचा ॥२८॥
ढाँकंती कैसहूँ सलज्जिल निज-करहीँ,
कनक-कलश झाँपती मनहुँ इंदीवरहीँ।
नियरे पुनः पहुँचि सगद्गद-गिर-वदनी,
कहेँउ शब्द सविलास करुण-दीरघ-नयनी ॥२९॥
"ठहर ठहर निमिषार्ध सुथिर अवधारु मने,
सुनु जो किछु मैँ भाखौँ हियहिँ पसीजु क्षणे।"
एह वचन सुनि पुनि पथिक कौतूहलियउ,
तुरतहिँ लौटेँउ तासु पदार्धउ ना चलियउ ॥३०॥
गाथा ताहि सुनाइय, राज-मराल-गती,
चरणांगुष्ठहिँ भूमि सलज्जिलसोँ खनती।
इमि पथिकहिँ कनकांगि वहाँ बोलाइयऊ,
"कइँ जाइस हे पथिक ! कहाँसे आइयऊ" ॥४१॥
"नगर नाम सामोरु[1] सरोरुहदलनयनी !
नागरजनसंपूर्ण अहै शशिधरवदनी !
धवल-तुंग-प्राकारेँहिँ त्रिपुरेँहिँ मंडितऊ,
नहिँ दीसै कोँइ मूर्ख सकल जन पंडितऊ ॥४२॥
तपन-तीर्थ चौदिसहिँ मृगाक्षि ! बखानियई,
मूलतान सुप्रसिद्धउ महितलेँ जानियई।
तहँते मोहिँ केहु लेख देइ भेजावियऊ,
खंभातहिँ मैँ जाउँ प्रभूप्रेषियत हउँ" ॥६५॥

---

[1] शाम्बपुर=मुल्तान

एय वयण आयन्नवि सिंधुब्भववयणी,
ससिवि सासु दीहुन्हउ सलिलुब्भवनयणी।
तोडि करंगुलि करुण सगग्गिर-गिर पसरु,
जालंधरि व समीरिण मूंध थरहरिय चिरु ॥६६॥
रुइवि खणद्धु फुसावि नयण पुण वज्जरिउ,
"खंभाइत्तहँ णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह मह अच्छइ णाहु विरह-उल्हावयरु,
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु ॥६७॥
पउ मोडवि निमिसिद्धु पहिय जइ दय करही,
कहउँ किंपि संदेसउ पिय तुच्छक्खरही"।
पहिउ भणइ "कणयंगि ! कहह कि रुन्नयण,
झिज्जंती णिरु दीसहि उव्विन्नमियनयण" ॥६८॥
"जसु णिग्गमि रेणुक्करडि, कीअ ण विरहदवेण।
किम दिज्जइ संदेसडउ, तसु णिट्ठुरइ मणेण ॥६९॥
जंसु पवसंत ण पवसिआ, मुइअ विओइ ण जासु,
लज्जिज्जउँ संदेसडउ, दिंती पहिय पियासु" ॥७०॥
लज्जवि पंथिय जइ रहउँ, हिअउ न धरणउ जाइ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय, कर लेविणु मन्नाइ ॥७१॥
तुह विरहपहर संचूरिआइँ, विहडंति जं न अंगाइँ।
तं अज्ज-कल्ल-संघडण-ओसहे णाह तग्गंति ॥७२॥
कहवि इय गाह पंथिय ! मन्नाएवि पिउ।
दोहा पंचकहिज्जसु, गुरुविणएण सँउ ॥७४॥
पिअ-विरहानल संतविउ, जइ वच्चइ सुरलोइ।
तुअ छड्डिवि हिय अट्ठियह, तं परिवाडि ण होइ ॥७५॥
कंत जु तइ हिअयट्ठियह, विरह विडंबइ काउ।
सप्पुरिसह मरणाअहिउ, परपरिहव-संताउ ॥७६॥

एह वयन काने सुनि सिंधूद्भववदनी,
लेइ दीर्घोष्ण-निश्वास सलिलसंभववदनी ।
कोडि करांगुलि करुण सगद्गद-गिरा कही,
मुग्धा वातेहिँ कदली जिमि थहराय रही ॥६६॥
रोइ क्षणार्द्धहिँ पोँछि नयन पुनि बोलियऊ,
"खम्भातहि को नाम पथिक ! तनु जर्जरिऊ ।
तहँ मम आछै नाथ विरह-उल्लासकर,
अधिक काल चलि गयउ, न आयउ निर्दयर ॥६७॥
यद मोड़हु निमिषार्ध पथिक ! यदि दया करी,
कहौँ किमपि सदेश प्रियहिँ तुच्छाक्षरहीँ ।"
पथिक भनै "कनकांगि ! कहहु किमि रुदिययनी,
खिन्ना दीसै वहु उद्विग्निल मृगनयनी" ॥६८॥
"जेहि निकसे भस्मोत्कर, कीय न विरहदवेहिँ ,
किमि दीजै संदेसडा, ताँसु निष्ठुरहि मनेहिँ ॥६९॥
जासु प्रवास न प्रवसिया, मुई वियोग न जेहि ।
लज्जीअउँ संदेसडउ, देती पथिक ! प्रियेहिँ ॥७०॥
लज्जिय पंथिक ! यदि रहौँ, हियहु न धारिय जाइ ।
गाथा पढियहु एक प्रिय, कर गहि लेहु मनाइ ॥७१॥
'तव विरहचोटहिँ चूरचूर" नष्ट जो ना अँग हुये ।
सो आजकल-मिलन-उत्सहेँहिँ नाथ ठहरे हुये ॥७२॥
कहियउ एँह गाथा पथिक, मनायो प्रिय ।
दोहा पाँच कहीजो, वहुविनयेहिँ सह ॥७४॥
प्रिय-विरहानल संतपित, यदि जाओँ सुर-लोक ।
तोँहि छाड़ी हृदयस्थितहँ, सो पुनि नीक न होइ ॥७५॥
कन्त ! जोँ तोँहिँ हृदयस्थितहिँ, विरह पराजै काहु ।
सत्पुरुषहिँ मारणाधिक, पर-परिभव-संताप ॥७६॥

गरुअउ परिहवु कि न सहउ, पइ पोरिस-निलएण ।
जिहि अंगिहि तू विलसियउ, ते दड्ढा विरहेण ॥७७॥
विरह-परिग्गह छावडइ, पहराविउ निरवक्खि ।
तुट्टी देह ण हउ हियउ, तुअ संमाणिय पिक्खि ॥७८॥
मह ण समत्थिम विरहसउ, ता अच्छहु विलवंति ।
पालीरूअ पमाण पर, धण सामिहि घुम्मति ॥७९॥
संदेसडउ सवित्थरउ, पर मइ कहण न जाइ ।
जो काणगुलि मूंदडउ, सो बाहडी समाइ ॥८१॥
ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ, अंगु विलुलिय अलय,
हुय उब्बिर वयण खलिय विवरीय गय ।
कुकुम कणय-सरिच्छ कति कसिणा वरिया,
हुइय मुध तुय विरहि णिसायर णिसियरिया" ॥८७॥
पहिउ भणइ "पडिउंजि जाउ ससिहरवयणी,
अहवा किंवि कहणिज्जसु महु कहु मियनयणी" ।
"कहउ पहिय ! कि ण कहउ कहिसु कि कहिययण,
जिण किय एह अवत्थ णेहरइ-रहिय-यण ॥९१॥
जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया ।
संदेसड़उ सवित्थरु तुहु उत्तावलउ,
कहिय पहिय ! पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ ॥९२॥
पिअ-विरह-विओए संगमसोए, दिवस-रयणि झूरंत मणे,
णिरु अंगु सुसतह बाह फुसंतह, अप्पह णिद्दय किंपि भणे ।
तसु सुयण निवेसिय भाइण पेसिय, मोहवसण बोलंत खणे,
मह साइम वक्खरु हरि गउ तक्खरु, जाउ सरणि कसु पहिय ! भणे" ।
इहु डोमिलउ भणेविणु निसितम-हरवयणी,
हुइय णिमिस णिप्फंद सरोरुहदलनयणी ।

गरुओ परिभव किन सहौं, तोंहिं पौरुष-निलयँहिं ।
जेहि अंगें हिं तु विलासियौ, सो डाहें उ विरहें हिं ॥७७॥
विरह-परिग्रह देहरिहिं, प्रहरेउ निरपेक्षि ।
टूटी देह न हनें उ हृदय- तुव संमानहिं पेखि ॥७८॥
मैं न समर्था विरह-सँग, सो रहऊँ विलपन्ति ।
पालिय रूप प्रमाण पुनि, धनि स्वामीहिं घुमन्ति ॥७९॥
संदेसड़ो सविस्तरो, पर मोहिं कहें उ न जाइ ।
जो कनगुरिया मूँदड़ी, सो बाँहडी समाइ ॥८१॥
हसें उ तेज उद्सें उ अग विखरिय अलकें,
हुअ फिक्कंफिक वदन स्खलित-विपरीत-गती ।
कुंकुम-कनक-सदृश कान्ति कलुषावृतिया,
हुइ मुग्धा तुव विरहें निशाचर निशिचरिया" ॥८७॥
पथिक भनै "तैं भेजु जाउं शशिधरवदनी,
अथवा किछु कथनीय सों मोंहिं कहु मृगनयनी" ॥८८॥
"कहौं पथिक ! कि न कहौं, कह्यु की कहँकहिया,
जिन • किय एहु अवस्थ नेहरतिरहितैया ॥९१॥
जिन हौं विरहकुहरें इमि करि छड़िया,
अर्थलोभि अकृतार्थ इकल्ली मुंचड़िया ॥
संदेसड़ो सविस्तर, तुहुँ उत्तावलऊ,
कहें हु पथिक प्रिय गाथाँ वस्तु तहँ डोमिलऊ ॥९२॥
प्रिय-विरह-वियोगे संगम-शोके, दिवस-रजनि झूरंत मने,
अति-अंग सुखन्तहँ वाष्पाश्रु वहंतहँ आपुहिं निर्दय किमपि भने ।
तसु सुजन निवेशिय, भावहिं पेखिय मोहवशेन वोंलंत क्षणे,
मम स्वामिय वक्तरु हरि गउ तस्कर, जाउँ शरण कॉसु पथिक! भने" ॥९५॥
एहु डोमिलउ भनी पुनि निशितम-हरवदनी,
हुई निमिष निष्पन्द सरोरुहदलनयनी ।

णहु किहु कहइ ण पिक्खइ जं पुणु अवरु जणु,
चित्ति भित्ति णं लिहिय मुंध सच्चविय खणु ॥९६॥
पहिउ भणइ थिरु होहि "धीरु, आसासि खणु,
लइवि वरक्किय ससिसउन्नु फंसहि वयणु"।
तस्स वयणु आयन्नि, विरहभर-भज्जरिया,
लइ अचलु मुहु पुच्छिउ, तह व सलज्जरिया ॥९८॥
"जइ अंबरु उग्गिलइ राय पुणि रंगियइ,
अह निन्नेहउ अंगु, होइ आभंगियइ।
अह हारिज्जइ दविणु, जिणिवि पुणु भिट्टियइ,
पिय विरत्तु हुइ चित्त, पहिय ! किम वट्टियइ ॥१०१॥
कहि ण सवित्थरु सक्कउँ मयणाउहवहिया,
इय अवत्थ अम्हारिय कंतइ सिँव कहिया।
अंगभंगि णिरु अणरइ, उज्जग्गउ णिसिहि,
विहलघलगय मग्ग, चलंतिहि आलसिहि ॥१०५॥
बम्मिल्लइ संवरणु न घणु कुसुमहिँ रइउ,
कज्जलु गलइ कवोलिहि, जं नयणिहि धरिउँ।
जं पिया आसा संगिहि अंगिहिँ पलु चडइ,
विरह-हुयासि झलक्किउ तं पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
पुन्नारह जिम मह हियउ, पिय-उक्कखि करेइ।
विरह-हुयासि दहेवि करि, आसाजलि सिचेइ" ॥१०८॥
पहिउ भणइ "पहि जंत अमंगलु मह म करि,
रुयवि रुयवि पुणरुत्त वाह संवरिवि धरि"।
"पहिय ! होउ तुह इच्छ अज्ज सिज्झउ गमणु,
मइ न रुन्नु विरहग्गि धूम लोयण सवणु ॥१०९॥
संधउ दुवइ सुणेवि अंगु रोमंचियउ,
णेय पिम्म परिवडिउ पहिउ मणि रंजियउ।

ना किछ कहै न पेखै जो पुनि अवर जनहीँ,
चित्र-भित्ति जिमि लिखित मुग्धाँ सच्चाइय क्षणहीँ ॥९६॥
पथिक भनै "थिर होहि धीर आश्वासु क्षणहिँ,
लाउँ लेइ वराकिय शशिसँपूर्ण पोँछहु वदना।"
तासु वचन आकर्णि विरह-भर-भंजलिया,
लेँइ अंचल मुख पोँछ्इ तहँहि सलज्जिलिया ॥९८॥
"यदि अंबर छोड़हि रंग फिनु रगिअई,
जो निस्नेहउ अंग होइ अभ्यंगिअई।
जो हारिज्जइ धनहिँ, जितवि पुनि भेँटिअई,
प्रिय विरक्त ह्वै चित्त पथिक! किमि फरियई ॥१०१॥
कहि न सविस्तर सकौँ मदनायुध-वधितहु,
एँह अवस्थ हम्मारिय कंतहिँ सब कहियहु।
अंग-भंग वहु अरती, उज्जग्गौँ निशिहीँ,
विधिलघितगति मगहिँ, चलन्ती आलसहीँ ॥१०५॥
केशनकर संवरण न घन-कुसुमहिँ रचउँ,
काजल वहै कपोलहिँ जोँ नयनहिँ धरऊँ।
जो प्रिय-आशा संगेँहिँ अंगे माँस चटै,
विरहहुताशेँ झलक्केँउ सो दुगुनोउ झटै ॥१०६॥
सोनारहि जिमि मम हृदय, प्रिय-उत्कंठि करेइ।
विरहहुताशे दैहन लगि, आशाजल सिंचेइ" ॥१०८॥
पथिक भनै "पथि जात अमंगल मम न करु,
रोइ रोइ पुनि रुदन-अश्रु लेँहु रोकि धरु।"
"पथिक! होहु तव इष्ट आज सिद्धहु गमनू,
मैँ न रोँयोँ विरहाग्नि-धूम लोचनस्रवणू" ॥१०९॥
खंधहु दुअौ सुनीइ, अंग रोमांचितऊ,
नहीँ प्रेम परि-पडेउ पथिक मनेँ रंजितऊ।

तह जंपइ मियनयणि सुणिहि धीरयसु खणु,
किहु पुच्छहु ससिवयणि ! पयासहि फुड वयणु ॥१२१॥
णव-घणरिह-वि-णग्गय निम्मल फुरइ करु,
मरुयरयणि पच्चक्खु झरंतउ अमिय-भरु ।
तह चंदह जिण णत्थ पियह मजणिय सुह,
कइयलग्गि विरहग्गिधूमि झंपियउ मुहु ॥१२२॥

३–ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

"णव गिम्हागमि पहिय ! णाह ज पविमयउ,
करवि करंजुलि सुहसमूह मह णिवसियउ ।
तसु अणु-अंचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु,
वलिवि पत्त णिय-भुयणि विसंठलु-विहल-मणु ॥१३०॥
तह अणरइ रणरणउ असुहु असहंतियहँ,
दुम्मह मलय-समीरण मयणा-कंतियहँ ।
विसमझाल झलकंत जलंतिय तिव्वयर,
महियलि वण-तिण-दहण तवंतिय तरणि-कर ॥१३१॥
जम-जीहइ णं चंचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयउ । धर तिडइ ण तेयह भरु गहइ ।
अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ,
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥
हरियंदणु सिमिरत्थु उवरि जं लेवियउ,
तं सिहणह परितवइ अहिउ अहिसेवियउ ।
ठविय विविह विलवंतिय अह तह हारलय,
कुसुम माल निवि मुयइ, झाल तउ हुइ सभय ॥१३५॥

बोलै "मृगनयनि ! सुनहु धीरयहु क्षण,
किछु पूछउँ शशिवदनि ! प्रकाशहिँ स्फुट वचन ॥१२१॥
घन-रेख-विनिर्गत निर्मल फुरै करो,
शरद-रजनि प्रत्यक्ष झरंतउ अमृत-भरो।
चन्दहिँ जयनार्थ प्रियहिँ सजनित सुखो,
कबहिँ लागि विरहाग्नि-धूम झाँपियउ मुखो" ॥१२२॥

३--ऋतु-वर्णन

(१) ग्रीष्म-वर्णन

ग्रीष्मागमेँ पथिक ! नाथ जब प्रवसितऊ,
करव करांजलि सुख-समूह मम निवसितऊ।
पाछहीँ लउट्टि विरह-अगि-तपित-तना,
तबहिँ आइ निजभवन विसंस्थुल-विकल-मना"।
अनरति-रणरणक-असुख असहतियहीँ,
दुस्सह मलय-समीरण मदनाक्रान्तियहीँ।
ज्वाल झलकंत ज्वलंतिय तीव्रतरा,
महियल वन-तृण-दहन तपंते तरणिकरा ॥१३१॥
जह्वा जिमि चंचल नभतल लहलहई,
तडतड़तड धराँ करै न तेजोभर सहई।
उष्णउ व्योमतलेँ प्रभंजन जो वहई,
सो झंखण विरहिहिँ अंग परसेँउ दहई ॥१३२॥
चंदन शीतार्थ उपरि जो लेपितऊ,
सो स्तनकहिँ परितपै अहेउ अहि-सेवितऊ।
विविधि विलपंतिय जो तहँ हार-लता,
कुसुममाल तेँउ मुंचै ज्वाल तब हुइ सभया" ॥१३५॥

(२) वर्षा-वर्णन

इम तवियउ बहु गिंभु कहवि मइ बोलियउ,
पहिय ! पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु ण पत्तु पियउ ।
चउदिसि घोरंधारु पवन्नउ गरुयभरु,
गयणि गुहिरु घुरहुरइ, सरोसउ अंबुहरु ॥१३६॥
वगु मिल्हवि सलिलद्दहु, तरु-सिहरहि चडिउ,
तडव करिवि सिहंडिहि, वरसिहरिहि रडिउ ।
सलिलिहि वर सालूरिहि , फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु किउ कलयंठिहि, चडि चूयह-सिहरि ॥१४४॥
मच्छरमय संचडिउ रन्नि गोयगणहि,
मणहर रमियइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ।
हरियाउलु धरवलउ कयंबिण महमहिउ,
कियउ भंगु अगगि अणंगिण मह अहिउ ॥१४६॥
झंपवि तम वद्दलिण दसह दिसि छायउ अंबरु,
उन्नवियउ घुरहुरइ घोरु घण-किसणाडंबुरु ।
णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि तडक्कइ,
दद्दुररडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ ।
निवड-निरंतर नीरहर दुद्धर धर धारोहभरु,
कि सहउं पहिय-सिहरट्ठियउ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥१४८॥
जामिणि जं वयणिज्ज तुझ, तं तिहुयणि णहु माइ ।
दुक्खिहि होइ चउग्गुणी, भिज्जइ सुहसंगाइ ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इम विलवंती कहव दिण पाइउ,
गेउ गिरंत पढंतह पाइउ ।
पिय-अणुराइ रयणिअ रमणीयव,
गिज्जइ पहिय ! मुणिय अरमणीयव ॥१५७॥

(२) वर्षा-वर्णन

"इमि तपिअउ वहु ग्रीष्म सकौं कस बोलियऊ,
पथिक ! आव पुनि पावस ढीठ न आँव पियऊ ।
चौदिसि घोरधार छाय गउ गरुअ-भरो,
गगन-कुहर घुरघुरै सरोषउ अबुधरो ॥१३६॥
वक छाडिय सलिलह्रद तरु-शिखरहिं चढेंऊ,
ताडव करिय शिखडिहि वरशिखरे रटेंऊ ।
मलिलेहिं वर शालूरेंहि परसेंउ रसेंउ स्वरेंहि,
कलकल किउ कलकठहिं चढि आमहि शिखरे ॥१४४॥
मच्छरभय आ-पडेंउ ठाँव गाई-गणहीं,
मनहर रमिअइ नाथ रंगें गोपांगनहीं ।
हरियावल धराँवलय कदम्बन महमहिऊ,
कियउ भंग अगाग अनंगेहिं मम अतिहू ॥१४६॥
झाँपी तम-बद्दली दसहु दिशि छाई अबर,
उट्ठविउ घुरघुरा घोर घन कृष्णाडंबर ।
नभहि मार्ग नभवल्ली तरल तड़तडै तडक्कै,
दर्दुर रटन कठोर शब्द कोंइ सहउ न सक्कै ।
निपट निरतर नीरधर दुर्धर धर धारौघभर,
किमि सहौं पथिक ! शिखरस्थितहँ कोइल रसै स्वर ॥१४८॥
यामिनि ! जो वचनीय तुव, सो त्रिभुवन न अमाइ ।
दुक्खिहिं होई चौगुनी, छीजै सुख-सगाहिं ॥१५६॥

(३) शरद्-वर्णन

इमि विलपंति पछिम दिन पायउ,
गीति गयंत पढंतहु प्राकृत ।
प्रिय-अनुरागि रजनि रमणीया,
गीयइ पथिक ! जानि अरमणीया ॥१५७॥

दक्खिण-मग्गु णियंतइ भत्तिहिँ,
दिट्ठु अइत्थिरि सिउ मइ भत्तिहि।
मुणियउ पाउसु परिगमिअउ,
पिउ परएसि रहिउ णहु रमिअउ ॥१५९॥
गय विद्दरवि वलाहय गयणिहि,
मणहर रिक्ख पलोइय रयणिहि।
हुयउ वासु छम्मयलि फणिंदह,
फुरिय जुन्ह निसि निम्मल चंदह ॥१६०॥
सोहइ सलिलु सरिहिँ मयवत्तिहि,
विविह तरंग तरंगिणि जंतिहि।
जं हय हीय गिभि णवसरयह,
तं पुण सोह चडी णव-सरयह ॥१६१॥
धवपिलय धवल संख-संकासिहि,
सोहइ सरह तीर संकासिहि।
णिम्मलणीर सरिहिँ पवहंतिहिँ,
तड रेहंति विहंगम-पंतिहिँ ॥१६३॥
पडिविंबउ दरमिज्जइ विमलहिँ,
कद्दमभारु पमुक्किउ सलिलहिँ।
सहमि ण कुज सद्दु सरयागमि,
मरमि मरालगामि णहु तग्गमि ॥१६४॥
अच्छइ जिह नारिहिँ नर रमिरइ,
सोहइ तरह तीर तिह भमिरइ।
बालय वर जुवाण खिल्लंतय,
दीसइ घरिघरि पडह वजंतय ॥१७४॥
दारय कंडवाल तंडव करि,
भमहि रच्छि वामंतय सुंदर।

दक्षिण-मार्ग देखन्ती भक्तिहिँ,
देखेँ अगस्त्य ऋषी मैँ झट्टिहिँ।
जानेँउ मो पावसहिँ गमायउ,
प्रिय परदेश रहेँउ ना रमियउ ॥१५९॥
गउ फाटियइ वलाहक गगनेहिँ,
मनहर तारक लोकिय रजनिहिँ।
हुयो वास भूमितलेँ फणीन्द्रा,
फुरिय जुन्ह निशि निर्मल चन्द्रा ॥१६०॥
सोहै सलिल सरन शतपत्रेँहिँ,
विविध तरंग तरगिहिँ जातेँहिँ।
जो हुत हती ग्रीष्मेँ नवसरसहि,
सा पुनि शोभाँ चढ्ढी नवसरसहि ॥१६१॥
धवलित धवल-शख-संकाशेहिँ,
सोहै सरहि तीर संकाशेहिँ।
निर्मलनीर सरित प्रवहन्तेहिँ,
तट शोभन्त विहगम-पाँतिहिँ ॥१६३॥
प्रतिबिबउ दरसीयत विमले,
कर्दमभार - प्रमुचित सलिले।
सहौँ न क्रौँच-शब्द शरदागमेँ,
मरौँ मरालागम नहिँ ताकौँ ॥१६४॥
आछै जहँ नारिहिँ नर रमिया,
सोहै सरहिँ तीर तेहि भ्रमिया।
वालक-वर-युवान खेँल्लन्ते,
दीसै घर - घर पटह वजन्ते ॥१७४॥
दारुक कुडवाल तांडव करि,
भ्रमहिँ रथ्येँ वादंता सुंदर।

सोहइ सिज्ज तरुणि जण सत्थिहि,
घरि-घरि समियइ रेह परित्थिहि ॥१७५॥
दितिय णिसि दीवालिय दीवय,
णवससिरेह-सरिस करि लीअय।
मंडिय भुवण तरुण जोइक्खहिँ,
महिलिय दिति सलाइय अक्खिहिँ ॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तह कत्तिरि अणियत्ति, णियती दिसि पसरु,
लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमतु तुसारभरु।
हुइय अणायर सीयल, भुवणिहि पहिय जल,
ऊसारिय सत्थरहु सयल कंदुट्टदल ॥१८६॥
सेरंधिहिँ घणसारु ण चंदणु पीमयइ,
अहरक ओला लकिहिँ मयणु समीसियइ।
सीहंडिहि वज्जियउ घुसिणु तणि लेवियइ,
चपएलु मियणाहिण सरिसउ सेवियइ ॥१८७॥
धूइज्जइ तह अगरु घुसिणु तणि लाइयइ,
गाढउ निवडालिगणु अगि सुहाइयइ।
अन्नह दिवसह सन्निहि अगुलमत्त हुय,
महु इक्कह परि पहिय ! णिवेहिय बह्म-जुय ॥१८६॥
हेमंति कंत विलवतियह, जइ पलुट्टि नासासिहसि।
तं तइय मुक्ख खल पाइ मइ, मुइय विज्ज कि आविहसि ॥१६१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इम कट्टिहिँ मइ गमिउ पहिय ! हेमंत-रिउ,
सिसिरु पहुत्तउ धुत्तु णाहु दूरंतरिउ।
उट्ठिउ झखड गयणि खरफरसु पवणिहय,
तिणि सूडिय झडि करि ओरस तहि रुय गय ॥१६२॥

सोहै शय्य तरुणि-जन साथे,
घर - घर सोहै रेख प्रलिप्ते ॥१७५॥
दीयत निशिहिँ दिवाली दीये,
नव-शिखि-रेख-सदश कर लीये ।
मंडित भुवन तरुण ज्योतिष्कहिँ,
महिला देहिँ सलाई आँखिहिँ ॥१७६॥

(४) हेमन्त-वर्णन

तिमि उत्कंठि निरन्तर पेखै दिशि पसरी,
ले ढूकेँउ चातुरिहिँ हिमंतु तुषारभरो ।
हुयउ अनादर-शीतल भुवने पथिक ! जल,
अपसारिय सत्थरेहिँ सकल पद्मनउ दल ॥१८६॥
मैरंध्री घनसार न चंदन पीसैहीँ,
अधर कपोलालंकृत मदन समिश्रैहीँ ।
श्रीखंडेँहिँ विवर्जित कुकुम लेपियहीँ,
चम्प-तैल मृगनाभि सह सेवियहिँ ॥१८७॥
धूंइज्जै तहँ अगर कुँकुम तन लाइयई,
गाढउ निपटालिगन अंगेँ सुहाइयई ।
अन्यहिँ दिवसहिँ सन्निधि अगुलिमात्र हुआ,
मैँ एक्कै पर पथिक ! निवेशिय ब्रह्मयुगा ॥१८९॥
हेमंतेँ कन्त ! विलपंतिय, यदि न लवटि आश्वासिही ।
तालेहीँ मूर्ख ! खल ! पापि ! मोही, मरे वैद्य कि आइयही ॥१९१॥

(५) शिशिर-वर्णन

इमि कष्टेँहिँ मम गयउ, पथिक ! हेमन्त-ऋतू,
शिशिर पहूँचेउ धूर्त्त, नाथ दूरन्तरितू ।
उठेँउ झखड़ गगनेँ, खर-परुष पवन-हतेउ,
तेहिँ छूटेँउ झरि करि अशेष तहँ रूप मिटेँउ ॥१९२॥

छाय-फुल्ल-फल-रहिय असेविय सउणियण,
तिमिरंतरिय दिसाय तुहिण धूइण भरिण।
मग्ग भग्ग पंथियह ण पविसिहि हिमडरिण,
उज्जाणहँ ढंखर छअ मोसिय कुसुमवण ॥१९३॥

मत्तमुक्क संठविउ'वि वहुगंधक्करिसु,
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि इक्ख-रसु।
कुद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नय-थणिया,
णियसत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिया ॥१९५॥

केवि दिति रिउणाहह उप्पत्तिहि दिणहि,
णियवल्लह करि केलि जति सिज्जासणिहि।
इत्थंतरि पुण पहिय ! सिज्ज इक्कल्लियइ,
पिउ पेसिउ मण दूअउ, पिम्म-गहिल्लियइ ॥१९६॥

मइ घणु दुक्खु सहप्पि मुणवि मणु पेसिउ दूअउ,
णाहु ण आणिउ तेण सु पुणु तत्थव रय हूअउ।
एम भमंतह सुन्नहियय जं रयणि विहाणिय,
अणिरइ कीयइ कम्मि अवसु मणि पच्छुत्ताणिय।
मइ दिन्नु हियउ णहु पत्तुपिउ, हुई उवम इहु कहु कवण।
सिंगत्थि गइय उवाडयणि, पिक्ख हरावियं णिअ सवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु, महुमास मणोहरु इत्थ पत्तु।
गिरि-मलय-समीरणु णिरु सरंतु, मयणग्गि-विऊयह विप्फुरंतु ॥२००॥

वहु विविहराइ घण-मणहरेहिँ, सिय सावरत्त-पुप्फंवरेहि।
पंगुरणिहिँ चच्चिउ तणु विचित्तु, मिलि सहियहि गेउ गिरंति णित्तु ॥२०२॥

महमहिउ अंगि वहु-गंधमोउ, णं तरणि पमुक्कउ सिसिर-सोउ।
तं पिक्खवि मइ मज्झहि सहीण, लंकोँडउ पढिउ नववल्लहीण ॥२०३॥

छाय-फूल-फल-रहित असेवित शकुनि-जनेँहिं,
तिमिरान्तरित दिशाहिँ तुहिन - धूँआ - भरिया।
मार्ग भागु पंथिकन न प्रवसहिँ हिमडरिया,
उद्यानहु ढंखर - सम सूखेँउ कुसुम-वन ॥१९३॥
मात्रमुक्त संथपेँउ वहुत - गंधोत्कर्ष,
पीवैँ अधोच्छिष्ट रसिक(जन) इक्षु-रस।
कुन्द - चतुर्थि महोत्सवेँ पीनोन्नत - थनिया,
निज सेजहिँ पलोँटंति कोइ सीमन्तनिया ॥१९५॥
कोइ देहिँ ऋतुनाथहँ उत्पत्तिहि दिनहीँ,
निज-वल्लभ करि केलि जाइँ शय्यासनहीँ।
एँहि समये पुनि पथिक ! सेज एकल्लियई,
प्रियँ पठयेँउ मन - दूतउ, प्रेम-गहिल्लयई ॥१९६॥
मैँ घनि दुःख-सहाप समुझि मन प्रेषेँउँ दूतहँ,
नाथ न आनेउ तिनि सो पुनि तहँवेँ रत हुओ।
इमिहिँ भ्रमन्तहिँ शून्यहृदय जो रजनि विहानी,
अनसोचे किय कर्म अवशि मन पच्छतानी।
मैँ दियउ हृदय ना प्राप्त प्रिय, हुइ उपमा एँहु कहु कवन।
शृंगार्थ गई गदही (सो पुनि), पेखु हराई निज श्रवण ॥१९९॥

(६) वसंत-वर्णन

गउ शिशिर वन-तृण-दहंत, मधुमास मनोहर इहाँ प्राप्त।
गिरिमलय-समीरण वहु वहंत, मदनाग्नि वियोगिहँ विस्फुरंत ॥२००॥
वहु विविध-राग-घन-मनहरेहिँ, सित-सर्वरक्त-पुष्पांवरेहिँ।
पंगुरणेहिँ चर्चित तनु विचित्र, मिलि सखियाँ गावैँ गीत नित्य ।२०२॥
महमहेँउ अंगेँ वहु गंधमोद, जिमि तरणि प्रमुचेँउ शिशिर-शोक।
सो पेखिय मैँ मध्ये सखीन, लंकोडउ पढेँउ नव-वल्लभीन ॥२०३॥

किंसुयइ-कसिण घणरत्तवास, पच्चक्ख पलासइ धुय-पलास[1]।
सवि दुस्सह हूय पहंजणेण, संजणिउ असुहुवि सुहंजणेण ॥२०६॥

निवडंत रेणु धर पिजरीहि, अहिययर तविय णवमंजरीहि।
मरु सियलु वाइ महि सीयलतु, णहु जणइ सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥

जसु नामु अलिक्कउ कहइ लोउ, णहु हरइ खणद्धु असोउ सोउ।
कंदप्पदप्पि संतविय अंगि, साँहरइ णाहु ण आसहर अंगि ॥२११॥

खणु मुणिउ दुसहु जम-कालपासु, वर-कुसुमिहि मोहिउ दस दिसासु।
गय णिवउ णिरंतर गयणि चूय, णवमंजरि तत्थ वसत हूय ॥२१५॥

जल-रहिय मेह संतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ।
रमणी-यण रत्थिहि परिभमंति, तूरा-रवि तिहुयण वाहिरंति ॥२१८॥

चच्चिरिहि गेउ हुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसत-कालु।
घण-निविड-हार परिखिल्लरीहिं, रुणझुण-रउ मेहल-किंकिणीहिं ॥२१९॥

जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय !
घणदुक्खाउन्नियह मयण-अग्गि विरहिणि पलित्तिहि,
तं फरसउ मिल्हि तुहु विणय-मग्गि पभणिज्ज भत्तिहि।
तिम जपिय जिम कुवइ णहु, त पभणिय जं जुत्तु।
आसीसिवि वर-कामिणिहि, उवट्ठाऊ पडिउत्त" ॥२२२॥

तं पडुजिवि चलिय दीहच्छि, अइ-तुरिय,
इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय,
आसन्न पहाउरिउ दिट्ठु णाहु तिणि भत्ति हरसिय।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु, सिद्धु खणद्धि महंतु।
तेम पढंत सुणंतयह, जयउ अणाइ-अणंतु ॥२२३॥

---

[1] "धुतपलाश पलाशवनं पुरः"—माघ कवि

किंशुकहि कृष्ण घनरक्तवर्ण, प्रत्यक्ष परासै[1] धुत परास ।
सब दुःसह हुआ प्रभंजनेहिँ, सजनेउ अमुख हि सुहंजनेहिँ ॥२०६॥

भुइँ पडती रेणू पिंजरीहिँ, अधिकतर तपी नवमंजरीहिँ ।
मरु शितल वहै महि शीतलत, न होइ शीत न नशै ताप ॥२१०॥

जसु नाम अलीकै कहै लोक, ना हरे क्षणार्द्ध अशोक शोक ।
कंदर्प-दर्प-संतपित अंग, साहारै नाथान सहकार अंग ॥२११॥

क्षण वुझेँउ दुसह यम-कालपाश, वरकुसुमहिँ मोहै दश-दिशामु ।
गयेँ निविड-निरंतर-गगनेँ चूत, नवमजरि तहाँ वसन्त हूअ ॥२१५॥

जल-रहित मेघ सन्तपेँ काय, किमि कोइल कल-रव सहेँउ जाय ।
रमणी-गण रथ्येँहिँ परिभ्रमति, तूरी-रव त्रिभुवन बधिरयंति ॥२१८॥

चाचरिहिँ गीत-ध्वनि करिय ताल, नाचीय अपूर्व-वसत-काल ।
घन-निविड-हार परिवेष्टितेहि, रुनझुन-रव मेखल-किंकिणीहिँ ॥२१६॥

यदि अनक्षर कहेँउँ पथिक ! मैँ ।
घनदुःखपूर्ण मदनाग्नि विरहेहिँ प्रलिप्ता,
सो परुष छोडि विनयमार्ग-मत भणियहु ।
तिमि बोलेहु जिमि कोपु नाहि, सो बोलेहु जो युक्त ।"
आशीषिय वरकामनिहिँ, वट्टोही विनियुक्त ॥२२२॥

तेहिँ पठाइ चली दीर्घाक्षि अति तुरतैँ,
एँहि विच दिश दक्षिण तेहि याम दरसी,
पास रोकि पथ दीठेँउ नाथ, (तिय) झट हर्षिय ।
जिमि अचिंतहू कार्य तसु सिझेँउ क्षणार्ध महन्त ।
तैस पढंत सुनन्तयहँ, जयतु अनादि अनन्त ॥२२३॥

---

[1] राक्षस

§ २७. बब्बर

काल—१०५० ई० (कर्ण कलचूरी १०४०–७० ई०)। देश—त्रिपुरी

१–जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

सिअ विट्ठी किज्जइ, जीआ लिज्जइ, बाला बुड्ढा कंपंता।
वह पच्छा वाअह, लग्गे काअह, सव्वा दीसा झपंता।
जइ जट्ठा रूसइ, चित्ता हासइ, पेटे अग्गी थप्पीआ।
कर पाआ संभरि, किज्जे भित्तरि, अप्पा-अप्पी लुक्कीआ ॥१६५॥(५४५)
ताव बुद्धि ताव सुद्धि, ताव दाण ताव माण, ताव गब्ब,
जाव जाव हत्थ णच्च, विज्जु-रेह-रंग णाइ, एक दब्ब।
एत्थ अंत अप्प-दोस, देव रोस होइ णट्ठ, सोइ सब्ब;
कोइ बुद्धि कोइ सुद्धि, कोइ दाण कोइ माण, कोइ गब्ब ॥११६॥ (५५४)

(२) सुखी जीवन

पुत्त पवित्त बहुत्त घणा, भत्ति कटुंविणि सुद्ध मणा।
हक्क तरासइ भिच्च-गणा, को कर **बब्बर** सग्ग मणा ॥६५॥ (४०५)
सुधम्म-चित्ता गुणवन्त-पुत्ता, सुकम्म-रत्ता विणआ कलत्ता।
विसुद्ध-देहा धणवंत-गेहा, कुणंति के बब्बर सग्ग-णेहा ॥११७॥ (४३०)
सो माणिअ पुणवन्त, जासु भत्त पंडिअ तणय।
जासु घरिणि गुणवति, सोवि पुहवि सग्गह णिलअ ॥१७१॥ (२७६)
उच्चउ छाअण विमल घरा, तरुणी घरिणि विणअपरा।
वित्तक पूरल मुद्दहरा, वरिसा समआ सुक्खकरा ॥१७४॥ (२८३)

---

[1] **"प्राकृत पैंगल" चन्द्रमोहन घोष द्वारा** Bibleo thica Indica (1902) **में संपादित। जिन कविताओंमें बब्बरका नाम नहीं, वह बब्बरकी है, इसमें**

§ २७. बब्बर

(चेदी)। कुल--(कर्णका दर्बारी कवि)। कृतियाँ—स्फुट कवितायें[1]

१—जनताका जीवन और आशा

(१) गरीबीका जीवन

शीॅत वृष्टी कीजिय, जीवा लीजिय, बाला-बूढा कंपंता।
वह पछुवाँ वाता, लागे कायहँ, सर्वा दिशा झाँपंता।
यदि जाडा रूषै, चित्ता ह्रासै, पेटे अग्नी थप्पीया।
कर-पादा संहरि, कीजै भीतरि, आपा-अप्पी लुक्कीया ॥१६५॥
तौ लोॅ बुद्धी तौलोॅ शुद्धी, तौ लोॅ दाना तौलोॅ माना, तौलोॅ गर्वा।
जौलोॅ जौलोॅ हाथे नाचै, विज्जूरेखारंगा न्याईॅ, एका द्रव्या।
एही बीच आत्मदोषेॅ, दैव-रोषेॅ होइ नष्ट, सोइ सर्व।
कोई बुद्धि कोई शुद्धि, कोई दान कोई मान, कोई गर्व ॥१६६॥

(२) सुखी जीवन

पुत्र पवित्र बहूत धना, भक्ताॅ कुटुंबिनि[1] शुद्ध-मना।
हाँके त्रसई भृत्य-गणा, को करेॅ बब्बर स्वर्गेॅ मना ॥१६५॥
स्वधर्म-चित्ता गुणवन्त पुत्रा, सुकर्म-रक्ता विनता कलत्रा।
विशुद्ध-देहा धनवंत-गेहा, करंति के बब्बर स्वर्ग-नेहा ॥११७॥
सो मानिय पुणवंत, जासु भक्त-पंडित तनय।
जासु घरनि गुणवंति, सोउ पुहुमि स्वैर्गह निलय ॥१७१॥
ऊँची छाजन वि-मल घरा, तरुणी घरनी विनयपरा।
वित्तकेॅ पूरल मूँदघरा, वर्षा समया सुक्खकरा ॥१७४॥

---

[1] सन्देह है, मगर कर्ण-कालीन जरूर है [1] भार्या

पिअ-भत्ति पिआ, गुणवंत सुआ ।
धण-जुत्त घरा, बहु-सुक्ख-करा ॥४४॥ (३६२)
गुणा जासु सुद्धा, बहू ऋअमुद्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु सग्गा ॥५३॥ (३६८)
कमल-णअणि, अमिअ-वअणि ।
तरुणि घरणि, मिलइ सुपुणि ॥५७॥ (३७१)
गुरुजण-भत्तउ, वहुगुण-जुत्तउ ।
जसु जिअ पुत्तउ, सउ पुणवंतउ ॥६१॥ (३७४)
ओग्गर-भत्ता रंभअ-पत्ता, गाइक घित्ता दुद्ध-मँजुत्ता ।
मोइल-मच्छा नालिय-गच्छा, दिज्जइ कता खा पुणवंता॥६३॥(४०३)

२–सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा[1] स्त्री

भोँहा कविला उच्चा निअला, मज्झा पिअला णेत्ता जुअला ।
रुक्खा वअणा दंता विरला, केसे जिविला ताका पिअला ॥६७॥ (४०८)

(२) नारी-सौंदर्य

रे धणि ! मत्त-मअंगज-गामिणि, खजण-लोअणि चदमुही ।
चंचल जोँब्वण जात ण जाणहि, छइल समप्पहि काइ णही ॥१३२॥ (२२७)
सुदरि गुज्जरि णारि, लोअण दीह-विसारि ।
पीण-पओहर-भार, लोलिअ मोत्तिअ-हार ॥१७८॥ (२८६)
हरिण-सरिस्सा णअणा, कमल-सरिस्सा वअणा ।
जुवअण-चित्ता-हरिणी, पिय-सहि ! दिट्ठा तरुणी ॥७६॥ (३८६)
चल-कमल-णअणिआ, खलिअ-थण-वसणिआ ।
हसइ पर-णिअलिआ, असइ धुअ वहुलिआ ॥८३॥ (३१३)

---

[1] कुरूप भी

प्रिय-भक्त प्रिया गुणवत सुता ।
धनवंत घरा, वहु सुक्ख-करा ॥४४॥
गुणा जासु शुद्धा, वधू रूप-मुग्धा ।
घरे वित्त जग्गा, मही तासु स्वर्गा ॥५३॥
कमल - नयनि, अमिय - वयनि ।
तरुणि घरनि, मिलै सुपुणि ॥५७॥
गुरुजन - भक्तउ, वहुगुण - युक्तउ ।
जसु जिय पुत्रउ, सोइ गुणवंतउ ॥१६॥
प्रोगर[1]-भत्ता रभा-पत्रा, गायकें घीवा दुग्ध-सँयुक्ता ।
माँगुर-मच्छा नालिय-शाका, दीजै काता खाँइ पुणवता ॥९३॥

२–सामन्ती समाज

(१) कुलक्षणा स्त्री

मौंहा कपिला ऊँच लिलारा । माँझे पियरा नेत्रा-युगला ।
रुक्षा वदना दताविरला । कैसे जीविय ताका प्रियला ॥९७॥

(२) नारी-सौंदर्य

हे धनि ! मत्त-मतगज-गामिनि, खजन-लोचनि चद्रमुखी ।
चंचल-यौवन जात न जानै, छैलें समर्पे काहें नहीं ॥१३२॥
सुदरि गुर्जरि नारि, लोचन दीर्घ-विसारि[2] ।
पीन-पयोधर-भार, लोलिय मौक्तिक-हार ॥१७८॥
हरिन-सरीखा नयना, कमल-सरीखा वदना ।
युवजन-चित्ता-हरणी, प्रिय सखि ! दृष्टा तरुणी ॥७९॥
वल-कमल-नयनिया, स्खलित-थन-वसनिया ।
हमै पर-नियरिया, असति ध्रुव वहुरिया ॥८३॥

---

[1] वासमती (?) [2] विस्तारी

महामत्त-माअग-पाए ठबीआ, महातिक्ख-वाणा कडक्खे धरीआ ।
भुआ पास भोँहा धणूहा समाणा, अहो णाअरी कामराअस्स सेणा ॥२६॥ (४४३)
तुहु जाहि सुदरि ! अप्पणा,. परितेज्जि दुज्जण थप्पणा ।
विअसंत केअइ-संपुडा, णिहु एहु आविह वप्पुडा ॥९१॥ (४०१)
खंजण-जुअल णअण-वर-उपमा, चारु-कणअ-लइ भुअ-जुअ सुसमा ।
फुल्ल-कमल-मुहि गअ-वर-गमणी, कामु मुकिअ-फल विहि गढु तरुणी ।१५३।(४७७)
तरल-कमल-दल-सरि-जुअ-णअणा, सरअ-समअ-ससि-सुअरिस-वअणा ।
मअगल-करि-वर-सअलस-गमणी, कवण मुकिअ-फल विहि गठ रमणी ।१६७।(४९६)
पाअ-णेउर[1] झंझणक्कइ, हस-सद्द-सुसोहणा,
थोर-थोर-थणग्ग णच्चइ, मोत्ति-दाम-मणोहरा ।
वाम-दाहिण-धारि धावइ, तिक्ख-चक्खु-कडीक्खआ,
काहु णाअर-गेह-मडिणि, एहु सदरि पेक्खिवआ ॥१८५॥ (५२३)

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तवइ धरणि पवण वहइ खरा,
लग्ग णाहि जल वड मरुथल, जण-जिअण-हरा ।
दिसइ चलइ हिअअ दुलइ, हम इकलि वहू,
घर णहि पिअ सुणहि पहिअ ! मण इछइ कहू ॥१९३॥ (५४१)

(ख) पावस

वरिस जल भमइ घण गअण मिअल पवण मणहरण,
कणअ-पिअरि णचइ विजुरि फुल्लिआ णीवा ।
पत्थर वित्थर हिअला पिअला णिअलं ण आवेइ ॥१६६॥ (२७३)
णच्चइ चंचल विज्जुलिआ महि ! जाणएँ,
मम्मह खग्ग किणीसइ जलहर-साणएँ ।

---

[1] नूपुर

महामत्त-मातंग-पादे थपीया, तथा तीक्ष्ण-त्राणा कटाक्षे धरीया ।
भुजापाश भौंहा धनूहा-समाना, अहो नागरी कामराजाहँ सेना ॥१२६॥
तुहुँ जाहु सुदरि आपना, परित्यजिय दुर्जन स्थापना[1] ।
विकसत-केतकि-संपुटा, चुप एहु आयहु वापुरा ॥९१॥
खंजन-युगल नयनवर-उपमा, चारु-कनक-लत भुज-युग-सुषमा ।
फुल्लकमल-मुखि गजवर-गमनी, कामु सुकृत-फल विधि गढ़ तरुणी ॥१५३॥
तरल-कमलदल-सर-युगनयना, शरद-समय-शशि-सुसदृश-वदना ।
मदगल-करिवर-स-अलस-गमनी, कवन सुकृत-फल विधि गढ रमणी ॥१६७॥
पाद-नूपुर झमनक्कै, हंस शब्द-सुसोहना ।
थोर-थोर-थनाग्र नच्चै, मोति-दाम-मनोहरा ।
वाम-दाहिन-धारें धावै, तीक्ष्ण-चक्षु-कटाक्षिया ।
काह नागर-गेह-मडनि, एहु सूदरि पेखिया ॥१८५॥

(३) ऋतु-वर्णन

(क) ग्रीष्म

तरुण-तरणि तपै धरणि, पवन वहै खरा ।
लाग नाहिं जल वड मरुथल, जन-जीवन-हरा ।
दिश चलै हृदय डुलै, हम ऐंकली वधू ।
धरें नहिं पिय सुनहि पथिक ! मन-इच्छै कहू ॥१९३॥

(ख) पावस

वरिस जल भ्रमै घन गगन, शीतल-पवन मन-हरन ।
कनक-पियरि नचै बिजुरि, फूलिया निंबा ।
पत्थर-विस्तर-हियरा पियरा, नियर न आवई ॥१६॥
नाचै चंचल विज्जुरिया सखि ! जाइ,
मन्मथ-खड्गहँ धरसै जलधर-शानै ।

---

[1] मत

फुल्लं कअंबअ अंवर डंबर दीसएँ,
पाउस पाउ घणाघण सुमुहि ! वरीसएँ ॥१८८॥ (३००)
फुल्ला णीवा भम भमरा, दिट्ठा मेहा जल समला ।
णच्चे विज्जू पिअ-सहिआ, आवे कता कहु कहिआ ॥८१॥ (३९१)
जं णच्चे विज्जू मेहंधारा, पप्फुल्ला णीवा सद्दे मोरा ।
वाअंता मदा सीआ वाआ कपता काआ कंता णाआ ॥८९॥ (३९९)

(ग) शरद्-वर्णन

णेत्ताणंदा उग्गो चदा, धवल-चमर-सम-सिअ-अरविदा,
उग्गे तारा तेआ-सारा, विअसु कुमुअ - वण - परिमल - कदा ।
भासे कासा सव्वा आसा, महुर-पवण लह-लहिअ करता,
हंसा सद्दे फुल्ला बंधू, सरअ-समअ सहि ! हिअ अहरंता ।२०५। (५६६)

(घ) शिशिर-वर्णन

जं फुल्लु कमल-वण वहइ लहु पवण, भमइ भमरकुल दिसिविदिसं,
झंकार पलइ वण खट्ट कुहिल-गण, विरहिअ हिअ हुअ दर-विरसं ।
आणंदिअ जुअजण उलसु उठिअ मण, सरस, णलिणि-दल किअ सअणा,
पलट सिसिररिउ दिअस दिहर भउ, कुसुम-समअ अवतरिअ वणा ॥२१३॥(५८१)

(क) वसंत-वर्णन

भमइ महुअर फुल्ल-अरविद, नवकेस काणण जुलिअ,
सव्वदेस पिक-राव चुल्लिअ, सिअल-पवण लहु वहइ,
मलअ-कुहर णव-वल्लि पेल्लिअ ।. . .
चित्त मणोभव सर हणइ, दूर-दिगतर कंत ।
किम परि अप्पउ धारिहउ, एँम परिपलिअ दुरत ॥१३५॥ (२३३)
फुल्लिअ महु भमर वहु रअणि पहु. किरण लहु अवअरु वसंत ।
मलअ गिरि कुसुम धरि पवण वह, सहव कत सुणु सहि ! णिअल णहि कत ।१६३।(२७०)
चडि चूअ कोइल-साव, महु-मास पंचम गाव ।
मण-मज्झ वम्मह ताव, णहु कंत अज्जवि आव ॥८७॥ (३९७)

फुल्ल-कदंबक अंवर-डंबर दीसै,
पावस आउ घनाघन सुमुखि ! वरीसै ॥१८८॥
फुल्ला निबा भ्रम भ्रमरा, दिट्ठा मेघा जल-श्यामला ।
नाचै विज्जू प्रिय-सखिया ! आवे कंता कहु कहिया ॥८१॥
जो नाचै विज्जू मेघंधारा, प्रप्फुल्ला निबा शब्दइ मोरा ।
वीजता मंदा शीता वाता, कंपता काया कत न आया ॥८९॥

(ग) शरद्-वर्णन

नेत्रानदा ऊगो चद्रा, धवल-चमर-सम मित-अरविदा ।
ऊगे तारा तेजम्सारा, विकसु कुमुद-वन-परिमल-कंदा ॥
भासै काशा सर्वा आशा, मधुर पवन लहलहिय करता ।
हंसा शब्दै फूला बंधू, शरद-समय सखि ! हिय हहरंता ॥२०५॥

(घ) शिशिर-वर्णन

जो फूलु कमल-वन वहै लघु पवन, भ्रमै भ्रमर-कुल दिशिविदिशं ।
झकार परै वन रवै कोंइल-गण, विरहिय-हिय हुओं डर-विरसं ॥
आनदिय युवजन उलस उठिय मन, सरस-नलिनि-दल कृत-शयना ।
बीतउ शिशिरउ दिवस दिरघ भउ, कुसुम-समय अवतरिय वना ॥२१३॥

(ङ) वसंत-वर्णन

भ्रमै मधुकर फुल्ल-अरविद, नव-किशु-कानन ज्वलिया ।
सर्वदेश पिक-राव चुल्लिय, शीतल-पवन लघु बहै ॥
मलय-कुहर नव-बेलि पेरिय ।
चित्तें मनोभव-शर हनै, दूर-दिगंतर कंत ।
किमि परि अपहिं धारिहउ, इमि परि-पडिय दुरंत ॥१३५॥
फुल्ल मधु, भ्रमर बहु, रजनि-प्रभु-किरण लघु अवतरु वसंत ।
मलयगिरि-कुसुम धरि पवन वह, सहब कत सुनु सखि ! नियर नहिं कंत ॥१६३॥
चढ़ि चूतें कोंइल-शाव मधु-मास पंचम गाव ।
मन-माँझ मन्मथ-ताप, नहिं कंत आजउ आव ॥८७॥

कआ भउ दुव्वरि तेज्जि गरास, खणे खण जाणिअ दीह णिसास ।
कहू-रव-ताव दुरत वसत, कि णिद्दअ काम कि णिद्दअ कन्त ॥१३४॥ (४५३)
वहइ दक्खिण-मारुअ सीअला, रवइ पचम-कोमल कोइला ।
महुअरा महु-पाण महत्तवा, भमइ सुदरि ! माहव संमरा ॥१४०॥ (४६०)
णव-मजरि लिज्जिअ चूअह गाछें, परिफुल्लिअ केसु णआ वण आछे ।
जइ एत्थि दिगंतर जाइहि कता. किअ वम्महु णत्थि कि णत्थि वसंता ।१४४।(४६५)
जहि फुल्ल किसु-असोअ-चपअ-मजुला, महअार-केसर-गध लुद्धउ भम्मरा ।
वहु-दक्ख दक्खिण-वाउ माणह भंजणा, महु-मास आविअ लोअ-लोअण-रजणा
॥१६३(४६१)॥
वहइ मलअ-वाआ हत ! कपंत काआ,
हणइ मवण-रधा कोइला-लाव-वधा ।
सुणिअ दहदिहासु भिग-झकार-भारा,
हणिअ हणइ हज्जे ! चड-चडाल-मारा ॥१६५॥ (४६३)
वहइ मलआणिला विरहि-चेउ-सतावणा,
रअइ पिक-पचमा विअसु किसु-फुल्ला वणा ।
तरुण-तरु-पल्लवा मउलु माहवी वल्लिआ,
वितर सहि ! णेन्तआ समअ माहवा[1] पत्त आ ॥१७६॥ (५१३)
अमिअ-कर-किरण धरु फुल्लु णव-कुसुम-वण,
कुविअ भइ मर ठवइ काम णिअ धणु धरइ ।
खइ पिक समअ णिअ कत तुअ थिर हिअलु,
गमिअ दिण पुणु ण मिलु जाहि सहि ! पिअ-णिअलु ॥१६१॥ (५३७)
जह फुल्ल केअइ चारु-चपअ-चूअ-मंजरि-वजुला,
सव दीसदीसइ केसु-काणण पाण वाउल भम्मरा ।
वह पोम्म गध विवधु वंधुर मंद मद समीरणा,
णिअ केलि-कोतुक-नाम-लंगिम लगिआ तरुणी जणा ॥१६७॥ (५५०)

---

[1] चैत्रमास

काँया-भउ दूबरि तेज्जिय ग्रास । क्षणे-क्षण जानिय दीर्घ-निश्वास ।
कुहु-रव ताप दुरंत वसंत । कि निर्दय काम कि निर्दय कंत ॥१३४॥
वहइ दक्खिन मारुत शीतला, रवइ पचम कोमल कोइला ।
मधुकरा मधुपान-महोत्सवा, भ्रमइ सुदरि ! माधव सस्मरा ॥१४०॥
नवमजरि लिज्जिय चूतह गाछें, परिफुल्लित किंशु नवा वन आछें[1] ।
यदि आहि दिगतर जाइव कता, किअ मन्मथ नाहिँ कि नाहि वसंता ॥१४४॥
जहँ फुल्ल किंशु-अशोक-चंपक-मजुला, सहकार-केसर-गध-लुब्धउ भ्रम्मरा ।
वहुदक्ष दक्षिण-वात मानहँ भजना, मधुमास आयउ लोक-लोचन-रजना ॥१६३॥
वहइ मलय-वाता हत कपत काया ।
हनइ श्रवण-रध्रा कोकिलालाप-बधा ।
सुनिय दशदिशासु भृङ्ग-झकार-भारा ।
हनिय हनै ओरे ! चड-चडाल मारा ॥१६५॥
वहै मलियानिला विरहि-चेत-सतापना,
रवै पिक पचमा विकसु किंशु फुल्ला वना ।
तरुण-तरु-पल्लवा मुकुलु माधवी-वल्लिया,
वितर सखि ! नेत्रवा समय माधवा आइया ॥१७६॥
अमियकर किरण धरु फुल्लु नवकुसुम वन,
कुपित भइ शर थवइ काम निज धनु धरै ।
रवइ पिक समय निज कत तव थिर हृदय,
गयउ दिन पुनि न मिलु, जाहि सखि ! पिय-नियर ॥१६१॥
जहँ फुल्ल केतकि चारु-चंपक-चूत-मंजरि-वंजुला,
सब दीस दीसै किंशु कानन प्राण व्याकुल भ्रम्मरा ।
वहें पद्म गंध-विबंध-बंधुर मंद-मंद समीरणा,
निज केलि-कौतुक-लास-भंगिम लागिया तरुणी जना ॥१६७॥

---

[1] हैं

फुल्लिअ केसु चंद तह विअसिय, मंजरि तेज्जइ चूआ;
दक्खिण-वाउ सीअ भइ पवहइ, कंप विओइणि हीआ।
केअइ-धूलि सब्ब दिस पसरइ, पीअर सव्वउ भासे,
आउ वसंत काह सहि ! करिअइ, कत ण थाकइ पासे ॥२०३॥ (५६३)

(४) वीर-प्रशंसा

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण ॥७६॥ (१३६)

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चल गुज्जर कुजर तेज्जि मही, तुअ **डव्वर** जीवण अज्जु णही,
जइ कुप्पिअ कण्ण-णरेंदवरा, रण को हरि को हर वज्जहरा ॥१२०॥ (४४८)
कण्ण चलते कुम्म चलइ पुहवि[1] असरणा,
कुम्म चलंते महि चलइ भुअण-भअ-करणा।
महिअ चलंते महिहरु तह असुरअणा,
चक्कवइ चलंते चलइ चक्क तह तिहुअणा ॥९६॥ (१६५)
जे गंजिअ **गोला**हिवइ राउ, उद्दंड **ओड्डु** जमु भअ पलाउ।
गुरु विक्कम **विक्कम** जिणिअ जुज्झ, ता **कण्ण** परक्कम कोइ बुज्झ ॥१२६॥ (२१६)
जिहि आसावरि देसा दिण्हउ, सुत्थिर **डाहर** रज्जा लिण्हउ।
कालंजर जिणि कित्ती थप्पिअ, धणु आवज्जिअ धम्मक अप्पिअ ॥१२८॥ (२२२)
हणु **उज्जर-गुज्जर**-राअ-कुलं, दल-दलिअ चलिअ **मरहट्ठ**-वलं।
वल मोडिअ **मालव**-राअ-कुला, कुल उज्जल **कलचुलि कण्ण** फुला ॥१८५॥ (२९६)
धिक्क दलण थोंग-दलण तक्क-दलण रिंगाए,
णं-ण-णुकट दिग दुकट रगल तुरंगए।

---

[1] पृथिवी

फुल्लिअ किंशु चंद्र तिमि विकसिय मंजरि त्याजै चूता ।
दक्षिण-वायु शीत-भय प्रवहै, कंप वियोगिनि हीया ।
केतकि-धूलि सर्व दिशि प्रसरै, पीयर सर्वउ भासै ।
आउ वसंत काह सखि ! करिये, कत न थाके[1] पासे ॥२०३॥

(४) वीर-प्रशंसा

सुर-तरु सुरभी परस-मणि, नहिँ बीरेश-समान ।
वह वल्कल अरु कठिन-तनु, वह पशु वह पाषाण ॥९७॥

(५) कर्ण (कलचूरि) राजाकी प्रशंसा

चलु गुर्जर ! कुंजर त्याजि. मही, तव बर्बर जीवन आज नहीं ।
यदि कोपिय **कर्ण**-नरेन्द्रवरा, रणे को हरि को हर-वज्रधरा ॥१३०॥
कर्ण चलंते कूर्म चलै पुहुवि अशरणा,
कूर्म चलते महि चलै भुवन-भय-करणा ।
मही चलते महिधर नहँ असुरजना,
चक्रवर्त्ति चलते चलै चक्र तिमि तिभुवना ॥९६॥
जे गजिअ **गौडा**धिपति राउ, उद्दड **ओड्र** जमु भय पलाउ ।
गरु-विक्रम **विक्रम** जिनिहि जुज्झ, तो कर्ण-पराक्रम कोइ बुज्झ ॥२१९॥
जिनि **आसावरि** देशा दीनेँउ, सुस्थिर **डाहर** रज्जा लीनेँउ ।
कालंजर जिति कीर्त्ति थापिय, धन आवंजिय धर्महँ अर्पिय ॥१२८॥
हनु उज्वल **गुर्जर**-राजकुलं, दरदारिय चलिय **मरहट्ठ**-बल ।
बल मोडिय **मालव**, राजकुला, कुल-उज्वल **कलचुरि** कर्ण-फुला ॥१८५॥
धिक्क दलन थोंग दलन तक्क दलन रेगए,
न-ननु-कट दिग-दुकट रंग चल तुरंगए ।

---

[1] रहै

धूलि धवल हक्क सवल पक्खिपवल पत्तिए,
कण्ण चलइ कुम्म ललइ भुम्मि भरइ कित्तिए ॥२०१॥ (३२२)

जुभ्झ भट भूमि पड, उट्ठि पुणु लग्गिआ,
मग्ग-मण खग्ग हण कोइ णहि भग्गिआ।
बीस सर निक्ख कर **कण्ण** गुण अप्पिआ,
पत्थ तह जोलि दह चाउ सह कप्पिआ ॥१६१॥ (४८८)

सज्जिअ जोह विवट्ठिअ कोह चलाउ धणू,
पक्खर वाह चलू रणणाह कुरत तणू।
पत्ति चलत करे धरि कुत सुखग्गकरा,
कण्ण-णरेद मुसज्जिअ विद चलति धरा ॥१७१॥ (५०२)

कण्ण पत्थ ढुक्कु लुक्कु सूरवाण सहाण,
घाउ जासु तासु लग्गु अधआर सहाण।
एन्थ पत्थ सट्ठि वाण **कण्ण** पूरि छड्डुएण,
पेक्खि **कण्ण** कित्ति धण्ण वाण सव्व कट्ठिएण ॥१७३॥ (५०४)

३—कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अइचल जोव्वण देह धणा, सिविणअ सोअर बधु-अणा।
अवसउ कालपुरी गमणा, परिहर **बब्बर** पाप-मणा ॥१०३॥ (४१४)

ए अत्थीरा देक्खु सरीरा घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोअर, मित्ता, सवु माया।
काहे लागी **बब्बर** बेलावसि[1] मुज्झे,
एक्का कित्ती किज्जहि जुत्ती, जइ सुज्झे ॥१४२॥ (४६३)

---

[1] **बेलावसि = बाहर निकालते हो (मैथिली क्रि० बेलाएब)**

धूलि धवल हाँक सबल पक्षि-प्रवल पत्तिए[1],
कर्ण चलै कूर्म ललै भूमि भरै कीर्त्तिए ॥२०१॥

जूझ भट भूमि पडु उट्ठि पुनि लग्गिया,
स्वर्ग-मन खड्ग हन कोइ नाहि भग्गिया।

बीस-शर तक्षिण कर **कर्ण** गुणें अर्पिया,
पार्थ तहँ जोरि दश चाप-सह कप्पिया[2] ॥१६१॥

सज्जित योध विवर्द्धित-क्रोध चलाउ धनू,
पक्खर-वाह[3] चलो रणनाथ फुरंत तनू।

पत्ति[1] चलंत करे धरि कुत मु-खड्गकरा,
कर्ण-नरेन्द्रें सु-सज्जित-वृन्दें चलंति धरा ॥१७१॥

कर्ण-पार्थ ढुक्कु लुक्कु सूर-वाण-सहतेहिँ,
घाव जासु तासु लागु अंधकार संहतेहिँ।

अत्र पार्थ साठ वाण कर्ण पूरि छाडतेहिँ,
पेखि कर्ण-कीर्त्तिधन्य वाण सर्व काटियेहिँ ॥१९३॥

३–कविका संदेश

(जगत् तुच्छ—)

अनिचल-यौवन-देह-धना, स्वप्नए सोदर-वधु-जना।
अवसए काल-पुरी-गमना, परिहर **बब्बर** पाप मना ॥१०३॥

ए अस्थीरा देक्खु शरीरा, घरु जाया,
वित्ता, पित्ता, सोदर, मित्रा, सब माया।

काहे लागी **बब्बर** बैलावसि मुज्झे,
एक्का कीर्त्ती किज्जइ युक्ती, यदि मुज्झे ॥१४२॥

---

[1] प्यादा [2] काटा [3] बख्तरवार घोड़ा

§ २८. कनकामर मुनि

काल—१०६० ई०(?)। **देश**—बुंदेलखंड(?)। **कुल**—ब्राह्मण, दिगंबर

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

दीवाण पहाणहिँ दीव-दिवे। जबू-दुम लंछिएँ जबुदिवेँ।
वेढिय लवणण्णव वलयमाणेँ। जोयण मय-सहस परिप्पभाणेँ।
वित्थिण्णउ इह मिरि भरह-छेत्तु। गंगाणइ सिंधुहु विप्फुरन्तु।
छक्खंड भूमि रयणहँ णिहाणु। रयणायरोव्व सोहायमाणु।
एत्थत्थि रवण्णउ अंगदेसु। महि-महिलइँ णं किउ दिव्ववेसु।
जहिँ सरवरि उग्गय पकयाइँ। ण धरणि वयणि णयणुल्लयाइँ।
जहिँ हालिणि[1] रूवणि वद्धणेह। सचल्लहिँ जक्खण दिव्वदेह।
जहिँ बालहिँ रक्खिय मालिखेत्त। मोहेविणु गीयएँ हरिणखेत।
जहिँ दक्खइँ भुंजिवि दुहु मुयंति। थल-कमलहिँ पंथिय सुहु सुयंति।
जहिँ सारणि सलिल सरोय-पंति। अइरेहइ मेइणि णं हँसंति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देसि खण्णइँ धण-कण-पुण्णइँ अत्थि णयरि सुमणोहरिया।
जण-णयण-पियारी महियलि सारी, **चंपा** णामइँ गुणभरिया॥

जा वेठिय परिहा-जलभरेण। णं मेइणि रेहइ सायरेण।
उत्तुग-धवल कउ सीसएहिँ। णं सग्गु छिवइ बाहू-सएहिँ।
जिण-मंदिर रेहहिँ जाहिँ तुंग। ण पुण्णपुंज णिम्मल अहंग।
कोसेय पडायउ घरि लुलंति। णं सेय-सप्प णहि सलवलंति।

---

[1] देखो स्वयंभू (पृ० ३२), और पुष्पदंत (पृ० १९२ और १९४)

§ २८. कनकामर मुनि

साधु। कृति—करकंड-चरिउ[1]

१—भौगोलिक वर्णन

(१) अंग-देश-वर्णन

द्वीपन कों प्रधानो द्वीप-दीप। जबुद्रुम-लांछित जबुद्वीप।
वेठिय लवणार्णव वलयमान। योजन-शत-सहस-परिप्रमाण।
विस्तीर्णउ इह श्रीभरत-छेत्र। गगानदि-सिधुउ विस्फुरत।
छै खंड भूमि रतनहँ निधान, रतनाकर इवँ शोभायमान।
एहिं अहै रम्य (एँहु) अंग-देश। महि-महिलैं जनु किउ दिव्यवेष।
जहँ सरवरें उग्गैं पंकजाइँ। जनु धरनि-वदनें नयनुल्लयाइँ।
जहँ हालिनि[2] रूप-निबद्ध-नेह। सचल्लैं यक्ष न दिव्यदेह।
जहँ बाला राखिय शालि-खेत। मोहेविय गीतहिँ हरिन खेत।
जहँ द्राक्षइँ भुंजिय दुधु मुंचति। स्थलकमलहँ पथिक सुख सोंवति।
जहँ सरवर-सलिलें सरोज-पंक्ति। अतिराजै मेदिनि जनु हसंति।

(२) चंपानगरी

घत्ता। तहँ देशें रमणयइँ, धन-कण-पूर्णइ, आहि नगरि सुमनोहरिया।
जननयन-पियारी, महियल-सारी, **चंपा** नामइँ गुण-भरिया॥
जा वेठिय परिखा-जल-भरेहिं। जनु मेदिनि राजै सागरेहिं।
उत्तुग-धवल कपि-शीशएहिं। जनु स्वर्ग छुवै वाहूशतेहिं।
जिनमंदिर राजैं जाहँ तुंग। जनु पुण्य-पुज निर्मल अभंग।
कौषेय-पताकउ घरें लुलति। जनु श्वेत-सर्प नभें सरसरंति।

---

[1] कारंजा जैन-ग्रंथमाला (कारंजा, बरार) में प्रो० हीरालाल जैन द्वारा संपादित (१९३४)

[2] हलवाह-वधू

जा पंचवण्ण-मणि-किरण-दित्त । कुसुमंजलि ण भयणेण घित्त ।
चित्तलियहिं जा मोहइ घरेहिं । णं अमर-विमाणहिं मणहरेहिं ।
णव-कुंकुम-छडयहि जा सहेइ । समरंगणु मयणहों ण कहेइ ।
रत्तुप्पलाइं भूमिहि गयाइं । ण कहइ धरती फलसयाइं ।
जिण-वास पुण्ण-माहप्पएण । ण वि कामुय जित्ता कामएण ।

घत्ता । तहिं अरिविद्दारणु, मयतरु-वारणु, धाडी वाहणु पहु हुयउ ।
जो कवगुणजुत्तउ, गुरुयणभत्तउ, विज्जासायर पारगउ ।

—करकंड-चरिउ, पृ० ४, ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एक्कहिं दिणि करकंडएण । पुणु दिण्णु पयाणउ तुरियएण ।[1]
गउ सिंहलदीवहों णिवसमाणु । करकंडु णराहिउ णरपहाणु ।
जहि पाउल पिल्लइं मणुहरंति । सुर-खेयर-किंणर जहिं रमंति ।
गयलीलइं महिलउ जहिं चलंति । णियरूवें रइरूउवि खलंति ।
जहि देक्खिवि लोयहँतणउ भोउ । वीसरियउ देवहँ देवलोउ ।
आवासिउ णयरहों बहिय एसें । अरिसंक पवड्ढिय तहिं जि देसें ।
आवासु मुएँवि सहयरसमेउ । करकंडु गयउ रमणिहिं अमेउ ।
तहिं गरुवउ सवणमणेहिं भरिउ । ण कण्णवच्छु देवेहिं धरिउ ।
दलवंतहि पत्तहिं परियरिउ । वहु विट्टु राएँ समु वित्थरिउ ।

घत्ता । करकंडें पेक्खवि तहों वडहों, दीहइं सुट्ठु सुकोमलइं ।
ता लेविणु गुलिया धणहडिया विद्धाइं असेसइं सद्दलइं ॥

—वही पृ० ६४

---

[1] तूर्य=नगाड़ा

जा पंचवर्ण-मणि-किरण-दीप्त । कुसुमांजलि जनु भगणेहिं[1] क्षिप्त ।
चित्तलियहिं जा मोहै घरेहिं । जनु अमर-विमानहिं मनहरेहिं ।
नवकुंकुम-छट्टयेहिं जा सहेइ । समरांगण मदनहों जनु कहेइ ।
रक्तोत्पलाइं भूमिहिं गताइं । जनु कथै धरित्री-फल-शताइं ।
जिन-वास-पूजा-माहात्म्यएहिं । नहि कामुक चिंता कामणेहिं ।

घत्ता । तहं अरिविद्दारन, मदतरु-वारन, धाडीवाहन प्रभु हुअऊ ।
जो कविगुण-युक्तउ, गुरुजन-भक्तउ, विद्यासागर-पारगऊ ॥

--करकंड चरिउ, (पृ० ४ ५

(३) सिंहल-द्वीप-वर्णन

ता एकहिं दिन करकंडएहिं । पुनि दिन्न प्रयाणहिं तूर्ययेहिं ।
गउ सिहलद्वीपहु निवसमान । करकंड नराधिप नरप्रधान ।
जहं पावस पिल्लेइ मनहरंति । सुर-खेचर-किन्नर जहं रमंति ।
गजलीलहिं महिलउ जहं चलंति । निजरूपे रतिरूपहं खलंति ।
जहं देखिय लोकहं केर भोग । वीसरियउ देवहं देवलोक ।
आवासेंउ नगरहं वहिप्रदेशें । अरि-शंका बाढी ताहि देशें ।
आवास छाडि सहचर-समेत । करकंड गयेंउ रमणिहिं अमेय ।
तहं गरुअउ स्रवण शतेंहिं भरिउ । जनु कल्पवृक्ष देवेंहिं धरिउ ।
दलवंतहिं पत्रहिं परिचरिऊ । वट देखु राव सम-विस्तरिऊ ।

घत्ता । करकंडेहिं दीसेंउ सो वट, दीरघ सुष्ट सुकोमलइ ।
तो लेइय गोली धनुहडिया, वेंधेंउ अशेषडं शाद्वलइ ॥५॥

--वही पृ० ६४

---

[1] नक्षत्रमंडल [2] पक्षी कोई

२—सामन्त-समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ 'वि लोयहिँ कलियमाणु । गउ सुन्दरु पुरवरें जणसमाणु ।
घत्ता । सो पुरवरणारिहि गुणणिलउ पइसतउ दिट्ठउ णयरे कह ।
णं दसरहणंदणु तेयणिहिँ उज्झहिँ सुरणारीहि जहँ ॥
तहुँ पुरवरें खहियउ रमणियाउ । झाणट्ठिय मुणि-मण-दमणियाउ ।
कवि रहसइँ तरलिय चलिय णारि । विहडप्फड़ सठिय कावि वारि ।
कवि धावइ णव-णिव णेहलुद्ध । परिहाणु ण गलयउ गणइ मुद्ध ।
कवि कज्जलु वहलउ अहरें देइ । णयणुल्लयें[1] लक्खारसु करइ ।
णिग्गंथ-वित्ति कवि अणुसरेइ । विवरीउ डिंभु कवि कडिहिँ लेइ ।
कवि णेउरु करयलि करइ बाल । सिरु छड्डिवि कडियले धरइ माल ।
णियणदणु मण्णिवि कवि वराय । मज्जारु ण मेल्लइ साणुराय ।
कवि धावइ णवणिउ मणें धरंति । विहलंघल मोहइ धर सरंति ।
घत्ता । कवि माण-महल्ली मयण-भर, करकंडहों समुहिय चलिय ।
थिर थोरय ओहरि मयणयण उत्तत्त-कणय-छवि उज्जलिय ॥
णवरज्जलंभ रंजिय हिएण । करकडइं पुरें पइसतएण ।
गयखंधें चडण्णिय जंतएण । णिउ-राउलु लीलए पत्तएण ।
तं दिट्ठउ राय-णिकेउ तुगु । अइमणहरु णं **हिमवंत**-सिगु ।
मुक्ता-हल-माला-तोरणेहिं । णं विहसइ सियदंतहिँ घणेहिं ।
किंकिणि रणंतु धयवडउ मालु । णं णच्चइ पणयणि बिहिय-तालु ।
चामीय-रमणि-रयणेहिँ घडिउ । णं सग्गहों अमर-विमाणु पडिउ ।
तहिँ पइसइ णवणिउ विमलबुद्धि । पारंभिय गुरु-यणु मण-विसुद्धि ।
कर हेमकुंभु मगलु करंति । कवि माणिणि णिग्गयता तुरंति ।

---

[1] नयन=नयनुल्ला

२–सामन्त समाज

(१) राज-दर्शन

अवरेहिँ हु लोकहिँ कलितमान[1] । गयो सुन्दर पुरवरे जनसमान[2] ।

घत्ता । सो पुरवरनारिहिँ गुणनिलय पइसंता दीठेँउ नगरेँ किमि ।
जनु दशरथनंदन तेजनिधि 'योध्या सुरनारीहि जिमि ॥

तहँ पुरवरेँ क्षुभ्यउ रमणियाउ । ध्यान स्थित-मुनि-मन-दमनियाउ ।
कोँइ रहसेँ तरलिय चलिय नारि । हडफड सं-ठिय कोई दुवारि ।
कोँइ धावै नव-नृप-नेह-लुब्ध । परिधान न गलियउ गनै मुग्धाँ ।
कोँइ कज्जल बहुतो अधर देइ । नयनुल्लेँ लाक्षारस करेइ ।
निर्ग्रन्थ-वृत्ति[3] कोँइ अनुसरेइ । विपरीत बाल कोँइ कटिहिँ लेइ ।
कोँइ नूपुर करतलेँ करै बाल । शिर छाडी कटितलेँ धरै माल ।
निजनंदन मानिय कोँइ वराकि । मार्जार न फेँकै मानुराग ।
कोइ धावै नवनृप मनेँ धरनि । विह्वलधर मोहै धरां स्मरंति ।

घत्ता । कोँइ मान-महल्ली[4] मदन-भरा, करकडह सम्मुख चलिया ।
स्थिर थोडा अपहरि मदनयना, उत्तप्त-कनक-छवि-उज्ज्वलिया ॥

नव-राज्य-लाभ-रंजित-हियेहिँ । करकडहिँ पुरेँ पइसतएहिँ ।
गज-कधे चढिया जतएहिँ । नृप-राजुल-लीला-प्राप्तएहिँ ।
सो देखउ राज-निकेत तुग । अतिमनहर जनु हिमवत-शृग ।
मुक्ताफल-माला-तोरणेहिँ । जनु विहसै सित-दतहिँ घनेहिँ ।
किंकिणि रणंत ध्वजपटि'व माल । जनु नाचै प्रणयिनि विहित-ताल ।
चामीकर-मणि-रतनेहिँ गढेँउ । जनु सर्गहँ अमर-विमान पडेँउ ।
तहँ पइसै नव-नृप विमल-बुद्धि । प्रारंभिय गुरु-जन मन-विशुद्धि ।
केँ हेम-कुभ मंगल करंति । कोइ मानिनि नीसरि गइ तुरंति ।

---

[1] सम्मान कृत [2] जनों सहित [3] नंगापन [4] महल

परिसगलु किउ वर-दीवएहि । जयफारिउ पुणु णारी-सएहि ।
सोवण्ण-कलस-कय उच्छवम्मि । पइसारिउ सो णिव-मदिरम्मि ।
घत्ता । सो मयल-गुणायरु सीलणिहि, विणयभाव-संजुत्तउ ।
सामत-मति-जण-परियरिउ, पुरि अच्छइ[1] रज्जु करतउ ।

—वही पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकडहो उप्परि खेयरासु । अइपउरु पवड्ढिउ णेहु तासु ।
पाढाविउ सो णीतिएँ जुयाइँ । वायरण-तक्क-णाडय-सयाइँ ॥
कविविरइय कव्वइँ बहुरसाइँ । **वच्छायण**-गणियइँ णवरसाइँ ।
मताइँ असेसइँ तत्तयाइँ । वमियरण सुसोहइँ जतयाइँ ॥
असिचक्क-कुत-छुरियउ वराउ । धणुवेय—सत्ति-दिढ-तोमराउ ।
मल्लाण जुज्झ तणुघट्टणाइँ । उल्लालणइँ वलणइँ लोट्टणाइँ ।
फल-फुल्ल-पत्त-छेयतराइँ । जाणाविउ मयलहो सुहयराइँ ।
पडु-पडह-मुरय-वीणाइ वसु । विज्जाइँ असेसइँ कलिउणेसु ।
घत्ता । ज किंपि पसिद्धउ भुवणयले, खेयरहँ जणाविउ सो सुरइ ।
लोहेण विडविउ मयल जणु, भणु कि कर चोज्जइँ णउ करइ ॥

—वही पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता । हल्लोहलि हूयउ मयलुजणि अपरपरि जाणइ मच्चलहि ।
हा-हा-रउ उट्ठिउ करुण-सरु, नहो मोए णरवर-मल्लवलहि ॥
जा णर-पचाणण वियसिय-आणणु जलि पडिउ ।
ता मयलहिं लोयहिं पसरिय सोयहिं अइडरिउ ॥
रइवेय सुभामिणि ण फणि-कामिणि विमणभया ।
सव्वंगे कंपिय चिन्ते चमक्किय मुच्छगया ॥

---

[1] रहता है, है

परि-मंगल किउ वर-दीपकेहिँ । जयकारेँउ पुनि नारी-शतेहिँ ।
मौवर्ण-कलश-कृत उत्सवहीँ । पइसारेँउ सो निजमंदिरहीँ ।
घत्ता । सो सकल-गुणाकर शील-निधि, विनय-भाव-संयुक्तऊ ।
सामत-मत्रि-जन-परिवरिय, पुरि आछै राज्यकरतऊ ॥
—वही पृ० २३, २४

(२) राजकुमार-शिक्षा

करकडह-ऊपर खेचराहु । अतिप्रवर प्रवाढेँउ नेह तासु ।
पढयउ सो नीतिय जुताइँ । व्याकरण-तर्क-नाटक-शताइँ ।
कवि-विरचित-काव्यइँ वहु-रसाइँ । वात्स्यायन-गनितइँ नवरसाइँ ।
मंत्राइँ अशेषइँ तत्रयाइँ । वशिकरण सु-सोहैँ मंत्रयाइँ ।
असि-चक्र-कुत-छुरियउ वराउ । धनु-वेद-शक्ति दृढ तोमराउ ।
मल्लाहँ युद्ध तनु घट्टनाइँ । उल्ललनैँ वलनैँ लोट्टनाइँ ।
फल-फूल-पत्र-छेक'न्तराइँ । जानावेँउ सकलैँ शुभकराइँ ।
पटु-पटह-मुरज वीणाइँ वशि । विद्याइँ अशेषइँ ऋपिटएसु[1] ।
घत्ता । जो किछुउ प्रसिद्धउ भुवनतले, खेचरइँ जनायेउ सो सुरति ।
लोभेहिँ विडविउ सकल जन, भन की कर प्रेरणे न करइ ॥
—वही पृ० १६, १७

(३) पति-विरह

घत्ता । हल्लाहल हयो सकल जन, अपरापर जानै संचलही ।
"हा हा" रव उठेँउ करुण-स्वर, पुनि-शोके नरवर कलबलहीँ ॥
जो नर-पंचानन विकसित-आनन जलेँ पडेँऊ ।
तो सकलहिँ लोकहिँ प्रसरित-शोकहिँ अति डरेँऊ ॥
रति-वेग सुभामिनि जनु फणि-कामिनि विमन-भया ।
सर्वांगे कपिय चित्तेँ चमक्किय मूर्छगता ॥

---

[1] मुकुट

किय-चमर-सुवाएँ सलिल-सहाएँ गुणभरिया ।
उट्ठाविय रमणिहि मुणि-मण-दमणिहि मणहरिया[1] ॥
सा करयल-कमलहिँ सुललिय-सरलहिँ उरु हणइ ।
उव्वा-लउणयणी गग्गिर-वयणी पुणु भणइ ॥
"हा वइरिय वइवस पावमलीमस किं कियउ ।
मइँ आसिव रायउ रमणु परायउ किं हियउ ॥
हा दइव परम्मुह दुण्णय-दुम्मुह तुहुँ हुयउ ।
हा सामि ! म-लक्खण सुट्ठु वियक्खण कहिँ गयउ ।
महोँ उपरि भडारा णरवर सारा करुण करि ।
दुह-जलहिँ पडन्ती पलयहोँ जंती णाह धरि ॥
हउँ णारि वराइय आवइँ आइय को सरउँ ।
परछड्डिय तुम्हहिँ जीवमि एवहिँ किं मरउँ" ॥
इय सोय-विमुद्धइँ लवियउ सद्धइँ ज हियइ ।
हउ वोल्लिसु तइयहु । मिलिहइ जइयहु मज्झु पइ ।

वही पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवसहो आवइ जाव राउ । मयणावलि णउ पेच्छइ 'वि ताउ ॥
जोइयउ चउद्दिसु हियय्हीणु । उव्वेविरु हिडइ महिहेँ दीणु ॥
ता संकिउ णरवइ गलिय-गव्वु । "कहिँ गउ कलत्तु सव्वग-भव्वु ॥
मयणावलि जा आणद-भरिअ । सा एवहिँ किं विपरीय हूअ" ॥
ता पेसिय किंकर वर-णिवेण । अवलोयहु सामिणि दिसिवहेण ॥
जोएवि दिसिहिँ आगयवलेवि । पुक्कारहिँ उब्भा-कर करेवि ॥
ता राए देक्खवि ते सुपंत । परिमुक्क अंसु णयणहिँ तुरंत ॥
"हे पयवइ तुहुँ सवणाणवधु । महु अक्खहि सुदर-णेह-बंधु ॥

---

[1] मण हरिया (=मनहरिया)

कृत-चमर-सुवातें सलिल-सहायें गुण-भरिया ।
उट्ठाइय रमणिहिँ मुनिमन-दमनिहि मणहरिया ॥
सा करतल-कमलहिँ सुललित-सरलहिँ उर हनई ।
उद्-व्याकुल-नयनी गद्गद-वदनी पुनि भनई ॥
"हा वैरी बीबस पाप-मलीमस की कियऊ ।
मम अहेँउ वराकिउ रमण परायउ की हियऊ ॥
हा दैव ! पराङ्मुख दुर्नय दुर्मुख तुहुँ भयऊ ।
हा स्वामि ! मलक्षण सुष्ट विचक्षण कइँ गयऊ ॥
मम उपर भट्टारा[1] नरवर मारा करुण करो ।
दुख-जलधि-पडंती प्रलयहँ जाती नाथ धरो ॥
हौ नारि वराकी आपति आये को सुमिरऊँ ।
पर छाडिय तुम्हहिँ जीवौँ एव की मरऊँ ॥"
इमि शोक-विमुग्धइँ लपियउ क्षुब्धहिँ जो हियई ।
हौँ बोलमु तइयहुँ मिलिहै जइहउँ मोर पती ॥

वही पृ० ६७

(४) पत्नि-विरह

आवासहोँ आवई जाव राव । मदनावलि ना पेखेउ ताव ॥
जोइयै चतुर्दिश हृदयहीन । उद्वेगिर हिडै महिहेँ दीन ॥
तो शकेँउ नरवरेँ गलित-गर्व । कहँ गउ कलत्र सर्वांग-भव्य ॥
मदनावलि जा आनंदभूअ । सा एवं की विपरीत हूअ ॥
तब प्रेषेउ किंकर वर-नृपेहिँ । "अवलोकहु स्वामिनि दिशि-पथेहिँ ॥"
जोयउ दिसीहिँ आगत-वलेइ । पुक्कारहिँ ऊँचा कर करेइ ।
तब राय देखियउ ते मोँवन । परि-मुच अश्रु नयनहिँ तुरत ।
"हे प्रजापति तुहुँ श्रवणानुबध । मोहि आखहु सुदर-नेह-बंधु ।

---

[1] भट्टारक=राजा

हा मुद्धि मुद्धि तुहुँ केण णीय। कि एवहिँ लिहिक्किवि काहिमि ठीय ॥
हा कजर कि तुहुँ जमहों दूउ। कि दोसइँ महों पडिकूलु हूउ ॥
घत्ता। चिरु मोहु बहंतउ कोवि हियइँ, लडह-रूउ अग्गइँ हुयउ।
विज्जाहरु आयउ सोवि तहिँ, विज्जासायर पारु गउ ॥

—वही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवकं। करकडइ साहिवि महि-सयल, परिपुच्छिउ मइवरु विमलमइ।
भणु सम्मइ मइवर को 'वि णिरु, जो अज्जु'वि दुट्ठउ णवि णवइ ॥
सो मइवरु पभणइ "देव देव। तुह महियलु सयलु'वि करइ सेव।
परि **दिविड-देसँ** णिव अत्थि धिट्ठ। ते णमहि ण कासुवि हियइँ दुट्ठ।
सिरि **चोडि पंडि** णामेण **चेर**। णउ करहिँ तुहारी देवकेर" ॥
आयण्णि'वि त **चंपा**हिवेण। सपेसउ दूयउ तहों खणेण।
"तें जाइवि ते **चोडा**इ राय। इउ भणिय णवहु करकड-पाय।"
[1]णिब्भत्थिउ दूयउ तेहिँ सोवि। "जिणु मेल्लिवि अण्णु णवहु कोवि।"
करकडहों आइवि कहिउ तेण। "णउ करहि सेव तुह कि परेण।"
त मुणिवि वयणु करकडु राउ। "जइ देमि ण तहों सिरि णिययपाउ।
तो महियलु पुत्त इदिय मुहामु। महों अत्थि णिविट्ठि परिग्गहामु।"
एँह पइज करिवि करकंडएण। लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण।
घत्ता। चंपाहिउ चल्लिउ तहों उवरि, गय चडिवि विणिग्गउ पुरवरहो।
चउरंगइँ सेण्णइँ सजुयउ. सो लीला धरइ सुरेसरहो ॥
तहों जंतहों महि हय-खुरहिँ भिण्ण। गयणंगणि गय-रय-धूम-वण्ण।
पसरंतहि तेहिँ दिग्गाणणाहँ। ण मुहवडु किउ दिसिवारणाहँ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरिंद। कपंत पणट्ठा खे सुरिंद।
दक्खिण-वहे गउ **तेरापुरम्मि**। तहों दक्खिण-दिसिहि महावणम्मि।

---

[1] डांटा, फटकारा।

हा मुग्धें मुग्धें तुहुँ केहिँ नीउ । की एव लुक्किय कतहुँ ठीय ।
हा कुंजर ! की तुहुँ यमहँ दून । की दोषहिँ मोहि प्रतिकूल हुअ ।
घत्ता । चिर मोह वहंतउ कोउ हियहिँ, सुँदर रूप अग्गे हुयउ ।
विद्याधर आयउ सोउ तहिँ, विद्यासागर पार गउ ॥

—वही पृ० ५१

(५) दिग्विजय-वर्णन

ध्रुवक । करकंडहिँ साधिउ महि-सकल, परिपूछेंउ मति वर विमलमति ।
"भण सम्यक् मतिवर कोंउ निश्चय, जो आजउ दुष्टउ नहि नवइ ।"
सो मतिवर प्र-भणै "देवदेव । तुहँ महियल सकलहु करै सेव ।
पर **द्रविड-देशें** नृप अहै धृष्ट । सो नमै न काहुहिँ हृदय-दुष्ट ।
श्री **चोल पांडय** नामेन **चेर** । ना करै तुहारी देवकेर ।"
मुनि केहू सो चपाधिपेहिँ । संप्रेषेंउ दूतहिँ तहँ क्षणेहिँ ।
"तैं जाइवि तेहि **चोलाधिराज** । इमि भनिवि 'नमहु करकडपाद' ।"
निर्भत्स्यें उ दूतउ तेहिँ सोउ । "जिन छाडि अन्य ना नमहुँ काहु ।"
करकडहिँ आई कहेंउ तेन । "ना करै सेव तव की परेन ।"
सो सुनिय वचन करकडु राव । "यदि देउँ न तेहि शिर निजहि पाव ॥
तो महितल-पुत्र-इन्द्रिय-सुहास । मम अहै निवृत्ति-परिग्रहास ।"
गँहु पइज[1] करेंउ करकंडएहिँ । लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ ।
घत्ता । चंपाधिप चल्लेंउ तेहि उपरि, गज चढिय नीसरेंउ पुरवरहँ ।
चतुरंगइँ सैन्यइँ संयुतउ, सो लीला धरै सुरेश्वरहँ ॥
तहँ जानेंउ महि हय-खुरेहिँ भिन्न । गगनागनें गजरज धूमवर्ण ।
पसरता ने दिश-आननाहँ । जनु मुख-बंधु किउ दिश-वारणाहँ ।
महि हल्लिय चल्लिय गिरिवरेंद्र । कंपंत प्रनष्ट रवें[2] सुरेंद्र ।
दक्षिणपथें गउ **तेरापुरेइ** । ताँहू दक्षिण-दिशी महावनेइ ।

---

[1] प्रतिज्ञा [2] तुरंत [3] आकाश में

आवासिउ तहिं बलु चाउरंगु । खणें सीह पुलिदहँ हुयउ भगु ।
संताडिय दूसय पंचवण्ण । णं अमरगेह - भूमिहि पवण्ण ।
गय करिवर लेविणु जलहों मेट्ठ । रासहियहिं धाविय खर पहिट्ठ ।
लोलाविय धय णिव-णरवरेहिं । महि णच्चइ णं उब्भिय करेहिं ।
घत्ता । आवासिउ अच्छइ जाव तहिं, करकंड-णराहिउ पउर-बलु ।
पडिहारु पराइउ तहो पुरउ, दूराउ णमंतउ हरियमलु ॥
—वही पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

तं सुणिवि वयणु चपाहिराउ । मण्णज्झइ ता किर बद्धराउ ।
तावेत्तहिं दंतीपुरि-णिवेण । कंपाविय मेइणि मंदरेण ।
णिण्णासिय अरि-यण-जीवएण । उड्डाविय दहदिसि रय रवेण ।
णहु छायउ [1]खलियउ रविवएण । लहु दिण्णु पयाणउ कुद्धएण ।
गंगापएसु संपत्तएण । गंगाणइ दिट्ठी जलएण ।
सा सोहइ सिय-जल कुडिलयंति । णं सेयभुजगहो महिल जंति ।
दूराउ वहंती अइविहाइ । हिमवन्त-गिरिन्दहों कित्ति-णाइं ।
विहिं कूलहिं लोयहिं ण्हंतएहि । आइच्चहो जलु परिदितएहि ।
दब्भंकिय उड्ढहि कण्णलेहिं । णइ भणइ णाइं णयहिं छलेहि ।
"हउं सुद्धिय णिय-मग्गेण जामि । मा रुसहि अम्हहों उवरि सामि" ।
णइ पेक्खिवि णिउ करकंडु णामु । गउ जणण-णयरु गुण-गणिय-धामु ।
घत्ता । जे संगरि सूरवर-खेयरहं, भउ जणियउ धणुहर-मुअम-रहों ।
तं वेढिउ पट्टणु चउदिसिहिं, गय-तुरय णरिंदहिं दुद्धरहों ॥
ता हयइं तूराइं, भुवणयल पूराइं ।
वज्जंति वज्जाइं, आणाए घडियाइं, परबलइं भिडियाइं ।

---

[1] स्खलित, खंडित

आवासेँउ तहँ बल-चातुरंग । क्षणेँ सिह पुलिंदहँ भयेँउ भंग ।
संताड़िय दुस्सह[1] पंचवर्ण । जनु अमरगेह-भूमिहि प्रपन्न ।
गय करिवर लेइय जलहोँ मेँठ[2] । रासभियहिँ धाइय खर प्रहृष्ट ।
लोलाइय ध्वज नृपनरवरेहिँ । महि नाचै जनु उत्थित-करेहिँ ।
घत्ता । आवासेँउ अच्छइ जव्व तहँ, करकंड-नराधिप पौरबल ।
प्रतिहार पर-आयेँउ तेँहि पुरउ, दुराउ नमंतउ हरियमल ॥

—वही पृ० ३५, ३६

(६) युद्ध-वर्णन

सो सुनिय वचन **चंपाधिराज** । सन्नाहेँ तो फुरि बद्ध-राग ।
तब्बै तहँ **दंतीपुर**-नृपेहिँ । कंपाइय मेदिनि मंदरेहिँ ।
निर्-नाशिय अरिजन-जीवितेहिँ । उड्डाविय दश-दिशि रज रणेहिँ ।
नभ छायउ खलियउ रविपदेहिँ । लघु दीन प्रयाणउ क्रुद्धएहिँ ।
गंगा - प्रदेश संप्राप्तएहिँ । गंगानदी देखेँउ जातएहिँ ।
सो सोहै सित-जल-कुटिल-पंक्ति । जनु श्वेतभुजंगह महिलाँ जंति ।
दूराउ वहंती अति-विभाइ । हिमवन्त-गिरीन्द्रह कीर्त्ति-न्याइँ ।
दोँउ कूलहँ लोगहि न्हातएहिँ । आदित्यहँ जल परि-देतएहिँ ।
दर्भांकित उट्ठा-करतलेहिँ । नदि भनै न्याइँ एतहिँ छलेहिँ ।
"हउँ केवल निजमार्गेहिँ जाउँ । ना रूसहु हम्महँ उपर स्वामि" ।
नदि पेखिय नृप करकंड-नाम । गउ जनन-नगर गुण-गणिय धाम ।
घत्ता । जो संगर सुरवर-खेचरहँ, भय जनियउ धनुधर-मुच-शरहीँ ।
सो बेठेँउ पाटन चउदिशिहिँ, गज-तुरग नरिंद्रेहिँ दुर्धरहीँ ॥
तब हयइँ तूराइँ, भुवन - तल - पूराइँ ।
वाजंति वाजाइँ, आनाद-घटिताइँ । पर-बलहिँ भिडियाइँ ।

---

[1] दुशाले [2] महावत

कुंताइँ भज्जंति, कुजरइ गज्जंति । रहसेण वग्गंति, करि-दसेण लग्गंति ।

गत्ताइँ तुट्टंति, मुडाइँ फुट्टति । सुडाइँ धावंति, अरिथाण पावंति ।
प्रताइँ गुप्पंति, रुहिरेण थिप्पंति । हड्डाइँ मोडंति, गीवाइँ तोडंति ।

घत्ता । केवि भग्गा कायर जेवि णर, केवि भिडिय केवि पुणु ।
खग्गग्गामिय केवि भड, मंडेविणु थक्का केवि रणु ॥

—वही पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंड मुणेविणु तं वयणु, अत्थाणहों उट्ठिउ तक्खणिण ।
'गउ सत्तपयइँ मउलेवि कर, सुमरंतउ मुणिवरपय मणिण ॥
ा आणंदभेरि तुरंतएण । देवावियं तुट्ठइँ राणएण ।

तहें णट्ठु मुणेविणु लद्धभोय । परिमिलिय खणद्धें भविय लोय ।
वि माणिणि चल्लिय ललिय देह । मुणि-चरण-सरोयहँ बद्धणेह ।

कवि णेउर सद्दें रणझणंति । संचल्लिय मुणि-गुण णं थुणंति ।
वि रमणु ण जनउ परिगणेइ । मुणि-दंसणु हियवएँ सइँ मुणइ ।

कवि अक्खयधूव भरेवि थाल । अइरहसइँ चल्लिय लेवि बालु ।
वि परिमलु वहलु वहंति जाइ । विज्जाहरि णं महियलि विहाइ ।

घत्ता । काइवि छण ससहर-आणणिया, करें कमलकरंती संचलिया ।
आणंदिय भेरिहें सुणिवि सुरु, लहु भवियण सयलवि तहिं मिलिया ।
णिंद-धम्म-रत्तओ, मुणिंद - पाय - भत्तओ ।
सुवण्णकंति - दित्तओ, सरोय - पत्त - णेत्तओ ।
लंब - पीण - हत्थओ, विबुद्ध - सव्व - सत्थओ ।
विसुद्ध-सन्धि-गत्तओ, खणेण जाव पत्तओ ।

---

[1] गयेउ

कुंताइँ भज्जंति । कुंजरइ गज्जन्ति । रथसेन वल्लंति । करि-दशन लग्गंति ।
गात्राइँ टूटंति । मुंडाइँ फूटंति । रुडाइँ धावंति । अरि-थान पावंति ।
अंत्राइँ गोपंति । रुधिरेहिँ थप्पंति । हड्डाइँ मोडंति । ग्रीवाइँ तोडंति ।

घत्ता । केँऊ भग्ग कायर जेउ नर, केँउ भिड़िया केउ पुनि ।
खड्ग उट्ठाइय कोउ भट, मँडियउ थाकेँउ केउ रणें ॥

—वही पृ० २८-३१

३—कविका संदेश

(१) मुनिका दर्शन

घत्ता । करकंडू मुनीया मो वचन । ग्राम्था'नहँ उट्ठेँउ तत्-क्षणहीँ ।
गउ सप्तपदे मुकुलित-कर, सुमिरंतउ मुनिवर-पद मनहीँ ॥

तब आनँदभेरि तुरतएहिँ । देवायउ तुष्टहिँ राणएहिँ ।
तहँ नष्ट मुनीया लब्ध-भोग । परिमिलेउ क्षणार्धे भाँवुक लोग[2] ।
कोँइ मानिनि चल्लिय ललित-देह । मुनि-चरण-सरोजहँ बद्ध-नेह ।
कोँइ नुपुर-शब्दें रुनझुनंति । सं-चल्लिय मुनि-गुण जनु स्तुवंति ।
कोँइ रमण न जातउ परि-गनेइ । मुनि-दर्शन-हिय पद स्वयँ जनेइ ।
कोँइ अक्षय-धूप भरीय थाल । अति रभसें चल्लिय लेइ बाल ।
कोँइ परिमल-बहुल वहंति जाइ । विद्याधरि जनु महितलें विहारि ।

घत्ता । काहुउ क्षण शशधर-आननिया, करें कमल करंती सचलिया ।
आनंदिय भेरिहि सुनिय स्वर, लघु भविजन[3]सकलउ तहँ मिलिया ॥

जिनेंद्र-धर्म-रक्तओ । मुनीद्रपाद-भक्तओ ।
सुवर्ण-कांति-दीप्तओ । सरोजपत्र-नेत्रओ ।
प्रलंब-पीन-हस्तओ । विबुद्ध-सर्व-शास्त्रओ ।
विशुद्धि-संधि-गात्रओ । क्षणेहिँ जाव प्राप्तओ ।

---

[1] दर्बार [2] जैन भक्त [3] भक्त

तहिं पि ताव दिट्ठिया, भणंति हा पमूठिया ।
पुरंधि[1] कावि दुक्खिया, हणंति दोवि कुक्खिया ।
रुवंति अंसु वाहुलं, जणाण दुःख-सकुलं ।
कुणंति चित्तु आउलं, धरंति वेसु वाउलं ।
घुलंति जावि मुच्छए, पडंति भू-पएसए ।
सुणेवि तं णरेसरो, सुवारणि-द्धणीसरो ।

घत्ता । करकंडइ पुच्छिउ कोवि णरु, एँह णारि वराई कि रुवइ ।
विलवंती हियवइँ मुहु करइ, अप्पाणउ विहलंघल मुअइ ॥

—वही पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

तं सुणिवि वयणु रायाहिराउ । ससारहो उवरि विरत्त-भाउ ।
धी धी अमुहावउ मच्च-लोउ । दुट्ठ कारणु मणुरहँ अंग-भोउ ।
रयणायर-तुल्लउ जेत्थु दुक्खु । महुबिंदु-समाणउ भोय-सुक्खु ।

घत्ता । हा माणउ दुक्खइं तडढ-तणु, विरसु रसतउ जहि मरइ ।
भण णिग्घिणु विसयासत्त-मणु, सो छँडिवि को तहिँ रइ करइ ॥

कम्मेण परिट्ठिउ जो उवरे । जम-रायए सोणिउ णिययपुरे ।
जो बालउ बालहि लावियउ । सो विहिणा णियपुरि चालियउ ।
णव-जोव्वणि चडियउ जो पवरु । जमु जाइ लएविणु सोजि णरु ।
जो बूढउ वाहि-सएहि कलिउ । जमदूयहिँ सो पुणु परिमलिउ ।
वहलद्दएं सहु हरि अतुलबलु । सो विहिणा णीयउ करिवि छलु ।
छक्खंड वसुन्धर जेहि जिया । चक्केसर[2] ते कालेण णिया ।
विज्जाहर किंणर जे खयरा । बलवंता जम-मुहे पडिय सुरा ।
फणिणाहइ सरिसउ अमर-वइ । जमु लिंतउ कवणु'वि णउ मुअइ ।

---

[1] स्त्री [2] चक्रवर्ती

तहाँउ तब्ब दिट्ठिया। भनंति "हा" प्रमुट्ठिया।
पुरंध्रि काउ दुःखिया। हनंति दोउ कुक्षिया।
रोवंति अश्रु-वाहुलं। जनाइ दुःख सकुल।
करेइँ चित्त आकुलं। धरंति वेष बाउरं।
घुरंति जा विमूढिया। पडति भू-प्रदेशए।
मुनीय सो नरेश्वरो। सुवारुणी धनीश्वरो।

घत्ता। करकंडइ पूछेंउ कोइ नर, एहु नारी वराकी का रोवैं।
विलपंती हियइँ दुहू करहिं, अप्पानउ विह्वलता मुचैं॥

—वही पृ० ८१-८२

(२) संसार तुच्छ

सो सुनिय वचन राजाधिराव। ममारहँ उपर विरक्त-भाव।
'धिक धिक 'अमोंहावउ मर्त्यलोक। दुख-कारण मनोंरथ-अंग-भोग।
रतनाकर-तुल्यउ यत्र . दुःख। मधुविदु-समानो भोग-सुक्ख।

घत्ता। हा मानव दुःखइँ स्तब्ध-तन, विरस हसतउ जहँ मरै।
भन निर्घृण विषयासक्त मन, सो छाडिय को तहँ रति करै॥

कर्मेहिँ परिट्-ठिउ जो उबरे। यमराजेहिं सो लेउ निजय-पुरे।
जो बाल्येहिं बालउ लालियऊ। सो विधिना निजपुरें चालियऊ।
नवयौवन चढियउ जो प्रवरू। यम जाइ लिवावन सोउ नरू।
जो बूढउ व्याधिशतेंहिं कलिऊ। यमदूतहिं सो पुनि परिमर्दिऊ।
वलभद्रहु सम हरि अतुल-बल्। सो विधिना लीयउ करिय छलू।
ढै-खंड वसुन्धर जेउ जिया। चक्रेश्वर ते कालेहिं लिया।
विद्याधर किन्नर जे खचरा। बलवंता यम-मुखें पडेंउ सुरा।
फणिनाथैं सरिसउ अमर-पती। यम लेतउ कवन न ना मुवई।

---

[1] अशुभावह या अस्वभाव

घत्ता । णउ सोणिउ बंभणु परिहरइ, णउ छंडइ तवसिउ तंव-ठियउ ।
घणवंतु ण छुट्टइ णवि णिहणु, जह काणणें जलणु समुट्ठियउ ।
दइवेण विणिम्मिउ देहु जंपि । लायण्णउ मणुवहँ थिरु ण तँपि ।
णव-जोव्वणु मणहरु ज चडेइ । देवहि वि ण जाणिउ कहिँ पडेइ ।
जे अवर सरीरहिँ गुण वसंति । णवि जाणहँ केण पहेण जंति ।
ते कायहो जइगुण अचल होंति । ससारहँ विरउँ ण मुणि करंति ।
करि-कण्ण जेम थिर कहिँ ण थाइ । पेक्खतहँ सिरि णिण्णासु जाइ ।
जह सूयउ करयलि थिउ गलेइ । तह णारि विरत्ती खणि चलेइ ।
भू-णयण-वयण-गइ कुडिल जाहँ । को सरल करेवइँ सक्कु ताहँ ।
मेल्लंती ण गणइ सयण इट्ठ । सा दुज्जण-मेत्ति'व चल णिकिट्ठ ।

घत्ता । णिज्झायइ जो अणुवेक्ख चल, वइरायभाव संपत्तउ ।
सो सुरहरमंडणु होइ णरु, सुललिय-मणहर-गत्तउ ॥

संसार भमंतहँ कवण मोक्खु । असुहावउ पावइ विविह दुक्ख ।
णरयालइँ णाणा णारएहिँ । चिरकियहिँ णिहम्मइ वइरएहिँ ।
हियएण'वि चिंतहुँ सक्कियाइँ । तहिँ भुत्तइँ पवरइँ दुक्कियाइँ ।
अवरुप्परु जाइ विरुद्धएहि । तिरियाण मज्झे उप्पण्णएहि ।
मुहबंधण-छेयण-ताडणाइँ । पावीयहिँ तेहिँ तणु-फाडणाइँ ।
मणुयत्तणे माणउ परिमलतु । परिभिज्जइ णियमणें मलवलतु[1] ।
सुरलोएँ पवण्णउ णट्ठबुद्धि । मणि भिज्जइ देक्खवि परहो रिद्धि ।
णउणारि जेम रूवइँ करेइ । तिम जीउ-कलेवर सइँ धरेइ ।

घत्ता । संसारहँ उवरि णिहालणउ, किउ जेण णरेण कयायरेण ।
भणु काइँ ण लद्धउ तेण जइ, पवर रयण रयणायरेण ॥

जीवहो सुसहाउ ण अत्थि कोवि । णरयम्मि पडंतउ धरइ जोवि ।
सुहि सज्जण-णंदण इट्ठ-भाव । णवि जीवहो जंतहो ए सहाय ।

---

[1] हड़बड़ाता

घत्ता । ना श्रोत्रिय ब्राह्मण परिहरई । ना छाडै तपसिउ तपें थितऊ ।
धनवंत न छुट्टइ, ना निधनू, जिमि काननें ज्वलन समुत्थितऊ ॥

दैवेन विनिर्मेउ देह जोंउ । लावण्यउ मनुजहँ थिर न सोंउ ।
नवयौवन मनहर जो चढेइ । देवहँउ न जानेंउ कहँ पडेइ ।
जो अवर शरीरहिं गुण वसंति । ना जानहु केन पथेन जंति ।
सो कायह यदि गुण अचल होंति । ससारह विरति न मुनि करंति ।
करि-कर्ण जेम थिर कहुँ न थाइ[1] । पेखंतहँ श्री निर-नाश जाइ ।
जिमि मूतउ[2] करतलें ठिउ गलेइ । तिमि नारि-विरक्ती क्षणें चलेइ ।
भ्रू-नयन-वदन-गति-कुटिल जाह । को सरल करावन सक्क ताह ।
छोडती न गनै स्वजन-इष्ट । सा दुर्जन मैत्रि'व चल निकृष्ट ।

घत्ता । निज्-झखै जो अनुपेख चल, वैराग्य-भाव-संप्राप्तऊ ।
सो सुरघर-मडन होइ नर, सुललिय-मनहर-गात्रऊ ।

संसार भ्रमतहँ कवन सुक्ख । असुहावउ पावै विविध-दुःख ।
नरकालय नाना नारकेहिं । चिरकृतहिं निहन्यै वैरएहिं ।
हृदयेंउ न चिंतन सक्कियाइँ । तहँ भोगें अवरइँ दुःखियाइँ ।
अपरापर जाति विरुद्धएहि । तिर्यञ्च-माँझ उत्पन्नएहि ।
मुख-बंधन-छेदन-ताडनाइँ । पावीयहिं तहँ तन-फाडनाइँ ।
मनुजत्तने मानव परि-मलंत । परि-झखै निजमनें खलबलंत ।
सुरलोकें प्रवर्णउँ नष्ट-बुद्धि । मनें खीझै देखि पराइ ऋद्धि ।
नवनारि जेम रूपइँ करेइ । तिमि जीव कलेवर-शत धरेइ ।

घत्ता । संसारह उपर निहारनउ, किउ जोंउ नरेउ कृतादरहीं ।
भन काइँ न लब्धउ सोइ यदी, प्रवर-रतन रतनाकरहीं ।

जीवह सुस्वभाव न अहै कोंउ । नरक काहँ पडंत धरै जोउ ।
सुखि सज्जन नदन इष्ट भाय । ना जीवहँ जाते होंइ सहाय ।

---

[1] रहै [2] पारा

णिय जणणि जणणु रोवंतयाइँ । जीवें सहुँ ताइँ ण पउ-गयाइँ ।
धणु ण चलइ गेहहों एक्कुपाउ । एक्कल्लउ भुजइ धम्मु पाउ ।
तणु जलणि जलतउ परिवडेइ । एक्कल्लउ वइवस धरि चडेइ ।
जहिँ णयण-णिमेसु ण सुहु हवेइ । एक्कल्लउ तहिँ दुहुँ अणुहवेइ ।
अहि-णउल-सीह-वणयरहँ मज्झे । उप्पज्जइ एक्कुवि जिउ असज्झे ।
सुर-खेयर-किणर-सुहयगाम । तहिँ भुजइ एक्कुवि जियइ जाम ।
—वही पृ० ८२-८५

§ २६. जिनदत्त सूरि

काल—११००(१०७५–११५४)ई०। देश—धवलक(धोलका) गुजरात। कुल—

१—जिन-वंदना

पणमह पास-वीर-जिण भाविण । तुम्हि सव्वि जिव मुच्चहु पाविण ।
घर-ववहारि म लग्गा अच्छहु । खणि-खणि आउ गलतउ पिच्छहु ॥[1]
—उवएस-रसायण[1]

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमिवि जिणेसर-धम्महु, तिहुयण-सामियहु ।
पायकमलु सासिनिम्मलु, सिवगयगामियहु ॥
करिमि जइट्ठिय गुणथुइ, सिरि **जिणवल्लहहु** ।
जुग-पवरागम-सूरिहि, गुणगण-दुल्लहहु ॥१॥

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अपमाणु पमाणइ, छद्दरिसण-तणइ ।
जाणइ जिव नियनामु, न तिण जिव कुवि घणइ ॥

---

[1] वही

निज जननि-जनक रोवतयाइँ । जीवें मँग ताहु न पद-गयाइँ ।
धन न चलै गेहहँ एक पाव । एकल्लै भोगै धर्म्म-पाप ।
तनु ज्वलनें ज्वलतइ परि-पडेइ । एकल्लै वरवम धरि चढेइ ।
जहँ नयन-निमेष न सुख हवेइ । एकल्लै तहँ दुख अनुभवेइ ।
अहि-नकुल-सिह-वनचरहँ माँझ । उप्पज्जै एकइ जिव अ-साझ ।
सुर-खेचर-किन्नर सुखद-ग्राम । तहँ भोगै एकै जियै जाम[1] ।
—वही पृ० ८२-८५

§ २९. जिनदत्त सूरि

हुंडव-वणिक्, जैन साधु । कृतियाँ—चाचरि[2], उवएसरसायण[3], कालस्वरूप-कुलक[4]।

१—जिन-वंदना

प्रणमहु पार्श्व-वीर-जिन भावें हिं । तुम्म सर्वजिव मोचहु पापें हिं ।
घर-व्यवहार न लागे रहा । क्षण क्षण आयु गलतउ पेखा । ।१।।
—उपदेश-रसायन

२—गुरु (जिन-वल्लभ)-महिमा

नमवि जिनेश्वर - धर्मह, त्रिभुवन - स्वामियहा ।
पाद-कमल शशि-निर्मल, शिवगति-गामियहा ।।
करउं यथा स्थिति गुण-'थुति, श्री जिनबल्लभहा ।
युग-प्रवर-ागम-सूरिह, गुण-गण दुर्लभहा ।।१।।

(१) दर्शन-व्याकरण आदि विद्याके निधान

जो अप्रमाण प्रमाणै, छै दर्शन-तनई ।[5]
जानै जिव निज नाम, न तें न जिव कोइ हनई ।।

---

[1] जब लों [2] Gaikwad's Oriental Series 1927, Vol. XXXVII "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" [3] तन=केर, का

परु - परिवाइ - गइद - वियारण - पचमुहु ।
तसु गुणवण्णणु करण, कु सक्कइ इक्कमुहु ॥२॥
जो वायरणु वियाणइ, सुहलक्खण-निलउ ।
सद्दु असद्दु वियारइ, सुवियक्खण-तिलउ ॥
सुच्छंदिण वक्खाणइ, छद्दु जु सुजइमउ ।
गुरु लहु लहि पइठावइ, नरहिउ विजयमउ ॥३॥
कव्व अउव्वु जु विरयइ, नव-रस-भर-सहिउ ।
लद्धपसिद्धिहिं सुकइहिं, सायरु जो महिउ ॥
सुकइ **माहु**'ति पसंसहिं, जे तसु सुहगुरुहु ।
माहु न मणहि अयाणुय, सइ जियसुरगुरुहु ॥४॥
कालियासु कइ आसि, जु लोइहिं वन्नियइ ।
ताव जाव **जिणवल्लह**, कइ ना अन्नियइ ॥
अप्पु चित्तु परियाणहि, तपि विसुद्धनय ।
तेवि चित्तकइराय, भणिज्जहि मुद्धनय ॥५॥
सुकइ विसेसिय वयणु, जं '**वप्पइराउकइ** ।
सुवि **जिणवल्लह** पुरउ, न पावइ कित्ति कइ ॥
अवरि अणेय विणेयहि, सुकइ-समसियहिं ।
तक्कव्वामयलुद्धिहिं, निच्चु नमसियहिं ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जिण कय नाणा चित्तइँ, चित्त हरंति लहु ।
तसु दसणु विणु पुन्निहिं, कउ लब्भइ दुलहु ॥
सारइँ वह थुइ-थुत्तइ, चित्तइँ जेण कय ।
तसु पयकमलु जि पणमहि, ते जण कय-सुकय ॥७॥

---

१ "**गउडवहो**" (प्राकृत महाकाव्य) के रचयिता

पर - परिवाद - गयंद - विदारण पच - मुखू ।
ताँसु गुण वर्णन करण, कोँ सक्कै एक-मुखू ॥२॥
जो व्याकरण वि-जानै शुभलक्षण-निलयू ।
शब्द-अशब्द विचारै सु-विचक्षण-तिलकू ॥
सुच्छंदेन बखानै, छंद जोँ सुयति-मयू ।
गुरु लघु लेँइ पइठावै, नर-हिय विजय-मयू ॥३॥
काव्य अपूर्व जोँ विरचै, नव-रस-भर-सहितो ।
लब्ध-प्रसिद्धिहिँ सुकविहँ, सागर जो मथितो ।
सुकवि **माघ**'ति प्रशमैँ, जे ताँसु शुभ-गुरुहो ।
साधु न मनहि अजानय, मैँ जित-सुरगुर-हो ॥४॥
कालिदास कवि अहेँउ, जोँ लोकेहि वणियऊ ।
सो जितनो **जिनवल्लभ**-कवि ना अन्ययऊ ॥
आपु चित्त परि-जानै, सोउ विशुद्ध-नय ।
तोउ चित्र कविराय भनिज्जै मूर्धनय ॥५॥
सुकवि-विशेषित-वचन, जोँ **वाक्पतिराज** कवी ।
सोँउ जिनवल्लभ समुहे, न पावै कीर्त्ति कवी ॥
अवर अनेकानेक . . . हि सुकवि प्रशसियही ।
तत्काव्यामृतलुब्धेँहिँ, नित्य नमसियही ॥६॥

(२) गुरु-दर्शनका महाफल

जो कृत-नाना - चित्रहँ, चित्त-हरंति लघू[1] ।
ताँसु दर्शन विनु पुण्यहिँ, को लब्भै दुलभू ॥
सारहँ बहु-'थुति-'थुत्तै, चित्तै जेहिँ कृत ॥
ताँसु पदकमल जेँ प्रणमै, ते जन कृत-सुकृता ॥७॥

---

[1] तुरंत

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जहि सावय त बोल् न भक्खहि, लिति नय ।
जहि पाण-हिय धरति, न सावय-सुद्धनय ॥
जहि भोवणु न सयणु, न अण्णचिउ वइसणउ ।
सह पहरणि न पवेसु न दुट्ठउ बुल्लणउ ॥२१॥
जहि न हासु नवि हुड्ड, न खिड्ड न रूसणउ ।
कित्ति निमित्तु न दिज्जइ, जहिँ धण अप्पणउ ॥
करहि जि बहु आमायण, जहिँ तिन मेलियहि ।
मिलिय नि-केलि करति, समाणु महेलिय[1]हिँ ॥२२॥
जहिँ मकनि न गहणु, न माहि न मडलउ ।
जहँ सावयसिरि दीसइ, कियउ न विटलउ ॥
ण्हवणयार जण मिल्लिवि, जहि न विभूसणउ ।
सावयजणिहि न कीरइ, जहि गिह-चिन्तणउ ॥२३॥
जहिँ न अप्पु वन्निज्जइ, परु वि न दूसियइ ।
जहि सग्गुणु वन्निज्जइ, विगुणु उवेहियइ ॥
जहि किर वत्थु-वियारणि, कसु वि न वीहियइ ।
जहि जिणवयणुत्तिन्नु, न कहवि पयंपियइ ॥२७॥....
इह अणुसोय पयट्टहु, मग्ग न कुवि करइ ।
भवसायरिनि पडति, न इक्कु वि उत्तरइ ॥
जे पडिसोय पयट्टहि, अप्पवि जिय धरइ ।
अवसय सामिय हुति ति, निव्वुइ पुरवरइ ॥३१॥
तसु पयपकउ पुन्निहि, पाविउ जण-भमरु ।
मुद्ध नाण-महुपाणु, करतउ हुइ अमरु ॥

---

[1] मेहरी, महिला

(३) गुरुकी शिक्षाका फल

जासु श्रावक[1] सो वोल न भाखैं, लिप्तन या ।
जासु प्राण हित धरति, न श्रावक शुद्ध-नया ॥
जासु भोजन न शयन, न अनुचित वइसनऊ ।
सँग प्रहरणें न प्रवेश, न दुष्टउ बोलनऊ ॥२१॥
जहँ न हास ना हुइ, न खेल न रमनऊ ।
कीर्त्ति-निमित्त न दीजै, जहँ धन आपनऊ ॥
करैं भि बहु-आस्वादन, जहँ तृण मेलियई ।
मिलिया केलि करति, महिल महेलियहीं[2] ॥२२॥
जहिं सक्रान्ति न ग्रहण, न मास न मइलऊ ।
जहँ श्रावक-श्री दीसै, कियउ न विट्टलऊ[3] ॥
स्नानचार जन मेलवि, जहँ न विभूषणऊ ।
श्रावकजनें हिं न करियै, जहँ गृह-चिन्तनऊ ॥२३॥ . . .
जहँ न आप वर्णिज्जै, परउ न दूषियई ॥
जहँ सद्गुण वर्णिज्जै, वि-गुण उपेक्षियई ॥
जहँ पुनि वस्तु-विचारणें, कासुउ न वींधियई ।
जहँ जिन-वचन-उत्तीर्ण, न कथा प्रजल्पियई ॥२७॥. .
एँहि अनुशोच्च प्रवृत्तह, शकों न कोंउ करई ।
भवसागरें ति पडन, न एकउ ऊत्तरई ॥
जे प्रतिशोच्च प्रवृत्तहिं, आपुउ जिय धरई ।
अवशिय स्वामी होंति तें, निर्वृतिपुर-वरैं ई ॥३१॥. .
तासु पदपकज पण्यहि, पायें उ जनभ्रमरू ।
शुद्ध-ज्ञान-मधुपान, करतउ होंइ अमरू ॥

---

[1] शिष्य [2] छोड़ कर [3] महिला, मेहरी
[4] विटलाहा (मल्लिका) = गदा, पतित [5] छोडें [6] निर्वाण-पुर०

सत्थु हतु सो जाणइ, सत्थपसत्थ सहि ।
कहि अणुवमु उवमिज्जइ केण समाण सहि ॥४३॥
इय जुग-पवरह सूरिहि, सिरि **जिणवल्लहह** ।
नाय समय परमत्थह, वहुजण-दुल्लहह ॥
तसु गुण थुइ वहुमाणिण, सिरि **जिणदत्त-**गुरु ।
करइ सु निव्वम, पावइ, पउ जिणदत्तगुरु ॥४७॥
—चाचरि[1]

३—वेश्या-निंदा

जोव्वणत्थ जा नच्चइ दारी । सा लग्गइ सावयह वियारी ।
तिहि निमित्तु सावयसुय-फट्टहिं । जंतिहिं दिवसिहिं धम्मह फिट्टहिं ॥३॥
वहुय लोय रायध सपिच्छहि । जिण-मुह-पकउ विरला वच्छहि ।
जणु जिणभवणि सुहत्थ जु आयउ । मरइ सु तिक्ख-कडक्खिहिं घायउ ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

वेट्टा-वेट्टी परिणाविज्जहिं । तेवि समाण धम्म-धरि दिज्जहिं ।
विसमधम्म-घरि जइ वीवाहइ । तो सम्मत्तु सु निच्छइ वाहइ ॥६३॥
इय **जिणदत्तु**वएस-रसायणु । इह-परलोयह सुक्खह भायणु ।
कण्णजलिहिं पियंति जि भव्वइं । ते हवंति अजरामर सव्वइं ॥८०॥
—उवएसरसायणु

(२) धर्मोपदेश

विक्कम संवच्छरि सय-वारह । हुयउ पणट्ठउ मुहु घरवारह ।
इय समारि महाविण मंतिहि । वत्तहि सुम्मइ सुक्खु वसंतिहि ॥३॥

---

[1] विरहा गीत

शास्त्रहूँतें सो जानै, शास्त्र प्रशस्त सही ।
किमि अनुपम उपमिज्जै, केन समान सही ॥४३॥
इति युग-प्रवरह सूरिहि, सिरि **जिनवल्लभहा** ।
न्याय[1]-समय-परमार्थह, बहुजन-दुर्लभहा ॥
तासु गुण-थुति बहुमानें, सिरि **जिणदत्तगुरू** ।
करै सो निरुपम पावै, पद जिन-दत्त-गुरू ॥४७॥
—चाचरि

३—वेश्या-निंदा

यौवनार्थ जो नाचै दारी[2] । सा लागै श्रावकहँ पियारी ।
तेंहि निमित्त श्रावक श्रुत-फाडैं । जाते दिवसें धर्महिं फोडैं ॥३३॥
बहुत लोग रागाध सों पेखहिं । जिन-मुख-पकज विरला वाछहिं ।
जन जिनभवनें शुभार्थ जो आयउ । मरै सो तीक्ष्ण-कटाक्षें घायलु ॥३४॥

४—कविका संदेश

(१) जात-पाँत मजबूत करो

बेटा-बेटी परनावीजै[3] । सोउ समानधर्म[4]-घरें दीजै ।
विषम-धर्म-घरें यदि वीवाहै । तो सम्यक्त्व[5] सों निश्चय वाहै[6] ॥६३॥
इति **जिनदत्तु**-[1]पदेश-रसायन । इह-परलोकह सुक्खह-भाजन ।
कर्णाजलिहिं पियंति जे भव्यहं । ते भवति अजरामर सर्वै ॥८०॥
—उवएसरसायण

(२) धर्मोपदेश

विक्रम-संवत्सर शत-बारह । होई प्रनष्टउ सुख-घरबारह ।
इति ससारें स्वभावें शांतेंहि । वर्त्तै सुम्मति सुक्खु वसंतेंहि ॥३॥

---

[1] नात=ज्ञातृ(-पुत्र) महावीर [2] गणिका, दारिका [3] विवाहिज्जै
[4] एकधर्मी [5] जैनीपन [6] बहाना, फेंकना

तह वि वत्त नवि पुच्छहि धम्महं । जिण गुरु मिल्लहि कज्जिण दम्महं ।
फलु नवि पावहि माणुस-जम्महं । दूरे होंति तिज्जि सिव-सम्महं ॥४॥
मोह-निद्द जणु सुत्तु न जग्गइ । तिण उट्ठिवि सिव-मग्गि न लग्गइ ।
जइ सुहत्थु कुवि गुरु जग्गावइ । तुवि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥
परमत्थिण ते मुत्तवि जग्गहिं । सुगुरु-वयणि जे उट्ठेंवि लग्गहिं ।
राग-दोस-मोंह 'वि जे गजहि । सिद्धि-पुरंधि ति निच्छइ भुजहि ॥६॥
बहुय लोय लुचियमिर दीसहिं । पर रागद्दोसिहिं सहुं विलसहिं ।
पढहिं गुणहिं सत्थइ वक्खाणहि । पर परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥
दुद्धु होइ गो-यक्किहि धवलउ । पर पेज्जतइ अंतरु वहलउ ।
एक्कु सरीरि मुक्खु सपाडइ । अवरु पियउ पुणु ममु 'वि साडइ ॥१०॥
ईसर धम्म-पमत्त जि अच्छिहि । पाउ करेवि ति कुगइहिं गच्छहिं ।
धम्मिय धम्मु करंति जि मरिसहि । ते मुहु सयलु मणिच्छिउ लहिसहि ॥२३॥
कज्जउ करइ बुहारी बुद्धी । मोहइ गेहु करेइ समिद्धी ।
जइ पुण सावि जुयजुय किज्जइ । ता किं कज्जा तीएं सहिज्जइ ॥२७॥
इय जिणदत्तुवएसु जि निसुणहि । पढहि गुणहि परियाणावि जि कुणहि ।
ते निव्वाण-रमणि सहुं विलसहि । वलिउ न ससारिण सहुं मिलिसहि ॥३२॥
काव्यस्वरूपकूलक'

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लद्धउ माणुस-जम्मु महारहु । अप्पा भवसमुद्दि गउ तारहु ।
अप्पु म अप्पहु रायहु रोसहु । करहु निहाणु म सव्वहु दोसहु ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुलहउ मणुय-जम्मु जो पत्तउ । मइं लहु करहु तुम्हि मुनिरत्तउ ।
मूढ-गुरु-दंसण विणु सो मइलउ । होइ न कीवइ वहलउ वहलउ ॥३॥

---

[1] **अपभ्रंश-काव्य-त्रय,** Gaikwad's Oriental Series. Vol. XXXVII, 1927

नँहा वात ना पूछै धर्मह्ँ। जिन-गुरु मीलहिँ कार्ये दामह्ँ।
फल ना पावैँ मानुष-जन्मह। दूरे होंति त्याग शिव-शर्महँ ॥४॥
मोह-निद्र जनु सुत्तु न जागै। सो उट्ठिउ जिव-मार्ग न लागै।
यदि शुभार्थ कोँइ गुरु जगावै। तोँउ तद्वचन तासु ना भावै ॥५॥
परमार्थे ते सुतउ जागैँ। सुगुरु-वचनेँ जे उठिया लागं।
राग-द्वेष-मोँहउ जे गजैँ। सिद्धि-पुरंध्रि तेँ निश्चय भुजैँ ॥६॥
वहुत लोग लुञ्चित-शिर दीसैँ। पर राग-द्वेषहिँ सँग विलसैँ।
पढ़ैँ गुनैँ शास्त्रहिँ वक्खानैँ। पर परमार्थ-तीर्थ सोँ न जानै ॥७॥....
दुग्ध होइ गो-यकृतउ धवलउ। पर पीवतै अंतर वहलउ।
एक शरीर सुक्ख स-पातै। अवर प्रियउ पुनि मासउ स्वादै ॥१०॥
ईश्वर-धर्म प्रमत्त जे आछहिँ[1]। पाप करिय ते कुगतिहिँ गच्छहिँ।
धार्मिक धर्म करंत जेँ मर्षहिँ। ते सुख सकल मनीच्छित लभिहैँ ॥२३॥
कार्य करै (जोँ) बुहारी[2] बुद्धी। सोहै गेह करेइ समृद्धी।
यदि पुनि सोउ युगयुग कीजै। तो का कार्य तीय साधीजै ॥२७॥
इति **जिनदत्त**-उपदेश जे सुनहीँ। पढैँ गुनैँ परि-ज्ञान जेँ करहीँ।
ते निर्वाण-रमणि-सँग विलसहिँ। वलेँउ न ससारे सँग मिलिसहिँ[3] ॥३२॥

—काव्यस्वरूपकुलक

(३) दुर्लभ मानुष-जन्म

लाभेँउ मानुष-जन्म महारघु। आपेँ भव-समुद्रतेँ तारहु।
आपु न अर्पहु रागहँ रोषहँ। करहु निधान न सर्वहँ दोषहँ ॥२॥

(४) गुरु सब कुछ

दुर्लभ मानुष-जन्म जोँ पायउ। सह लघु करहु तुम्म सु-निरुक्तउ।
शुभ-गुरु-दर्शन विनु सो सहलउ। होइ न करतेँ वहलउ[4] बहलउ ॥३॥

---

[1] हैं [2] जावेंगे [3] बधू (गढवाली) [4] मिलिहे [5] बहुत

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ । पर-परिवायि-नियरु जसु नासइ ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ । मुक्ख-मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥
इह विसमी गुरुगिरिहिँ समुट्ठिय । लोय-पवाह-सरिय कु पइट्ठिय ।
जसु गुरुपाउ नत्थि सो निज्जइ । तसु पवाहि पडियउ परिविखज्जइ ॥६॥
पर न मुणइ तयत्थु जो अच्छइ । लोय-पवाहि पडिउ सु'वि गच्छइ ।
जइ गीयत्थु कोवि तं वारइ । ता तं उट्ठिवि लउडइ मारइ ॥१९॥
तिव तिव धम्मु कहिति सयाणा । जिव ते मरिवि हुति सुर-राणा ।
चित्तामोय करंत ट्ठाहिय । जण तहिँ कय हवंति नट्ठाहिय ॥३१॥
—उवएस-रसायण

५ : बारहवीं सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

(कलिकाल-सर्वज्ञ) काल—१०८८-११७९, देश—धंधक्कलपुर (गुजरात) में जन्म, अनहिलवाडा पाटन (गुजरात) में साहित्यिक कार्य। कुल—मोढ

१—सामन्त-समाज

(१) राज-प्रशंसा

खीर-समुद्दिण लवण-जलहि, कुवलय-कुमुयहिं ।
कालिंदी सुर-सिंधु जलिण, महु-महणु हरिण ॥

---

[1] **सोलंकी (चालुक्य) अनहिलवाडा (गुजरात) के राजा कर्ण (१०७४-९१), जयसिंह सिद्ध-राज (१०९३-११४२), कुमारपाल (११४२-७३), अजयपाल (११७२-७४), मूलराज द्वितीय (११७६-७८) और भीमदेव भोला (११७८-१२२४) के समकालीन। कुमारपालके गुरु।**

सु-गुरु सोँ उच्चै सच्चै भाषै । पर-परिवादि-निकर जसु नाशै ।
सर्व जीव जिव आपउ राखै । मुख्यमार्ग पूछियउ जोँ आखै ॥४॥
इहँ विषमी गुरु गिरहिँ सम्-उट्ठिय । लोकप्रवाह-सरित कोँ पडट्ठिय ।
जाँसु गुरु-पाद नाहि श्रवणिज्जै । तासु प्रवाहेँ पडिय परि-खिज्जै ॥५॥
पर न माँनै तदर्थ जो अच्छै । लोक-प्रवाह पडिय सोँउ गच्छै ।
यदि गेयार्थ कोउ तेहिँ वारै । सो तेहिँ उट्ठिय लगुडहिँ मारै ॥१९॥
तिमि तिमि धर्म कहति सयाना । जिमि ते मरिय होहि सुर-राना ।
चित्ताशोक करना थाडय[1] । जन तहँ कुन भवति नष्टाहित ॥३१॥
—उपदेश-रसायन

५ : बारहवीँ सदी

§ ३०. हेमचंद्र सूरि

वणिक्, जैनसाधु-आचार्य । अपभ्रंश-कृतियां—प्राकृतव्याकरण[2], छन्दोनुशासन[3], देशीनाममाला (कोश)

१—सामन्त-समाज[4]

(१) राज-प्रशंसा

क्षीरसमद्रेँहिँ लवण-जलधि, कुवलय-कुमुदहिँ ।
कालिदी सुर-सिधु-जलेँहिँ, मथ-मथन हरिन ॥

---

[1] ठहरा [2] डाक्टर पी. एल्. वैद्य द्वारा संपादित, मोतीलाल-लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित १९२८ । अपभ्रंश के सभी उद्धरण हेमचंद्रके रचे नहीं हैं
[3] देवकरण मूलचंद्र (बंबई) द्वारा प्रकाशित, १९१२
[4] सभी उद्धरण हेमचन्द्र की रचना नहीं है । ये पद्य हेमचंद्र-संगृहीत हैं; शायद कोई उनके अपने रचित भी हों

कइलासिण सरिसउ हू किरि, सो अजण-गिरि ।
इह तुहु जस-सिरि धवलिओ, पहु कि पंडरु नहुरि ॥१२॥
जे तुह पिच्छहि वयण-कमलु, ससहर-मंडल-निम्मलु ।
जे विहु पालहिँ भिच्च-कम्मु, थुणहिँ जि निरुवमु विक्कमु ॥
जे विहु सासण धरहिँ पायकमलु जे पणमहि ।
ता हत लच्छी-विमुह, पहु-जस-धवलिय दिसि-मुह ॥१३॥
उक्करडा-खल-चउ-गज्जउ, चिरु जुज्झमणु ।
उन्नामउ सिर-कमरु म लज्जओ, थक्क महब्भर तुह कट्ठहिँ ।
अन्नुन्न ति-हुअणि कित्ति-धवल विसाओ तुह वट्टइ ॥१४॥
पहु ! तुह वेरि अरण्णि गय, निच्चु'वि निवसहिँ जिव समय ।
घण-कटय-दुम्मचरण, तहिँ झडइ करीर-वण ॥१६॥
जइ जाहि सुर-सरिअ जइ गिरि-निज्झर सेवहि जइ पइसहि काणण-तरु-संडय ।
रिउ-निव तुवि नवि छट्टहिँ पहु ! तुज्झ पयावइ, कालहु अइदीहि-हर-भुअ-दंडय ।५५।
—छन्दोनुशासन[1]

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जो मारिआ, बहिणि ! महारा कंतु ।
लज्जेज्जंतु वयंसियहु, जइ भग्गा घरु एंतु ॥३५१॥
जहिँ कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिँ तेहइ भड-घड-निवहि, कंतु पयासइ मग्गु ॥३५७॥
कंतु महारउ हलि सहिएँ ! निच्छइँ रूसइ जासु ।
अत्थिहिँ सत्थिहिँ हत्थिहिँ वि, ठाउ'वि केडइ तासु ॥३५८॥
अम्हे थोवा रिउ बहुअ, कायर एव भणंति ।
मुद्धि निहालहि गयण-यलु, कइ जण जोण्ह करंति ॥३७६॥
खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहु, पिय ! तहिँ देसहिँ जाहुँ ।
रण-दुब्भिक्खे भग्गइ, विणु जुज्झेँ न वलाहुँ ॥३८६॥

---

[1] पृ० ३७ ख, ३८ क, ४१ क, ४५ ख

कैलाशेंहि सदृशउहुफुर, सो अजन-गिरि।
इहु तव यश-श्री धवलियउ, प्रभु का पाडरु नभ ॥१२॥
जो तव पेखै वदन-कमल, शशधर-मडल-निर्मल।
जो विधि पालें भृत्यकर्म, थुवें[1] जें निरुपम विक्रम ॥
जे विध शासन धरें पाद-कमल जे प्रणमें।
तो हत! लक्ष्मी-विमुख, प्रभु-यश-धवलिय दिशिमुख ॥१३॥
उत्करटा[2]-आखल चउ गर्जेउ, चिर-युद्धमना।
उन्नामित-शिर-कायर ना लज्जउ, थाक मतिभर तव निकटे।
अन्योन्य त्रिभुवनें कीर्ति-धवल, विषादो तव वाटै ॥१४॥
प्रभु तव वैरि अरण्य-गज, नित्यउ निवसे जिमि मशँक।
घन-कटक-दुःसचरणें, तहँ भवडै करीर-वनें! ॥१६॥
यदि जावें सुर-सरित यदि गिरि-निर्झर सेवें हिं, यदि पइसें[3] कानन-तरु-खडें।
रिपु-तप तउ नहि छुटें प्रभ! तुम्ह प्रतापहँ, कालह अति-दीर्घ-हर-भुज-दडें ॥५५॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३७, ३८, ४१, ४५)

(२) वीर-रस

भल्ला हुआ जों मारिया, बहिनि! हमारा कत।
लज्जिज्जेहु वयस्सयहिं, यदि भागा घर एंत[4] ॥५३१॥
जहँ कोटिज्जै शरहिं शर, छिज्जै खड्गहिं खड्ग।
तहँ तेही भट-घट-निवहें, कंत प्रकाशै मग्ग ॥३५७॥
कन्त हमारो रे सखिय, निश्चै रूसै जासु।
अस्त्रहिं शस्त्रहिं हाथियहिं, ठावहिं फोडै तासु ॥३५८॥
हम हैं थोडे रिपु बहुत, कायर एम भनंति।
मूढ निहारें गगन-तल, कवि जन जोन्ह[5] करंति ॥३७६॥
खड्ग बेसाहिव जहँ लहउ, प्रिय! तहँ देशहिं जाहु।
रण-दुर्भिक्षें भागई, विनु युद्धेहिं बलाहु[6] ॥३८६॥

---

[1] स्तवें [2] हाथी [3] पइठें [4] आता [5] ज्योत्स्ना [6] सेना

अब्भउ-वंचिउ बे पयइँ, पेम्मु निअत्तइ जाव ।
सव्वासण-रिउ-सभवहों, कर परिअत्ता ताँव ॥
हिअइ खुडुक्कइ गोरडी, गयणि घुडुक्कइ मेहु ।
वासा-रत्ति पवासुअहँ, विसमा संकडु एहु ॥
अम्मि ! पओहर वज्ज मा, निच्चु जें समुह थंति ।
महु कन्तहों समरंगणइँ, गय-घड भज्जिउ जंति ॥
पुत्तें जाएँ कवण गुण, अवगुणु कवणु मुएण ।
जा वप्पी की भूँहडी,[1] चंपिज्जइ अवरेण ॥
तं तेत्तिउ जलु सायरहों, सो तेवडु वित्थारु ।
तिसहें निवारण पलवि नवि, पर घुट्ठुअइ असारु ॥३९५॥
महु कन्तहों गुट्ठ-ट्ठिअहों, कउ भूपडा वलन्ति ।
अह रिउ-रुहिरें उल्हवइ, अह अप्पणें न भन्ति ॥४१६॥
जइ भग्गा पारक्कडा, तो सहि ! मज्झु पियेण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा, तो तें मारिअ देण ॥४१७॥
सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा-सन्धिहिं वासु ।
पेक्खवि बाहु-वलुक्कडा, धण मेल्लइ नीसासु ॥४३०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-५२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)

कर-हय-यणहर-मालिअ-लोल-मणोहर-हारय ।
गइन्थल - लुलिअ - मइल-जडिल - कुतल - भारय ।
अणवरय-वाहणि-वइ-पसूण सोण-विलोअण ।
तुह हुअ नर-वइ-तिलय सपय वेरि वइ-यण ॥६॥
जेत्थु गज्जहिँ मत्त-करि-णिवह, रक्खोलहिँ जत्थु हय ।
जेत्थु भिउडि-भीसण भमहि भड,
तहिँ तेहइ रणि वरइ विजय-लच्छि पइँ पर समरोब्भउ ॥२९॥
जसु भुअ-बल हेलद्धरिअ-धरणि,
निसुणिवि वणयर - गण - उवगीउ - सुविक्कमु ।

---

[1] पितृभूमि

'लिगन-वंचित दो पदें. प्रेम निवर्त्तें जब्ब ।
सर्वासन रिपु सभवहु, कर परिवर्त्तें तब्ब ॥
हृदय खुडुक्कै गोरडी, गगन घडक्कै मेह ।
वर्षा-रात्रि प्रवासुकहँ, विषमा सकट एह ॥
अम्म ! पयोधर वज्र ना, नित्य जे समुख थति[1] ।
मम कतह समरागणे, गज-घट भाजेंउ जांति ॥
पुत्रे जाये कवन गुण, अवगुण कवन मुएहिं ।
. जो वापेकी भूमिडी, चाँपिज्जै अपरेहिं ॥
सो तेत्तउ जल सागरहँ, सो तेवड[2] विस्तार ।
तृषह निवारण चिलुव ना, पर घूंटनो अमार ॥३६५॥
मम कंतह गोष्ठ-स्थितह, कें भोंपडा ज्वलति ।
चहे रिपु-सधिरें बूझवै, चहे आपने न भ्रान्ति ॥४१६॥
यदि भागा परकेरआ, तो सखि ! मोर प्रियेहिं ।
अौ भागा हमकेरका, तौं तें मारिय तेहि ॥४१७॥
स्वामि-प्रसाद मलज्ज प्रिय, सीमा-सधिहिं वास ।
पेखिय बाहु-वलक्कडा, धनि मेलै निःश्वास ॥४२०॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १५०-२, १५६, १५८, १६०, १६५, १७१)
करहत-स्तन-धर गलिय लोल मनोहर हारय ।
गडस्थले लुलित मडल-जटिल-कुतल भारय ॥
अनवरत-वाहनि-वट - प्रसून शोण - विलोचन ।
तव हुअ नरपति-तिलक सप्रति वैरि-वधू-जन ॥६॥
यत्र गर्जें मत्त-करि-निवह, (अौ) कूदें यत्र हय ।
यत्र भृकुटि-भीषण भ्रमति भट ।
तहँ तेही रणें वरै विजय-लक्ष्मि तें पर-समरोद्भवउ ॥२६॥
जाँसु भुजवले हेला उद्धरेउ धरणि,
सुनिया वनचर-गण-उपगीत-सुविक्रम ।

---

[1] रहते [2] उतना (गढ़वाली)

अज्जवि हरिसिअ नव-दब्भकुर-दभिण,
पयडहिँ कुल-महिहर पुलउग्गमु ॥४४॥
—छन्दोनुशासन[1]

(३) कु-नारी

जासु अगहिँ घणु नसा-जालु- जसु पिगल-नयण-जुअ्रो ।
जसु दंत परिरत्त-विअड्डन्नय,
न धरिज्जइ दुह-करिणी मत्तकरिणि जिँव घरिणि दुन्नय ॥२७॥

गॉवि पट्टणि हट्टि चउहट्टि, राउलि देउलि पुरि ज दीसइ ।
लडह-अंगिअ विरहिद-जालाणु, न सा एक्कवि कय-बहु-रूव-कलिअ ॥३०॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३६ख)

(४) शृंगार-रस

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ, तोवि तं आणहि अज्जु ।
अगिण दड्ढा जइवि घरु, तो तें आगि कज्ज ॥३४३॥

जिँव जिँव वंकिम लोअणहँ, णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिँव तिँव वम्महु निअय-सर, खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥३४४॥

तुच्छ-मज्झहे तुच्छ-जम्पिरहे,
तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय-तुच्छयर-हासहे ।
पिय-वयणु अलहंतिअहे, तुच्छकाय-वम्महु-निवासहे ।

अन्नु जु तुच्छउँ तहे धणहे, तं अक्खणउँ न जाइ ।
कडारि थणतरु मुद्धडहे, जें मणु विच्चि ण माइ ॥३५०॥

फोडेंति जे हियडउँ अप्पणउँ, ताहँ पराई कवण घण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा वालहे जाया विसम-थण ॥३५०॥

---

[1] पृ० ३५ख, ३६ख, ४५क

आजउ हर्षिय नव-दर्भाकुरके मिस,
प्रकटैं कुल-महिधर पुलकोद्गम ॥४४॥
—छन्दोनुशासन (पृ० ३५, ३६, ४५)

(३) कु-नारी

जसु अग्गहिं घन नसा-जाल, जसु पिंगल-नयन-युग ।
जसु दत प्रविरल-विकटोन्नत,
न धरीजै दुख-करिणि मत्त-करिणि इव घरिणि दुर्नय ॥२७॥

गाँव पाटन हाट चौहट, रावल देवल पुर जो दीसै ।
मदरागी विरहेद्रजालकैं हिं, तेहिं सा एकउ कृत-बहुरूप-कलिता ॥३०॥
—वही (पृ० ३६)

(४) शृंगार-रस

विप्रियकारक यदपि पिउ, तउ तेहिं आनहु आज ।
आगिहिं डाहा यदपि घर तउ तेहिं आगी काज ॥३४३॥

जिमि जिमि वकिम लोचनहं, वहु-सावारि भीखाय ।
तिमि तिमि मन्मथ विजयशर, खर-पाथर तीखाय ॥३४४॥

तुच्छ मध्ये तुच्छ जल्पनं,
तुच्छ[1]-अच्छ रोमावलिहें, तुच्छ-राग तुच्छतर हासे,
प्रियवचन अलभनियहं, तुच्छकाय मन्मथ निवसहें ।

अन्य जो तुच्छउ तेंहि धनिहि, सो भाषनउ न जाइ ।
कटरि थनतर मुर्धडहिं, जो मन-वीच न माइ[2] ॥३५०॥

फोडहिं जे हियडा आपनउं, ताह पराई कवन घृण ।
राखीजहु लोगो ! आपना वाला जाया विषम थन ॥३५०॥

---

[1] अल्प [2] समाइ

एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु अन्नहिँ भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-त्थलेँ सरउ ।
अंगिहिँ गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहेँ मुद्धहेँ मुह-पंकइ आवासिउ सिसिरु ।
हिअडा फुट्टि तडत्ति करि, काल-क्खेवेँ काइँ ।
देक्खउँ हय-विहि कहिँ ठवइ, पइँ विण दुक्ख-सयाइँ ॥३५७॥
जइ न सु आवइ दूइ ! घरु, काइँ अहो-मुहु तुज्झु ।
वयणु जु खण्डइ तउ सहिएँ, सो पिउ होइ न मज्झु ॥
अमरु म रुण-झुणि रण्णडइ, सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसन्तरिअ, जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥३६६॥
मुह-कवरि[1]-बन्धु तहेँ सोह धरहिँ, न मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिँ ।
तहेँ सहहिँ कुरल भमर-उल-तुलिअ, न तिमिर-डिभ खेल्लति मिलिअ ॥३८२॥
वप्पीहा पिउ-पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास ।
तुह जलि महु पुण वल्लहइ, विहिँवि न पूरिअ आस ॥
वप्पीहा कइँ बोल्लिएण, निग्घिण वार-इ-वार ।
सायरि भरिअउ विमल-जलि, लहहि न एक्कइ धार ॥३८३॥
भमरा ! एत्थुवि लिंबडइ, केँवि दियहडा विलंबु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु, फुल्लइ जाम कयंबु ॥३८७॥
केम समप्पउ दुट्ठु दिणु, किध रयणी छुडु होइ ।
नव-वहु-दंसण-लालसउ, वहइ मणोरह सोइ ।
ओ गोरी-मुह-णिज्जिअउ, वट्टलि लुक्क मियंकु ।
अन्नु वि जो परिहविय-तणु, किह ठिउ सिरि-आणंद ॥
निरुपम-रसु पिएँ पिअवि जणु, सेसहो दिण्णी मुद्द ।
भण सहि निहअउँ तेँव मइँ, जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ॥४०१॥

---

[1] जूड़ा

एकहिं आंखे सावन, अन्यहिं भादों,
माधव महियल-सायरें गंडस्थलें शरदो ।
अगहिं ग्रीष्म शुभाक्षी तिल-वनें मार्गसिरु,
तेहि मुग्धहं मुख-पंकजे आवासिउ शिशिरु ।
हियड़ा फूट तडक्क करि, कालक्षेपे काइं ।
देखउं हत-विधि कहं थपै, तैं विनु दुःख शताइं ॥३५७॥
यदि न सों आवै दूति ! घर, काइं अधोमुख तोर ।
वचन न खंडै तव सखी, सो पिउ होइ न मोर ॥
भ्रमर ! न रुनझुन रणरणै, सो दिशि जोय न रोउ ।
सा मालति देशातरिय, जसु तुहु मरै वियोग ॥३६८॥
मुख कबरि-बन्ध तहं सोह धरहिं । जनु मल्ल-युद्ध शशि-राहु करहिं ।
तहि सोभै कुरल[1]-भ्रमर-कुल तुलिय । जनु तिमिर डिभ खेलंति मिलिय ॥३८२॥
पप्पीहा पिउ-पिउ भनवि केतिक रोवैं हताश ।
तव जलें मम पुनि वल्लभें, दोहूं न पूरिय आश ॥
पप्पीह का बोलियें इ, निर्घृण वारवार ।
सागरें भरियइ विमल जल, लहै न एकहु धार ॥३८३॥
भ्रमरा ! ईहं लिपटिया, किछु दीवसें विलंबु ।
घनपत्ता छाया-बहुल, फूलै जब्ब कदंब ॥३८७॥
केमि समर्पउ दुष्ट दिन, किमि रजनी यदि होइ ।
नव - वधु - दर्शन - लालसउ, वहै मनोरथ सोइ ॥
ओ गोरी-मुख-निर्जितउ. बादल लुक्कु मृगाक ।
अन्यउ जो परिभविय तनु, किमि ठिउ श्री आनंद ॥
निरुपम-रस पिउ पियवि जनु, शेषहों दीनी मुद्र ।
भन सखि ! निभृतउ तिमि मइं, यदि पिउ दीस सदोस ॥४०१॥

---

[1] सशब्द

अन्नें ते दीहर-लोअण, अन्नु तँ भुअ-जुअलु ।
अन्नु सु घण-थण-हारु तें, अन्नु जि मुह-कमलु ॥
अन्नु' जि केस-कलाउ, सुअन्नु जु पाउ विहि ।
जेण णिअविणि घडिअ स, गुण-लायण्ण-णिहि ॥
एसी पिउ रूसेउ हउँ, रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिंव एइ मणोरहउँ, दुक्करु दइउ करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-१५२, १५४, १५७, १५८, १६१-६२)

गयणुप्परि कि न चडहिँ, कि नरि विक्खरहिँ दिसिहि वसु,
भुवण-त्तय-मतावु हरहि, कि न किरावि सुहारसु ।
अंधयारु कि न दलहिँ, पयडि उज्जोंउ गहिउल्लओं,
कि न धरिज्जहिँ देवि सिरहँ, सइँ हरि सोहिल्लओं ।
कि न तणउ होहि रयणारहु, होहि कि न गिरि-भायरु ।
तुवि चद निअवि मुहु गोरिअहि, कुवि न करइ तुह आयरु ॥५॥
परहुअ-पचम-सवण-सभय मन्नइँ सो किर,
ति भणि भणइ न किपि मुद्ध-कलहस-गिर ।
चदु न दिक्खण सक्कइ जा सा ससि-वयणि,
दप्पणि पमुहु न पलोअइ ति भणि मय-नयणि ।
वइरिउ मणि मन्नवि कुसुम-सर, खणि खणि सा वहु उत्तसइ ।
अच्छरिउ रूव-निहि कुसुम-सर, तुह दसणु न अहिलसइ ॥६॥
जइ अज्झलक्कहिँ नयण दीह-नयणि अहि-खणु,
केअइ-कुसुम-दलम्मि भसल विलसइ त जणु ।
जइ तीए मुहि हावि मदु हासउ चडइ,
ता जणु हीरय-पउमराय-सचओं झडइ ।
जइ तीएँ महुर-मिउ-भासिणिहि, वयण-णफ निसुनिज्जइ ।
तावह करेप्पि जण अमय-रसु, कण्ण-पण्ण-पुडि पिज्जइ ॥७॥
सवण-निहिअ-हीरय-हसंत-कुडल-जुअल,
थलामल-मुत्तावलि-मंडिअ-थण-कमल ।

अन्य सो दीरघ-लोचन, अन्य सो भुज-युगल ।
अन्य सो घन-थनहार न, अन्यउ मुख-कमल ॥
अन्यउ केश-कलाप सो, अन्य जो पाव विधि ।
जेहिं नितंबिनि गढिय सो, गुण-लावण्य-निधि ॥
ऐसी पीउ रुषेउ हउं, रूठी मोहिं अनुनेइ ।
प्राग्र इव एहि मनोरथहिं, दुष्कर दैव करेइ ॥४१४॥
—प्राकृतव्याकरण (पृ० १४६-५०, १५४, १५७, १५८, १६१, १६२)

गगनोपरि कि न चढै कि नरे बीखरै दिशहिं वस ।
भुवनत्रय सताप हरै, कि न किरबि सुधारस ।
अधकार कि न दलै, प्रकटि उज्जोत ग्रहियुल्लउ ।
की न धरिज्जै देवि-सिरहें स्वय हरि सोहिल्लउ ।
कि न तनय होहि रतनाकरइ, होहि चाहें श्रीभ्रातर ।
तउ चद्र देखि मुख गोरियहि कोउ न करै तव आदर ॥५॥
परभृत-पचम श्रवण सभय मानउ सो फुर ।
तो भनि भनै न किछुअ, मुग्ध कलहस-गिरि ।
चद्र न देखन सक्कै जो सा शशिवदनि ।
दर्पन मुँह न प्रलोकै कि मने मृगनयनि ।
वैरिउ मनें मानिय कुसुम-शर, क्षण-क्षण सा वहु उत्त्रसै ।
आश्चर्य रूपनिधि कुसुम-शर, तव दर्शन जो अभिलषै ॥६॥
यदि आ-झलकैं नयन दीर्घनयनि अभि-क्षण,
केतकि-कुसुमदलेहिं भ्रमर विलसै तो जनु ।
यदि तेंही मुखें भावें मद हासउ चढई,
तो जनु हीरक-पदुमराग-सचय झडई ।
यदि तेहि मधुर मृदु भाषिणिहि वचन-गुफ नि-सुनीजै ।
तो बध करीय जन् अमृत-रस कर्ण-पर्ण-पुटें पीजै ॥७॥
श्रवण-निहित-हीरक-हसंत कुडल-युगल ।
स्थूलामल-मुक्तावलि-मडित-थनकमल ।

सेअ-सअ-पंगुरण वहल-सिरिहंड-रसु-ज्जल,
वहु-पहुल्ल-विअइल्ल-फुल्ल-फुल्लाविअ-कुतल ।
तो पयड धाइ दसण-जणिय-खल-यण-उर-भर-भारिअ,
अहिसरइ चद-सुदर निसिहिँ, पइँ पिअयम-अहिसारिआ ॥११॥

जइ तुह मुह करयलु उ मोडवि । चल्लिअ चीरंचलु अच्छोडवि ।
माणिणि ! तुविपसाओं-करि सुम्मउ । पइँ पिइ उत्तावलिअ म गम्मउ ।

जइ किं वइवि सवह-पय-जुयलु, इह विहि वसिण विहट्टइ ।
ता तुज्झ मज्झु खीणतु खरउ, कि न खामोअरि ! तुट्टइ ॥१३॥

गोवी-अण-दिज्जंत-रासय निसुणतहँ,
वामा-रत्ति पहुच्चइ पहिअहँ पवसतहँ ।
निअ-वल्लह तिँव किँवइ हिअयतरि निवडिअ,
जिँव जनह न वहति चलण नावइ निअडिअ ॥३॥

अहरुट्ठ दलइ जवापसूण दत-कुद,
पाणि-चरण-नयण-वयण विअसि-आरविद ।
कुसुम परु पच्चक्खु'वि सुदरि ! तुज्झ देहु,
तुह तनु-मज्झ-देसु वहसि विवरीउ एहु ॥५॥

हंसि तहारओं गइ-विलासु पडिहासइ रित्तओं,
कोइल-रमणिइ तुहवि कंठु कुठत्तणु पत्तओं ।
विरहय कंकेल्लिह दोहल सपइ पूरतिअ,
ज किर कुवलय-नयण एह हिंडइ गायतिअ ॥८॥

भ्रू-वल्लि-चावयं मणोहवस्स ससितुल्लं वयणं,
अंगं चामीअरप्पहँ अहिणव-कमल-दल-नयणं ।
तीए हीरावलिव दतपंति विद्दुमं अहरं,
पेच्छंताण पुणो पुणो, काण न हवइ मणं विहुरं ॥११॥

निच्छिउ करिवि चंदु दोण्णि खंड । तहि निम्मिय मय-नयणाइ गंड ।
वर-कुसुमंडेविणुं गंध-चंगु । कोमलु तह विरइओं एहु अंगु ॥१४॥

श्वेतांशुक-प्रावरण-वहुल, श्रीखंड-रसोज्वल ।
वहुप्रफुल्ल विकचिल्ल-फुलन फुल्लावियं कुतल ।
तो प्रकट थाइ दर्शन-जनित खल-जन उर-भर-भारिया ।
अभिसरै चंद्र-सुंदर निशिहिँ, तैँ प्रियतम अभिसारिया ॥११॥

यदि तुहँ मुख-करतल उ मोडवि । चल्लिय चीरांचले आ-छोडवि ।
मानिनि ! तव प्रसाद करि सुनऊ । तैँ प्रिय उत्तावलिय न जावउ ।
यदि कि पतिउ संवह पदयुगल, इहँ विधि-वशेँहि वाटई ।
तो तव मध्य क्षीणतउ खरउ, कि न क्षामोदरि ! टूटई ॥१३॥

गोपी-जन दीजंत राशक नि-सुनंतहँ ।
वासर-रात्रि पहूँचै पथिकहँ प्रवसंतहँ ।
निज-वल्लभ तिमि किमिवाहि हृदयंतरेँ निवडिय ।
जिमि जनह न वहंति चरण नावै निगडिय ॥३॥

अधरोष्ठ दलं जवाप्रसून दंत कुद,
पाणि-चरण-नयन-वदन विकसित-अरविंद ।
कुसुम पर प्रत्यक्षउ सुंदरि ! तव देह,
तव तनु-मध्यदेश वहहु विपरीत एह ॥५॥

हंसि तुहारउ गति-विलासेँ प्रतिभासै रिक्तउ,
कोकिल-रमणिहि तोर कंठेँ कुठत्वहिँ प्राप्तउ ।
विरहइ कंकेली दोहल संप्रति पूरंतिअ,
जो पुनि कुवलय-नयनेँ ! एह हिंडै गायंतिअ ॥८॥

भ्रूवल्लि-चापकं मनोभवहँ शशि-तुल्यंव्वदनं,
अंगे चामीकर-प्रभ अभिनव-कमलदल-नयनं ।
ताही हीरावली'व दंतपंक्ति विद्रुम अधरं ।
पेखंतेहिँ पुनी पुनि , काह न होई मन विधुरं ॥११॥

निश्चय करवि चद दोँइ खंड । तहि निर्मित मदनयनइँ गंड ।
वरकुसुम लेपियउ गंध चंग । कोमल तिमि विरचिय एहु अंग ॥१४॥

कुमुअ-कमलहँ एक्क उप्पंति मउलेइ तुवि,
कमल-वणु कुमुअ-सडु निच्चुवि विआसइ
स-च्छद-विआरिणिअ चद-जोण्ह कि मत्त-वालिआ ॥१६।
मणहरु तुह मुह-सररुहु, रयणीअर-विब्भमु धरइ ।
कामिणि हास-विलासु'वि, जोण्हा-पसरहु अणुहरइ ॥४४।
कवणु सु धन्नउ जिण विणु, कामिणि ककण हत्थओ विअलहिं ।
अन्नु कि एँवइ ससि-मुहि, हिडइ उन्नमिहहिं कर-कमलहिं ॥५१।
जइ गगा-जलि धवलि, कालइ जउणा-जलि जइ खित्तअउ ।
राय-हसि नहु वहु न तुट्टु, सुज्झत्तणु तुवि तेत्तउ ॥१०७।
वयणु सरोजु नयण कुवलय-दल, हासु नव-फुल्लिअ मल्लि ।
कर-पाय अमोअ-पल्लव-च्छाय, सहजि कुसुमाउह भल्लि ॥१०८।
तुहुँ उज्जाणि म वच्चसु जइविहु, विलमइ मयणूसवु पवलु ।
गइ-नयणिहिं लज्जीहइ तुह हसीउलु सहि तह हरिण-उलु ॥८।
पिउ आइउ निवडिउ पइहिं, सपणय-वयणिहिं, अणुणिवि माणु मुआविआ ।
इअ मिविणयभरि आलिगिमि जाँवहिं तावहिं सहि ! हय कुक्कुडि रडिआ ॥२७।
—छन्दोनुशासन (पृ० ३४क ख, ३६क, ४-क ख, ४२क, ४३ ख, ४४ख)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

रेहइ अरुण-कति धरणी-अलि इदगोवया[1],
पाउस-सिरि नाइ पय जावय-विदु लग्गया
एहवि विज्जु-लेह कलकतिअ वहल-कंतिआ,
लक्खिज्जइ जायरूव-निम्मिअव्व कठिआ ॥७।
मत्तंबुवाह वरसतिण पट समहिओ,
आयण्णसु संपय महिअलि ज विरइओ

---

[1] वीरबहूटी

कुमुद-कमलह एक उत्पत्ति मुकुले तउ
कमल-वन कुमुद-षड नित्यहिँ विकासै ।
स्वच्छंद-विहारिणिय चंद्र-ज्योत्स्न कि मत्त-बालिका ॥१६॥
मनहर तव मुख-सररुह, रजनीकर-विभ्रम धरइ ।
कामिनि ! हास-विलासउ, ज्योत्स्ना-प्रसरह अनुहरइ ॥४४॥
कवन सोँ धन्यउ जिन विनु, कामिनि ककण हस्तहँ विगलै ।
अन्य कि एव शशिमुखि, हिडै उन्नमितइँ कर-कमलेँ ॥५१॥
यदि गगा-जलेँ धवली, कालउ यमुना-जलेँ यदि क्षिप्तऊ ।
राजहसि नभ वहु न टूटु, शुद्धत्वेँ तव तेत्तऊ ॥१०७॥
वदन-सरोज नयन कुवलय-दल, हास नव-फुल्लिय मल्ली ।
कर-पाद अशोक-पल्लव-छाय, सहजे कुसुमायुध भल्ली[1] ॥१०८॥
तुहुँ **उज्जेनि** न व्रजहु जइविहु, विलसै मदनोत्सव प्रवल ।
गति-नयनेँहिँ लज्जीहै, तुहु हसीकुल सखि तिमि हरिण-कुल ॥८॥
पिय आगउ नि-पडेँउ पदहिँ, स-प्रणय-वचनेँहिँ अनुनउ मान सोँआविया ।
इमि स्वपने भरि आलिगउँ जौ लोँ, तौ लोँ सखि ! हत कुक्कुटि रटिया ॥२७॥
—छन्दो० (पृ० ३८, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४)

(५) ऋतु-वर्णन

(क) पावस

राजै अरुण-कांति धरणीतलेँ इन्द्रगोपका,
पावस-श्री न्याइँ पद यावक-विन्दु लग्गया ।
ईहउ विज्ज्-लेख कल-कांतिय वहुल-कांतिया,
लक्खीजै जातरूप - निर्मितव्य कठिया ॥७॥
मत्त-'म्बुवाह वर्षतेहिँ पति समधिका,
आकर्णहु सप्रति महितलेँ जो विरचिया ।

---

[1] भाला

हंस-हंकल-सद्दिण जं आसि णोहरु, दद्दूर-रडिआउलु निम्मिओ तं सरवरु ॥ ६ ॥

गहिरु गज्जइ धरइ मय-वारि, विहलं-घुलु नहु कमइ ।
दुन्निवारु दिसि-दिमि पलोट्टइ ! ओ मत्त-वालिय-सरिसु विसम-चेट्टु पाउसु पयट्टइ ॥ १८ ॥

गज्जइ घण-माला घणघणाह । न मयण-निवइणो कुंजर-घड ॥ ६१ ॥

कुसुमग्गमु अज्जुण-केअइ-कुडयह । पेच्छिवि कहवि हु न हु रइ-मंडहिँ ।
नव-पाउसि पइसंतइ ओ जाइ । निअंत भमर दुओ हिंडहिँ ॥ ३७ ॥

वज्जहिँ गज्जिर-घण-महल, नच्चहिँ नह-यल-अगणि नव-चंचल-विज्जुल ।
गायहिँ सिहि इह संगीअउ, पाउस-लच्छिहिँ करइ जुआणह मण-आउल ॥ ४३ ॥

—छन्दोनुशासन[1]

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलिंकिचिअइँ विसट्टहिँ, ससि-जोण्ह-समुज्जल रत्तडी ।
मल्लिअ पुल्लइँ परिमल-सारइँ, जउ तउ गय मग्गहु वत्तडी ॥ ११३ ॥

तुहु मुहुलायन्न-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कंति-करंविअओ ।
मोहइ निम्मल-वट्टुल-मंडलु, जल-मज्झनाइ ससि-बिंबिओ ॥ ११४ ॥

—छन्दो० (पृ० ३५ख, ३६ख, ४१क, ४५क)

(ग) हेमन्त-वर्णन

महु-रसु घुटिउ जेहिँ जहिच्छइ, ते अलिं दीसँत भमंत ।
मालइ-ओहुल्लणउँ करंतिण, कि साँहिओं पइँ हेमंत ॥ १११ ॥

—छन्दो०[2]

(घ) वसंत-वर्णन

किं न फुल्लइ पाडल पर-परिमल । महमहेइ किँ न माहवि अविरल ।
नवमल्लिअ कि न दलइ पहल्लिय । कि उत्थरइ कुसुम-भरि मल्लिय ।

हंस-हंकल-शब्दें हिं जो अहेंउ नोहर, दर्दुर-रटनाकुल निर्मित सो सरवर ॥ ६ ॥
गँभिर गर्जे धरै मद-वारि, विहूल नभ क्रमई,
दुर्निवार दिशि-दिशि प्र-लोटै, ओ मत्त-वालिक-सदृश विषम-चेट पावस प्रवर्त्तै ॥१८॥
गर्जे घनमाला घनघनाइ, जनु मदन-नृपतिकर कुंजर-घट ॥ ६१ ॥
कुसुमोद्गम अर्जुन-केतकि-कूटजहँ। पेखिय कइविउ नहि रति-मंडहिँ।
नव-पावसें पइसंतइ ओ जाउ, देखंत भ्रमर दूत हिंडहिँ ॥३७॥
वाजें गज्जर-घन-मर्दल, नाचें नभतल आंगनें नव-चंचल-विज्जुल।
गावें शिखि इहँ संगीतउ, पावस-लक्ष्मिहि करै युवानह मन-आकुल ॥४३॥
—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ख) शरद्-वर्णन

तरुणी किलंकिंचितैं विसट्टैं, शशि ज्योत्स्न-समुज्ज्वल-रातड़ी।
मल्ली फुल्लै परिमल सारैं, जो तो गय मागहु वातड़ी ॥११३॥
तव मुख-लावण्य-तरंगिणिएँ, झलकंतउ कांति करंवितओ[1]।
सोहै निर्मल-वर्त्तुल-मंडल, जल-माँझ न्याइँ शशि-बिबओ ॥११४॥
—छन्दो० (पृ० ३५, ३६, ४१, ४५)

(ग) हेमन्त-वर्णन

मधु-रस घोंटिउ जेहि यथेच्छहँ, ते अलि दिसत भ्रमंत।
मालति-ओलहनउ करति, की साधिउ तैं हेमंत ॥१११॥
—छन्दो० (पृ० ४)

(घ) वसंत-वर्णन

की न फूलै पाटल पर-परिमल। महमहै की न माधवि अविरल ॥
नव-मल्लिक की न दलै पहुधिया। की उच्छलै कुसुम-भरें मल्लिय।

---

[1] पुष्ट

दीहिय-तलाय-सर-तल्लडिहिं । किं न पसाहि पउमिणि फुडइ ।
तुवि जाइ जाय-गुण-संभरणु झाणु । कि भसलुहु मणि खुडइ ॥१२॥
सुणिवि वसंति पुर-पोढ-पुरधिहिं रासु ।
सुमरि विलडहि हूओ तक्खणि पहिउ निरासु ॥१५॥
मत्त-कोइल-नाय णदीइ सिंगार-रसोग्गमिण, नच्चमाण-मायद-पत्तहि ।
अहिणिज्जइ मयण-जय-नाडउव्व, सपइ वसंतिण ॥१६॥
लुट्टिद्दु चंदण-वल्लि-पल्लकि मम्मिलिदु लवंग-वणि खलिदु वत्थु-रमणीय-कयलिहिं।
उच्छलिदु फणि-लयहिं घुलिदु मरुल-कक्कोल-लवलिहिं, चुविदु माहवि-वल्लरहिं ।
पुलइद-काम-सरीरु भमर-सरिच्छउ मलयइ, रट्ठउ मलय-समीरु ॥३१॥
माणु म मेल्हि [1]गहिल्लिएँ निहुई होहि खणु,
उभयओं चंदु पयट्टओं रामावलय खणु ।
दिक्खिमु एहिवि नयणिहिं, पइ हलि मयण-हय,
वल्लह पयह पडति, भणतिय वयण-मय ॥३॥
आमूलु वि वहु-पकिण मंवलिअ मव्व-वार-पडिबोह मोहर-हिय ।
कंटय-सय-मसेविअ-जल-सयण, जिण उववयणु न मोहहिं कमल-वण ॥७॥
कोइल-कल-रवु चदणु, चदुज्जोअ-विलासु ।
वल्लह-सगमि अमय-रसु, विरहिय जलिउ हुआसु ॥२६॥
जं सहि ! कोइल कलु पुक्कारइ, फुल्लु निलओ ।
न पत्तु वसनु मासु, कामहु लीलालओ ॥६८॥
दीसइ उववणि, फुल्लिओ नाय-केसरो ।
न माहविण वण-सिरिहि दिण्ण-सेहरो ॥७२॥
कर असोअ-दलु मुहु-कमलु हसिउ नव-मल्लिअ ।
अहिणव-वसत-सिरि एह, मोहण-इल्लिअ ॥८६॥
पत्तउ एहु वसंतउ, कुसुमाउल-महुअरु ।
माणिणि ! माणु मलंतउ, कुसुमाउह-सहयरु ॥६४॥

---

[1] छोटेसे घरमें, छोटी उमरकी घरवाली (गृहिणिके !)

दीघी-तलाव-सर-नालडिहिं । की न प्रसाधि पद्मिनि फूटई ।
तहु जाति ! जात-गुण-सभरण ध्यान । की भ्रमरहु मणि खूटई ॥१२॥
सुनिय वसंतें पुर-प्रौढ-पुरंध्रिय रास ।
सुमिरि विलटहि हुयउ तत्क्षण पथिक निराश ॥१५॥
मत्त-कोकिल-नाद-नदी शृंगार-रसोद्गम्येंहि नृत्यमान माकद-पंक्तिहिं ।
अभिनीजै मदन-जयनाटकहँ, सप्रति वसंतेंहीं ॥१६॥
लोटिय चदन-वल्लि-पर्यकें सम्मिलिय लवग-वनें स्वलिय वस्तु-रमणीय-कदलिहिँ ।
उच्छलिय फणि-लतहिं घुरिय सरल-ककोल-लवलिहिं, चुंबिय माधवि-वल्लरिहिँ ।
पुलकित काम-शरीर भ्रमर-सरीसउ सचरै, रोयउ मलय-समीर ॥३१॥
मान न मेलि गृहिल्लिए, निभृता होहि क्षण,
उभयउ चद्र प्रकटेउ, रामा-वलय[1] क्षण ।
देखिहु एहिहि नयनहिं, नें री मदन-हत,
वल्लभ-पदहँ पडति, भनतिय वचन-शत ॥३॥
आमूलउ वहु-पकें हिं संवरिय, सर्व-द्वार-प्रतिवोध मोहर-हिय ।
कटक-शत-ससेविय जल-शयन, जिन उपवचन न सोहैं कमल-वन ॥७॥
कोकिल-कलरव चदन, चद-उदोत-विलास ।
वल्लभ-सगमें अमृत-रस, विरहे जलेंउ हुताश ॥२६॥
जो सखि ! कोकिल कल-पुक्कारै, फुलेंउ निलओ ।
सो ओउ वसत मास, कामहँ लीला-लयो ॥६८॥
दीसै उपवनें, फुल्लिय नागकेसरो ।
जनु माधवें वन-श्रीहिं दियेंउ शेखरो ॥७२॥
कर अशोक-दल मुख कमल हसित नव-मल्लिय ।
अभिनव-वसत-श्री एह, मोहनइल्लिय[2] ॥८६॥
आयउ एहु वसंतउ, कुसुमाकुल-मधुकर ।
मानिनि ! मान मलतउ, कुसुमायुध-सहचर ॥९४॥

---

[1] चिल्लाया [2] रश्मिवलय [3] मोहिनी

घोलिर-नवपल्लवु, परिफुल्लिओं रेहइ असोअ-तरु ।
विरइओं रम्मु नाइ, महु-मासिण कुसुमा-उहु-सेहरु ॥९८॥
—छन्दो०[1]

(४) विरह-वर्णन

जे महु दिण्णा दिअहडा, दइएँ पवसंतेण ।
ताण गणतिएँ अगुलिउ, जज्जरिआउ नहेण ॥३३३॥
विरहानल-जाल-करालिअउ, पहिउ कोवि वुड्डिवि ठिअओ ।
अनु सिसिर-कालि सअल-जलहु, धूमु कहन्तिहु उट्ठिअओ ॥४१५॥
पिय-संगमि कउ निद्दडी, पिअहों परोक्खहों केव ।
मइँ विन्निवि विन्नासिआ, निद्द न एँव न तेँव ॥४१८॥
हिअडा पइ एँहु वोल्लिअओं, महु अग्गइ सय-वार ।
फुट्टिसु पिएँ पवसंतिहउँ, भंडय ढक्करि-सार ॥४२२॥
सुमरिज्जइ तं वल्लहउँ, ज वीसरइ मणाउँ ।
जहिँ पुणु सुमरणु जाउँ णउ, तहों नेहहों कइँ नाउँ ॥४२६॥
हिअडा जइ वेरिअ घणा, तो कि अब्भि चडाहुँ ।
अम्हाहीं वे हत्थडा, जइ पुणु मारि मराहुँ ॥
रक्खइ सा विस-हारिणी, वे कर चुविवि जीउ ।
पडि विषिअ-मुंजालु जलु, जेहिँ अहाडिउ पीउ ॥
वाह-विछोडवि जाहि तुहुं, हउँ तेवइँ को दोसु ।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि, जाणउँ मुंज स रोसु ॥४३९॥
—प्राकृतव्याकरण (१४७, १६५, १६६, १७०, १७३)

निक्कंदल-किय-कच्छ, नलिणि-वज्जिय-किय सरसरि,
निच्चंदण किय मलओं, तुहिण-वज्जिय किय हिमगिरि ।

---

[1] ३४ख, ३५ख, ३६क-ख, ३७क, ३९ख, ४१क-ख, ४२क, ४५क

डोलिलय नवपल्लव, परिफुल्लिय राजै अशोक-तरु ।
विरचेँउ रम्य न्याइँ, मधुमासेँहिँ कुसुमायुध-शेखरु ॥९८॥
—छन्दो० (पृ० ३४-३७, ३९, ४१, ४२, ४५)

(४) विरह-वर्णन

जो मोँहिँ दिन्ना दिवसड़ा, दयितेँ प्रवसतेइँ ।
ताह गनंतिउ अगुलिउ, जर्जरियाउ नखेइँ ॥३३३॥
विरहानल-ज्वाल-करालियउ, पथिक कोउ बूडिय ठियउ ।
अनु शिशिर-कालेँ सकल-जलहु, धूम कहंतिउ उट्ठियउ ॥४१५॥
प्रिय-संगमेँ कहँ नीँदड़ी, प्रियहु परोक्षहु केमि ।
मैँ दोउहि विन्यासिया, निद्र न एम तेमि ॥४१८॥
हियडा तै एँहु बोल्लियउ, मम आगे शतवार ।
फूटेँसु प्रिय प्रवसतही, भंडक[1] ठिक्करि-सार ॥४२२॥
सुमिरज्जै तेँहिँ बल्लभउँ, जो बीसरै मनाउ ।
जहँ पुनि सुमिरन चलि गउ, तह नेहह की नाउँ ॥४२६॥
हियरा यदि वैरी घना, तो की नभहिँ चढाउँ ।
हमरो ही दो हाथडा, यदि पुनि मारि मराउँ ॥
राखै सा विष-धारिणी, दोउ कर चुबिय जीउ ।
प्रतिबिबित-मुंजाल जल, जेँहिँ ले लीयउ पीउ ॥
बाँह विछोडिय जाहि तुहुँ, हउँ नेवउँ को दोष ।
हृदय-स्थित यदि नीसरै, जानउँ मुंज सरोष ॥४३९॥
—प्राकृत-व्या० (पृ० १४७, १६५, १६९, १७०, १७३)

निर्-कंदल किय कच्छ, नलिनि-वर्जित किय सुरसरि ।
निश्चदन किय मलय, तुहिन-वर्जित किय हिमगिरि ॥

---

[1] भांडा वर्त्तन ।

निप्पल्लव किय करि पयत्त-ककेल्लि-विडवि-सय,
पत्त-चत्त किय वाल-कयलि, अकुसुम किय तरु-लय ।
सिसिरोवयार किहिं परियणिहिं, णिम्मुत्तावलि किय भुवण ।
तो विहु न णीइ विरह-तुह भरि, खमइ दाह-दारुण-विअण ॥४॥

तरुणि - हूण - गड-प्पहु - पुच्छिअ - तिमिर - ससि,
उक्क - झलुक्का[1] - वडणु दुसहु मा करउ ससि ।
मलयानिल मय-नयणि घुणिअ-कप्पूर-कयलि-वणु,
सयुक्किय-मयण-ग्गि सहि ! इमा तुज्झ तवउ तणु ।
तणु-अग्गि ! म खडहडि पडहि तुह, मयण-वाण-वेयण-कलह ।
चयमाणु माणि वलहिण सहुं, चडि म जीव समय-तुलह ॥१०॥
लायण्ण-विब्भम तरगतिहिं । निद्दड्ढ-वम्म जिआवतिहिं ।
प्रेमि प्रियाहिं जो पुलोइज्जइं । ता मत्तलोइ सग्गु पाविज्जइ ॥१३॥
मत्त-महुअरि-सार-झकार-कलयठि-कलयलिहिं, मयण-धणु-हडुकार-ससिहिं ।
कह जीवहुं विरहिणिउ, दुर - देस - पवसत - रमणिउ ॥२१॥
कुविदो मयणो महाभडो, वण-लच्छी अ वसत-देहिआ ।
कह जीवउं सामि ! विरहिणि, मिउ-मलयानिल-फस-मोहिआ ॥५४॥
जलइ जइवि कुसुम-लया-हरु, तवइ चदु जह गिम्हि दिवायरु ।
तुवि ईसा-भर-तरलिअ, पिअ-सहि वयणु न मन्नइ वालिअ ॥५७॥
जलइ सरोवरि नीलुप्पल-वणु ! वणि लय फुल्लिअ नहयलि हिम-किरणु ।
विरह-रहक्कइं तुह तणु-अगिहिं, मुहय ! विणिम्मिओ जलु थलु नहु जलणु ॥३२॥
सइ विज्जुल-अविउत्तउ तुहुं जल-हर-करि, गुदलु निट्ठु न जाणसि विरहिअहँ ।
इअ भणि चिंतवि किपि अमगलु, दइअहुं असु-पवाहु पलुट्टउ पंथिअहँ ॥४५॥
विरह रहक्कइं मुहय न जपइ, न हसइ जीवइ केवलु पिअ-पच्चासइ ।
अहवा किंनि उरत्थावण्णणु, करिमहँ निच्छइं मरिमहँ तुहु जमु नासइ ॥४६॥

---

[1] ऊककी तरह भक्से बलनेवाला, ऊक झरकानेवाला

निष्पल्लव किय करि प्रयत्न ककेलि-विटप-शत ।
पत्र-त्यक्त किय बाल-कदलि, अ-कुसुम किय तरु-लत ॥
शिशिरोपचार किउ परिजनिहिं, निर्मुक्तावलि किय भुवन ।
तोपिउ न ताहि विरह तुह भरें, खमै दाह-दारुण-विजन ॥४॥
तरुणि हुण-गड-प्रभ पोंछिय तिमिर-ममि,
उल्क-भल्लुक्का वलन दुसह ना करउ शशि ।
मलयानिल मृग-नयनि घूणि कर्पूर-कदलि-वन,
मधुक्षिय मदनाग्नि सखि ! एँह तोर तपउ तनु ।
तनु-अगि ! न खडहडि पहि तुहुं, मदन-वाण-वेदन-कलह ।
त्यजमान मान वल्लभेंहिं संग, चढि न जीउ सशय-तुलहँ[1] ॥१०॥
लावण्य-विभ्रम-तरंगतिहिं । निदृढ मन्मथ जियावतिहिं ।
प्रेमें प्रियाहि जो पुलकिज्जै । तो मर्त्यलोकें स्वर्ग पाइज्जै ॥१३॥
मत्त-मधुकरि तार-झकार कलकठि-कलकलहिं, मदनधनु-टंकार-सरिसहिं ।
किमि जीवहु विरहिनिउ, दूर-देश प्रवसत रमणेंउ ॥२१॥
कुपितउ मदन-महाभटउ, वन-लक्ष्मीउ वसत-रेखिता ।
किमि जीवउ स्वामि ! विरहिणी, मृदु-मलयानिल-स्पर्श-मोहिता ॥५४॥
ज्वलै यदपि कुसुमलता-घर, तपै चद्र जिमि ग्रीष्म-दिवाकर ।
तउ ईर्ष्या-भर-तरलिय, प्रिय-सखि-वचन न मानै बालिका ॥५७॥
ज्वलै सरोवरें नीलोत्पल-वन । वनें लतां फूलिय नभतलें हिमकिरण ।
विरह-धधक्कें तुहु तनु-अगिहिं, सुभग ! विनिमेंउ जल थल नभ ज्वलन ॥३२॥
स्वयं विज्जुल अवियुक्तउ तुहं जलधर करि, गुदल[2] निष्टों न जानसि विरहियहँ ।
इमि भनि चितै किछुअ अमगल दयितहँ, अश्रु-प्रवाह प्रलोटउ पथिकहँ ॥४५॥
विरह धधक्कें सुभग न जल्पै, न हसै जीवै केवल प्रिय-प्रत्याशै ।
अथवा काउ अवस्था-वर्णन, करिहउँ निश्चय मरिहहुँ तव यश नाशै ॥४६॥

---

[1] तराजू [2] मस्त

उण्हय अमयमऊह-मऊह विद्दसहु, चंदण-पकुवि जलइ लयाहरु वि ।
इय तुह विरहिण तहि तणु-अगिहि मुहय, सुहाइ न किपि'वि पसिअहि दय करिवि ।।५०।।
—छन्दो०[1]

३—नीति-वाक्य

सायरु उप्परि तणु धरइ, तलि घल्लइ रयणाइँ ।
सामि सुभिच्चु 'वि परिहरइ, सम्माणेइ खलाइँ ।।३३४।।

गुणहिँ न संपइ कित्ति पर, फल लिहिआ भुजंति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअवि, गय लक्खेहिँ घेप्पंति ।।३३५।।

जीविउ कासु न वल्लहउँ, धणु पुणु कासु न इट्ठु ।
दोण्णिवि अवसर-निवडिआइँ, तिण-सम गणइ विसिट्ठु ।।३५८।।

वासु महारिसि एँउ भणइ, जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।
मायहँ चलण नवन्तहँ, दिवि-दिवि गंगा-ण्हाणु ।।३९९।।

वम्भ तेँ विरला केवि नर, जे सव्वग-लद्धल्ल ।
जे वंका ते वंचयर, जे उज्जुअ ते वइल्ल ।।४१२।।

गयउ सु केसरि पिअहु जलु, निच्चिन्तइँ हरिणाइँ ।
जसुकेरएँ हुंकारडएँ, मुहहुँ पडंति तृणाइँ ।।४२२।।

सिरि चडिआ खंति फ्फलइँ, पुणु डालइँ मोडंति ।
तोवि महद्दुम सउणहँ, अवराहिउ न करंति ।।४४५।।
—प्राकृतव्याकरण[2]

जे निअहिँ न पर-दोस । गुणहिँ जि पयडिअ तोस ।
ते जगि महाणुभावा । विरला सरल-सहावा ।।१२४।।

पर-गुण-गहणु स-दोस पयासणु । मद्दु मद्दुरक्खरहि अमिअ-भासणु ।
उवयारिण पडिकिअो वेरिअणह, इअ पद्धडी मणोहर सुअणहँ ।।१२८।।
—छंदोनुशासन (पृ० ४३क)

---

[1] पृ० ३४क, ३५ख, ३६क, ४०ख, ४४ख, ४५क-ख

[2] पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६९, १७५

उण्णइ अमृतमयूख मयूखउ दुस्सह, चंदन-पकउ ज्वलै लताघर भी ।
एँहु तव विरहें तस तनु-अगिहि सुभग ! सोंहाइ न किछुउ प्रियसखि दयाँ करबि ।५०।
—छन्दो० (पृ० ३४-३६, ४०, ४४, ४५)

३ नीति-वाक्य

सागर ऊपर तन धरै, तलें घालै[1] रतनाइँ ।
स्वामि सुभृत्यहँ परिहरै, सम्मानेइ खलाइँ ॥३३४॥
गुणहिँ न सपति कीत्ति पर, फल लिखिया भजति ।
केसरि न लहै कौडियउ, गज लक्षहँ घेप्पंति[2] ॥३३५॥
जीविवु कासु न वल्लभउ, धन पुनि कासु न इष्ट ।
दोउहिँ अवसर आपडे, तृण-सम गनै विशिष्ट ॥३५८॥
व्यास महाऋषि इमि भनै, यदि श्रुति-शास्त्र-प्रमाण ।
मातह चरण नमन्तहँ, दिनें-दिनें गंग-नहन ॥३६६॥
ब्रह्म ! सों विरला कोउ नर, जो सर्वांग छइल्ल ।
जो वंका सो वंचकर, जो ऋजुका सों बइल्ल ॥४१२॥
गयउ सों केसरि पियहु जल, निश्चितें हरिनाइँ ।
जासुकेर दह्हाडयें, मुखइँ पडति तृणाइँ ॥४२२॥
शिर चढिया खावइँ फलहिँ, पुनि डालिहिँ मोडति[3] ।
तऊ महाद्रुम शकुनहीं, अपराधी न करंति ॥४४५॥
—प्राकृत० (पृ० १४७, १५२, १६१, १६६, १६६, १७५)
जे देखहिँ न पर-दोष । गुणें हिँ जें प्रकटें तोष ।
ते जगें महानुभावा । विरला सरल-स्वभावा ।।१२५॥
पर-गुण-ग्रहण स्वदोष-प्रकाशन । मधु-मधुराक्षरें अमृत-भाषण ।
उपकारें हिँ प्रतिकरिय वैरिजन, एँउ पद्धती मनोहर सुजन ॥१२८॥
—छन्दो० (पृ० ४३)

---

[1] डारै [2] लेते [3] तोड़ते

§ ३१. हरिभद्र सूरि

(चंद्रसूरि-शिष्य)। काल—११५६ ई० (जयसिंह-कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—गुजरात (अनहिलवाडा पाटणमें निवास) कुल—

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

तपणु वियलिर तिमिर धम्मिल्ल परिल्हसिर तारय वसण-कलयलत तरुमिहर पक्खिवय।
परिसंदिर कुसुम-महु-विदु-मिसिणाएँ पउ वहुक्खिवय।
जस मइ कुमरिहें दुक्खेण वहरेण रयणि-विलीण,
पडिवक्खिवय खयारिद मुहबुद्धि व कुमुदाण की।
कुमर-रयणह पहु पयासेंउ मिव-वियसइँ विसिमुहई, उदयागिरिहिं आरुहिउ दिणयरु।
सपाविवउ वडनिरु रायहस कमलोह-सुहयरु।
पत्तावसर ममुल्लसिय सभराय सिगार।
न कुकुम कोसुभ वरवत्थ-कयालकार।
मन चक्कहँ विहिय मनोस पविरायइ पुव्वदिसि अवहरत तम-वल्लि-लज्जेण।
पसरत रायारुणेण नववहु'व्व रवि-दइय-संगेण।
उदयते णयरवि निवेण गजतेण पडिवक्खु।
कमलकोसें विणिहित करवट्ठु गुरुत्तणें लक्खु।
हरिय तारय-रेणु-नियरमिसइ निप्पहें दोसयरें, निम्मल मि गयणयलें चडिउ।
रवि रेहइ कणयमउ-मंगलज्जुत कलसु मंडिउ।
भमरा धावहिँ कुमुइणिउ उब्भवि कमलवणेसु,
कम्मव कहि पडिवंधु जगें चिरपरिचिय-गणेसु।

---

*प्रो० हर्मान् याकोबी द्वारा संपादित—देखो पृ० ३८५ पर

§ ३१. हरिभद्रसूरि

जैन साधु, महामंत्री पृथ्वीपालके अनुगृहीत । कृति—नेमिनाथ-चरिउ* (८०३ श्लोक)

१—प्रकृति-वर्णन

(१) प्रातः वर्णन

पन-विदलिय तिमिर-धम्मिल्ल[1]परि-खसिय तारक-वसन, कलकलत तरुशिखर पक्षिय ।
परिस्यदित कुसुम-मधुविदु-मिश्रण[2] तैं वहु-राक्षिय ।
जसु मैं कुमरिहि दुःखें वैरें रजनि-विलीन ।
प्रति-पक्षिय खचरेंद्र सुख-बुद्धि'व कुमुदिनि की ।
कुमर-रतनह प्रभ प्रकाशें उ मृदु विकसै विसि[3]-मुखैं, उदयगिरिहिं आरुहें उ दिनकर ।
मं-पायें उ अतिशय राजहंस कमलोघ-सुखकर ।
प्राप्तावसर समुल्लसिय शांव-राज[4]-शृंगार ।
जनु कुंकुम - कौसुम्भ - वरवस्त्र - कृतालकार ।
गात-चक्रहें विहित-सतोष प्रविराजै पूर्व दिनें अपहरंत तम-वल्लि-लज्जहिं ।
प्रसरत रागारुणेहिं नवबधु इव रवि-दयित-संगेहिं ।
उदयते नव-रवि नृपेहिं गर्जन्तेहिं प्रतिपक्ष ।
कमलकोशें विनिहित कर-वर्त्त[5] गुरुत्वे लक्खु[6] ।
हरित तारक-रेणु निकुरंविय निष्प्रभें दोषाकरें, निर्मले गगनतलें चढें उ ।
रवि राजै कनकमय-मंगलार्जुन-कलश-मंडें उ ।
भ्रमरा धावैं कुमुदिनिउ खिलें उ कमलवनहें ।
केहि इव कहें प्रतिबध जगें चिरपरिचित-गणहें ।

---

[1] केश [2] कमल [3] कामदेव किरण समूह [4] लख्यो

विरह-विदुरिय चक्कमिहुणाइँ मिलिऊण साणंद, हुय तुट्ठ भमहिँ पहियण महियलें ।
कोसिय[1]-कुलु एँक्कु परिदुहिउ रविहिँ आरूढें नहयलें ।
——णेमिणाह-चरिउ ७

(२) वसंत-वर्णन

पाणि संठिय मंजु सिजंत भमरावलि सामलियदलि कुसुम-सहयार-मजरि ।
पसरंत हरिसुल्ल सिय पुलय भरेँण रेहंत सिरुवरि ।
विरइवि करसंपुटु भणहिँ, उज्जाणिय आगनु ।
जह पहु हरिसिय भुवण-जणु, संपइ पत्तु वसनु ।
जमिह पसरिउ दइय-सगु'व्व मलयानिलु अगमुहु पत्तविहवु पुणु कुसुम-परिमलु ।
चारिज्जय तूर-रव-रम्मु फुरिउ कलयवि-कलयलु ।
पउमारुण कंकेल्लि-तरु-कुसुमइँ नयणसुहाइँ ।
तवणिज्जज्जल कुसुम-भरु हूय कोरिट-वणाइँ ।
जत्थ माहवि लइय तो मरिय सेहालिय कुतलिय जालईय लहु सुरहि लइयवि ।
भूयद्दुम मजरिय वहुगुलुब पायव अमोयवि ।
आलिंगिज्जहिँ पूगफलें, तरु कामुय सव्वगु ।
नागवल्लि तरुणिहिँ जणहँ, उज्जीविरिहि अणगु ॥
जहिँ पवालंकुरेँहिँ कयमोह डिभाइँ'व तिलयकय गरुयमहिम कामिणि मुहाइँ'व ।
वहुलक्खण चित्त-मय मणहराइँ नर-वइ-गिहाइँ'व ।
उत्तिम जाइ पमवकय-महिमंडणाइँ वणाइँ ।
विलसहिँ भुवणाणदयर, नं नरनाहकुलाइँ ॥
जहिय विज्ज सियकुसुम कणियार-वणराइ कचणमयव कुणइ पहिय हियय्याण विब्भमु ।
अहिकखहिँ भुवणयले सयल-मिहुण निय-दइय-संगमु ।
गिज्जहिँ रासहिँ चच्चरिउ, पेज्जहिँ वरमहराउ ।
माणिज्जहिँ नुगत्थणिउ, किज्जहिँ जल-कीलाउँ ॥
—णेमिणाह-चरिउ[2]

---

[1] कौशिक = उल्लू [2] संधि ४

वेरहविधुरित चक्रमिथुनाइँ मिलियउ सानंद, हुयेंतुष्ट भ्रमैं पॅथिजन महितलें।
कौशिक-कुल एक परि-दुखित रविहिं आरूढे नभतलें।
—नेमिनाथ-चरित ७

(२) वसंत-वर्णन

गणि-सं-ठिय मंज् सिजत भ्रमरावलि श्यामलिय,दलें कूसुम सहकार-मंजरि।
पसरंत हर्षिल सित-पुलक-भरें राजंत शिरवरें।
वेरचिय कर-सपुट भनैं उद्-जानिय आगंत।
जिमि प्रभु हर्षिय भुवन-जन, संप्रति आउ वसंत।
जो ऐंहि पसरें उ दयित-संग इव मलयानिल अग-सुख प्राप्तविभव पुनि कुसुम-परिमल।
संचारिय तूर्य-रव रम्य फुरें उ कलकंपि-कलकल।
ग्धारुण कंकेलि[1]-तरु-कुसुमा नयन-सुखाइँ।
तपनीय ज्वल कुसुंभ-भर हुअ कोरिट-वनाइँ।
यत्र माधवि लतिक तोमरिय[2]-शेफालिक कुतलिय जालकित लघु सुरभि लइयउ।
भुर्जद्रुम मंजरिय बहु - गुल्म - पादप अशोकउ।
प्रालिंगिज्जैं पूग-फलें, तरु कामुक सर्वांग।
नागवल्लि-तरुणिहिं जनहँ, उज्जीवियहि अनंग॥
जिमि प्रवालांकुरें हिं कृतशोभ डिभा इव,तिलककृत गरुव-महिम कामिनि-मुखाइव।
वहुलक्षण - चित्रशत - मनहरा नरपति - गृहा इव।
उत्तम-जाति - प्रसवकृत, महिमडना वनाइँ।
विलसैं भुवनानंदकर, जनु नरनाथ - कुलाइँ॥
गाहि फुटिय सित-कुसुम कर्णिकार-वन-राजि कंचनमृदउ,करै पथिक-हृदयाहँ विभ्रम।
अभिकांक्षैं भुवनतलें सकल-मिथुन निज-दयित-संगम।
गाइज्जै रासहिं चर्चरिउ, पीइज्जै वर-मदिराव।
मानिज्जै तुग - स्तनिउ, किज्जै जल - क्रीडाव॥
—नेमिनाथ-चरित संधि ४

---

[1] अशोक [2] फैला हुआ

२–सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जीएँ रयणिहिँ नियय तणु किरणमालच्चिय दीव सिव मोह मेलु मंगल-पईवय ।
सवणाण विहूसणइँ नयणकमल विड मेल्ल मेवय ।
गंडयलच्चिय तिमिर-हर, जगें पहु ससि-रवि-सरिस ।
सवण जेँ अंदोलिय लंबिय, विहल महुह आकरिस ।।
जणु सुहावहिँ मुहह निसास कि मलयानिल भरेण,दंतकिरण धवलहिँ कि चंदेण ।
अहरो विहूर जवइ जगु विकडण कि अंगरागेण ।
रसण पउच्चिय मिउफरि, सूतपा-मयण सयणेज्ज ।
नह-मणि-किरणच्चिय कुणहिँ, कुसुम वयारह कज्जु ।।
तरल-नयणेहिँ कुडिल-केसेहिँ थण-जयलेण, पुणु कठिण सुज्झ सव मज्झपएसेण ।
अच्चंत वाउलिय देवपूय गुरु विणय हरिसेण ।
इय सा सयलवि जग जिणइ, निय-गुण-दोस-साएण ।।
—णेमिणाह-चरिउ[1]

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नील-कुतल कमल-नयणिल्लु विवाहरु मियदसण, कंबुगीवु पुर-थरहरि उरयलु ।
जुय दीहर-भुय-जुयल वयण ससि जिय कमल-उप्पल ।
पडमदलारुण करचलण, तविय - कणय - गोरगु ।
अट्ठ वरिस वउ पहु हुयउ, समहिय विक्कम अणगु ।।
—वही

(३) विवाह-महोत्सव

ता पहुत्तइ लग्ग समय मिलिएहिँ सुहि-सज्जणेहितेसि, कुमरकुमरीण दोण्हवि ।
पारद्ध विवाह-विहि नयण-खयर पहु दुहिय अन्नवि ।

---

[1] सधि ७

२—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य-वर्णन

जेहि रजनिहिँ निजय तनुकिरण-मालांचित दीप शिव सोह मात्र मगलप्रदीपय ।
श्रवणाइँ विभपणैँ नयन-कमल द्वे मित्र एवय ॥
गडतल-अर्ची तिमिरहर, जग प्रभ शशि-रवि-शख ।
श्रवण जेँ आदोलै ललित, विफल न होहु आकक्ष ॥
जनु स्वभावँ मुखनिःश्वास की मलयानिल भरेहिँ, दंतकिरण धवलहिँ की चंदेहिँ ।
अधराहु-हु रजवै जग विकचेँ की अंगरागेहिँ ॥
रसन प्र-उच्चिय मृदुफलेँ, सून मदन शयनिज्ज ।
नख-मणि-किरणार्चिय करै, कुसुम-विारहँ काज ॥
तरलनयनेहिँ कुटिल-केशेँहिँ स्तन-युगलेहिँ, पुनि कठिन तोर रूप मध्यप्रदेशेहिँ ।
अत्यत व्याकलित देँव-,पूजा गुरु-विनय हर्षेहिँ ।
इमि सा सकलउ जग जितै, निज गुण-दोष-शतेहिँ ॥ ॥
—नेमिनाथ-चरित संधि ७

(२) पुरुष (कृष्ण)-सौंदर्य

नीलकुतल कमल-नयनिल्ल विद्याधर[2] सित-दशन, कंबुग्रीव पुर-अरर[1] उरतल ।
युग-दीर्घ-भुज-युगल वदन सीस जिमि कमल-उत्पल ।
पद्मदलारुण कर - चरण, तप्तकनक - गोरंग ।
आठ वर्ष वय प्रभु हुयेँउ, समधिक-विजित-अनग ॥
—वही

(३) विवाह-महोत्सव

तव प्रभूतइ लग्न समये मिलितेहिँ सुहृद्-साजनहितैषि कुमर कुमरीहु दोनउ ।
प्रारब्ध विवाहु-विधि तपन-अचर-प्रभ दुहित अन्यउ ।

---

[1] अरर = कपाट [2] विद्याधर

नियं-नियं जणयाणुग्गहिणु, कयसायर सिंगार ।
लग्ग कुमारह पाणितलें, फुरिय मलय-पब्भार ।
ता कुमारह वित्ति विवाहें पसरत महूसवेण नयरलोउ सयलोवि सहरिसु ।
आसीसहँ मय-सहस देइ कुणइ मंगलिय पगरेसें ।
अह नरनाहेंण वित्थरेंण, नियं-नयरंमि अमेसें ।
पारद्धउ वद्धावणउं, तंमि विवाह विसेसें ॥
वज्जंत गज्जत वहुभेय-तूरं । लभिज्जत दिज्जंत कप्पूर-पूरं ।
पणच्चंत णच्चंत वेसा-समूहं । दसिज्जंत हिंडंत वावणयतूह ।
एंत गच्छंत चिट्ठत वहुसज्जण । लेत वियरंत सुयसंत जण-रंजणं ।
खंत पिज्जंत दिज्जंत वहुभक्खयं । लोय उल्लसिय वहुभेय मणसुक्खय ।
धावंत क्रीलंत वग्गंत खुज्जयगणं । वंत उट्ठंत निवटंत वालयजणं ।

—णेमिणाह-चरिउ[1]

(४) नारी-विलाप

हरिण-णयणिय चपयच्छाय ससि-सोमवयणवरुह, कद-कलिय-सम-दत-पतिया ।
परिदेविय रव-भरिय धरणि गयण अतरमय विय ॥
कुट्टहिँ सिरु कर-मुग्गरिहिँ, पीडहिँ उरु वादाहिँ ।
ताडहिँ वच्छोरुहवियउ, निय - करसाहाहिँ ॥
रुयहिँ गायहिँ लल्लहिँ मुच्छहिँ सिक्कारहिँ पुक्कारिहिँ, सहिहि गहियउ उरें हार तोडहिँ ।
उल्लूरहिँ चिहुर-भर कणय-रयण-वलयालि मोडहिँ ॥
सरिवि सरिवि निय-पियय महु, गुणगण तहिँ विलवंति ।
जह म विहट्टिय तरु विहय. नियरु वि रोयावंति ॥

मेणाह-चरिउ[2]

---

[1] संधि ७ [2] संधि ६

निज निज जनकानुग्रहेँउ, कृत-सादर-शृंगार ।
लाग कुमारह पाणितलेँ, फुरिय मलय पहु हार ।।
तो कुमार-कृत-विवाहेँ पसरंत महोत्सवेँ, नगर लोग सकलऊ सँहर्षेउ ।
आशीषहँ शत-सहस देँइ करैं मंगलिय प्रकर्षउ ।
अथ नरनाथेँ विस्तरेँ, निज नगर ही अशेषेँ ।
प्रारंभेउ वधावनउ, तेहिँ विवाह-विशेषेँ ।।
वाजंत गाजंत वहुभेद-तूरं । लभिजंत दीयंत कर्पूर-पूरं ।
प्र-नाचंत नाचंत वैश्या-समूहं । द्रशिज्जंत हिंडंत वामन-समूहं ।
जात आवंत तिट्ठंत वहुसज्जन । लेत विनरत सुप्रशात जनरंजन ।
खांत पीयत दीयंत वहु-भक्षण । लोक उल्लसिय बहुभेद मनसुक्खयं ।
धावंत क्रीडंत वल्गंत कुब्जक-गण । वांत उट्ठंत निपतंत वालकजनं ।।

——वही

(४) नारी-विलाप

हरिन-नयनिय चम्पक-छाय शशि-सौम्य वदनांवुरुह, कुदकलिय-सित-दंत-पंक्तिया ।
परिदेवेँउ रव-भरिय धरणि-गगन-अंतरमय इव ।।
कूटेँ शिर कर-मुद्गरिहिँ, पीडेँ उरु-पादाहँ ।
ताडेँ वक्षोरुह विकट, निज (निज) कर-शाखाहिँ ।।
रोवेँ गावेँ लवेँ मूर्छेँ सीत्कारेँ पुक्कारेँ, सखिहि गहिउ उर-हार तोड़हीँ ।
उल्लूरेँ[1] चिकुर-भर कनक-रतन-वलयालि मोडहीँ ।
सुमिर सुमिर निज-प्रियहं महाँ,-गुण-गण तहँ विलपंति ।
जिमि स-तिरस्कृत-तरु विहग, नितरुउ रोआपंति ।।

—वही संधि ६

---

[1] नोचें

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरलु तारुण्णु जल'व चवल सपर्यवि ।
इच्छ आयास मदुलह पुणु वंचियवि ॥
तप्पु विणस्सरु सयण नियय कज्जट्ठिया ।
विसम-परिणामु'वि हि कामिणि 'वि दुट्ठिया ॥
पिसुणवल पिच्छिणो महि दुरारोहया ।
मणुवि मक्कड, मयच्छीउ तव्वाहया ॥
—वही

§३२. अज्ञात कवि

(वीसल-देव काल ११५३–६४)

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

नउ करवाली मणियडा, ते अग्गीला च्यारि ।
दानसाल जगडू-तणी, दीसइ पुहवि मँझारि ॥११८॥
वीसलदे विरुअं करइ-जगडु कहावइ जी ।
तु(उ) परीसइ फालिमिउं, एउ परीसइ घी ॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कल्लिहिं बोर जि वीणती, अज्ज न जाणइ खख्ख ।
पुणरवि अडविहिं करि सुघर, न सहुँ एह अणक्ख ॥१३७॥
भूमी गुणेण जइ कहवि तुंगिमा तुज्झ होइ ता होउ ।
तह तुह फलाण रिद्धी होही वीआणुसारेण ॥१३८॥
—उ० त०, पृ० ४६

३—कविका संदेश

(सब तुच्छ)

तरल तारुण्य जल इव चपल सपदउ ।
इच्छि आकाश मृदुलह पुनि वंचियउ ॥
ताप विनश्वर शयन निजय कार्य-ट्ठिया ।
विषम-परिणामउ हि कामिनिउ दुट्-ठिया ॥
पिशुन-बल प्रेक्षका महि दुराराधआ ।
मनउ मर्कट, मृगाक्षीउ तद्-बाधआ ॥
—वही

§ ३२. अज्ञात कवि

कृति—स्फुट

(१) जगडू साहुके दानकी प्रशंसा

ना करवाली मनियरा ते आगिल्ला चारि ।
दानशाल **जगडूकेरी**, दीसै पुहवि-मँझारि ॥११८॥
वीसलदे विरुद करै, जगडु कहावै जीव ।
तू(तो) परसै फालसैं. एह परीसै घीव ॥११९॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१-४२

(२) अकालमें दुर्दशा

कालहिं वोर जो वीनती, आज न जानै कक्ख ।
पुनरपि अटविहिं करिसु घर, ना सँग एह अनक्ख ॥१३७॥
भूमि गुणेही यदि कहबि तुंगिमा तुज्झ होउ ता होउ ।
तिमि तव फलाहँ ऋद्धी होही वीजानुसारेही ॥१३८॥
—उपदेशतरंगिणी, पृ० ४१, ४२, ४६

§ ३३. आम भट्ट

काल, (जयसिंह—कुमारपाल १०९३-११४२-७३)। देश—अनहिलवाडा-

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गइंद डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर,
डुल्लिय महि हल्लियहि मेरु जलभंपइ सायर।
मुहडकोडि थरहरिय कूरकूरभ कडक्किअ,
अतल वितल धसमसिअ पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय ॥
गज्जंति गयण कवि **आम** भणि, मुरमणि फणिमणि इक्कहूअ।
मागहि हिमगहि मम गहि मगहि मुच मच्छ **जयसिंह** तुह ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे रक्खइ लहुजीव वडवि रणि मयगल मारइ,
न पिइ अणग्गलनीर हेलि रायह संहाइ।
अवर न बंधइ कोइ सघर रयणायर वधइ,
परनारी परिहरइ लच्छि पररायह रुंधइ।
कुमरपाल कोपिं चडिउ फोडइ मत्तकडाहि जिमि,
जे जिणधम्म न मन्निमडं तीहवि चाडिमु तेम-तिम ॥२०४॥

—वही उ० त०, पृ० ६५

§ ३३. आम भट्ट

पाटन (गुजरात)। कुल—ब्राह्मण, राज-कवि। कृतियाँ—स्फुट

सामन्त-प्रशंसा

(१) जयसिंह (सिद्धराज)-प्रशंसा

डरि गयंद डगमगिय चन्द करमिलिय दिवाकर,
डोलिय महि हल्लियह मेरु जल जंपै सागर।
सुभट-कोटि थरथरिय क्रूर-क्रूरम्भ कडक्किय,
अतल वितल धसमसिय पुहवि सँग प्रलय पलट्टिय।
गर्जंति गगन कवि **आम** भन, सुर-मणि फणि-मणि एक हुअ।
मागहि हिम गहि मम गहि मगहि मुच मुछ **जयसिंह** तुव ॥२०२॥

(२) कुमारपाल-प्रशंसा

रे राखै लघुजीव वडउ रणें मदकगल मारै,
न पिउ अनगंल नीर हेरि राजहँ संहारै।
अवर न बाँधै कोइ स-घर रतनाकर बाँधै,
परनारी परिहरै लक्षिम पर-राजहँ रुंधै।
कुमरपाल कोपी चढेउ फोडै सप्तकडाहि जिमि।
जो जिनधर्म न मानिहैं, तेहहिँ चाढिसु ताम तिमि ॥२०४॥
—उपदेशतरंगिणी (पृ० ६४, ६५)

§ ३४: विद्याधर

काल—११८० (जयचंद ११७०-९४)। देश—कन्नौज। कुल—ब्राह्मण,

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा[1]

(वीर-रस)

चंदा कुदा कासा, हारा हीरा तिलोअणा केलासा।
जेत्ता जेत्ता मेत्ता, तेत्ता **कासीस** जिण्णिआ ते किन्नी ॥१७॥ (१३७)
विसुह चलिअ रण अचलु, परिहरिअ हअ-गअ-वलु।
हलहलिअ **मलअ** णिवइ, जसु जस तिहुअण पिअइ।
वरणसि-णरवइ लुलिअ, सअल उवरि जस फरिअ ॥१८॥ (१४८)
भअ भंजिअ **वङ्गा** भग्गु **कलिंगा, तेलंगा** रण मुक्कि चले।
मरहट्ठा ढिट्ठा लग्गिअ कट्ठा[2], **सोरट्ठा** भअ पाअ पले।
चंपारण कंपा पव्वअ झंपा, ओल्हिा ओल्थी जीवहरे।
कासीसर राआ किअउ पआणा, **विज्जाहर** भण मतिवरे ॥१९॥(२४४)
राअह भग्गंता दिगलग्गंता, परिहर हअ-गअ-घर-घरिणी।
लोरहि[3] भर सरवरु पअ अरु परिकरु, लोट्टइ पिट्टइ तणु धरणी।
पुणु उट्ठइ सभलि कर दतंगुलि, वाल तनअ कर जमल करे।
कासीसरु राआ णहलु काआ, करु माआ पुणु थप्पि धरे ॥१८०॥ (२८९)
जे किज्जिअ धाला जिण्ण णिवाला, **भोट्टा** पिट्टंत चले।
भजाविअ **चीणा** दप्पहि हीणा, लोहावल हाकंद पले।

---

[1] "The King's (Jaichandra's) minister Vidyadhara" the Hist. of Rashtrakuta, p. 128.

[2] दिशा

[3] **लोर (मल्लिका) आंसू**

§ ३४. विद्याधर

राज महामंत्री।[1] कृतियाँ—स्फुट कवितायें[2]।

(सामन्तोंकी प्रशंसा)

जयचंद-महिमा

(वीर-रस)

चंदा कुंदा काशा हारा हीरा त्रिलोचना कैलाशा।
जेत्ता जेत्ता श्वेता, तेत्ता काशीश जीतिया तव कीर्त्ति ॥७७॥
विमुख चलिय रणें अचल, परिहरिय हय-गज-बल।
हलहलिय **मलय** नृपति, जासु यश त्रिभुवन पिवई।
बनरसि-नरपति लुलिय सकल-उपरि यश फुरिया ॥८७॥
भय भाजिय **वंगा** भागु **कलिंगा**, **तेलगा** रण मुंचि चले।
मरहट्ठा दिट्ठा लागिय काष्टा, **सौराष्ट्रा** भय पाद पडे।
चंपारन कंपा पर्वत झंपा, उट्ठी उट्ठी जीवहरे।
काशीश्वर राजा किये उ पयाना **विद्याधर**, भन् मंत्रिवरे ॥१४५॥
राजा भागता दिशा-लागता, परिहरि हय-गज-घर-धरनी।
लोरहिं भर सरवर पद पर-परिकर, लोटें-पीटें तनु धरणी।
पुनि उट्ठे सभलि कै दंतागुलि, बाल-नयन कर यमल करै।
काशीश्वर-राजा स्नेहल-काया, करु माया, पुनि थापि धरै ॥१८०॥
जेहिं कीजिय धारा जित्त नें पाला, **भोट्टंता** पिट्टत चले।
भजावें उ **चीना** दर्पहिं हीना, लोहावलें हा क्रंदि पडे ॥

---

[1] "**सर्वाधिकार-भार-धुरंधरः।...चतुर्दशविद्याधरो विद्याधरः...।" प्रबंध-चिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य १३०४ ई०) पृष्ठ ११३-१४ (सिंघी जैन-ग्रंथ माला १, शांतिनिकेतन १९३२ ई०)** The king's (Jaichanda's) minister Vidyādhara. Hist. of the Rashtrakutas (Altekar) p. 128

[2] "**प्राकृत-पैंगल**" (Biblio thica Indica) **में संगृहीत। जिनमें कविका नाम नहीं, उनका कर्तृत्व संदिग्ध है।**

ओड्डा उड्डाविअ कित्ती पाविअ, मोलिअ **मालव**-राअ-बले ।
तैलंगा भग्गिअ पुणवि ण लग्गिअ, **कासीराआ** जखण चले ॥१८६॥ (३१८)
भत्ति पत्ति पाअ भूमि कपिआ, टप्पु खुदि खेह सूर झंपिआ ।
गोलराअ-जिण्णि माण मोलिआ. **कामरूअ**-राअ वदि छोलिआ ॥१११॥ (४२३)
भंजिआ **मालवा** गंजिआ [1]**कण्णला**, जिण्णिआ **गुज्जरा** लुठिआ कुंजरा ।
वंगला-[2]**भंगला**-**ओड्डिआ** मोड्डिआ, **मेच्छआ** कपिआ कित्तिआ थप्पिआ ॥१२८॥(४४६)
रे **गोड** ! थक्कंति ते हत्थि-जूहाइ, पल्लट्टि जुज्झंतु पाइक्क-बूहाइ ।
कासीसु राआ सरासार अग्गे ण, की हत्थि की पत्ति की वीर-वग्गेण ॥१३२॥ (४५०)

§ ३५: शालिभद्र सूरि

काल—११८४ ई० । देश—गुजरात । कुल—. . .जैन साधु ।

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेक्खवि पुरह प्रवेसु, दूत पहूनउ रायहरें ।
सिउँ प्रतिहार प्रवेसु, पामिय नरवर-पय नमइ ॥६८॥
चउकिय माणिक-यंभ-, माहि वईठउ वाहुबलें ।
रूपिहिँ जीमिय रंभ चमरहारि चालइँ चमर ॥६९॥
मंडिय मणिमइ दंड मेघाडवर सिर धरिय ।
जस पयडे भुयदंडि, जयवंती जयसिरि वसइँ ॥७०॥
जिम उदयाचल सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटों ।
कस्तुरि कुसुम कपूर, कुंचुवरि महमह(मह)ए ॥७१॥

---

[1] कर्नाटक [2] भग्गल—अंगदेश (भागलपुर प्रदेश)

ओड्डा उड्डापेँउ कीर्त्ती पायेँउ, मोडिय **मालव**-राज बले ।
तेलंगा भागेँउ पुनहुं नै लागेँउ, **काशी**-राजा जखन चले ॥१९८॥
भट्ट पत्ति[1]-पाद भूमि कंपिया, टाप खूंदि खेह सूर झंपिया ।
गौड-राज जित्तु मान मोड़िया, **कामरूप**-राज वंदि छोड़िया ॥१११॥
भंजिया **मालवा** गंजिया **कन्नडा**, जित्तिया **गुर्जरा** लूटिया कुंजरा ।
वंगला भंगला ओडिया मोड़िया, म्लेच्छया कंपिया कीर्तिया थापिया ।१२८।
रे **गौड** ! थाकति ते हस्ति-यूथाइँ, पल्लट्टि जूझति पाइक्क इयूहाइँ ।
काशीश राजा सरासार आगेहिँ, की हस्ति की पत्ति की वीर-वग्गेहिँ ॥१३२॥

§ ३५: शालिभद्र सूरि

कृति—बाहुबलिरास

सामन्त-समाज

(१) सिंहासनासीन राजा

पेखेँउपुरहँ प्रवेश. दूत वहतउ राजघरेँ ।
स्वयँ प्रतिहार प्रवेशु, पाइय नरवर-पद **नमैँ** ॥६८॥
चउकी माणिक-थंभ-, माँझ बईठउ बाहुबलि ।
रूपे जैसी रंभ, चमरधारि चालैँ चमर ॥६९॥
मंडित मणिमय दंड, मेघाडवर पसर धरिय ।
जसु प्रकटे भुजदंडेँ, जयवंती जयश्री वसिय ॥७०॥
जिमि उदयाचलेँ सूर, तिमि शिर सोहै मणि-मुकुट ।
कस्तुरि-कुसुम कपूर-, कच्चूमर महमह-महइ ॥७१॥

---

[1] प्यादा, पदाति [2] "भारतीय-विद्या" (वर्ष २, अंक १) में मुनि जिनविजय जी द्वारा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीके हस्तलेखके आधार पर सम्पादित

झलकइ कुंडल कानि, रवि शशि मंडिय किर अवर ।
गंगाजल गजदानि, गाढिय गुण गज गुडउडइँ ॥७२॥
उरवरि मोतियहार, वीरवलय करि झलहलइ ।
नवल अंग सिणगार, खलकाए टोडर वामए ॥७३॥
पहिरणि जादर चीर, कलइ करि माल करें ।
गरुऊ गुण गंभीर, दीठउ अवर कि चक्कधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवणि ॥ प्रहि उग्गमि पूरवदिसिहिं, पहिलउँ चालिय चक्क ।
धूजिय धरयल थरहराएँ, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पृठि पियाणु तउ दियएँ, भयवलि भरह-नरिंदु तु[1] ।
पिडि पंचायण परदलहँ, हलियलि अवर सुरिंदु ॥१९॥
वज्जिय समहरि सचरिय, सेनापति सामत ।
मिलिय महाधर मडलिय, गाढिम गण गज्जत ॥२०॥
गडयडतू गयवर गुडिय, जगम जिमि गिरि-शृग ।
सुड-दड चिर चालवडँ, वेलडँ अगिहिँ अग ॥२१॥
गजइ फिरि फिरि गिरि-मिहरि, भजइँ तरुअर डालि ।
अकस वमि आवइँ नहीं, करइँ अपार अणालि ॥२२॥
हीमडँ हसमिमि हणहणइँ, तरवर तार तोषार ।
खदडँ खुरलइँ खेडविय, मन मानइँ असुवार ॥२३॥
पाखर पंखि कि पखरुय, ऊडाऊडिहिँ जाइ ।
हुफडँ तलपडँ समडँ धमडँ, जडइँ जकारिय धाइ ॥२४॥
फिरइँ फेंकारइँ फोरणइँ, फुड फेणाउलि फार ।
तरणि-तुरगम समतुलइँ, तेजिय तरल ततार ॥२५॥

---

[1] तु हर जगह अलापनेके लिये जोडा हुआ है, जिसे हमने आगे छोड दिया ।

झलकै कुंडल कान, रवि-शशि-मंडित जनु अवर ।
गंगा-जल गजदान, ग्रंथित गुण-गज गुडगुडै ॥७२॥
उरवरें मोतीहार, वीर वलय करें झलझलै ।
नवल अग शृगार, खलकतो टोडर[1] वामए ॥७३॥
पहिरनि चादर चीर, ककोलहु करि माल करें ।
गुरुओ गुण-गभीर, दीमें उ अपर कि चक्रधर ॥७४॥

(२) सेना-यात्रा

ठवनि ॥ रवि-उद्गमें पूरवदिशहिं, पहिलें इ चालिय चक्र ।
धूनिय धरतल थरथरै, चलिय कुलाचल-चक्र ॥१८॥
पीछें प्रयाणा तब दियो, भुजबलि भरत नरेंद्र ।
पिडि पचानन परदलह, धर-तल अपर सुरेंद्र ॥१९॥
वाजिय समभेंरि सचरिय, सेनापति सामत ।
मिलिय महाधर-मडलिय, ग्रंथित गुण गर्जत ॥२०॥
गडगडतो गजवर गुडिय, जगम जिमि गिरिशृंग ।
शुड-दड चिर चालवैं, मोडें अगें अग ॥२१॥
गर्जें फिरि फिर गिरि-शिखर, भजें तरुवर-डालि ।
अंकुश-वश आवैं नहीं, करैं अपार अनाडि ॥२२॥
हीमें घसमस हिनहिनैं, तरवर तार **तुखार** ।
स्कंदें खुरलें खेलडय, मनमाना असवार ॥२३॥
पाखर[1] पंख इव पाखेंरू, ऊड़ाऊडी जाइ ।
हाँफें तडफें श्वस-धसें जडें जकारिय धाइ ॥२४॥
फिरें फेंकारै स्फोरणें, फुर फेनावलि फार ।
तरल-तुरंगम ममतुलें, **ताजिक** तरल **ततार** ॥२५॥

---

[1] आभूषण जीन

धडहडंत धर द्रम-द्रमिय, रह रुंधइँ रहवाट ।
रव-भरि गणइँ न गिरि-गहण, थिर थोभइँ रहथाठ ॥२६॥
चमर-चिन्ध-धज लहलहइँ, मिल्हइँ, मयगल माग ।
वेगि वहंता तिहँतणउ, पायल न लहइँ लाग ॥२७॥
दडयडंत दह-दिसि दुसह, (प)सरिय पायक-चक्क ।
अंगोअंगिहिँ अंगमइँ, अरिंयणि असणि अणंत ॥२८॥
ताकइँ तलपइँ तलिमिलिइँ, हणि हणि हणि पभणंत ।
आगलि कोइ न अछइ भलु, जे साहसु जूझंत ॥२९॥
दिसि दिसि दारक संचरिय, वेसर बहइं अपार ।
संष न लाभइँ सेनतणि, कोंइ न लहइँ सुधि सार ॥३०॥
बंधव बंधवि नवि मिलइँ, बेटा मिलइँ न बाप ।
सामि न सेवक सारवइँ, आपिहिँ आप वियाप ॥३१॥
गयवडि चडिऊ चक्कधरों, पिडि पयंड भुयदंड ।
चालिय चहुँदिसि चलचलिय दिइँ देसाहिव दंड ॥३२॥
वज्जिय समहरि द्रमद्रमिय, घण नीनाद निसाण ।
संकिय सुरवरि सग्ग सवें, अवरहँ कवण पमाण ॥३३॥
ढाक ढूक् त्रंवकतणइँ, गाजिय गयण निहाण ।
षट् षंडह षंडाहिवहँ, चालतु चमकिय भाण ॥३४॥
भेरिय-रव-भर तिहुँ-भुयणि, साहित किमइँ न माइ ।
कंपिय पय-भरि शेष रहु, विण साहीउ न जाइ ॥३५॥
सिर डोलावइ धरणिहिँ, टंकु टोल गिरिशृंग ।
सायर सयलवि झलझलिय, गहलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर-रवि षुंदिय[1] मेहरवि, महियलि मेहंधार ।
उजु-आलइ आउध तणइँ, चलइँ राय खंधार ॥३७॥

---

[1] उच्चारण ख

घड़घड़ंत धर द्रमद्रमिय, रथ रुंधैं रथवाट ।
रव-भरें गनैं न गिरि-गहन, थिर स्तोभैं रथ ठाट ॥२६॥
चमर-चिन्ह-ध्वज लहलहैं, छोडैं मदगल मार्ग ।
वेग वहंता तेहिकर, पायल न लहैं लाग ॥२७॥
दड़दड़ंत दशदिशि दुसह, पसरिय पायक[1]-चक्र ।
अंगा-अंगी अंगमैं, अरिजनें अशनि अनंत ॥२८॥
ताकैं तडपैं तिलमिलैं, "हन हन हन" प्र-भनंत ।
आगे कोइ न अहै भल, जे साहस जूझंत ॥२९॥
दिशिदिशि दारक संचरिय, वेसर[2] बहैं अपार ।
शंक न लावै सेनते, कोंइ न लहैं सुधि सार ॥३०॥
बांधव बांधवें ना मिलैं, बेटा मिलैं न बाप ।
स्वामि न सेवक सारखैं, आपुहिं आपउ थाप ॥३१॥
गजपति चढेऊ चक्रधर, पीडि प्रचंड भुजदड ।
चालिय चहुँदिशि चलचलिय, देंइ देशाधिप दंड ॥३२॥
बाजिय भेरी द्रमद्रमिय, घनो निनाद निसान ।
शंकित सुरवर स्वर्ग सब, अपरहुँ कवन प्रमाण ॥३३॥
ढाक-ढूक[3] ध्यंवकतनईं, गाजिय गगन निधान ।
षट् खंडहुँ खंडाधिपहुँ, चालत चमकिय भान ॥३४॥
भेरी-रव-भर तिहु भुवन, समुहा कतहुँ न माइ[4] ।
कंपित पदभरें शेष रहु, विन साधेंऊ न जाइ ॥३५॥
शिरें डोलावैं धरणिही, टुंक डोल गिरिशृंग ।
सागर सकलउ झलझलिय उछलिय गंग-तरंग ॥३६॥
खर रवें खुंदिय मेघ रवि, महितल मेघ'न्धार ।
ऋजुकालै आयुधन कर, चलै राज-खंधार[5] ॥३७॥

---

[1] प्यादा [2] खच्चर [3] नगाड़ा [4] ध्यंबककेरा [5] समाइ [6] स्कंधावार-सेना-कैम्प

मंडिय मडलवइ न मुहें, ससि न कवइँ सामत ।
राउत राउत-वट रहिय, मनि मुझइँ मतिवंत ॥३८॥
कटक न कवणिहिँ भरतणूं, भाजइ भेडि भडत ।
रेलइँ रयणायर जमलें, राणोराणि नमत ॥३९॥

ठवणि १० । तउ कोपिहिँ कलकलिउ कालके(र)य कालानल,
ककोरड कोरडियऊ करमाल महाबल ।
काहल कलयलि कलगलत मउडाधा मिलिया,
कलह तणइ कारणि कराल कोपिहिँ पर जलिया ॥१२०॥
हउउ कोंलाहल गहगहारि, गयणगणि गज्जिय,
मचारिया सामंत मुहड सामहणिय मज्जिय ।
गडगडत गय गडिय गेलि गिरिवर सिर ढालइँ,
गूगर्लाय गुलगणई चलत करिय ऊलालइँ ॥१२१॥
जुडइँ भिडइँ भडहडइँ खेदि खडखडइँ खडाखडि,
धणिय धुणिय धोसवइँ दतु दो त (डातडात)डि ।
खुरतलि खोणि खणति खेदि तेजिय तरवरिया,
समइँ धमइँ धसममइँ सादि[1] पय सई पाषरिया ॥१२२॥
कधग्गल केकाण कवी करडइँ कडियाला,
रणणइँ रवि रण बखर मखर घण घाघरियाला ।
सींचाणा वरि सरइँ फिरइँ मेलइँ फोकारइँ,
ऊडइँ आडइँ अगि रगि असवार विचारइँ ॥१२३॥
धसि धामइँ धडहडइँ धरणि रवि-सारथि गाढा;
जडिय जोध जडजोड जरद सन्नाहि सनाढा ।
पसरिय पायल पूर कि पुण रलिया रयणायर,
लोह लहर वरवीर वयर वहवटिइँ अवायर ॥१२४॥

---

[1] सवार

मंडित मंडलपतिन मुखें, शशि न ऋवडें सामत ।
राउत[1] राउतपन-रहिय, मनें मोहैं मतिवंत ॥३८॥
कटकन कौनेंहि भरतको, भागै भीडिभडंत ।
रेलैं रतनाकर युग, रानारान नमंत ॥३९॥

ठवनि १० । तव कोपेहिं कलकलें उ कालकेरइ कालानल,
कंकोलइ कोरबिउ करमाल महाबल ।
काहल कलकलें कलकलत मुकुटाधर मिलिया,
कलहकेर कारण कराल कोपेहिं पर ज्वलिया ॥१२०॥
भयें उ कोंलाहल गडगडाट, गगनंगण गर्जिय,
सचरिया सामत सुभट साधनिय सज्जिय ।
गडगडंत गज गुडिय गैल गिरिवर-शिर ढारें,
गुग्गलीय हस्तिनि चलत करिय उल्लालै ॥१२१॥
जुडें भिडें भट-भटहिं खेदि खड़खडें खड़ाखड़,
धनियधुनिय धूसवें दत दोऊ(त) तड़ातड़ ।
खुरतर क्षोणि खनत खेदि त्याजिय तरवरिया,
शमें धसडें धसमसें सादि पदसँग पाखरिया ॥१२२॥
स्कधाग्रेल्ल लगाम-करडै कडियाली,
रणणें रवि रण बखर सखर घन घाघरियाला ।
सिचाना[2] वरसरइँ फिरें सेलें फुक्कारें,
ऊडें आडें अगें रंग असवार विचारें ॥१२३॥
घसि घामें धड़धड़ें धरणि रवि-सारथि गड्ढा,
जटित जोध जटजूट जरद सन्नाह सनद्धा ।
प्रसरिय पायल पूर कि पुनि रलिया रतनाकर,
लोह लहर वरवीर वैर वधवटें आया कर ॥१२४॥

---

[1] राजपुत्र [2] बाज

रणणिय रवि रण-तूर तार त्रंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक-ढम-ढमिय ढोल राउत रह रहिया ।
नेच निसाण निनादि (निनी) नीझरण निरंभिय,
रणभेरी भुकारि भारि भुयबलिहिँ वियंभिय ॥१२५॥
चल चमाल करिमाल कुंत कड़तल कोदंड(उ),
झलकइँ साबल सबल सेल हल मसल पयंड(उ) ।
सिंगिणि गुण टंकार सहित वाणावलि ताणइँ,
परशु उलालइँ करि धरइँ भाला ऊलालइँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंडपाल डवतर कसबंधा,
साँगि सकति तरुआरि छुरिय अनु नागतिबंधा ।
हय खर रवि ऊछलिय खेह छाइय रविमंडल,
धर धूजइ कलकलिय कोल कोपिउ काहुहुल[1] ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टक टोल खेचर खलभलिया ,
कडडिय कूरम कंध-संधि सायर झलहलिया ।
चल्लिय समहरि सेस सीसु सलसलिय न सक्कइ,
कचणगिरि कधार भारि कमकमिय कसक्कइ ॥१२८॥
कंपिय किन्नर कोडि पडिय हरगण हडहडिया,
संकिय सुरवर सगि सयल दाणव दडवडिया ।
अतिप्रलंव लहकइँ प्रलंब वलचिध चहूँ दिसि,
मंचरिया सामत-सीम सीकिरिहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोइय भरह-नरिंद कटक मूँछह बल घल्लइ,
कुण वाहुवलि जेउ बरब मइँ सिउँ बलबुल्लइ ।
जइ गिरि कंदरि विचरि वीर पइसंतु न छूटइ,
जइ थलि जंगलि जाइ किम्हइ तु मरइ अघूटइ ॥१३०॥

---

[1] सन्दिग्ध

रणणिय रवि रण-तूर्य तार त्र्यंबक त्रहत्रहिया,
ढाक-ढूक ढमढमिय ढोल राउत[1] रथ रहिया।
नेजॉ निशान निनाद (निनी) निर्झरन् अरंभिय,
रणभेरी हुंकार भार भुजवलेँहिँ विजृम्भिय ॥१२५॥
चम-चमाल[2] करवाल कुत कडतल कोदंडउ,
झलकैँ सावर सबल शेल हल मुशल प्रचंडउ।
शारंग गुण टंकार-सहित वाणावलि तानैँ,
परशु उलालै करघरैँ भाला ऊलालैँ ॥१२६॥
तीरिय तोमर भिंदपाल डबतर कसबंधा,
साँगि शक्ति तरुवार छुरी अरु नाग त्रिबंधा।
हय खर रवेँ ऊछलिय, खेह छाइय रविमंडल,
धराँ कंपै कलकलिय कोल कोपेँउ काहडुल ॥१२७॥
टलटलिया गिरि टंक टोल खेचर खलबलिया,
कड़ड़िय कूरम स्कंध-संधि सागर झलझलिया।
चालिय समरा शेष-सीस सलसलेँउ न सक्कै,
कंचनगिरि कधार भार कपकपिय कसक्कै ॥१२८॥
कंपिय किन्नर-कोटि पड़िय हर-गण हड़हडिया,
शंकिय सुरवर स्वर्गेँ सकल दानव दडवड़िया।
अतिप्रलंब लहकै प्रलंब बल-चिन्ह चहूँ दिशि,
संचरिया सामंत-शीर्ष सीकरेँहिँ कसाकसि ॥१२९॥
जोयेँउ भरत नरेन्द्र कटक मूंछहँ बल डालै,
को बहुबलि जो गरव मोँहिँ सँगे बल बोलै।
यदि गिरिकंदर-विवरेँ वीर पइठंत न छूटै,
यदि थल जंगल जाइ कैसहु तो मरै अखूटै ॥१३०॥....

---

[1] राजपुत्र [2] चमकते

गय आगलिया गलगलत दीजइँ हय लास-ा,
हुइँ हसमस.....[1]भरहराय केरा आवास-ा।
एक निरंतर वहइँ नीर एकि ईंधण आणईं,
एक आलसिइँ पर-तणुं पँगु आणिउँ तृण ताणइँ ॥१३३॥
एकि उतारा करिय तुरय तलसारे बाँधइँ,
एँक मरडइँ केकाण खाण इकि चारे राँधइँ।
एँक झीलिय नयनीरि तीरि तेतिय बोलावइँ,
एक वारू असवार सार साहण वेलावइँ ॥१३४॥
एँक आकुलिया तापि तरल तडि चडिय झँपावइँ,
एँक गूडर सावाण सुहड चउरा दिवरावइँ।
—भरतेश्वर बाहुबली-रास

§ ३६. सोमप्रभ

काल—११९५ । देश—अनहिलवाडा (गुजरात) । कुल—पोरवाल

१—नीति-वाक्य

वसइ कमलि कल-हंसी जीवदया जसु चित्ति।
तसु-पक्खालण-जलिण होसइ असिव-निवित्ति ॥ प्रस्ताव १(२६)
आभरण-किरण दिप्पंत देह। अहरीकय सुरबहु-रूवरेह।
घण-कुंकुम-कद्दम घर-दुवारि। खुप्पंत-चलण नच्चंति नारि ॥ (३२)
तीयह तिन्नि पियारईं, कलि-कज्जलु-सिंदूर।
अन्नइ तिन्नि पियारडँ, दुद्धु जँवाइउ तूरु ॥ (३२)
वेस विसिट्ठइ वारियइ, जइवि मणोहर-गत्त।
गंगाजल-पक्खालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त ॥

---

[1] खंडित

गज आगड़िया गलगलंत दीजै हय लास-ा,
ह्वै धममस ...भरतराय केरा आवासा।
एक निरंतर लाव नीर ऍक ईंधन आनै,
एक आलमें हिं पर तनु पग आनेंउ तृण तानै ॥१३३॥
एक उतारा करिय तुरग हयसारे बाँधै,
ऍक रगड घोडा हँ खान ऍक चारा राँधै।
ऍक पकड नदनीर तीर सो स्त्रिय बोलावै,
एक वार असवार सार साधन[1] वेलावैं ॥१३४॥
ऍक आकुलिया तापें तरल तडि-चढिय झंपावैं,
ऍक गूदर, सावान[2] सुभट चौरा देवरावैं।
—बाहुबलीरास

§ ३६. सोमप्रभ

वैश्य—जैन साधु (महन्त)। कृतियाँ—कुमारपाल-प्रतिबोध[3]

१—नीति-वाक्य

वसइ कमल कलहंसी, जीव-दया जसु चित्त।
तसु प्रक्षालन जलहीं, होइह अशिव-निवृत्ति ॥ (पृ० २६)
आभरण-किरण दीप्यत देह। अधरीकृत सुरवधु-रूपरेख।
घन कुकुम-कर्दम घर-दुवार। लिपटंत चरण नाचति नारि ॥ (३२)
तीयहँ तीन पियारई, कलि-काजल-सिंदूर।
अन्यउ तीन पियारई, दूध-जमाई-तूर्य ॥ (३२)
वेशविशिष्ट[1]हिं वारियत, यदपि मनोहर गात्र।
गंगाजल प्रक्षालियउ, सुनह कि होइ पवित्र ॥

---

[1] हाथन [2] बिदा करें। [3] तंबू [4] Gaikwad's Oriental Series; XIV, 1920. १४०२ ई० की हस्तलिखित (उत्तरी भारतकी अन्तिम) ताल-पोथी

नयणिहि रोयइ मणि हसइ, जणु जाणइ सउ तत्तु ।
वेस विसिट्ठह तं करइ, जं कट्ठह करवत्तु ॥ (८६)
पडिवज्जिवि दय देव गुरु, देवि सुपत्तिहि दाणु ।
विरइवि दीण-जणुद्धरणु, करि सकलउँ अप्पाणु ॥ (१०७)
पुत्तु जु रंजइ जणय-मणु, थी आराहइ कंतु ।
भिच्चु पसन्नु करइ पहु, इहु भल्लिम पज्जंतु ॥
मरगय वन्नह पियह उरि, पिय चंपय-पह-देह ।
कसवट्टइ दिन्निय सहइ, नाइ सुवन्नह रेह ॥ (१०८)
हियडा संकुडि मिरिय जिम, इंदिय-पसरु निवारि ।
जित्तिउ पुज्जइ पंगुरणु, तित्तिउ पाउ पसारि ॥ (१११)
संसय-तुलहि चडावियउँ, जीविउ जान जणेण ।
ताव कि संपइ पावियइ, जा चितविय मणेण ॥ (२४६)
रिद्धि विहूणह माणुसह, न कुणइ कुवि सम्माण ।
सउणिहि मुच्चइ फलरहिउ, तरुवरु इत्थु पमाणु ॥
जइविहु सूरु सुरूवु विअक्खणु । तहवि न सेवइ लच्छि पइक्खणु ।
पुरिस गुणागुण-मुणण-परम्मुह । महिलह बुद्धि पयंपहिँ जंबुह ॥ (३३१)
रावणु जायउ जहिँ दियहि, दह-मुह एक्क-सरीरु ।
चितावि तइयहिँ जणणि, कवणु पियावउँ खीरु ॥ (३९०)

२ सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलभद्र

पुरि चिट्ठइ **पाडलिपुत्त** नाम् । धण-कण-सुवन्न-रयणाभिराम् ।
तहिँ नवमु **नंद** पालेइ रज्जु । पडिवक्ख-महीहर-हलण-वज्जु ॥१॥
मुणि पत्त-कप्प-जल-सित्तु गत्तु । वालत्तणि जसु रोगेहि चत्तु ।
तसु कप्पय मंतिहि वंसि हुओं । **सगडालु**[1] मति निववक्खु भूओं ॥२॥

---

[1] शकटारि नन्द राजाका मंत्री

नयनें रोवै मनें हँसै, जनु जानै सब तत्त्व ।
वेश विशिष्ट[1]हँ सो करै, जो काठहँ करपत्र ॥ (८६)
प्रतिपादन दयाँ देव गुरु, देब सुपात्रहँ दान ।
विरचिब दीन-जनोद्धरन, करि सकलउँ अप्पान ॥ (१०७)
पुत्र जो रंजै जनक-मन, स्त्री आराधै कंत ।
भत्य प्रसन्न करै प्रभू, यही भला परि-अन्त ॥
मर्कत-वर्ण प्रियह उरें, प्रिय चंपक-प्रभ देह ।
कसौटियहँ दीनी सोंहै, नारि सुवर्णह रेख ॥ (१०८)
हियरा संकुचि कच्छु जिमि, इन्द्रिय-प्रसर निवारि ।
जेतै पूरै प्रावरण, तेतै पाव पसार ॥ (१११)
संशय-तुलहिँ चढावियउ, जीवित जान जनेहिँ ।
तब का संपत् पाइहै, जो चिंतविय मनेहिँ ॥ (२४६)
ऋद्धि-विहूनहँ मानुषहँ, न करै कोंइ सम्मान ।
शकुना मुचैं फल-रहित. तरुवर इहाँ प्रमाण ॥
यद्यपि शूर सुरूप विचक्षण । तदपि सेवै लक्ष्मि प्रतिक्षण ।
पुरुष गुणागुण-मनन-पराङ्मुख । महिलहँ बुद्धि प्रजल्पैं जो बुध ॥(३३१)
रावण जायेंउ जसु दिनहिँ, दशमुख एक शरीर ।
चिंतविया तहिया जननि, कौन पियाउँ क्षीर ॥ (३६०)

२- सामन्त-समाज

(१) मंत्रि-पुत्र स्थूलिभद्र

पुरि आहै **पाटलिपुत्र** नाम । धन-कन-सुवर्ण-रतनाभिराम ।
तहँ नवम **नंद** पालेइ रज्ज । प्रतिपक्ष-महीधर-दलन-वज्ज ॥१॥
मुनिपात्र-कल्प जल-सिक्त गात्र । बालत्वें जसु रोगेहिँ त्यक्त ।
तसु कल्पक मंत्रिहि वंश हूअ । **शकटारि** मंत्रि नृप-चक्षु-भूत ॥२॥

---

[1] वेश्या

तसु **थूलभद्दु** सुओं आसु पढमु । मयणुव्व मणोहर रूव परमु ।
जो जम्म दियहि देवयहिं वुत्तु । इह होही चउदह-पुव्व-जुत्तु ॥३॥
सिरिउत्ति विइज्जउ आसि पुत्तु । नय-विणय-परक्कम-बुद्धि-जुत्तु ।
तह जक्खा-पमुह पसिद्ध पत्त । मेहाइ गुणिहिं भइणीउ सत्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कचण कलसिहि जणि फलिय, सहइ लच्छिलय चित्त ।
कोसा वेसा पुव्वकय, सुकय जलिण जँ एंव सित्त ॥६॥
रयणालकिय सयल-तणु, उज्जल-वेस-विसिट्ठ ।
नं सुर-रमणि विमाण-गय, लोयण-विसइ-पविट्ठ ॥७॥
जसु वयण विणिज्जिउ न ससकु । अप्पाणु निसिहिं दसइ स-संकु ।
जसु नयण-कति-जिय-लज्ज-भरिण । वणवासु पवन्नय नाइ हरिण ॥८॥
जसु सहहिं केस-घण-कसण-वन्न । न छप्पय मुह-पंकय-पवन्न ।
भुवणिक्क-वीर-कदप्प-धणुह । मुदरिम विडबहि जासु भमुह ॥९॥
जसु अहर हरिय-सोहग्ग-सारु । नं विद्दुम[1] सेवइ जलहि खारु ।
जसु दत-पति सुदेरु रुंदु । नहु सीओसहँ तुवि लहइ कंदु ॥१०॥
अमणंगुलि पल्लव नह पसूण । जसु सरल-भुयउ लयाउ नूण ।
घण-पीण-तुग-थण-भार-सत्त । जसु मज्झु तणुत्तणु नं पवत्तु ॥११॥

(३) वसन्त

अह पत्तु कयाइ वसत समओं । संजणिय-सयल-जण-चित्त-पमओं ।
उल्लासिय-रुक्ख-पवाल-जालु । पसरंत-चारु-चच्चरिव्व मालु ॥१॥
जहिं वण-लय-पयडिय कुसुम-वरिस । महु-कंत समागय जणिय हरिस ।
पवमाण-चलिर-नवपल्लवेहिं । नच्चंति नाइ कोमल-करेहिं ॥२॥

---

[1] मूंगा, प्रवाल

तसु **स्थूलिभद्र** सुत रहेँउ प्रथम । मदन इव मनोहर रूप परम ।
जेहि जन्मदिवस देवतहिँ उक्त । ई होइहै चौदह **पूर्व**[1] युक्त ॥३॥
श्री सिरिय दुतियो यहेँउ पुत्र । नय-विनय-पराक्रम-बुद्धि-युक्त ।
तिमि **यक्षा**-प्रमुख प्रसिद्धि प्राप्त । मेधादि गुणेँहि भगिनीउ सप्त ॥४॥

(२) नारी-सौंदर्य

कचन कलशेहिँ जनु फटिक, सोँहै लक्ष्मिलय चित्र ।
कोशा वैश्या पूर्वकृत, सुकृत जलेँहीँ सिक्त ॥६॥
रतनालकृत सकल तनु, उज्ज्वल वेश-विशिष्ट ।
जनु सु-रमणि विमान-गत, लोचन-विषय प्रविष्ट ॥७॥
जसु वदन विनिर्जित जनु शशाक । अप्पान निशिहिँ दर्शे[2] स-शक ।
जसु नयनकांति जित लज्ज भरेँहिँ । वनवास सिधारेँउ मनहु हरिन ॥८॥
जसु सोँहैँ केश घन-कृष्ण-वर्ण । जनु षट्पद मुखपंकज-प्रपन्न[3] ।
भुवनैकवीर कदर्प धनुह । सुदरिम विडंबै जासु भउँह ॥९॥
जसु अधर धरिय सौभाग्य-सार । जनु विद्रुम सेवै जलधि खार ।
जसु दंत-पंक्ति गुदेर रुदं[4] । नख शीतोषधि[5]-लोउ लहै कद ॥१०॥
हस्तागुलि-पल्लव नखप्रसून । जसु सरल भुजउ लताउ नून[6] ।
घन-पीन-नुग-थनभार-सक्त । जसु मध्य[7] तनुत्वहँ जनु प्रवृत्त ॥११॥

(३) वसन्त

पुनि आव कदाचि वसंत-समय । संजनिय सकल जन चित्त प्रमद ।
उल्लासिय वृक्ष-प्रवाल-जाल । प्रसरंत चारु चर्चरि'व माल ॥१॥
जहँ वनलतॉ प्रकटिय कुसुम-वर्ष । मधुकात समागत जनित-हर्ष ।
पवमान चलिय नवपल्लवेहिँ । नाचंति न्याइँ कोमलकरेहिँ ॥२॥

---

[1] धर्म-ग्रथ [2] मंत्रि पुत्र स्थूलिभद्रकी प्रेयसी वेश्या कोशा [3] प्राप्त
[4] विस्तृत [5] चंद्र [6] निश्चय [7] कटि

नव-पल्लव-रत्त-असोअ-विडवि । महुलच्छिहि सउँ परिणयणु घडवि ।
जहिँ रेहहिँ नाइ कुसुभ-रत्त । वत्थेहिँ नियंसिय सयल-गत्त ॥३॥
हसइ' व्व फुल्ल-मल्लिय-गणेहिँ । नच्चइ'व पवण वेविर-वणेहिँ ।
गायइ भमरावलि रविण नाइ । जो सयमवि मयणुम्मत्तु भाइ ॥४॥
घण मयण-महूसवि, पिज्जतासवि, तहि वसंति जणचित्तहरि ।
कय-विसय-पसंसिहिँ नीओं वयं सिहिँ, **थूलभद्दु कोसाहि**[1] घरि ॥५॥..

(४) (वेश्या-) प्रेम

अवरुप्परु अणुराय गुणु, दोहिहिँ पयडंतीहिँ ।
थूलभद्द कोसहँ पढमु, किउ दूहत्तणु तीहिँ ॥१२॥
निम्मल-मुत्तिय-हारमिसि, रइय चउक्कि पहिट्ठ ।
पढमु पविट्ठहु हिय तसु पच्छा भवणि पविट्ठु ॥१३॥
चंदणु दंसिउ हसिय मिसि, इय कोसहिँ असमाणु ।
घरि पविसतह तासु किउ, निय अंगिहि सम्माणु ॥१४॥
अक्ख-विणोइण ते गमहिँ, जा दुन्निवि दिण-सेसु ।
ता पच्छिम-दिसि कामिणिहि, अकि निविट्ठु दिणेस ॥२३॥
सव्व-कला-संपन्नु रमिय, - जण - सतोसु कुणंतु ।
अमयमयइ कर-फंसि-सुहि, तहि कुमुइणि वियसंतु ॥२४॥
पारद्धु संगीउ तहिँ, कोस वेस नच्चिय वियक्खणि ।
रंजिय-मणु घणु दविणु, थूलभद्दु तसु देइ तक्खणि ॥
तयणंतरु अणुरत्तमण, मयण-पलंकि निसन्न ।
माणिय-मयण-विलास-सुह, दुन्नि'वि निद्द-पवन्न ॥२५॥

---

[1] कोशा गणिका

नवपल्लव-रक्त-अशोक विटप । मधु लक्ष्मिहिं सँग परिणयहँ करब ।
जहँ राजैं नारि 'कुसुभ-रक्त । वस्त्रेहिं आच्छादिय सकल-गात्र ॥ ३॥
हसई इव फुल्ल-मल्लीगणेहिं । नाचइ'व पवन-कंपिर-वनेहिं ।
गावै भ्रमरावलि-रवें हिं न्याइँ । जो स्वयमपि मदनोन्मत्ता भाइ ॥४॥
घन मदन-महोत्सवें पीयत'ासव, तहँ वसंतें जनचित्तहरे ।
किय विषय प्रशसें, निजहिं वयस्यहिं, **थूलभद्र कोशाकें** घरे ॥५॥

(४) (वेश्या-) प्रेम

अपरापर अनुराग गुण दोउहिं प्रकटतेहिं ।
थूलभद्र-कोशाँहें प्रथम, किउ दूतीत्वहँ तेहिं ॥१२॥
निर्मल मोतिय हार-मिस, रचित चतुष्क प्रहृष्ट ।
प्रथम वईठेउँ हिय तसु, पाछे भवन प्रविष्ट ॥१३॥
चंदन दर्शें उ हसित-मिस, ई **कोशाहिं** अ-समान ।
घर प्रविशंतहँ तासु किउ, निज अंगहिं सम्मान ॥१४॥....
अक्षविनोदें हि वीतवें, जौ दोऊ दिन शेष ।
तो पश्चिम दिश-कामिनिहँ, अंकें निविष्ट दिनेश ॥२३॥
सर्वकला-संपन्न रसिक, - जन - मतोष करंत ।
अमृतमयइ कर-पर्श सुखें, तह कुमुदिनि विकसंत ॥२४॥
प्रारंभेउ संगीत तहँ, **कोश** वेश नाचै विचक्षणी ।
रंजित मन घन द्रविण, स्थूलभद्र तें हिं देइ तत्क्षणी ॥
तदनंतर अनुरक्त मन, मदन पलंग निषण्ण ।
माणिक मदनविलास-सुख, दोऊ निद्रापन्न ॥२५॥

' चम्पई या केसरिया (कुसुंभी) रंगमें रँगे

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ थक्किय सयलु दिणु, तुह विरहग्गि किलंत ।
थोडइ जलि जिम मच्छलिय, तल्लोविल्लि करंत ।
मइँ जाणिउँ पिय-विरहियह, कवि धर होइ वियालि ।
न वरि मयक वि तह तवइ, जह दिणयरु खयकालि[1] ॥ (८६)

३–कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

एवति भणिय तो थूलभद्दु । चिंतेइ तत्थ परमत्थ भद्दु ।
मणुयत्तह सारु वि-वग्ग-सिद्धि । तिहि विग्घ-हेउ अहिगार-रिद्धि ॥४७।
जं तत्थ राय-चित्ताणुकूल । आरंभ कणतह पावमूल ।
कउ मंतिहि जायइ विमलधम्मु । जिणि लब्भइ सासउ सिद्ध-सम्मु ॥४८।
पर-पीड-करेविणु ज पभूअ । गिन्हहिं निउ गिरुहि रुव जलूअ ।
नरनाहिण घिप्पइ नवि दव्वु । निप्पीलिवि सहुँ पाणेहिं सव्वु ॥४९।
पर-वसहँ सव्वु भय-भिभलाहँ । अन्नन्न-पओअण वाउलाहँ ।
अहिगार-जणह (पुणि) कामभोअ । सभवहिं वियभिय गुरु-पमोय ॥५०।
कोसा-घर वारस-वच्छरेहि । विसइहि न नित्तु लोउत्तरेहिं ।
वहु रज्ज-कज्ज-वक्खित्त-चित्तु । कि सपइ होहिसि मूढ-चित्तु ॥५१।
पइ जम्म-मरणु कल्लोलमत्तु । भवजलहि भमिवि मणुअत्तु पत्तु ।
परिहरिवि विसय-फलु तासु लेहि । कि कोडी कवडिइँ हारवेहि ॥५२।
इम विसय-विरत्तउ, पसमपसत्तउ, **थूलभद्दु** सविग्गमणु ।
सिव-सुक्ख-कयायरु, भवभयकायरु, महइ चित्ति दुच्चर चरणु ॥५७।

× × ×

---

[1] प्रलयकाल

(५) विरह-वर्णन

पिय ! हउँ रहिया सकल दिन, तव विरहाग्नि किलॉन्त ।
थोडइ जलें जिमि माछरी, तल्लोबिल्ल करंत ॥
मैं जानें उँ पिय विरहियह, कोंइ धरॉ होइ विकाल[1] ।
नतरु मयंकउ तिमि तपै जिमि दिनकर क्षयकाल ॥ (८६)

३–कविका संदेश

(१) जग तुच्छ

ऐसोइ भनिय तब थूलभद्र । चितेइ तहॉ परमार्थ भद्र ।
मनुजत्वह सार त्रिवर्ग-सिद्धि । तें हि विघ्नहेतु अधिकार-ऋद्धि ॥४७॥
जो तहॉ राज-चित्तानुकूल । आरंभ करंतह पापमूल ।
को मंत्रिहिँ उपजै विमलधर्म । जें हिँ लब्भै शाश्वत सिद्ध-शर्म ॥४८॥
परपीड करेइय जो बहूत । ग्रहणें निज गिरही रूप जलौक ।
नरनाहें हिँ दीजै जोउ द्रव्य । निष्पीडिब सँग प्राणीहिँ सर्व ॥४९॥
परबशा सर्व-भय-विह्वलाह । अन्यान्य-प्रयोजन-व्याकुलाह ।
अधिकार जनहँ (पुनि) काम-भोग । संभवै विजृंभिय गुरु-प्रमोद ॥५०॥
कोशा-घर वारह वत्सरेहिँ । विषयहिँ न तृप्ति लोकोत्तरेहिँ ।
वहुराज्य-कार्य-प्रक्षिप्त-चित्त । का संप्रति होइसि मूढ-चित्त ॥५१॥
तैं जनम-मरण-कल्लोल मत्त । भवजलधि भ्रमिय मनुजत्व प्राप्त ।
परिहरिय विषय-फल तासु लेहि । का कोटी कौडिहिँ हारवेहि ॥५२॥
इमि विषय-विरक्तउ-प्रशम-प्रसक्तउ, स्थूलभद्र संविग्नमना ।
शिव-सुक्ख-कृतादर, भवभय कातर, चहै चित्तें दुश्चर-चरना ॥५७॥

× × ×

---

[1] विकारी

(२) चलु जीवउ जुव्वणु धणु सरीरु । जिम कमलदलग्ग-विलग्ग नीरु ।
अथवा इहत्थि जं किपि वत्थु । तं सब्बु अणिच्चु हहा धिरत्थ ॥
पिइ माय भाय सुकलत्तु पुत्तु । पहु परियणु मित्तु सिणेह-जुत्तु ।
पहवंतु न रक्खइ कोवि मरणु । विणु धम्महं अन्नु न अत्थि सरणु ॥
रायावि रंकु सयणो वि सत्तु । जणओ तणऊ जणणि वि कलत्तु ।
इह होइ नडव्व कुकम्मवंतु । संसार-रंगि वहुरूब्बु जंतु ॥
एक्कल्लउ पावइ जीवु जम्मु । एक्कल्लउ मरइ विढत्त-कम्मु ।
एक्कल्लउ परभवि सहइ दुक्खु । एक्कल्लउ धम्मिण लहइ मुक्खु ॥
जहँ जीवह एडवि अन्नु देहु । तहिँ कि न अन्नु धणु सयणु गेहु ।
जं पुण अणन्नु तं एक्कचित्त । अज्जेमु नाणु दंसणु चरित्तु ॥
वस-मंस-रुहिर-चम्मट्ठि-बद्ध । नउ-छिड्डु-झरंत-मलावणद्ध ।
असुइ-स्सरूव-नर-थी-सरीर । मुइ बुद्धि कहवि मा कुणसु धीर ॥....
जह मंदिरि रेणु तलाइ वारि । पविसइ न किचि ढक्किय दुवारि ।
पिहियासवि जीवि तहा न पावु । इय जिणिहि कहिउ संवरु पहाव ॥...
जहिँ जम्मणु मरणु न जीवि पत्तु । त नत्थि ठाणु [1]वालग्ग-मत्तु ॥ (३११)....

(२) इन्द्रिय मारना

नहु गम्मु अगम्मु व किपि गणइ । अब्बभ कलुस अहिलास कुणइ ।
सकलत्ति वि हुंतइ महइवेस । पररमणि गमणि पयडइ किलेस ॥१२॥
सिसिरम्मि निवाय घरग्गिसयडि । घण-घुसिण-तेल्ल-वहुवत्थ-सवडि ।
चंदण-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागिहि गिंभि महेइ नाइ ॥१३॥
पाउसि पय-पंक-पसंग तद्दु । वच्छइ अच्छिद्द भवणयलु लद्धु ।
जइ कुणइ विविह-विसयाणुवित्ति । तेंह विहु न एहु पावेइ तित्ति ॥१४॥
एक्कवि फासिंदिउ वुहयण निंदिउ, करइ किंपि दुच्चरिउ तिहि ।
नानाविहु जम्मिहि, पीडिओं कम्मिहि, सहसि विडंबण सामि जिह ॥१५॥

---

[1] बालकी नोकके बराबर भी

(२) चल जीवन यौवन धन शरीर । जिमि कमलदलाग्र-विलग्न नीर ।
अथवा इहाँह' जो किछुव वस्तु । सो सर्व अनित्य "हहाधिग्"अर्थ ॥
पितु माय भाय सुकलत्र पुत्र । प्रभु परिजन मित्रसिनेह-युक्त ।
सक्कै ना रोकिय केहु मरन्त । विनु धर्महु अहै न अन्य शरण ॥
राजाउ रंक स्वजनऊ शत्रु । जनकउ तनयउ जननी कलत्र ।
इह होइ नटव्य कुकर्मवन्त । संसार-रगें बहुरूप जंतु ॥
एकल्लै पावै जीव जन्म । एकल्लै मरै करीय कर्म ।
एकल्लै परभवें सहै दुःख । एकल्लै धर्में हिं लहै मूर्ख ॥
जहँ जीवह ईहउ अन्य देह । तहँ का न अन्य धन स्वजन गेह?
जो पुनि अनन्य सो एक चित्त । आर्याहँ ज्ञान-दर्शन-चरित्र ॥
वशाँ-मांस-रुधिर-चर्म-अस्थि-बद्ध । नौ छिद्र झरंत मलावनद्ध ।
अशुचि स्वरूप नर-तिय-शरीर । शुचि बुद्धि कहव ना करसु धीर ॥. . .
जिमि मंदिरें रेणु तलायें वारि । प्रविशै न किछू ढाँके दुवारि ।
ढँकि आस्रव[1] जीवें तथा न पाप । इमि जिनहिँ कहिउ संवर[2]-प्रभाव ॥
जहँ जन्म न मरण न जीव पाय । सो नाहि थान वालाग्र-मात्र ॥ (पृ० ३११)

(२) इन्द्रिय शत्रु

ना गम्य अगम्यउ किछउ गनै । अब्रह्म[3] कलुष अभिलाष करै ।
सकलत्रहु होतेंउ चहै वेश । पररमणि-गमन प्रकटेंउ किलेश[4] ॥१२॥
शिशिरें हिं नि-वात घरेऽग्नि सिगडि । घन-घुसृण-तेल वहुवस्त्र सँपडि ।
चंदन-रस-कुसुम-जलावगाह । धारागृहें[5] ग्रीष्मे चहै न्हाय ॥१३॥
पावस पदपंक प्रसंग स्तब्ध । वांछै अच्छिद्र भवनतल लब्ध ।
जो करै विविध-विषयानुवृत्ति । तें हि विनु न एहु पावही तृप्ति ॥१४॥
एकउ फरसेंद्रिय बुधजन निंदिय करै केंतक दुश्चरित तें ही ।
नानाविध जन्में हिं पीडिय कर्में हिं सहस विडंवन स्वामि जें ही ॥

---

[1] चित्तमल [2] संयम [3] व्यभिचार [4] चित्त-मालिन्य [5] फौवारा-घर

तह भक्खाभक्ख-विवेय-मूढु । रस-विसय-गिद्धि-दोलाधिरूढ़ ।
अविभाविय पेयापेय वत्थु । रसणुवि कुणेइ वहुविहु अणत्थु ॥१६॥
जं हरिण-ससय-संबर-वराह । वणि संचरंत अकयावराह ।
तण-सलिल-मत्त-संतुट्ठ चित्त । मम्मर-रव-सवणुब्भंत-नेत्त ॥१७॥
हिंसंति केवि मिगया पयट्ट । पसरत - निरंतर - तुरयघट्ट ।
कर-कलिय-कुत-कोदंड-बाण । संसय-तुल-रोविय-नियय-पाण ॥१८॥
जं गहिरि सलिल वियरत मीण निक्करुण केवि निहणहिं निहीण । (४२६)
ज लावय-तित्तिरि-दहिय-मोर । मारेंति अदोसवि केवि घोर ॥१९॥
तं रसणह विलसिउ, दुक्कय कलुसिउ, तुम्हहँ कित्तिउ कित्तियइ ।
ज वरिस-सएणवि, अडनिउणेणवि, कहवि न जपिउ सक्कियइ ॥२१॥[1]

(३) नरक-भय

तह नरयवासि ज परवसेण । मइँ नरयवाल-मुग्गुर-हएण ।
अवगूहु वज्ज-कंटय-सणाहु । सिंबलितरु-जणिय-सरीर-वाहु ॥६८॥
कंदंतु कलुणु ज हठिण धरवि । खावियं नियमसु भडिन्नु करिवि ।
जं वेयण-विहुरिय-सव्व-गत्तु । हउं पायउं तडयउं तंबु तत्तु ॥६९॥
जं पूय - रुहिर - वस - वाहिणीइ । मज्जाविउ वेयरणी - नईइ ।
जं तत्त-पुलिणि चलउव्व भुग्गु । ज मूलवेह दुहु पत्तु दुग्गु ॥७०॥ (४३२)
जं वज्ज-जलण-जालोलि-तत्त । मइँ लोहमइय महिलावसत्त ।
जं महि हिमु कुमईं खडु करवि । उट्ठिओं खणेण पारउव्व मिलिवि ॥७१॥
जं कुंभिपाकि पक्कओं परद्धु । जं चंड-तुंड-पक्खीहि खद्धु ।
जं तिलु'व निप्पीलिउ लोहजंति । जं वसहि'व वाहिउ भरि महंति ॥७२॥
अच्छोडिओं जं सिचउव्व सिलहिँ । करवत्ति भित्तु जं कँठ कयलहिँ ।
ज तलेँउ कठल्लिहिँ पप्पड़'व्व । मत्थेहि छिन्नु जं चिब्भडुव्व ॥७३॥
—कुमारपाल-प्रतिबोध[2]

---

[1] वही पृष्ठ ४२७ [2] पृ० ४३३

तिमि भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक-मूढ । रस-विषय-गृद्धि-दोलाधिरूढ ।
विनु सोचे पेयापेय वस्तु । रसनउ करेइ वहुविध अनर्थ ॥१६॥
जो हरिन-शशक-साँभर-वराह । वनें संचरंत अकृतापराध ।
तृण-सलिल-मात्र संतुष्ट चित्त । मर्मर रव-श्रवण-उद्भ्रांत-नेत्र ॥१७॥
हिंसंति केउ मृगया-प्रवृत्त । प्रसरंत निरंतर तुरग घट्ट ।
करकलित कृत कोदंड वाण । संशयतुलाँ रोपिय निजय प्राण ॥१८॥
जो गहिर-सलिल विचरंत मीन । निष्करुण केउ निहनैं निहीन ॥ (४२६)
जो लावक तित्तिर दधिक मोर । मारंति अदोषउ केउ घोर ॥१९॥
सो रसनह-विलसिय दुष्कृत-कलुषित तुम्हहँ कीर्त्तिउ कीर्त्तियई ।
जो वर्ष शतेहूँ, अतिनिपुणेहूँ, कतहुँ न जल्पन शक्कियई ॥२१॥ (पृ० ४२७)

(३) नरक-भय

तहँ नरकवासें जो परवशेहिँ । मैं नरकपाल-मुद्गर-हतेहिँ ।
लिपटिया वज्रकटक-सँनाह[1] । सेमलतरु जनित शरीर-वाघ ॥६८॥
क्रंदंत करुण जो हठेंहिँ धरवि । खाइय निजमास भत्ता करवि ।
जो वेदन-विफुरिय सर्व गात्र । हौं पादेउँ तडपेंउँ ताम्र तप्त ॥६९॥
जो पूत रुधिरवश वाहिनीइ । मज्जावेंउ **बैतरणी**-नदीइ ।
जो तप्तपुलिनें चलताहु भोगु । जो शूलवेध दुख पाव दुर्ग ॥७०॥ (४३२)
जो वज्र ज्वलन ज्वालालितप्त । मैं लोहमयी महिलावसक्त ।
जो महि हिम कुशईं खंड करबी । उट्ठिय क्षणेंहिँ पारउ मिलबी ॥७१॥
जो कुभिपाके पाकेंउ परार्ध । जो चंड-तुंड-पक्षीहिँ खाद्य ।
जो तिल'व निपीडेंउ लोहयंत्रें । जो वृषभ'व वाहेंउ भरें महंत ॥७२॥
आ-छोडेंउ जो पटइव शिलहिँ । करपत्रें भिद्यउ जो कंठ तलहिँ ।
जो तलेंउँ कडाहिहिँ पापडे'व । शस्त्रेहिँ छिदेंउँ जो ककडि ईव ॥७३॥ (४३३)
—कुमारपाल-प्रतिबोध

---

[1] कवच

§ ३७. जिनपद्म सूरि

काल—१२०० ई०। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरिमिरि झिरिमिरि झिरिमिरि ए मेहा वरिसंति।
खलहल खलहल खलहल ए वादला वहंति।
झबझब झबझब झबझब ए वीजुलिय झक्कइ।
थरहर थरहर थरहर ए विरहिणि मणु कंपइ ॥६॥
महुर गंभीर सरेण मेह जिमि जिमि गाजंते।
पंचबाण निय-कुसुम-बाण तिम तिम साजंते।
जिम जिम केतकि महमहंत परिमल विहसावइ।
तिम तिम कामिय चरण लग्गि निय रमणि मनावइ ॥७॥
सीयल कोमल सुरहि वाय जिम जिम वायंते।
माण-मडफ्फर माणणिय तिम तिम नाचंते।
जिम जिम जलभर भरिय मेह गयणंगणि मलिया।
तिम तिम कामीतणा नयण नीरहि झलहलिया ॥८॥
भास। मेहारव भर रुलटिय, जिमि जिमि नाचइ मोर।
तिम तिम माणिणि खलभलइ, माहीता जिमि चोर ॥९॥

—थूलिभद्र-फागु[1]

---

[1] पृष्ठ ३८-३९

§ ३७. जिनपद्म सूरि

कृति—थूलिभद्द-फाग।

१—ऋतु-वर्णन

पावस—

झिरझिर झिरझिर झिरझिर ए, मेघा वरसंति।
खलखल खलखल खलखल ए, वादला वहंति॥
झबझब झबझब झबझब ए, वीजुली झबक्कै।
थरथर थरथर थरथर ए, विरहिनि मन कंपइ॥
मधुर गभीर स्वरें मेघ जिमि जिमि गाजते।
पंचवाण निज-कुसुम-बाण तिमि तिमि साजंते॥
जिमि जिमि केतकि महमहंत परिमल विहसावै।
तिमि तिमि कामिय चरण लागि निज रमणि मनावै॥७॥
शीतल कोमल सुरभि वायु, जिमि जिमि वायंते।
मान-मडफ्फर[1] मानिनिय, तिमि तिमि नाचंते॥
जिमि जिमि जलभर भरिय, मेघ गगनांगनें मिलिया।
तिमि तिमि कामीकेर नयन, नीरहिँ झलझलिया॥८॥
भास। मेघारव भर उलसिय, जिमि जिमि नाचैं मोर।
तिमि तिमि मानिनि खलवलै, साहीता[2] जिमि चोर॥९॥
—थूलिभद्द-फागु (पृ० ३८-३९)

---

[1] गर्व [2] पकड़ा

२–सामन्त-समाज

(१) शृङ्गार-सजाव

अइ सिंगारु करेइ वेस मोटइ मन ऊलटि ।
रइयरंगि बहुरंगि चंगि[1] चंदणरस ऊगटि ।
चंपय केतकि जाइ कुसुम सिरि पुप भरेइ ।
अति आछउ सुकुमाल चीरु पहिरणि पहिरेइ ॥१०॥
लहलह लहलह लहलह एँ उरि मोतियहारो ।
रणरण रणरण रणरणएँ पगि नेउर सारो ।
गमग गमग गमग ए कानिहि वरकुडल ।
झलझल झलझल झलझल ए आभरणहँ मडल ॥११॥
मयण-खग्ग जिम लहलहंत जसु वेणी दण्डो ।
सरलउ तरलउ सामलउ रोमावलि दण्डो ।
तुंग पयोहर उल्लसइ सिंगार थपक्का ।
कुसुमवाणि निय अमियकुभ किर थापणि मुक्का ॥१२॥
भास । काजलि अंजिवि नयणजुय, सिरि संथउ फाडेई ।
बोंरियावडि कांचुलिय पुण, उरमंडलि ताडेई ॥१३॥
कन्नजुयल जसु लहलहंत किर मयण हिंडोला ।
चंचल चपल तरंग चंग जसु नयणकचोला ।
सोहइ जासु कपोल पालि जणु गालि मसूरा ।
कोमलु विमलु सुकंठ जासु वाजइ सँखतूरा ॥१४॥
लवणिम-रसभर कूवडीय जसु नाहिय रेहइ ।
मयणराइ किर विजयखंभ जसु ऊरू सोहइ ।

---

[1] अच्छा

२—सामन्त-समाज

(१) शृंगार-सजाव

अति शृंगार करेइ वेष मोटै मन ऊलटि,
रचितरंग बहुरग चंग चंदन रस ऊबटि[1]।
चंपक-केतकि-जाति-कुसुम शिर-खोंप भरेई,
अति-आछउ सुकुमार चीर पहिरन पहिरेई ॥१०॥
लहलह लहलह लहलहए उर मोतिय हारो,
रणरण रणरण रणरणइ पग नूपुर सारो।
जगमग जगमग जगमगै कानहिं वर-कुडल,
झलमल झलमल झलमलै आभरणहँ मंडल ॥११॥
मदन खड्ग जिमि लहलहंत जसु वेणी-दंडो,
सरलउ तरलउ श्यामलउ रोमावलि-दंडो।
तुग पयोधर उल्लसै शृंगार स्तवक्का,
कुसुम-वाण निज अमृतकुभ जनु थापन रक्खा ॥१२॥
भास[2]। काजल अजिय नयन युग, सिर मैथी[3] फाड़ेइ।
बोरिपट्टी[4] कंचुकिय पुनि, उरमडल ताड़ेइ ॥१३॥
कर्ण-युगल जसु लहलहत जनु मदन हिडोला,
चंचल चपल तरंग चग जसु नयन-कचोला[5]।
सोहै जासु कपोल-पालि जनु गरल मसूरा,[6]
कोमल विमल सुकंठु जासु बाजै शंख-तूरा ॥१४॥
लवणिम रसभर कूपडीयं[7] जसु नाभिय राजै,
मदनराय कर विजय खंभ जसु ऊरू सोहै।

---

[1] उबटन [2] छन्द विशेष [3] माँग [4] लिलारी [5] कटोरा [6] फूला [7] कुई

जसु नह-पल्लव कामदेव-अंकुसु जिम राजइ ।
रिमझिमि रिमझिमि पायकमलि घाघरिय सुवाजइ ॥१५॥
नवजोवन विलसंत देह नवनेह गहिल्ली ।
परिमल लहरिहि मदमयंत रइ-केलि पहिल्ली ।
अहरबिंब परवाल खण्ड वर-चपावन्नी ।
नयन सलूणिय हावभाव बहुगुण संपुन्नी ॥१६॥
इय सिणगार करेवि वर, जब आवी मुणिपासि ।
जो एवा कउतिगि मिलिय, सुर-किंनर आकासि ॥१७॥
—वही पृ० ३९-४०

(२) हाव-भाव

नयणकडक्खिय आहणएँ वांकड जोवन्ती ।
हावभाव सिणगार भंगि नवनविय करंती ।
तहवि न भीजइ मुणि-पवरो तडवेस बोलावइ ।
"तवणु तुल्लु तुह देह नाह ! महतणु संतावइ ॥१०॥
बारह वरिसहँ तणउ नेहु किणि कारणि छाडिउ ।
एवडु निठुरपणउ कइ मूसिउ तुम्ही मंडिउ ।
थूलिभद्द पभणेइ वेस ! अह खेदु न कीजइ ।
लोहिहि घडियउ हियउ मज्झ तुह वयणि न थीजइ ॥१९॥
मह विलवंतिय उवरि नाह अणुराग धरीजइ ।
रिसु पावसु-कालु सयलु मूसिउ माणीजइ ।
मुणि-वइ जंपइ वेस ! सिद्धि रमणी परिणेवा ।
मणु लीणउ मजम सिरी मुं भोग रमेवा ॥२०॥
—वही[1]

---

[1] पृष्ठ ४०

जसु नख-पल्लव कामदेव-अंकुश जिमि राजै,
रिमझिम रिमझिम पादकमल घाघरिय सुबाजै ॥१५॥
नवयौवन विलसंत देह नवनेह-गहिल्ली,[1]
परिमल लहरेहि मदमदंत रतिकेलि पहिल्ली ।
अधरबिंब पर-वाल-खंड वर-चंपा-वर्णी,
नयन सलोनिय हावभाव बहुगुण-संपुर्णी ॥१६॥
इमि शृंगार करीय वर, जब आई मुनि पास ।
जोयेबा कौतुक मिलेँउ, सुर-किन्नर आकास ॥१७॥
—वही पृ० ३६–४०

(२) हाव-भाव

नयन-कटाक्षहँ आहनई वांको जोयंती,
हाव-भाव शृंगार-भंगि नव-नविय करंती ।
तबउ न बीँधै मुनि-प्रवरो तब वेश बोँलावै,
"तपन तुल्य तुव देह नाथ ! मम तनु संतापै ॥१८॥
बारह वर्षहँ केर नेह केहि कारण छड्डिउ,
एवड[2] निठुरपनइ का मोसे तुम मंडिउ[3] ।"
थूलिभद्र प्र-भनेइ "वेश ! इह खेद न कीजै,
लोहेहिं गढियउ हृदय मोर. तुव बचन न बिंधै ॥१९॥"
"मम विलपंतिय उपर नाथ ! अनुराग धरीजै,
ऐसो पावस-काल सकल मोसो मानीजै ।"
मुनिपति जल्पै "वेश ! सिद्धि-रमणी परिणेबा ।
मन लीनउ संयम श्री सोँ भोग रमेवा ॥२०॥"
—थूलिभद्र-फाग पृ० ४०

---

[1] ग्रहण किये [2] इतना [3] शुरू किया [4] वेश्या

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

काल—१२०० ई० (?)। **देश**—गुजरात। **कुल**—...जैन साधु।

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमरु सुमरवि गिरनारि। सिद्धी राजल कन्न-कुमारि।
श्रावणि सरवणि कंडुय मेहु। गज्जइ विरहिनि झिज्झइ देहु।
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव। नेमिहि विणु सहि सहियइ केम ॥२॥
सखी भणइ सामिणि मन झूरि। दुज्जण-तणा म वच्छिति पूरि।
गयउ नेमि तउ विणठउ काइ। अच्छइ अनेरा वरह सयाइ ॥३॥
बोलइ राजल तउ इहु वयणु। नत्थी नेमी सम वर-रयणु।
धरइ तेजु गहगण सवितावं। गयणु न उग्गइ दिणयरु जाव ॥४॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि। मकरुण रोअइ राजलदेवि।
हा एकलडी मइ निरधार। किम ऊवेषिसि करुणासार ॥५॥
भणइ सखी राजल मन रोइ। नीठ्ठरु नेमि न अप्पणु होइ।
सिंचिय तरुवर पारि पलवंति। गिरिवर पुणि कड-डेरा हुंति ॥६॥
साँचउ सखि वरि गिरि भिज्जंति। किमइ न भिज्जइ सामलकंति।
धण वरिसंतइ सर फुट्टन्ति। सायरु पुण धण ओह डुलंति ॥१७॥
आसोमासह असु-पवाह। राजल मिल्हइ विणु नमि नाह।
दहइ चद चदण हिम सीउ। विणु भत्तारह सउ विवरीउ ॥८॥
—चतुष्पादिका[1]
सखि नवि खीना नेमि हिरेसि। मन आपणपउ तउ खय नेसि।
जिणि दिक्खाडिउ पहिलउ छोहु। न गणिउ अट्ठ भवंतर-नेहु ॥९॥
नेमि दयालु सखि निरदोसु। कीजइ उग्गसिण पर रोसु।
पसुय भराविउ मूकउ वाड़। मभु प्रिय सरिसउ कियउ विहाडु ॥१०॥

---

[1] प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह

§ ३८: विनयचंद्र सूरि

कृति—नेमिनाथ-चतुष्पादिका[1]

विरह-वर्णन

(बारहमासा)

नेमि कुमर सुमिरिय गिरनार। सिद्धी **राजल** कन्य-कुमारि।
श्रावण श्रवणे कड़आ मेह। गर्जे विरहिन छीजै देह।
विज्ज झमक्कै राक्षसि जेम। नेमि विना सखि ! सहियै केम ॥२॥
सखी भनै "स्वामिनि ! मन झूर। दुर्जन करे न वाँछित पूर।
गयेँउ नेमि तब विवशेँउ काड। आछै अन्यहुँ वरहुँ शताईं ॥३॥"
बोलै राजल "तव एंहु वयन। नाही **नेमि** सम वर-रत्न।
धरै तेज ग्रह-गण सव ताउ। गगन न ऊगै दिनकर जाउ ॥४॥"
भादों भरिया सर पेखेइ। सकरुण रोवै राजल-देइ।
"हा एकलड़ी मै निराधार। का उद्वेजिस करुणासार ॥५॥
भनै सखी राजल मन रोइ। "नीठुर नेमि न आपन होइ।
सिंचिय तरुवर परि प्लवंति। गिरिवर पुनि करडेरा होंति ॥६॥
साँचउ सखि ! वारि गिरि भिद्यंति। काह न भिद्यै श्यामल कांति।
घन वर्षन्ते सर फूटति। सागर पुनि घन-ओघ डुलंति ॥७॥"
आश्विन मासहँ आँसु-प्रवाह। राजल मेलै[2] विन नेँमि नाह।
दहै चद चदन हिम शीत। विनु भत्तारहँ सँगउ विपरीत ॥८॥

—**चतुष्पादिका**

"सखि ! ना क्षीणा नेमि हृदेश। मन आपनयौ तउ क्षय लेस।
जिन देखाड़ेँउ पहिलउ छेह[3]। न गणेँउ आठ भवांतर[4]-नेह ॥९॥
नेमि दयालू सखि ! निर्दोष। कीजै उग्रसेन पर रोष।
पशू भरायेँउ मूकेँउ बाड। मम प्रिय सरिसउ कियउ बिगाड ॥१०॥

---

[1] **"प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह"**, G.O.S.Vol.XIII (**बड़ोदा**) 1920
[2] **छोड़ै** [3] **आशा-भंग** [4] **जन्मांतर**

कत्तिग क्षित्तिग उग्गइ संझ । रजमति झिज्झिउ हुइ अतिझंझ[1] ।
राति दिवसु आछइ विलपत । बलिबलि दय करि दयकरि कंत ॥११॥
नेमितणी सखि मूकि न आस । कायरु थग्गउ सो घरवास ।
इमइ ईसि सनेहल नारि । जाइ कोइ छांडवि गिरिनारि ॥१२॥
कायरु किमि सखि नेमि जिणिदु । जिमि रिणि जित्तउ लक्खु नरिंदु ।
फुरइ मासु जा अग्गलि नास । ताव न भिल्लउ नेमिहिं आस ॥१३॥
मगसिरि मग्गु पलोअइ बाल । इणयरि पभणइ नयण विसाल ।
जो मइ मेलइ नेमि कुमार । तसुणी वेल वहउ सवि वार ॥१४॥
एहु कयाग्रहु तउ सखि मिल्हि । करसु काइ तिणि नेमिहि हिल्लि ।
मंडि चडाविउ जो किर मालि । हे हे कु करइ रोहणि कालि ॥१५॥
अठभव सेविउ सखि मइ नेमि । तासु समाहउ किम न करेमि ।
अवगन्नेसइ जइ मइ सामि । लग्गी आछिसु तोइ तसु नामि ॥१५॥
पोसि रोस सवि छोडिवि नाह । राखि राखि भइ मयणह पाह ।
पडइ सीउ नवि रयणि विहाइ । लहिय छिद्द सवि दुक्ख अमाइ ॥१७॥
नेमि नेमि तू करती मुद्धि । जुव्वणु जाइ न जाणिसि सुद्धि ।
पुरिस-रयण भरियउ ससारु । परणु अनेरउ कुइ भत्तारु ॥१८॥
भोली तउ सखि खरी गमारि । वारि अछंतइ नेमि कुमारि ।
अन्न पुरिसु कुइ अप्पणु नडइ । गडवरु लहिउ कु रासभि चडइ ॥१९॥
माहमासि माचइ हिम रासि । देवि भणइ मइ प्रिय लइ पासि ।
तइ विणु सामिय दहइ तुसारु । नवनव मारिहि मारइ मारु ॥२०॥
इहु सखि रोडसि मह्रू अरन्नि । हत्थि कि जामइ धरणउ कन्नि ।
तउ न पती जिसि माहरि माइ । सिद्धि रमणि रत्तउ नमि जाइ ॥२१॥
कंति वसंतइ हियडामाहि । वाति पहीजउं किमहि लसाइं ।
सिद्धि जाइ तउ काइ त वीह । सरसी जाउत उगसेंण-धीय ॥२२॥
फागुण वागुणि पन्न पडंति । गजल दुक्खि कि तरु रोयंति ।
गब्भि गलिवि हउ काइ न मूय[2] । भणइ विहंगल धारणि धूय ॥२३॥

---

[1] दुर्बल [2] मृत

कातिक क्षित्तिग ऊगै साँझ। रजमति छीजेउ होइ अति झाँझ।
राति-दिवस आछै विलपत। "बलि बलि दयाँ करु दयाँ करु कत" ॥११॥
नेमि केर सखि मुचउ आश। कायर भागेँउ मो घर-वास।
ऍहु ऐसीह सनेहल नारि। जाइ कोइ छाडिय **गिरिनार**" ॥१२॥
"कायर का सखि! नेमि जिनेद्र। जिन रणेँ जीतेँउ लाख नरेन्द्र।
फुरै श्वास जौ आगलँ नाम। तौ लोँ न छोड़उँ नेमिहि आश ॥१३॥"
मगसिर मार्ग प्रलोकै बाल। ऐसोँ प्रभनै नयन-विशाल।
"जो मोँहि मिलवै नेमिकुमार। तसु उपकार बहुउ सब वार" ॥१४॥
"एहु कुआग्रह तव सखि! मेलु[1]। करमि काह तिन नेमिहिँ हिल्ल।
मंडेँ चढ़ायेँउ जो पुनि मान। हे हे को करै टोअन[2]-काल" ॥१५॥
अठ भव सेवेँउँ सखि! मै नेमि। तसु ऊमाइ[3] किमि न करेमि।
अवश छिजीहै जो मोँहिँ स्वामि। लागी रहोँ तऊ तसु नाम" ॥१६॥
"**पूस** रोष सब छाड़हु नाह। राखु राखु मोहिँ पद-नह-पाँह।
पडै शीत ना रजनि विहाइ। लहिय छिद्र सब दुःख अमाइ" ॥१७॥
"नेमि नेमि तू करती मुग्धेँ। यौवन जाइ न जानसि शुद्ध।
पुरुष-रतन भरियउ ससार। परनहु अन्य कोँई भर्तार" ॥१८॥
"भोली तैँ सखि! खरी गँवारि। वर अच्छते नेमिकुमार।
अन्य पुरुष कोँउ आपन नहई। गज-वर लहे कोँ रासभ चढ़ई" ॥१९॥
माघ मास मातै हिम-राशि। देवि भनै "मोहि प्रिय लेउँ पास।
तव विनु स्वामिय! दहै तुषार। नवनव मारहि मारै मार" ॥२०॥
"ऍहु सखि रोवसि जिमि आरण्येँ। हाथ कि जोये धरियोँ कर्णेँ।
तौ न पतीजसि हम्मर माइ। सिद्धि-रमणि-रातो नेँमि जाइ" ॥२१॥
कंत वसंतै हियरा-माहि। बात पहीजौ किमिहि लसाइ।
सिद्धि जाइ तोहि काई भीय[4]। ओहि सँग जाऊ उगसेँन-धीय" ॥२२॥
फागुन पवना पर्ण पडंति। राजल दुःख कि तरु रोवंति।
"गर्भ गलिय हौँ काह न मूय।" भनै विहव्वल धारणि-धूय[5] ॥२३॥

---

[1] छोड़ [2] रक्षा, पहरा [3] वांछा [4] भय [5] पुत्री

अजिउ भगिउ करि सखि विम्भासि । **अच्छइ** भला वर नेमिहि पास ।
अनुसखि मोदक जउ नवि हुंति । छुहिय सुहाली किन रुच्चंति ॥२४॥
मणह पासि जइ वहि**लउ** होइ । नेमिहि पासि ततलउ ना कोइ ।
जइ सखि वरउँ त सामल-धीरु । घण विणु पियइ कि चातक नीरु ॥२५॥
चैत्र मासि वणसइ पंगुरइ । वणि वणि कोयल टहका[1] करइ ।
पंचबाणि करि धनुष धरेवि । वेझइ 'माँडी राजल देवि ॥२६॥
जुइ सखि ! मातउ मासु वसतु । इणि खिल्लिज्जइ जइ हुइ कंतु ।
रमियइ नवनव करि सिणगारु । लिज्जइ जीविय जुव्वण-सारु ॥२७॥
सुणि सखि मानिउ मुझु परिणयणु । नवि ऊपरि थिउ बंधव-वयणु ।
जइ पडवन्नइ चुक्कइ नेमि । जीविय जुव्वणु जलणि जलेमि ॥२८॥
वइसाहह विहसिय वणराइ । मयणमित्त मलयानिलु वाइ ।
फुट्टिरि हियडा माझि वसतु । विलपइ राजल पिक्खउ कतु ॥२९॥
सखी दुक्ख वीसरिवा भणइ । "मभलि भमरउ किम रुणझुणइ ।
दीस पंचथिरु जोव्वणु होइ । खाउ पियउ विलसउ सहु कोइ ॥३०॥
रमणि पसंसिय राजल-कन्न । जीह कतु वसि ते पर धन्न ।
जसु पउ न करइ किमइ मुहाडि । सा हउँ इक्क ज भुडनि लाडि ॥३१॥
जिट्ठ विरहु जिमि तप्पइ सूरु । छण वियोगि सुसिय नइ पूरु ।
पिक्खिउ फुल्लिउ चपइ विल्लि । राजल मूछी नेह गहिल्लि ॥३२॥
मूछी राणी हा सखि धाउं । पडियउ खडइ जेवडु धाउ ।
हरि मूछा चदण पवणेहि । सखि आसासइ प्रिय-वयणेहि ॥३३॥
भणइ देवि विरती ससार । पडिखि पडिखि मइ जाउव सार ।
नियपडिवन्नंउ प्रभु सभारि । भइ लड सरिसी गढि गिरिनारि ॥३४॥
आसाढह दिठु हियँउ करेवि । गज्जु विज्जु सवि अवगन्नेवि ।
भणइ वयणु उगसेणह जाय । करिसि धम्मु सेविसु प्रिय पाय ॥३५॥
मिलिउ सखी राजल पभणति । चिणय जेम नमिरिय खण्णंति ।
अउगी अच्छि सखि ! झखि मन आल । तपु दोहिल्लउ तउँ सुकुमार ॥३६॥
—नेमिनाथ-चतुष्पदिका[2]

---

[1] टहका आधुनिक शब्दानुकरण [2] पृष्ठ ९-१०

अजउ भनेॅउ कर सखी विमर्षि । अछै भलो वर नेमिह-पास ।
"पुनि सखि । मोदक यदि ना होंति । छुधितेॅ सोॅ हारी किन रुच्चंति ॥२४॥
"मनह पास यदि जल्दी होइ । नेमिहिँ पास तेॅतनउ ना कोइ ।
यदि सखि ! वरौं त श्यामल-धीर । घन विनु पियै कि चातक नीर" ॥२५॥
चैत्र मास वनसपती अँकुरै । वन-वन कोयल टहका करै ।
पंच-बान केॅर धनुष धरेबि । वेधै लक्षिय राजल-देवि ॥२६॥
"जोॅउ सखि ! मातेॅउ मास वसंत । इमि खेलीजै यदि होॅइ कंत ।
रमियै नव नव कर शृंगार । लीजै जीवित यौवन-सार" ॥२७॥
"सुनु सखि ! मानेॅहु मम परिणयन । ना ऊपर ठिय वाधव-वयन ।
यदि प्रतिपन्ना चूकै नेमि । जीवित यौवन ज्वलनेॅ जलेमि ॥२८॥
बैशाखह विहसिय वनराजि । मदनमित्र मलयानिल वाइ ।
फुट्टिय हियरा माँझ वसंत । विलपै **राजल** पेखिय कंत ॥२९॥
सखी दुःख बीसरिबा भनई । "सुनु सुनु भ्रमरउ का रुनझुनई ।
"दिवस पंच थिर यौवन होइ । खाहु पियहु विलसहु सब कोइ" ॥३०॥
रमण प्रशंसिय राजल-कन्य । "जाहि कंत वशेॅ ते पर धन्य ।
जसु पिय न करै किछुउ पुछारी । सो हौॅ एकइ फूट-लिलारी" ॥३१॥
जेठ विरह तप्पै जिमि सूर । घन-वियोगेॅ सुखियो नदि-पूर ।
पेखेॅउ फुल्लिय चंपक-बेल्लि । राजल मूर्छी नेह-गहिल्लि ॥३२॥
"मूर्छी रानी हा सखि ! धाव ! पडियउ खंडह जेवड़ घाव ।"
हरि मूर्छा चंदन पवनेहिँ । सखि आश्वासै प्रिय-वचनेहिँ ॥३३॥
भनै "देवि ! विरती-संसार । परिख परिख मै जानेॅउ सार ।
निज प्रपन्नउ[1] प्रभु सम्हारि[2] । मोॅहि लइ साथे गढ गिरनार ॥३४॥
आषाढ़ह दृढ हियइँ करेबि । गर्ज विज्जु सब अवगण नेवि ।
भनै वचन उगसेनहँ जाय । करिसि धर्म सेविसि प्रिय-पाय ॥३४॥
"मिलिउ सखी !" राजल प्रभनंति । चना जेम न मिरिच खाद्यंति ।
एकली अच्छ[3] सखि ! झँख मन आल[4] । तप-दोहिल्लउ[5] तूँ सुकुमार ॥३५॥
—नेमि-चौपाई (पृ० ९-१०)

---

[1] होनेवाला पति [2] याद करके [3] हूँ [4] मिथ्या [5] दुर्लभ

§ ३९. चन्दबरदाई

चंदबरदाई। काल—१२०० ई०। देश—लाहौर-दिल्ली। कुल—भाट। कृति—पृथिवीराज-रासो[1]

१—हिमालय-वर्णन

सकल भूमि कौ भेद राज जानै ए भग्गै।
अति सु-विकट वन-जूह चढै सग्राम न होई॥
अश्व-पाय गज-पाय चढन किहि ठौर न कोई।
वनविकट जूह परवत गुहा बरबेहर बंकम विषम॥
दारु भयानक अति सरल वर प्रस्तर जल नहि सुपम।
झरै झरनि झोरं-सु आघात सोर जिनं सद्द या सद्द ता अंग मोरं
हयं तज्जि राज चलै हत्थ डोर इथ इक्क पच्छौ बिय जन जोर।
बजै सद्द-सद्दं परच्छंद उट्ठै सुनै त्रन सोरं सुधीरज्ज छुट्टै
इकं होइ राज पथ सन्त रुधै दिये हत्थ तारी तिन कौ न बूधै।

२—सामन्त-समाज

(१) राजा बीसलदेवकी प्रशंसा

धर्माधिराज रति जोग भोग पट पुट णिन्ति पग्गह सु-भोग
जग दुष्प बीर **बीसल** नरिंद महापाप रत द्रव्यान अध

---

[1] वर्तमान रूप १६वीं सदीसे पहिलेका नहीं है।

ऋत अक्रित काम क्रितह सु कीन जिन असुर घोर षनि द्रव्य लीन
संसार थागि पुनि द्रव्य काज उपजाई मति **अजमेर** राज

कोडी सु मोल गज कियौ एक लीयो न किनह किरि सहर नेक
कामध अंध सुज्झ्यो न काल हक अहक जोरि गिरि इक्क भाल

चलल्यौ न राज नीतिह प्रमान आनीत बंधि नृप थान थान
सुज्झ्यौ न धम्म चलल्यौ प्रमान मुकजो निगम्म करि अगम-मान

अब लोह छोह छांडिय सु-कित्ति मुक्कयो धंम आधंम जिति
दरबार अतिथि दीमै न कोइ अप्प-सुह कित्ति संभरै लोइ

चौसठि बरस बर राज कीन पायौ न पुण वर सुयष हीन
—पृथ्वी०रासो—पृ० ७८-७९

आनन्द अग्ग पर इन्द्र सम धंम्म नंद जस उब्बरै।
अजमेर नयर अरिजेर कारि विमल राज **बीसल** करै॥

बर पट्टन अट्टन अमित समित वेद फुनि राज।
समय अंत **बीसल** सिरह धर्यौ छत्र सम साज॥
—पृ० रा०—पृ० ९१

(२) शृंगार-रस

रतिराज रु जोवन राजत जोर, चँप्यो सिसिरं उर सैसव-कोर।
उनी मधि मडखि मधू धुनि होइ, तिन उपमा बरनी कवि कोइ।

सुनी बर आगम जुव्वन बैन, नव्यो कबहू न सुउद्दिय मैन।
कबहूँ ढुरि क्रंन न पुच्छत नैन, कहो किन अव्व ढुरी ढुरि वैन।

ससि रोरन सैसव दुंदुभि बज्जि, उथै रतिराज सजोवन सज्जि।
कही बर श्रोन सुरंगिय रज्जि, भये नर दोउ बनंबन भज्जि।
इय मीन नलीन भये रत रज्जि,
भय विभ्रम भाइ परी नहि नंजि।
सुनि प्रथम बालिय रूप, वरबाल लच्छिन रूप।
अहिसंधि सैसव-याल, अजु अरक राका हाल।
सैसव सुसूर समान, वयचंद चढ़न प्रमान।
सैसब्ब जोबन एल, ज्यों पंथ पंथी मेल।
परि भोंह भवर प्रमान, वै बुद्धि अच्छरि आन।
द्रिग स्याम सेत सुभाग, सावक्क मृग छुटि वाग।
बिय दृगन ओपम कोउ, सिसभ्रंग षंजन होउ।
बरबरन नासिक राज, मनि जोति दीपक लाज।
गनिसिषों पतंग नसाव, ओपंम दे कवि आव।
नासिक्क दीपन साल, झँप दत षजन-बाल।
बिय बरल जोवन सेव, ज्यों दंपती हथलेव।
वैसंधि संधिय चिंद, ज्यों मत्त जुरहि गुविंद।
तुछ रोमराज विसाल, मनो अग्गि उग्गिय वाल।
कुच तुच्छ तुच्छ समूर, मनों कामफल-अकूर।
बयरूप ओपम एह, जा जनक नृप कर देह।
वर छिन्न थक्कत तेह, मनों काम द्रप्पन देह।
वै संधि कविवर बंध, ज्यों वृद्ध वाल विबंध।
वै संधि संधि प्रामन, ज्यों सूर ग्रहन प्रमान।

वै राह ससि गिलि सूर, नव ग्रह (प्र)मत्त करूर ।
वरवाल वै संधि एह, सिक्कार काम करेह ।
लसकरे लसलसि छंडि, चितरंक दीन समडि ।
कर्‌यो सुल्लांन कामिनी, दिपंत मेघ दामिनी ।
सिगार षोडसं करे, सुहस्त दर्पनं धरे ।
वसन्न वासि वासनं, तिलक्क भाल भासनं ।
दुनैन श्रैन श्रंजए, चलं चलंत षंजए ।
सुहंत श्रोन कुंडलं, ससी रवी कि मंडलं ।
सुमुत्ति नास सोभई, दसंन दुत्ति लोभई ।
श्रनेक जाति जालितं, धरंत पुप्फ मालितं ।
झँकार हार नेपुरं, घमंकि घुघर धुर ।
विलेपि लेपचंदनं, कसी सु कंचुकी घनं ।
सुछूद्र घंटि घंटिका, तमोल श्राय श्रंटिका ।
कनक्क नग्ग कंकनं, जरे जराइ श्रंकनं ।
बिसाल बानि चातुरी, दिषंन रंभ आतुरी ।
श्रनेक दुत्ति श्रंगकी, कहंत जीभ भंगकी ।
निसि थट्टिय-फट्टिय तिमिर, दिसि रत्ती धवलाइ ।
सैसव में जुव्वन कछ, तुच्छ तुच्छ दरसाइ ।
दक्षिन वृत्त सुनाभि, तुंग नासा गजगमनी ।
सासनि गंध रुषं जु चारु, कुटिल केस रतिरमनी ।
बरजंघन मृदुपथु सुरंग, कुरंग लज्जे छविहीनं ।

(३) युद्ध

(क) वीर-रस

हत्थ हत्थ सुज्झै न, मेघ डंभरि मंडि रज्जी ।
निसि निसीथ अंतरो, भान उत्तरि सथ सज्जी ॥
बिज्ज बीर झलकंत, पवन पच्छिम दिसि बज्जै ।
मोर मोर पप्पीह, अवनि सक्कि घन गज्जै ॥
बट्टी जु सिल्लह निसि सत्तमिलि, सधिय पंग दरबार दिसि ।
चामंडराय दाहर ननै, लरन लोह कड्ढे तिरसि ॥
पच्छै भौ संग्राम, अग्ग अपछर बिच्चारिय ।
पुछै रंभ मेनिका, अज्ज चित्त किमि भारिय ॥
तब उत्तर दिय फेरि, अज्ज पहुनाई आइय ।
रथ्थ बैठिग्रौ थान, सोझ तह कंज न पाइय ॥
भर सुभर परे भारत्थभिरि, ठाम ठाम चुप जीत संधि ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यो, सुथिर सभौ देखिय नभ ॥

(ख) रण-यात्रा

ढलकत ढाल तरवर प्रमान, हलके हलंत गज नग-समान ।
अपसकुन सकुन चितहि न चित्त, निरिमान वन्त गुन धरत तत्त ।
कदवति सलिल जहाँ सलिलपंक, चितचित्त डवंक जे करे कंक ।
चल्ले नरिंद अरि पुब्ब गाव, भुमिया ससंक सब लगत पाव ।
गढ़ घेरि पंग किअ अप्रमान, मानों कि मेरि पारस्स भान ।

पंगह सुवीर गढ करि गिरह, जनु सर्वरि परस चद्रा सरह ।
गोरी नरिंद हय-गय-सुभर, सजि आयौ उप्पर सुभय ।
चैत मास रवि तीज, सेत पष्षह कल चदह ।
भयौ सुदिन मध्यान, चढ्यो **प्रथिराज** नरिंदह ॥
कटक सवर हिल्लोर, भार मेमह करि भग्गिय ।
चढि सामत सकज्ज, नद सुर अमर जग्गिय ॥
गज रोर सोर बधे घटा, सिलह बीज सिल काबलिय ।
पष्पीह चीह मह नाइ सुर, नदि घघ्घर मैलान दिय ॥

(ग) युद्ध-वर्णन

पंग जग घुल । कूह मच्ची हुल ॥ सार तुट्टे पलं । षग्ग मच्चे षल ॥
हाल हालाहल । मोव्व वित्थौ तल ॥ गिद्ध कोलाहल । अत दंती रुलं ॥
उद्ध पीयं छल । चर्म अम्मि तल ॥ बीर निद्धी चल । सिद्ध ठट्टे रुलं ॥
संभु माल गल । ब्रम्ह चिता चल ॥ भूत वित्ता तल । पत्थ पारथ्थलं ॥
देव देवानल । फट्टि फारक्कल ॥ घाय बज्जे घल । सूर घुम्मै रुलं ॥
तार चौसट्ठिल । वाड भूत तल ॥ रीति पच्छी षिन । तार आयासनं ॥
सूर उग्यौ नन । कोट चड्ढे फन ॥
जहाँ उत्तरचो साहि चिन्हाव मीर । तहाँ नेज गड्यो ढढुक्के पुंडीर ॥
करी आन साहाब सार्बाध **गोरी** । धकी धींग धिग धकावै **सजोरी** ॥
दोंऊ दीन दीन कही बकि अस्सि । किधौं मेघमे वीजु कोटि निकस्सि ॥
किए सिग्घर कोरता मेल अग्गी । किधौं बद्दरं कोर नागिं न नग्गी ॥
हबक्के जु मेछं भ्रमत ज छुट्टै । मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै ॥
उरं फुट्टि बरछी बरं छब्बि नामी । मनो जालमे मीन अद्धी निकासी ॥

लटक्के जुरं नं उडै हंस हल्लै । रसं भीजि सूरं चवग्गान षिल्लै ॥
लगे सीस नजा भ्रमें भेजि तथ्थें । भषे बाइसं भात दीपत्ति सथ्थें ॥
करै मार मारं महाबीर धीरं । भए मेघधारा बरष्षंत तीरं ॥
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ । तवै साहि गोरी स चन्हाव चढ्यौ ॥
धर धरकि धाहर करबि काइर रसमिसू रस कूरयं ॥
गजघंट घनकिय, रुद्र भनकिय, षनकि संकर उद्दयो ।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय, दंति दान धनंदयौ ॥
वरं बंबरं चोरं माही ति साई । हले छत्र पोतं वले यारं घाई ॥
बुले सूर दृक्के दहक्के पचारं । घले वथ्थ दोऊ धरं जा अषारं ॥
उतंमंग तुट्टै परै श्रोन धारी । मनो दण्ड सुक्की अगीवाइ वारी ॥
नचै कंधबधं दकै सीस भारी । तहाँ जोग-माया जकी सो बिचारी ॥
सोलंकी माधव नरिंद, पान षिलजी मुख लग्गा ।
मवर बीररस वीर, बीर बीरा रस पग्गा ॥
दुअन वुड्व जुध तेग, दूहुँ हत्थन उब्भारिय ।
तेग तुट्टि चालुक्क, बथ्थ परिकड्ढि कटारिय ॥
लइ बग्ग कैमास वीरं अमानं । धमंके धरा गोम गण्णे गुमानं ॥
उतें उप्परी बाग तत्तार पानं । मिले हिंदु मीरं दोऊ दीन मानं ॥
बजे राज सिंघू सु मारूअ बज्जै । गज़े सूर सूरं असूरं सुभज्जै ॥
चढे व्योम विम्मान देषंत देवं । बढ़े स्वामि-कज्जै सुसज्जै उभेवं ॥
छुटे नाल गोला हवाई उछंगं । नछत्रं मनों जानि तुट्टे निहंगं ॥
करष्षै चलै बान बानं कमानं । भई अंध-धुंधं न सुज्झै सु भानं ॥
मिले सेल मेलं समेलं अपारं । सनाहं फटै हीय होवंत पारं ॥
मदं मत्त दंतं उषारै मसंदं । मनो मिल्लिया पब्ब उष्षालि कंदं ।

मचै हूक हूकं वहै सार-धारं । चमक्कें चमक्कें करारं करारं ॥
भभक्कै भभक्कै वहै रत्तधारं । सनक्कै सनक्कै वहै वान-भारं ॥
हबक्कै हबक्कै वहै सेल भेलं । कुकें कूक फूटी सुरत्तांन ढालं ॥
वकी जोगमाया सुरं अप्पथानं । बहै चट्ट-पट्टं उघट्टं उलट्टं ॥
कुलट्ठा धरै अप्प-अप्पं उहट्ठं । दडक्कं बजै सेन सेना सुघट्टं ॥

(घ) युद्धमें छल

छल तक्यौ श्रीरांम, सेत साइर तव बंध्यौ ।
छल तक्यौ सुग्रीव, बालिजिउ ताउह संध्यौ ॥
छल तक्यो लछिमना, सूरमंडल अलि बेध्यौ ।
छल तक्यो नरसिंध, अग्गकस नष उर छेद्यौ ॥
छलबल करंत दूषन न कोइ, किस्न कलह कंसह करिय ।
सोमेस राज तकि अप्प विधि, रत्तिवाह छलमन धरिय ॥

३–कविका संदेश

(भाग्यवाद)

नर करनी कछु और, करै करता कछु और ।
अनचिंतन करै ईस, जीय सुनर और दौरै ॥
रचे रचन नर कोरि, जोरि जम पाइ बस्त सह ।
छिनक मध्य हरि हरै, केलि किरतव्य कम्मइह ॥
प्रथिराज गमन देवास दिसि, ब्याह विनोद सुमंडिजिय ।
अनचिंति जग्गि **गज्जन** बलिय, आनि उतंग सु कंक किय ॥
जु कछू लिष्यो लिलाट, सुष्ष अरु दुःष समंतह ।
धन विद्या सुन्दरी, अंग आधार अनंतह ॥
कलप कोटि टरि जाहिं, मिटै न न घटै प्रमानह ।
जतन जोर जो करै, रंच न न मिटै बिनानह ॥

तेरहवीं सदी

§ ४०: त्नकखण्ण

काल—१२५७ ई० । देश—रायवद्दिय (रायभा, आगरा) कुल—वैश्य,

१—आत्म-परिचय

(१) काव्य-महिमा

त मुणेंवि भणिउ माहुल-भुएण । जिण-चरणच्चण-पसरिय-भुएण ॥
भो 'लव-कचु कुल-कमल-सूर । कुलमाणव चित्तासा पऊर ॥
घत्ता । तुहुं कइ-यण-मण-रजणु पाव-विहंजणु गुणु-गण-मणि-रयणायरऊ ।
उच्छट्टि अवट्टिउ मुणयो मट्टिउ(?)णिहिल-कला-मलणायरऊ ॥
तुहुं धण्णु जासु णरिसिउ चित्तु, तिपयत्थ रमुज्जलु मइ पवित्तु ।
सयणासण तवेरम तुरग, धयछत्त चमर बालावरग ॥
धण-कण-कचण घण-दविण-कोस, जपाण जाण भूसण सँतोस ।
घरपुर णयरायर देस-गाम, पट्टोलवर पट्टण समाण ॥
ससार-सारु पयवत्थु भावु, जज दीसइ णाणा सहाउ ।
तत मुहेण पावियइ सव्वु, लहियइ ण कव्वु माणिक्कु भव्वु ॥

(२) आत्म-परिचय

एक्कहि दिणें मुकइ पसण्ण चित्तु, णिमि मज्जायलें झायइ सइत्तु ।
महुबोह-रयणु धडगरुय सरिसु, बुहयण-भव्वयणहं जणिय हरिसु ॥
करकंठकण्ण पहिरण असक्कु, णरहरमई तेण सजोरु थक्कु ।
भइ सुकइत्तणु विज्जा विलासु, बुहयण-मुह-मंडणु साहिलासु ॥
आणद लयाहरु अमिय रोइ, णवि याणइ मूण-इण इत्थ कोवि ।

---

[1] बड़े बालवाला

तेरहवीं सदी

§ ४०: लक्खण

जैन-गृहस्थ । कृति—अणुवयरयण पईव (अनुव्रत-रत्नप्रदीप)[1]

१—आत्मपरिचय

(१) काव्य-महिमा

सो सुनिय भनेंउ साहुल-सुतेहिं । जिन-चारणार्चन-प्रसरिय-भुजेहिं ॥
"हे लवकंचु-कुल-कमल-सूर । कुल मानव चित्ताशा-प्रपूर ॥
घत्ता । तुहुँ कवि-मन-रंजन, पाप-विभजन, गुण-गण-मणि-रतनाकरऊ ।
उच्छेदि कुवर्त्तन-सुनयउ मार्जउ, निखिल-कलामल-नागरऊ ॥
तुहूँ धन्य जासु ऐसहू चित्त । त्रिपदार्थ रसोज्ज्वल मति-पवित्र ॥
शयनासना स्तंवेरम तुरग । ध्वज छत्र चमर बालावरंग ॥
धन-कण-कंचन-धन द्रविण-कोश । भंपान-यान-भूषण सँतोष ॥
घर पुर नगरागर देश ग्राम । पट्टोल[2]-अंबर-पट्टन समान ॥
संसारसार पद-वस्तु[3] भाव । जो जो दीसै नाना स्वभाव ॥
सो सो सुखेहिं पाइयै सर्व । लभियै न काव्य-माणिक्य भव्य[4] ॥

(२) आत्म-परिचय

एकै दिन सुकवि प्रसन्न चित्त । निशि शय्यातलें ध्यावै स्वपित्त ।
"मम बोधरतन घड[5] गरुव सरिस । बुधजन भाविकजन[6] जगिय हरष ॥
करकटकर्ण पहिरन असक्क । नरहरमति तेन सँजोर थक्क[7] ।
मै सुकवित्वहँ विद्याविलास । बुधजन मुखमडन साभिलाष ॥
आनंद लताघर अमृत रोपि । ना जानै सुनै न इहाँ कोइ ।

---

[1] १५१८ (१५७५ संवत्) की हस्तलिखित प्रति—अप्रकाशित
[2] रेशमी [3] पदार्थ [4] तन [5] जैन-भक्त [6] रहना

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मइं अमुणंते अक्खर विसेसु, न मुणमि पबधु न छंद-लेसु ।
पद्धडिया बधे मुप्पसणउ, अवगमउ अत्थु भव्वयणु तण्णु ।
हीणक्खउ मुणेंवि इयरु तत्थु, मभवउ अण्णु वज्जेंवि अणत्थु ।

२–सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इह-**जउणा**-णइ-उत्तर-तडित्थ । मह-णयरि **रायवड्डिय**[1] पमत्थ ।
धण-कण-कंचण-वण-सरि-समिद्ध । वाणुण्णयकर-जण-रिद्धि-रिद्ध ॥
किम्मीर-कम्म णिम्मिय रवण्ण । सट्टल सत्तोरण विविह-वण्ण ।
पंडुर पायारुण्णइ समेय । जहि सहहि णिरतर सिरिनिकेय ॥
चउहट्ट चच्चरू दाम जत्थ । मग्गण-गण-कोलाहल समत्थ ।
जहिँ विवणे विपणे घण कुप्पभउ । जहि कसिग्रहिँ णिच्च पिसंडि खंड ॥
णिच्चिच्च-याण-समान-सोह । जहिँ वसहि महायण सुद्धबोह ।
ववहार चार सिरि सुद्ध लोय । विहरहिँ पसण्ण चउवण्ण लोय ॥
जहिँ कणयचूड मंडण विमेम । सिगार-सार-कय निरवमेस ।
सोहग्ग लग्ग जिणधम्म सील । माणिणि-णिय-पइ-वय-वहण-लील ॥
जहि पण्ण पऊरिय पण्ण माल । णायर-णरेहि भूसिय विसाल ।
थिय जिण विबुज्जल जणियसम्म । कूडग्ग धयावलि-रुद्ध-धम्म ॥
चउ सालुण्णय-तोरण-सहार । जहिँ सहहिँ सेय सोहण-विहार ।
जहिँ दविणंगण वहि पेम छित्त । लावण्ण-गुण-धण लोलचित्त ॥
जहि चरउ चाउ कुसुमाल भेउ । दुज्जण सग्वुद्द खल पिसुण एउ ।
ण वियंभहिँ कहिमि न धणविहीण । दविणड्ढ णिहिल णर धम्मलीण ॥
पेम्माणुरत्त परिगलिय गव्व । जहिँ वसहिँ वियक्खण मणुवसव्व ।
वावार सव्व जहिँ सहहिँ णिच्च । कणयंबर भूसिय राय-भिच्च ॥
तंबोल-रंग-रंगिय धरग्ग । जहि रेहहिँ सारुण सयल मग्ग ।

---

[1] रायभा गाँव

(३) कविका दीनता-प्रकाश

मैं अबुधंता अक्षर-विशेष । न बुझौं प्रबध न छन्दलेश ।
पद्धतिका[1] बंधैं सुप्रसन्न । अवगमैं भव्यजन अर्थ तूर्ण ॥
हीनाक्षउ जानी इतर तत्र । संभवउ अन्य वद्यैंउ अनर्थ ।

२—सामन्त-समाज

(१) राजधानी-वर्णन

इहँ यमुना नदि उत्तर तटस्थ । महनगरि रायभा(है) प्रशस्त ।
धन-कण-कंचन-वन-सरि-समृद्ध । दानोन्नत कर-जन-ऋद्धि-ऋद्ध ॥
किर्मरि[2] कर्म निर्मिय रमण्य । स'ऽट्टल स-तोरण विविधवर्ण ।
पांडुर प्राकार-उन्नति समेत । जहँ रहैं निरंतर श्रीनिकेत ॥
चौहट्ट चर्चर-उद्दाम यत्र । माँगन-गण-कोलाहल-समर्थ ।
जहँ विपणि विपणि धन कूप्यभाड । जहँ कसियैं नित्य पिषंग-खंड ॥
निश्चित यान सम्मान सोह । जहँ वसैं महाजन शुद्ध-बोध ।
व्यवहार चारु श्री शुद्धलोक । विहरैं प्रसन्न चौवर्ण लोक ॥
जहँ कनकचूड-मंडन विशेष । शृंगार-सार कृत-निरवशेष ।
सौभाग्य लग्न जिन-धर्मशील । मानिनि निजपति वच-वहन-शील ॥
जहँ पण्य प्रपूरिय पण्यशाल । नागर-नरेहिँ भूषित विशाल ।
ठिय जिन बिंबोज्ज्वल जनित शर्म । कूटाग्र ध्वजावलि रुद्ध धर्म ॥
चतुशालोन्नत तोरण स-हार । जहँ अहैं श्वेत शोभन विहार ।
जहँ द्रविणांगन बहि[3] प्रेमक्षेत्र । लावण्यपूर्ण धन लोलचित्त ॥
जहँ चरउ चारु कुसुमाल भेव । दुर्जन स-क्षुद्र खलपिशुन एव ।
न विजृंभै कतहुँ न धनविहीन । द्रविणाढ्य निखिल नर धर्मलीन ॥
प्रेमानुरक्त परिगलित-गर्व । जहँ वसैं विचक्षण मनुज सर्व ।
व्यापार सर्व जहँ सधैं नित्य । कनकांवर-भूषित राजभृत्य ॥
तांबूल रंग-रंगिय'धराग्र । जहँ राजैं सारुण सकल मग्ग ।

---

[1] चौपाई [2] चित्रविचित्र [3] बाहर

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहिँ णरवइ आहवमल्ल एउ । दारिद्द समुद्दत्तरण-सेउ ॥
घत्ता । उव्वासिय-पर-मंडलु दसिय-मंडलु, कास-कुसुम-संकास-जसु ।
छल-बल-सामत्थेँ णीइ णयत्थेँ, कवण राउ उवमियइ तसु ॥

णिय-कुल-कैरव-सिय-पयंगु । गुण-रयणाहरण-विहूसियंगु ।
अवराह-वलाहय-पलय-पयणु । महु-माग-गगण-पडिदिण्ण-नवणु ॥

दुव्वसण-सोस-णासण-पवीणु । किउ अत्तुलिय-सजस मयंक सीणु ।
पंचंग-मंत-वियरण-पवीणु । . . . . . .

माणिणि-मण-मोहणु-मयर-केउ । णिरुवम-अविरल-गुण-मणि-णिकेउ ।
रिउ-राय-उरत्थल दिण्ण हीरु । विसमुण्णय-समरेँ भिडंत वीरु ॥

खग्गग्गि-डहिय-पर-चक्कवंसु । विपरीय-बोह-माया-विहंसु ।
अतुलिय-बल खल-कुल-पलयकालु । पहु-पट्टालंकिय विउल भालु ॥

मत्तग-वज्ज-धुर दिण्णु खंधु । संमाण-दाण-पोसिय सबंधु ।
णिय-परियण-मण-मीमसण-दच्छु । परिवसिय-पयासिय-केर कच्छु ।

करवाल-पट्टि-विप्फुरिय जीहु । रिउ दंड चंड सुंडाल सीहु ।
अइ-विसम-साह-मुद्दामधामु । चउ-सायरंत-पायडिय-णामु ॥

णाणा-लक्खण-लक्खिय सरीरु । सोमुज्ज्व(ल) सामुद्दय गहीरु ।
दुप्पिच्छ-मिच्छ-रण-रंग-मल्ल । **हम्मीर**[1]-वीर-मण-नट्ठ-सल्ल ॥

चउहाण-वंस-तामरस-भाणु । मुणियइँ न जासु भुय-बल-पमाणु ।
चुलसीदि-खंड-विण्णाण-कोसु । छत्तीसाउह(प)यउण समोसु ॥

साहण-समुद्दु बहुरिद्धि रिद्धु । अरि-राय-विसह संफरु-पसिद्धु ।
घत्ता । खत्तिय सासणु परवल तासणु, ताण-मडल उव्वासणु ।
जस पसर पयासणु णव जल-हरसणु, दुण्णय वित्ति पवासणु ॥

---

[1] रणथम्भोरवाले

(२) राजा (आहवमल्ल)की प्रशंसा

तहँ नरपति **आहवमल्ल** एव । दारिद्रय-समुद्रोत्तरण-सेतु ।
घत्ता । उद्दॉसित परमंडल देशित मडल, काशकुसुम-संकाश-यशू ।
छलबल-सामर्थ्यें नीतिनयार्थें, कवन राव उपमियै तसू ॥

निज-कल-कैरव-सित-पतंग । गुण-रतनाभरण-विभूषितांग ।
अपराध बलाहक प्रलय-पवन । मथ[1]-मार्गगण प्रतिदत्त तपन ॥
दुर्व्यसन शोष-नाशन-प्रवीण । किउ अ-खलित स्वयश-मयंक सैन्य ।
पंचांग मंत्र-विचरन प्रवीण । . . . . . .
मानिनि मन-मोहन मकरकेतु । निरुपम अविरल गुण-मणि-निकेत ।
रिपु-राज-उरस्थलें दीन हीर । विषिमोन्नत समरें भिडंत वीर ॥
खड्गाग्नि-दग्ध-पर-चक्रवंश । विपरीत बोध-माया विध्वंस ।
अतुलित-बल खलकुल-प्रलयकाल । प्रभु पट्टालंकृत विपुल भाल ॥
सप्तांग-राज्य-धुर दीनु कंध । सम्मान-दान-पोषित स्वबंधु ।
निज-परिजन-मन-मीमास-दक्ष । परिवसिय-प्रकाशिय-केर कक्ष ॥
करवाल पट्ट विस्फुरति जीह । रिपुदड-चंड-शुंडाल-सीँह ।
अतिविषम साहसोद्दाम-धाम । चतुसागरांत प्राकटित नाम ॥
नाना लक्षण-लक्षित शरीर । सोमोज्ज्वल सामुद्र'व गभीर ।
दुष्पेक्ष्य म्लेच्छ रणरंग-मल्ल । **हम्मीर**-वीर मन-नष्ट-शल्य ॥
चौहान-वंश-तामरस-भानु । बुझियै न जासु भुजबल-प्रमाण ।
चौसट्ठि खंड विज्ञानकोश । छत्तीसायुध प्रकटन समोस[2] ॥
साधन-समुद्र बहु-ऋद्धि-ऋद्ध । अरिराज-विषह संफर[3] प्रसिद्ध ।
घत्ता । क्षत्रिय-शासन परबल-त्राशन त्राण मँडल-उद्दासनऊ ।
यश-प्रसर-प्रकाशन नव जलधर सन, दुर्नयवृत्ति प्रवासन ॥

---

[1] मन्मथ [2] समूह [3] जहरमोहरा

(३) रानी (ईसरदे)की प्रशंसा

तहों पट्ट महाएवी पसिद्ध । ईसरदे पणयणि पणय-विद्ध ।
णिहिलंतेउर मज्झएँ पहाण । णिय पइ मण-पेसण सावहाण ।
सज्जण-मण-कप्प महीय साह । कंकण केऊरंकिय सुबाह ।
छण-ससि-परिसर संपुण्ण-वयण । मुक्कमल कमलदल सरल गयण ॥
आसा सिंधुर गइ गमण लील । बंदियण-मणासा दाण-सील ।
परिवार भार धुरधरण सत्त । मोयइ अंतर-दल ललिय गत्त ॥
छद्दंसण चित्तासा विसाम । चउ सायरंत विक्खायणाम ।
अहमल्ल-राय-पय भत्तिजुत्त । अवगमिय णिहिल विण्णाणसुत्त ॥
णियणंदणाहें चिंतामणीव । णिय धवलग्गिह सरहंसिणीव ।
परियाणिय-करण-विलासकज्ज । रूवेण जित्त-सुत्ताम-भज्ज ॥
गंगा-तरंग कल्लोल माल । समकित्ति भरिय ककुहंतराल ।
कलयंठि-कंठ कलमहुर-वाणि । गुणगरुअ रयण उप्पत्ति खाणि ।
अरिराय विसह संकरहो सिट्ठ । सोहग्ग-लग्ग गोरिव्व दिट्ठ ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

अहमल्ल[1]-राय-महमंति सुद्धु । जिण-सासण-परिणइ गुणपवद्धु ।
कण्हड्ड-कुल कइरव सेयभाणु । पहुणा समज्ज सव्वहें पहाणु ॥
गंजोल्लिय मणु लक्खणु वहूउ । सीयरिउ कव्व करणाण रूउ ।
णियघरें पत्तउ वणगन्ध हत्थि । मयमत्तु फुरिय मुहरुह गमत्थि ॥
वसि हुयउ स-सर दसदिसि भरंतु । मणि कोण पडिच्छइ तहों तुरंत ।
सुयस्सण राउ घरइँ तवेइ । भणु कवणु दुवार कवाड देइ ॥
अवगमिय वयणलिणा चातुरंग । धण-कण-कंचण-संपुण्ण चंग ।
घर समुह एंत पेच्छिवि सवारु । भणु कवणु बप्प झंपइ दुवारु ॥

---

[1] आहवमल्ल राजा

(३) रानी (ईश्वरदेवी)की प्रशंसा

ह पट्ट महादेवी प्रसिद्ध । **ईश्वरदे** प्रणयिनि प्रणय-बिद्ध ।
निखिल'न्त:पुर-मध्ये प्रधान । निज पति-मन-प्रेषण सावधान ॥
ज्जन-मन कल्प-महीपशाख । कंकण-केयूर'कित सुबाह ।
छण-शशि-परिसर-संपूर्ण-वदन । मुक्त'मल कमलदल सरल-नयन ॥
गाशासिंधुर गज-गमनलील । वंदिजन-मनाशा-दानशील ।
परिवार-भार-धुर-धरन शक्त । मोचै अंतरदल ललित-गात्र ॥
ई-दर्शन चित्ताशा-विश्राम । चतुसागरांत-विख्यात-नाम ।
ब्रह्मल्ल-राय-पद-भक्तियुक्त । अवगमित[1]-निखिल-विज्ञान-सूत्र ॥
नेजनंदनो (इ) चिंतामणी'व । निज-धवलगेह-सरहंसिनी'व ।
परि-जानिय करन विलासकाज । रूपेहिँ जीत सूत्राम[2]-भार्य ॥
गा-तरंग-कल्लोलमाल । समकीर्त्ति भरिय ककुभान्तराल ।
कलकंठि-कंठ कलमधुर-वाणि । गुणगरुव रतन-उत्पत्ति-खानि ॥
गरिराज विषह शंकरहोँ शिष्ट । सौभाग्यलग्न गौरी'व दृष्ट ॥

(४) मंत्री (कान्हड)की प्रशंसा

ब्रह्मल्लराय महाँमंत्रि शुद्ध । जिन-शासन-परिणय-गुण-प्रबद्ध ।
कान्हड-कुल-कैरव-श्वेतभानु । प्रभुहूँ समाज सर्व्वहँ **प्रधान** ॥
जोल्लिय मन लक्षण वहूव । स्वीकारिउ काव्य-करणानुरूप ।
निज-घरेँ आयउ वन गंध-हस्ति । मदमत्त फुरिय मुखरुह-गभस्ति ॥
श **हुयउ** स्व स्वर दशदिशि-भरंत । मन कोन प्रतीच्छै तह तुरंत ।
सुप्रसन्न राव घरई तबेइ । भनु कौंन दुवार-किवाड़ देइ ।
जानीय वचन लिन चातुरंग । धन-कन-कंचन-संपूर्ण चंग ॥
घर सर्मुह आइ पेखेबि सवार । भनु कौन वप्प झंपइ दुवार ।

---

[1] ज्ञात [2] इन्द्र

चिंतामणि-हाडय-निवड-जडिउ । पज्जहइ कवणु सइँ हत्थ चडिउ ।
घर रगुप्पण्णउ कप्प-रुक्खु । जलें कवणु न सिंचइ जणिय सुक्खु ॥
सयमेव पत्त घरु कामधेणु । पज्जहइ कवणु कय-सोक्खसेणु ।
चारण-मुणि-तेएँ जित्त भवइ । गयणाउ पत्त किर कोण णवइ ॥
पेऊस पिंड केँर पत्तु भव्वु । को मुयइ निवे(इय) जीवियव्वु ।
ग्रहमल्ल-राय-कर-विहिय-तिलउ । महयणहँ महिउ गुणगरुग्र-णिलउ ।
सो साहु पइट्ठवु जणिय-सेउ । सिवदेउ साहुकुल-वंस-केउ ॥

घत्ता । जो कण्हड्ड पुव्वुत्तउ, पुण्णपउत्त, महिमडलि विक्खायउ ।
ग्राहवमल्ल-गरिंदहु, मण-साणंदहु मतत्तण पइभायउ ॥

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

पिया तस्स सल्लक्खणा लक्खणड्ढा । गुरूण पए भक्ति काउं वियड्ढा ।
स भत्तार-पायारविंदाणुगामी । घरारभ-वावार-सपुण्ण-कामी ॥
सुहायार चारित्त-वीरक-जुत्ता । सुचेयाण गंधोदएणं पवित्ता ।
स पासाय-कासार-सारा-मराली । किवा-दाण संतोसिया वंदिणाली ॥
पसण्णा सुवाया ग्रचचेल-चित्ता । रमाराम-रम्मा मए वालणित्ता(?) ।
खलाणं मुहंभोय-संपुण्ण जुण्हा । पुरग्गो महासाहु सोढस्स सुण्हा ॥
दया-वल्लरी मेह-मुक्कंबुधारा । सइत्तत्तणे सुद्ध-सीयप्पयारा ।
जहा चंदचूडा[1]नुगामी भवाणी । जहा सव्व वेइहिँ सव्वंग वाणी ॥
जहा गोत्त णिद्दारिणो रंभ रामा । रमा दाणवारिस्स संपुण्ण-कामा ।
जहा रोहिणी ग्रोसहीसस्स सण्णा । महड्ढी सपुण्णस्स सारस्स रण्णा ॥
जहा सूरिणो मुत्तिवेई मणीसा । किसाणस्स साहा जहा रूवमीसा ।

---

[1] शंकर

चिंतामणि हाटक निवह जड़िउ । प्रज्जहै[1] कौन सँग हस्त चढ़िउ ॥
घर रंग् उत्पन्नउ कल्पवृक्ष । जल कौन न सीँचै जनित सुक्ख ।
स्वयमेव प्राप्त घर कामधेनु । प्रज्जहै कौन कृत-सौख्य-सेन ॥
चारण मुनि-तेजे जेँत्त हवै । गगनाहु आउ फुर को न नवै ।
पीयूष-पिंड करेँ पाइ भव्य । को मुंचै निवेदिय जीवितव्य ॥
अहमल्ल राय-कर-विहित-तिलक । महाँ जनरु महित गुण-गरुव-निलय ।
सो साहु पईठउ जनित-सेतु । **शिवदेव** साहु कुल-वंश-केतु ॥ (१४ ख)
घत्ता । जो कान्हड पूर्वो-'क्तउ'पुण्य-प्रयुक्तउ महिमंडल विख्यात यऊ ।
अहमल्ल-नरेन्द्रह, मन-सानंदह मंत्रित्वन प्रति-भातयऊ ॥ (१५ ख)

(५) मंत्रि-पत्नीकी प्रशंसा

प्रिया तासु सुल्लक्षणा लक्षणाढ्या । गुरूणां पदे भक्ति-करणे विदग्धा ।
स्वभर्त्तरि पादारबिन्दानुगामी । घरारंभ व्यापार संपूर्ण कामी ॥
शुभाचार चारित्र चीरांकयुक्ता । सुचेतन्न गंधोदकेही पवित्रा ।
स्वप्रासाद-कासार-सारा मराली । कृपादान-संतोषिया वंदितालीं ॥
प्रसन्ना सुवाचा अचंचल्ल-चित्ता । रमा राम रम्या मदेवाल-नेत्रा ।
खलों-को मुखाम्भोज संपूर्णज्योत्स्ना । पुराग्रोमहासाहु **सोढ़ा**कोँ सुन्हा[2] ।
दया-बल्लरी-मेघ-मुक्तांबुधारा । सतीत्वत्तने शुद्ध-**सीत**-प्रकारा ।
यथा चंद्रचूड़ानुगामी भवानी । यथा सर्व वेदेहिँ सर्वांग वाणी ।
यथा गोत्र निर्दारिण[3]हैं रंभाँ रामा । रमा दानवारी कि संपूर्ण कामा ।
यथा रोहिणी ओषधीशाह संगी । महाढ्या सँपूर्णाहु साराहु रानी ॥
यथा सूरिकी मुक्तिवेदी मनीषा । कृशानार्क स्वाहा यथा रूप मीसा । (१६ ख)

---

[1] छोड़ें [2] स्नुषा=पुत्रवधू [3] इन्द्र

§ ४१: जज्जल[1]

काल—१२९० ई० (हम्मीर[2] १२८२-९९)। देश—उत्तरी राजपूताना।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा[3])

मुंचहि सुंदरि पाअ अप्पहि हसिऊण सुम्मुहि खग्गं मे ।
कप्पिअ मेच्छ-सरीरं पेच्छइ वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥७१॥ (१२७)
पअभरु दरमरु धरणि तरणि रह धुल्लिअ झंपिअ,
कमठ-पिट्ठ टरपरिअ मेरु-मंदर-सिरकंपिअ ।
कोह चलिअ हम्मीर-वीर गअजूह-सँजुत्ते ।
किअउ कट्ठ हा कंद ! मुच्छि मेच्छहके पुत्ते ॥९२॥ १(५७)
पिंधउ दिढ-सण्णाह वाह-उप्पर पक्खर दइ,
वंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर वअण लइ ।
उज्जल णह-पह भमउ खग्ग रिउ-सीसहि डारउ,
पक्खर-पक्खर ठेल्लि-पेल्लि पव्वअ अप्फालउ ।
हम्मीरकज्ज **जज्जल** भणइ, कोहाणल मुह मह जलउ ।
सुलताण-सीस करवाल दइ, तेज्जि कलेवर दिअ चलउ ॥१०६।(१८०)
ढोल्ला मारिअ ढिल्लिमह, मुच्छिअ मेच्छ सरीर ।
पुर **जज्जला** मंतिवर, चलिअ वीर हम्मीर ॥
चलिअ वीर हम्मीर, पाअभर मेइणि कंपइ ।
दिगमगणह अंधार धूरि सूरिय रह झंपइ ॥
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला ।
दरमरि दमसि विपक्ख भार अ ढिल्लिमह ढोल्ला ॥१४७॥ (२४९)

---

[1] "प्राकृत पैंगल" से। [2] रणथम्भोरके राजा वीर हम्मीर जिन पर अलाउद्दीन ने १२९९में चढ़ाई की। [3] जिन कविताओंमें जज्जलका नाम नहीं है, उनके बारेमें सन्देह है, कि वह इसी कविकी कृतियाँ हैं।

§ ४१: जज्जल

कुल—हम्मीरका मंत्री और सेनापति ।

वीर-रस

(राना हम्मीरकी प्रशंसा)

मुंचहि सुंदरि ! पाव अर्पहि हँसियाउ सुमुखि खड्गहँ मे ।
काटिय म्लेच्छ शरीरहँ पेँखिहँ वदनहँ तुम्ह ध्रुव **हम्मीरो** ॥१२७॥
पगभर दरमरु धरणि तरणि रह धूलिय झंपिय,
कमठ-पीठ टरपरिय मेरु-मंदर-शिर कंपिय ।
क्रोधि चलिय **हम्मीर** वीर गज-यूथ-सँयुत्ते,
कियउ कष्ट "हाक्रंद" मूछि म्लेच्छनके पुत्ते ॥९२॥
पेन्हेँउ **दृढ** सन्नाह बाँह ऊपर पक्खर दइ,
वंधु समभि[1] रण घँसेँउ स्वामि **हम्मीर** वचन लइ ।
उज्वल नभ-पथ भ्रमेँउ खड्ग, रिपु शीशहिं डारेउ,
पक्कड़-पक्कड़ ठेलि-पेलि पर्वत उच्छालेउ ।
हम्मीर-कार्य **उज्जल** भनइ, क्रोधानल-मुख महँ ज्वलउ,
सुल्तानशीश करवाल दइ, त्यागि कलेवर दिवु **चलउ** ॥१०६॥
ढोला मारिय **दिल्लि** महँ मूछिय म्लेच्छ शरीर,
पुर[2] **जज्जल्ला** मंत्रिवर चलिय वीर **हम्मीर** ।
चलिय वीर हम्मीर पाद-भर मेदनि कंपै,
दिग-मग-नभ अंधार धूलि सूरज-रथ झंपै ।
दिग-मग-नभ अंधार आनि खुरसान कें ओल्ला[3],
दर मरि दमसि विपक्ष मार **दिल्ली** महँ ढोल्ला ॥१४७॥

---

[1] **मीर मुहम्मदशाह और उनके साथियोंको हम्मीरने शरण दिया था, जिस पर अलाउद्दीनसे विरोध हो गया ।** [2] **आगे** [3] **स्वामी**

सहस मअमत्त गअ लाख लख पक्खरिअ ,
साहि दुइ साजि खेलंत गिंदू ।
कोप्पि पिअ ! जाहि तहि थप्पि जसु विमल महि ।
जिणइ णहि कोइ तुअ तुलक[1]हिंदू ॥१५७॥ (२६२)

घर लग्गइ आगि जलइ धह धह ,
कइ दिगमग णह-पह अणल भरे ।
सब दीस पसरि पाइक लुलइ धणि ,
थणहर जहण दिआव करे ।
भअ लुक्किअ थक्किअ वइरि तरुणि ,
जण भइरव भेरिअ सद्द पले ।
महि लोट्टइ पिट्टइ रिउ-सिर टुट्टइ ,
जक्खण वीर हमीर चले ॥१६०॥ (३०४)

खुर खुर खुदि खुदि महि घघर रव कलइ ,
ण ण ण णगिदि करि तुरअ चले ।
ट ट टगिदि पलइ टपु धसइ धरणि वपु ,
चकमक करि वहु दिसि चमले ।
चलु दमकि दमकि वलु चलइ पडक वलु ,
धुलकि धुलकि करि करि चलिआ ।
वर मणु सअल कमल विपख हिअअ सल,
हमिर वीर जब रण चलिआ ॥२०४॥ (३२७)

जहा भूत वेताल णच्चंत गावंत खाए कवंधा ,
सिआकार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्णरंधा ।
कआ टुट्ट फुट्टेइ मत्था कवंधा णचंता हसंता ,
तहा वीर हम्मीर संगाम-मज्झे तुलंता जुझंता ॥१८३॥ (५२०)

---

[1] तुरुक

सहस मदमत्त गज, लाख-लख पक्कडी ,
शाह द्वय साजि खेलंत गेंदू ।
कोपि प्रिय ! जाहि तहँ थापि यश-विमल महि,
जितै नहि को तोंहि तुरुक-हिंदू ॥१५७॥

घर लागै आग जलै धह-धह ,
करि दिग-मग नभ-पथ अनल-भरे ।
सब दीस पसरि पाइक्क[1] चलै ,
धनि थन-भर-जघन दियेउ करे ।

भय लुक्किय थाकिय बैरि तरुणि-
जन भैरव-भेरिय शब्द पडै ।
महि लोटै-पोटे रिपु-शिर टुट्टै ,
जखन वीर **हम्मीर** चले ॥१६०॥

खुर-खुर खुदि-खुदि महि घघर रव करे ,
न न न नगिदि करि तुरग चले ।
ट ट ट गिदि परै टॉप धँसै धरणि वपु
चकमक करि बहु दिशि चमरे ।

चलु दमकि दमकि वल चलै पइक[1]-बल ,
घुलुकि घुलुकि करि करि चलिया ।
वर मनुष दल कमल विपख[2] हृदय सल ,
हमिर वीर जब रण चलिया ॥२०४॥

यथा भूत-वेताल नाचंत गावंत खाएँ कवंधा ,
शिवा**कार** फेक्कार हक्का रवंता फोंड़ैं कर्ण-रंध्रा ।
काँया टुट फोड़ेइ मत्था कबंधा नचंता हसंता,
तथा वीर **हम्मीर** संग्राम-मध्ये तुरंता जुझंता ॥१८३॥

---

[1] प्यादा [2] विपक्ष

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

काल—तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध । देश—युक्त-प्रान्त या बिहार ।

१—सामन्त-समाज

युद्ध-वर्णन

अहि ललइ महि चलइ, गिरि खसइ हर खलइ,
ससि घुमइ अमिअ वमइ, मुअल जिवि उट्ठए ।
पुणु घसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ,
पुणु वमइ जिविअ विविह, परि समर दिट्ठए ॥१६०॥ (२६६)

गअ-गअहि ढुक्किअ तरणि लुक्किअ, तुरअ तुरअहि जुज्झिआ ।
रह-रहहि मीलिअ धरणि पीलिअ, अप्प-पर णहि बुज्झिआ ॥
वल मिलिअ आइअ पत्ति जाइउ, कंप गिरिवर-सीहरा ।
उच्छलइ साअर दीण काअर, बड्डर बड्ढिअ दीहरा ।१९३।(३०९)

कुंजरा चलंतआ पव्वआ पलंतआ ।
कुम्म-पिट्ठि कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५९॥ (३७८)

उम्मत्ता जोहा [1]ढुक्कंता, विप्पक्खा मज्झे लुक्कन्ता ।
णिक्कंता जंता धावंता, णिम्भंती कित्ती पावंता ॥६७॥ (३७८)

ठामा-ठामा हत्थी-जूहा देक्खीआ,
णीला-मेहा मेरू-सिंगा पेक्खीआ ।
वीरा हत्था अग्गे खग्गा राजंता,
णीला-मेहा-मज्झे विज्जू णच्चंता ॥११३॥(४२५)

मत्ता जोहा वट्टे कोहा अप्पा-अप्पी गव्वीआ,
रोसा रत्ता सव्वा गत्ता सल्ला भल्ला उट्ठीआ ।

---

[1] घुस रहे हैं

§ ४२: अज्ञात कवि या कवि-वृन्द

कुल—दर्बारी, भक्त। कृतियाँ—स्फुट कविताये[1]।

१—सामन्त-समाज

(१) युद्ध-वर्णन

अहि ललै महि चलै गिरि खसै हर स्खलै,
शशि घुमै अमिय बमै मुअल जीइ उठ्ठए।
पुनि धँसै पुनि खसै पुनि ललै पुनि घुमै,
पुनि वमै जीविता विविध परि समर दृष्टए ॥१६०॥
गज-गजहिं ढुक्किय तरणि लुक्किय तुरग-तुरंगहि जूझिया,
रथ-रथहि मेलिय धरणि पेलिय, आप पर नहिं बूझिया।
बल मिलै आइय पत्ति[2] जाइय, कंप गिरिवर शीखरा,
ऊछलै सागर दीन कातर वैरि बाढिय दीघरा ॥१६३॥
कुजरा चलंतआ पर्वता पडंतआ।
कूर्म पृष्ठ कंपए, धूलि सूर झंपए ॥५६॥
उन्मत्ता योधा ढुक्कंता, विप्पच्छा मध्ये लुक्कंता।
निष्क्रांता जांता धावंता निभ्रांती कीर्त्ती पावंता ॥५७॥
ठावें ठावें हस्ति यूथा देखीया,
नीला मेघा मेरु-शृंगा पेखीया।
वीरा-हस्ता-अग्रे खड्गा राजंता,
नीला मेघा-मध्ये विज्जू नाचंता ॥११३॥
मत्ता योधा बाढ़े क्रोधा आपे-आपा गर्वीया,
रोषा रक्ता सर्वा गात्रा शल्या भल्ला उट्ठीया।

---

[1] "प्राकृत-पैंगल" में संगृहीत, पृष्ठ कविताओंके अन्तमें—कोष्ठकमें। [2] प्यादा

हत्थी-जूहा सज्जा हूआ पाए भूमी कंपंता,
लेही देही छड्डो ओड्डो सब्बा सूरा जप्पंता ।१५७। (४८३)
भत्ति जोइ सज्ज होह गज्ज वज्ज तंखणा,
रोस-रत्त सब्ब-गत्त हक्क[1] दिज्ज भीसणा ।
धाइ आइ खग्ग पाइ दाणवा चलंतआ,
वीर-पाअ णाअराअ कंप भूतलंतगा ।।१५६।। (४८५)
चलंत जोह मत्त-कोह रण्ण-कम्म-अग्गरा,
किवाण-वाण-सल्ल-भल्ल-चाव-चक्क-मुग्गरा ।
पहार वार धीर वीर वग्ग मज्झ पंडिआ,
पअट्ठ ओट्ठ कंत दत तेण सेण मंडिआ ।।१६६।। (४६६)
उम्मत्ता जोहा उट्ठे कोहा ओत्था-ओत्थी जुज्झंता,
मेणक्का रंभा णाहं दंभा अप्पा-अप्पी बुज्झंता ।
धावंता सल्ला छिण्णे कंठा मत्था पिट्ठी पेरंता,
णं सग्गा मग्गा जाए अग्गा लुद्धा उद्धा हेरंता ।।१७५।। (५०७)

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जिण वेअ धरिज्जे महिअल लिज्जे, पिट्ठिहि दंतहि ठाउ धरा ।
रिउ-वच्छ विआरे छल तणु धारे, बंधिअ सत्तु सुरज्जहरा ।
कुल खत्तिअ कप्पे तप्पे दहमुह कप्पे, कसअ केसि विणासकरा ।
करुणा पअले मेछह विअले सो, देउ णराअण तुम्ह वरा ।।२०७।। (५७०)

(२) राम-स्तुति

वप्प अ-उक्कि सिरे जिणि लिज्जिउ, तेज्जिअ रज्ज वणंत चलेविणु ।
सोअर सुंदरि संगहि लग्गिअ, मारु विराध कवंध तहा हणु ।

---

[1] आह्वान, ललकार

हस्ती-यूथा सज्जा हुआ पायें भूमी कंपंता,
"लेही देही छाडो ओडो" सर्वा शूरा जल्पंता ॥१५७॥
भट्ट योधाँ सज्ज होइ, गर्ज वज्ज तत्क्षणा ।
रोष-रक्त सर्वगात्र हाँक दीजेँ भीषणा ।
धाइ आइ खड्ग पाइ दानवा चलंतआ ।
वीरपाद नागराज कंप भूतल'न्तगा ॥१५९॥
चलंत योध मत्त क्रोध रत्न-कर्म आगरा ।
कृपाण-वाण-शल्य-भल्ल-चाप-चक्र-मुग्दरा ॥
प्रहार-वार-धीर-वीर-वर्ग-मांझ-पडिता ।
प्रदष्ट-ओष्ट-कांत-दंत तेन सेनाँ मंडिता ॥१६९॥
उन्मत्ता योद्धा उट्ठे क्रोधा उट्ठा-उट्ठी जुज्झंता,
मेनका-रम्भा-नाथं दम्भा अप्पा-अप्पी बुज्झंता ।
धावंता शल्या छिन्ना कंठा मत्था पीठी पड्डंता,
जनु स्वर्गा-मार्गा जाये अग्गा-लुब्धा उर्ध्व हेरंता ॥१७५॥

२—देव-स्तुति

(१) दशावतार

जेहिं वेद धरिज्जै महितल लिज्जै, पीठहि दंतहि ठावँ धरा ।
रिपु-वक्ष विदारे छल-तनु धारे, वंधिय शत्रु स्वराज्य हरा ॥
कुल-क्षत्रिय तापे दशमुख कप्पे[1], कंशय केशि विनाश करा ।
करुणा प्रकटे म्लेच्छहँ विदले, सो देउ नरायण तुम्ह वरा ॥२०७॥

(२) राम-स्तुति

वापह उक्ति शिरे जिनि लिज्जिउ । त्यागिय राज्य वनंत चलेविऊ ।
सोदर सुंदरि संगहि लग्गिय । मार विराध कवंध तथा हन ॥

---

[1] काटा

मारुइ मिल्लिअ वालि विहंडिअ, रज्ज सुगीवह दिज्ज अकंटअ ।
बंधु समुद्द विणासिअ रावण, सो तुअ राहव दिज्जउ णिब्भअ ॥२११॥ (५७६)

(३) कृष्ण

अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोडि, डगमग कुगति ण देहि ।
तइ इत्थि णडहि संतार देइ, जो चाहहि सो लेहि ॥६॥
जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ, मुट्ठि-अरिट्ठि विणास करे, गिरि हत्थ धरे ।
जमलज्जुण भंजिअ पअभर गंजिअ, कालिअ-कुल संहार करे, जस भुअण भरे ।
चाणूर विहंडिअ णिअ-कुल मंडिअ, राहा-मुह महु-पाण करे, जिमि भमर वरे ।
सो तुम्ह णराअण विप्प-पराअण, चित्तह चिंतिअ देउ वरा भअ-भीअ-हरा ॥२०७॥
भुवण-अणंदो तिहुअण कंदो । भमरसवण्णो स जअइ कण्हो ॥४६॥
परिणअ ससिहर-वअणं, विमल-कमल-दल-णअणं ।
विहिअ-असुर-कुल-दलणं, पणमह सिरि-महुमहणं ॥१०६॥[1]

(४) शंकर-स्तुति

जा अद्धंगे पव्वई, सीसे गंगा जासु ।
जो लोआणं वल्लहो, वंदे पाअं तासु ॥८२॥ (१४३)
जसु सीसहि गंगा गोरि अधंगा, गिव पहिरिअ फणि-हारा ।
कंठ-ट्ठिअ वीसा पिंधण दीसा, संतारिअ संसारा ।
किरणावलि कदा वंदिअ चंदा, णअणहि अणल फुरंता ।
सो संपअ दिज्जउ वहु सुह किज्जउ, तुम्ह भवाणी-कंता ॥६८॥ (१६६)
रण दक्ख दक्ख हणु जिण्णु कुसुम-धणु, अंधअगंध विणास करु ।
सो रक्खउ संकरु असुर-भअंकरु, गिरि-णाअरि अद्धंग-धरु ॥१०१॥ (१७२)
जो वंदिअ सिरगंग हणिअ अणंग, अद्धंगहि परिकर धरणु ।
सो जोइ-जण-मित्त हरउ दुरित्त, संकाहरु संकर चरणु ॥१०४॥ (१७६)

---

[1] पृष्ठ १२, ३३४, ३६५, ४२१

मारुति मेॅल्लिय बालि विघट्टिय, राज सुग्रीवहिं दिज्ज अकंटक ।
बंध समुद्द विनाशिय रावण, सो तोॅहुँ राघव दिज्जिउ निर्भय ॥२११॥

(३) कृष्ण

अरे रे चालहि कान्ह नाव, छोटि डगमग कुगति न देहि ।
तै एहि नदिहि संतार देइ, जो चाहि सो लेहि ॥६॥
जिन कंस विनाशिय कीर्त्ति प्रकाशिय, मुष्टि अरिष्ट विनाश करे, गिरि हाथ धरे ।
यमलार्जुन भंजिय पदभर गंजिय, कालिय-कुल-संहार करे, यश भुवन भरे ।
चाणूर विखंडिय निज-कुल मंडिय, राधामुख मधु-पान करे, जिमि भ्रमरवरे ।
सो तुम्ह नरायण, विप्र-परायण, चित्ते चिंतित देहु वरे, भय-भीति-हरे ॥२०७॥
भुवन-अनंदा त्रिभुवन कंदा । भ्रमर-सवर्णा स जयतु कृष्णा ॥४६॥
परिणत-शशिधर-वदनं, विमल-कमल-दल-नयनं ।
विहित-असुरकुल-दलनं, प्रणमहु श्री मधुमथनं ॥१०॥

(४) शंकर-स्तुति

जेॅहि अर्धंगे पार्वती, शीशे गगा जासु ।
जो लोकन कर वल्लभ, वंदे पादहँ तासु ॥८२॥
जसु सीसहिं गंगा गौरि अधंगा, ग्रिव पहिरिय फणिहारा,
कंठे ठिय वीषा पहिरन दीशा, संतारिय संसारा ।
किरणावलि कंदा वंदिय चंदा, नयनहिं अनल फुरंता,
सो संपति दिज्जउ बहु-सुख किज्जउ, तुम्ह भवानी कंता ॥६८॥
रण-दक्ष दक्ष [1]हनु, जित्तु कुसुमधनु अन्ध क-अंध विनाश करो ।
सो रक्षउ शंकर असुर-भयंकर, गिरि-नागरि-अर्धांग-धरो ॥१०१॥
जो वंदिय शिर गंग हनिय अनंग, अर्धंगहि परिकर धरणू ।
सो योॅगि-जन-मित्र हरहु दुरित्त, शंकाहर शंकर-चरणू ॥१०४॥

---

[1] मारा

जसु कर फणिवइ-वलअ तरुणिवर तणुमहँ विलसइ,
णअण अणल गल गरल विमल ससहर सिर णिवसइ।
सुरसरि सिर मँह रहइ सअल जण-दुरित-दमण कर,
हसि ससिहर हरउ दुरित, वितरह अतुल अभअवर ॥१११॥ (१६०)
जाआ जा अद्धंग सीस गंगा लोलती, सव्वासा पूरति सव्व-दुक्खा तोलंती।
णाआ राआ हार दीस वासा भासता, वेआला जा संग णट्ठ दुट्ठा णासंता।
णाचता कता उच्छवे ताले भूमी कपले,
जा दिट्ठे मोक्खा पाविज्जे, सो तुम्हाणं सुक्ख दे ॥११६॥ (२०७)
सिर किज्जिअ गंगं गोरि अधंगं, हणिअ अणंगे पुर-दहणं।
किअ फणवइ हार तिहुअण सारं, वंदिअ छारं रिउ-महणं।
सुर सेविअ चरण मुणिगण सरणं, भव-भअ-हरणं सूलधरं।
साणंदिअ वअणं सुदर-णअण गिरिवर-सअणं णमह हरं ॥१६५॥ (३१३)
जसु मित्त घणेसा ससुर गिरीसा, तहविहु पिंधण[1] दीस।
जह अमियह कदा णिअलहि चंदा, तह विह भोअण वीस।
जइ कणअ-सुरंगा गोरि अधगा, तहविहु डाकिणि सग।
जो जसुहि दिआवा देव सहावा, कवहु ण हो तसु भंग ॥२०६॥ (३३८)
गवरिअ-कंता अभिणउ संता। जइ परसण्णा दिअ महि धण्णा ॥४८॥ (३६५)
पिंग-जटावलि-ठापिअ गंगा, धारिअ णाअरि जेण अधंगा।
चंदकला जसु सीसहि णोक्खा, सो तुह सकर दिज्जउ मोक्खा ॥१०५॥ (४१७)
वालो कुमारो स छमुडधारी, उप्पाउ-हीणा हउँ एक्क णारी।
अहंणिसं खाहि विसं भिखारी, गई भवित्ती किल का हमारी ॥१२०॥
तुअ देव दुरित्त गणा हरणा चरणा, जइ पावउ चंदकलाभरणा सरणा।
परि पूजउ तेज्जिअ लोभमणा भवणा, सुख दे मह सोक विणास मणा समणा ॥१५५॥
पहु दिज्जिअ वज्जअ सिज्जिअ टोप्पर, कंकण वाहु किरीट सिर।
पइ कण्णहिं कुडल णं रइमंडल, ठाविअ हार फुरंत उरे।

---

[1] परिधान, पहिरन

जसु कर फणिपति वलय, तरुणि-वर तनुमहँ विलसइ,
नयन अनल गल गरल विमल शशधर शिर निवसइ।
सुरसरि शिरमँह रहै सकल-जन-दुरित-दमनकर,
हसि शशिधरः हरहु दुरित, वितरहु अतुल अभय वर ॥१११॥
जाया अधाँग शीशे गंगा लोलंती, सर्वाशा पूरति सर्व दुक्खा तोडंती।
नागा-राजा हार दिशा वासा भासंता, वेताला जा संग नष्ट दुष्टा नाशंता।
नाचंता कंता उत्सवे ताले भूमी कंपरे।
जा देखे मोक्षा पाइज्जा, सो तुम्हा कहँ सुक्ख दे ॥११६॥
शिर किज्जिय गंगं गोरि अधंगं, हनिय अनंगं पुर-दहनं।
किय फणिपति हारं त्रिभुवन सारं, वंदिय छारं रिपु-मथनं।
सुर-सेवित-चरणं मुनिगण-सरणं भवभय-हरणं शूलधरं।
सानंदित वदनं सुंदर-नयनं, गिरिवर-शयनं नमहु हरं ॥१६५॥
जसु मित्र धनेशा ससुर गिरीशा, तेहि विध पेन्हन दीश।
जिमि अमृतह कंदा नियरइ चंदा, तेहि विध भोजन वीष ॥
यदि कनक-सुरंगा गौरि अधंगा, तेहि विध डाकिनि संग।
जो यशह दियावा देव स्वभावा, कवहु न हो तसु भंग ॥२०६॥
गौरिय कता अभिनव शांता यदि परसन्न देँहुँ मोँहि धन्ना ॥४८॥
पिंग-जटावलि थापिय गंगा, धारिय नागरि जिनि अधंगा।
चंद्रकला जसु शीशहिं नोखा, सो तेहिँ शंकर दिज्जउ मोक्षा ॥१०५॥
वालो कुमारो स छ-मुड-धारी, उत्पाद-हीना हौँ एक नारी।
अहर्निशा खाइ विषं भिखारी, गती हुवैया फुर का हमारी ॥१२०॥
तव देव ! दुरित्त-गणा-हरणा-चरणा, यदि पावउँ चद्र कला-भरणा-शरणा।
परिपूजउँ त्यागिय लोभमना भवना, सुख दे मोंहि शोक-विनाश मनः शमना ॥१५५॥
प्रभु ! दीजिय वज्रहिं सृज्जिय टोप्पर[1] कंकण वाहु किरीट शिरे,
प्रति कर्णहि कुंडल जनु-रवि मंडल, थापिय हार फुरंत उरे।

---

[1] शिरस्त्राण

पइ अंगुलि मुद्दरि हीरहि सुंदरि, कंचण रज्जु सुमझ्झ तणू ।
तसु तूणउ सुदर किज्जिअ मंदर, ठावह वाणह सेस धणू ॥२०६॥
जअइ जअइ हर वलहअ विसहर तिलइअ सुंदर चंदं मुणि आणंदं जणकंदं ।
वसह-गामणकर तिसुल-डमरु-धर, णअणहि डाहु अणंगं सिर गंगं गोरि अधंगं ।
जअइ जअइ हरि भुअजुअ धरु गिरि, दहमुह कंस विणासा पिअवासा सुंदर हासा ।
वलि छलि महि हरु असुर विलयकरु, मुणिजणमाणसहंसा पिअ सुहभासा उत्तमवंसा
॥२१५॥[1]

३—कविका संदेश

सन्तोष-और निराशा-वाद

सेर एक्क जइ पावउ घित्ता । मंडा वीस पकावउ णित्ता ।
टंकु एक्क जउ सेंधव पाआ । जो हउ रंको सो हउ राआ ॥१३०॥ (२२४)
राआ लुद्ध समाज खल, वहु कलहारिणि सेवक धुत्तउ ।
जीवण चाहसि सुक्ख जइ, परिहर घर जइ बहुगुण-जुत्तउ ॥१६६॥ (२७७)
पंडव-वंसहि जम्म घरीजे । संपअ अज्जिअ धम्मक दिज्जै ।
सोउ जुहुट्ठिर संकट पावा । देवक लेक्खिल केण मेंटावा ॥१०१॥ (४१२)
सो जण जणमउ सो गुण-मंतउ । जो कर पर-उवआर हसंतउ ।
जे पुण पर-उपआर विरुझ्झउ, ताक जणणि किण थक्कउ वंझउ ॥१४६॥ (४७०)

§ ४३: हरिब्रह्म

काल—तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध (चंडेश्वर-मंत्रीका काल)[2]। देश—बिहार

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

जहा सरअ-ससि-विंब, जहा हर-हार-हंस ठिअ,
जहा फुल्ल सिअ कमल, जहा सिरि-खंड खंड किअ ।

---

[1] पृष्ठ ४३५, ४८०, ५७३, ५८६ [2] चंडेश्वर मिथिला-नेपाल के राजा हरिसिंह (१३१४-२५) के मंत्री थे, जिन्होंने "कृत्यरत्नाकर", "कृत्य-चिन्तामणि", "दानरत्नाकर" आदि ग्रंथ लिखे ।

प्रति-अंगुलि मुंदरि हीरहिं सुदरि, कंचन-रज्ज सुमध्य तनू ।
तसु तूणहु सुदर कीजिय मदर, थापह वाणहं शेष धनू ॥२०६॥
जयति जयति हर वलयित-विषधर, तिलकित सुदर चंद्रं मुनि-आनंद जनकंदं ।
वृषभ-गमनकर त्रिशुल-डमरु-धर, नयनहि डाहु अनंगं शिर गंगं गौरि अधंगं ।
जयति जयति हरि भुजयुग धरु गिरि, दशमुख-कंस-विनासा प्रियवासा सुदर-हासा ।
बलि छल् महि धरु असुर-विलय करु, मुनि-जन-मानस-हंसा प्रियभाषाउत्तमवंशा
॥२१५॥

३—कविका संदेश

सन्तोष और निराशावाद

सेर एक यदि पावउँ घृत्ता, मंडा बीस पकावउं नित्ता ।
टक एक यदि सेँधा पाया, जो हौं रंकउ सो हौं राजा ॥१३०॥
राजा लुब्ध समाज खल, वधु कलहारिनि सेवक धूर्त्तउ ।
जीवन चाहसि सुक्ख यदि, परिहर घर यदि बहु-गुण-युक्तउ ॥१६६॥
पंडव-वंशहि जन्म धरीजे, संपति अर्जिय धर्म कों दीजै ।
सोउ युधिष्ठिर संकट पावा । देवकें लिक्खल कौन मिटावा ॥१०१॥
सो जन जनमेउ सो गुणवतउ । जो कर पर-उपकार हसंतउ ।
जो पुनि पर-उपकार विरुद्धउ । ताकि जननि किनु थाकेउ[1] बाँझउ ॥१४६॥

§ ४३: हरिब्रह्म

(?) । कुल—ब्रह्मभट्ट (?), राजदर्बारी । कृतियाँ—स्फुट[2]

१—मंत्री (चंडेश्वर)-प्रशंसा

यथा शरद-शशि-बिंब यथा हर-हार-हंस ठिय ।
यथा फुल्ल-सित-कमल, यथा श्रीखड-खंड किय ।

---

[1] रहेउ [2] "प्राकृत-पैंगल" पृष्ठ १८४

जहा गंग-कल्लोल, जहा रोसाणिअ रुप्पइ,
जहा दुद्धवर सुद्ध फेण फँफाइ तलप्पइ।
पिअपाअ पसाए दिट्ठि पुणि, णिहुअ हसइ जह तरुणि जण।
वरमति **चंडेसर** कित्ति तुअ, तत्थ पेक्ख **हरिबंभ** भण ॥१०८॥ (१८४)

§ ४४: अंबदेव सूरि

काल—१३१४। **देश**—अन्हिलवाडा (गुजरात[1])। **कुल**—वैश्य(?),

१—सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिणि दिणि दिनु दक्खाउ, समरसीहि जिण धम्मवणि।
तसु गुण करउँ उदोउ, जिम अंधारइ फटिकमणि ॥
सारणि अमियतणीय, जिणि वहॉवी मरुमंडलिहिँ।
किउ कृतजुग अवतारु, कलिजुगि जीवउ बाहुवले ॥
ओसवाल कुलि चदु, उदयउ एउ समान नहिँ।
कलिजुगि कालइ पासि, छेदीयउ सचराचरहिँ ॥....
रतन कुक्खि कुलि निम्मलीय भोली पुतुजाया।
सहजउ साहणु समरसीहु बहु पुन्निहि आया ॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाण।
रत्न परीक्षा रंजवइ राय अउ राण ॥
तउ देसल नियकुल पईव ए पुत्र सधन्न।
रूपवंत अउ सीलवंत परिणाविय कन्न ॥
गोसलमुत्ति आवास कियउ अणहिलपुर नयरे।
पुन्न लहइ जिम रयण माहि नर समुद्दुह लहरे ॥
—समर-रास (पृ० २७-२९)

---

[1] "**प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह**" G.O.S. vol. XIII.

यथा गंग-कल्लोल, यथा रोषाणित[1] रुपै ।
यथा दुग्धवर-शुद्ध-फेन फंफाइ तलप्पै ।
प्रियपाद प्रसादे दृष्टि पुनि, निभृत हसै जिमि तरुणिजन ।
वरमत्रि **चंडेश्वर** कीर्त्ति तव, तत्र पेखु हरिब्रह्म भन ॥१०८॥

§ ४४: अंबदेव सूरि

जैन साधु । कृति—समर-रास ।

१—सामन्त-समाज

(१) सेठ (समरसिंह)की प्रशंसा

जिन दिनं दिन दक्षाउ, **समरसिंह** जिनधर्म-वणि ।
तसु गुण करउं उजोअ, जिमि अंधारें फटिकमणि ॥
सरणी अमियतनीय[2]; जिन बहाइ मरु[3]मडलहिं ।
किउ कृतयुग अवतार, कलियुग जीतें उ बाहुबल ॥
ओसवाल कुल-चद्र, उदयें उ एउ समान नहिं ।
कलियुग कालइ पाश, छेदीयऊ सचराचरहिं ॥
रतनकुक्षि कुल निर्मलीय भोली पुतु जाया ।
सहजउ साधन समरसीह बहु पुण्यहिं आया ॥
लहु अलगइ सुविचार चतुर सुविवेक सुजाना ।
रतन-परीक्षा रंजवई राजा अरु राना ॥
तौ देसल निज कुलप्रदीप एंहु पुत्र सधन्या ।
रूपवंत अरु शीलवंत परिनाविय कन्या ॥
गोसल-सुत आवास कियउ **अनहिलपुर** नगरे ।
पुण्य लहै जिमि रतन माँझ नर समुदह लहरे ॥
—समररास (पृ० २६-२६)

---

[1] रगडा [2] अमृतकेर [3] मारवाड़

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ)की प्रशंसा

तहि अच्छइ भूपतिहि भुवण-सतखंड-पसत्थो ।
विश्वकर्म विज्ञानि करिउ धोडउ निय हत्थो ।।
अमिय सरोवरु महसलिगु इकु धरणिहिँ कुडलु ।
कित्तिषभु किरि अवरदेसि मागइ आखडलु ।।
अज्जवि दीसइ जत्थ-धम्मु कलिकालि अगजिउ ।
आचारिहिँ इह नयर-तणइ सचराचरु रजिउ ।।
पा[1]तसाहि [2]सुरताण भीवु तहिँ राजु करेई ।
अलपखानु हीदूअह लोय धणु मानु जु देई ।।
साहु राय **वेसल**ह पूत्तु तसु सेवइ पाय ।
कलाकरी रंजविउ खानु बहु देइ पसाय ।।
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरथु पभणीजइ ।
पर-उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजइ ।।

२–(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगलि मुनिवर-सघु मावय जणा । तिलु न षिरइ तिम मिलिय लोय घणा ।।
मादल वंस विणा धुणि वज्जए । गुहिर भेरीय रवि अबरे गज्जए ।।
नवय पाटणि नवउ रगु अवतारिएँ । सुखिहिँ देवालय संखारी-संचारिएँ ।।
घरि बयसवि करि केवि समाहिया । समरगुण रंजिउ विरलउ रहियउ ।।
जयतु कान्हु दुइ संघपति चालिया । हरिपालो लहुको महाधर दृढ़ थिया ।।
वाजिय संख असंख नादि काहल दुडदुडिया ।
घोडे चडइ सल्लार सार राउत सीगडिया ।
तउ देवालय जोयि वेगि घाघरि रवु झमकइ ।
सम विसम नवि गणइ कोइ नवि वारिउ थक्कइ ।।

---

[1] बादशाह [2] सुलतान

(२) बादशाह (अलाउद्दीन) और मीर (अलप खाँ)की प्रशंसा

तहँ आछे भूपतिहँ भुव सतखंड प्रशस्तो ।
विश्वकर्म विज्ञान करेँउ धोइय निज हस्ते ॥
अमिय-सरोवर सहसलिंग ऍक धरणिहिं कुडल ।
कीर्त्ति-खभ फुर अवर देश माँगइ आखंडल ॥
आजउ दीसै यत्र धर्म कलिकाल अगजेउ ।
आचारेँहि इह नगरकेर सचाचर रंजेँउ ।
पादशाह सुरतान **भीवु** तहँ राज करेई ।
अलपखान हिदुअहँ लोग धनमान जोँ देई ॥
साहु राय **देसलह** पुत्र तसु सेवै पाये ।
कलाकरी रजविउ खान वहु देइ प्रसादे ॥
मीर मलिक मानियै समर समरथ प्र-भनीजै ।
पर-उपकारी माँझ लेख जसु पहिली दीजै ॥

२–(जैन) तीर्थयात्री-सेना

आगे मुनिवर सघ श्रावक-जना । तिल न खिड़ै तिमि मिलिय लोग घना ॥
माँदल-वंश-वीणा धुनि बाजई । गहिर भेरीरव अवरेँ गाजई ॥
नवक पाँटन नवउ रंग अवतारेँऊ । सुखेँहिँ देँवालय शंख-रारी संचारेँऊ ।
घरेँ वइसवि करि कोइ समाहिया । **समर**-गुण-रंजित विरलउ राहिया ॥
जयतु कान्ह दुइ संघपति[1] चालिया । **हरिपालो लंढुको महाधर** दृढ ठिया ॥
बाजिय शंख असंख्य नाद काहल दुडदुडिया ।
घोडे चढे **सलार**[2]सार **राउत** सीगडिया ॥
तब देवालय जोइ वेगि घाघर रव झमकै ।
सम-विषमा ना गनै कोइ ना वारिउ थाकै[3] ॥

---

[1] जैन गृहस्थोंके संघके प्रधान [2] कमांडर [3] ठहरे, रहे ।

सिजवाला धर धडहंडइ वाहिणि बहु वेगे।
धरणि धडक्कइ रजु उडए नवि सूझवि मागे॥
हय हीसइ आरसइ करह वेगि वहइ बइल्ल।
सादकिया थाहरइ अवरु नवि देई बुल्ल॥
निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासण॥
आगे वाणिहि सचरए सघपती साहु **देसलु**।
बुद्धिवंतु बहुपुनिवंतु परिकमिहिं सुनिश्चलु॥
पाछे वाणिहि सोमसीहु साहुसहजा पूतो।
सांगणु साहु दूणिगह पूतु सोमजिनि जुत्तो॥
जोड करी असवार मॉहि आपणि समरागरु।
चडिय हीड चहुगमे जोइ जो मघ अमुहकरु॥
सेरीसे पूजियउ पासु कलिकालिहिं सकलो।
सिरखेजि थाइउ **धवलक**ए संघु आविउ सयलो॥
धंधूकउ अतिक्रमिउ ताम **लोलियाण**इ पहूतो।
नेमि भुवणि उछव् करिउ **पिपलालीय** वत्तो॥
—वही (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

संवच्छरि इक्कहत्तरए थापिउ रिसहजिणिदो।
चैत्रवदि सातमि पहुतघरे नंदऊ ए नंदउ ए नंदउ जा रवि चंदो॥
पासउ सूरिहिं गणहरह नेउअच्छ निवामो।
तसु सीसहिं, अंबदेव सूरिहिं रचियउ ए रचियउ ए रचियउ समरारासो॥
—समररासो[1]

---

[1] पृष्ठ ३७

सिजवाला धर धड़धड़ै वाहिनि वहुवेगे ।
धरनि धड़क्कै रज ऊड़ै ना सूझै मार्गे ।।
हय हिनसैं ग्रारसैं करभ वेग वहैं बइल्ला ।
सा'दकिया थाहरै ग्रौर ना देई बोल्ला ।।
निशि दीपा झलझलैं जेम ऊगिय तारागण ।
पावल पाव न पाइयै वेंगि वहै सुखासन ।।
ग्रागे वाणी संचरै संघपति साहु **वेसला** ।
बुद्धिवंत वहुपुण्यवंत परिक्रमहिँ सुनिश्चला ।।
पाछे वाणिहि **सोमसीह** साँहु सहजा-पूतो ।
सांगण साहु **दूनिगह** पूत सोम जिन युक्तो ।।
जोड़करी ग्रसवार माँह ग्रापुहिँ समरागर ।
चढिय हिड चहुगमे जोय जो संघ ग्रसुखकर ।।
सेरीसे पूजियउ पार्श्व कलिकालहिँ सकलो ।
सिरखेजी ठहरेउ **धवलकह** संघ ग्रायेंउ सकलो ।।
धंधूकउ ग्रति क्रमेंउ ताँह लोंलि यानह वहुतो ।
नेमिभुवन उत्सव करेंउ **पिपलालिय** प्राप्तो ।।
—वही (पृ० ३२-३३)

३—ग्रंथ-रचना-काल

सवत्सर एकहत्तरे थापेंउ ऋषभ जिनेंद्रो ।
चैत्रवदी सातमि पहुतघरें नंदउ जो लों रवि चंद्रो ।।
पार्श्वंउ सूरिहिँ गणधरह **नेउग्रच्छ** निवासो ।
तसु शिष्येहिँ **ग्रँबदेव** (सूरि) रचियउ समरारासो ।।
—समररास (पृ० ३७)

---

[1] **सवार, गाड़ीवान ग्रादि**

§ ४५: अज्ञात कवि

काल—१३०० (ई०), देश—गुजरात।

१—ककका[1]

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कत्थ वच्छ कुवलय-नयण, सालिभद्द सुकुमाल।
भद्दा पथणइ देव तुहु, कह थिउ इत्तिय वार॥
खरउं कुड्डु ता पुत्त कहि, का देसण किय वीरि।
कवण अत्थु वरवाणिइउ, कंचणगोर सरीरि॥
खार समुद्दहर आगलउ, माहर कढिउ ससारु।
संजमपवहण हीण तमु, कियइ न लब्भइ पारु॥
गमयमत्त वीरिय पवर, जे जगि पुरिस पहाण।
सालिभद्द भद्दा भणइ, सजमु सोहइ ताण॥
घण कुकुम चंदण रसिण, तुह तणु वासिउ वच्छ।
वयह परीसह किम सहिसि, मुणि गगाजल सच्छ॥
नविवउ लिज्जइ तरुण पणि, सालिभद्द सुकुमाल।
महु कुलमडल कुलतिलय, कुलपईव कुलबाल॥
चरणु लेमिजइ पुत्त तुहु, नंदणनीय पवीण।
रोअती भद्दा भणइँ, मइँ किम मेल्हिसि दीण॥
छण मइलंछण समवयण, तुह भज्जा बत्तीस।
ते विलवंती पेमभरि, किम कारिसि कुलईस॥
जणणि भणइ जां बालपणु, ता पुत्तह पडिवंधु।
तारुमइ बुल्लाविअउ, बहु उन्नाडइ कधु॥

---

[1] बाराखड़ी

§ ४५: अज्ञात कवि

कृति—शालिभद्र-कक्का ।[1]

१—कक्का

(१) वैराग्य और वात्सल्य

कहाँ वास कुवलय-नयन, **शालिभद्र** सुकुमार ।
भद्रा प्र-भनै देव तुहु, कहँ रहु एत्तिय वार ॥
खरउ[2] कुडु[3] ता पुत्र कहँ, का देशन किउ वीर ।
कौन अर्थ वर-वाणिइउ, कचन गौर शरीर ॥
खार समुद्रहँ आगलउ, मा हर कढेंउ संसार ।
संयम-प्रवहण-हीन तसु, किये न लब्भै पार ।
गमय-मत्त वीर्य प्रवर, जे जग पुरुष प्रधान ।
शालिभद्र भद्रा भनै, संयम सोहै तान[4] ॥
घनकुकुम चंदन रसेंहिं, तव तन वासेंउ वत्स ।
व्रतहँ परीसह[5] किमि सहिसि, मुनि गगाजल स्वच्छ ॥
नववय छीजै तरुणपन, शालिभद्र सुकुमार ।
मम कुल-मंडन कुल-तिलक, कुलप्रदीप कुलपाल ॥
चरण लेसि यदि पुत्र तुव, नदन नीच प्रवीण ।
रोअंती भद्रा भनै, मोंहिं का छाडेंसि दीन ॥
छण-मृगलांछन सम-वदन, तुव भार्या बत्तीस ।
ते विलपंती प्रेमभर, का कारेसि कुलईश ॥
जननि भनै जो वालपन, सो पुत्रह प्रतिवंधु ।
तारमती बोलावियउ, वहु उन्नाडै[6] कंधु ॥

---

[1] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. Vol. XIII

[2] अच्छा [3] आश्चर्य [4] तिनको [5] उपसर्ग, कष्ट [6] हिलावै

झलकंतउ कंचणघडिउँ, सत्तभूमि पासाउ ।
विहवउ कोडाकोडि धण, कहि कोइँ ऊणउ ठाउ ॥
नरवइ सेणिउ तुम्ह पहु, सुरगोभद्दु सुताउ ।
नित्तु नवएँ आभारणू, कहि को चित्तविसाउ ॥
टलटलेसि धम्मत्थ पुण, धम्मगहिल्ला बाल ।
धम्म करेवा महु समउ, तुहु धणु रक्खण बाल ॥
ठणकइ पुत्तसु चित्तिमहु, पुत्त विहूणिय नारि ।
विहविह मुच्चइ दुहु सहइ, दीणी परघर बारि ॥
डरपिसि सुणियइ सीहसरि, निसुणिसि सिव-फिक्कार ।
भुक्खिउ निसिइउ वच्छ, तुह किम हिडिसि नार ॥
ढलइँ चमर-वर पुत्त तुहु, सीस धरिज्जइ छत्तु ।
मणि सीहासणि बइठणउँ, किणि कारणि वइचित्तु ॥
नवउँ अंतेउरु नवउँ घरु, नवजोवणु नवरंगु ।
सालिभद्दु नवकणयतणु, ढलकरि चरण पसगु ॥
तरुअरतलि आवासु मुणि, भिक्खह भोयणु पाणु ।
भूमडलि आसणु सयणु, वच्छ चरणु दुहठाणु ॥
थल-डूँगर पाहणसघण, कक्कर कट तुसार ।
पाणह वज्जिय गुरि सहिउ, हिडिसि केम कुमार ॥
दहविह धम्मु करेसि किम, किम सोक्खिसि निय अंगु ।
वच्छ तहं ता दोहिलउँ, होसिइ तुह सीलंगु ॥
धम्मु किइउ जिम रिसहजिणि[1], तिम किज्जइ सुअ इत्थु ।
पहिलउं साखिहिँ पसरिउ, अंतिय यासिउ तित्थु ॥
नवकप्पूरिहि पूरिया, नन्दण कोमल केस ।
केतगि वालइँ वासिया, किम उद्धरिसि असेस ॥

---

[1] एक तीर्थंकर

झलकंतउ कंचन गढिय, [1]सप्तभूमि प्रासाद ।
विभवउ कोटाकोटि धन, कहँ कोंउ ऊनउ ठाँव ।।
नरपति श्रेणिक तुम्ह प्रभु, सुरगोभद्र सुताउ ।
नित्य नवै आभारणू, कहँ को चित्त-विषाद ।।
टलटलेसि धर्मार्थ पुनि, धर्म-गहिल्ला बाल ।
धर्म करेबा मम समय, तुव धन-रक्षण-काल ।।
ठापं पुत्र सों चित्त मैं, पुत्र विहूनी नारि ।
विभवहिं मुचै दुख सहै, दीनी परघर वारि ।।
डरपसि सुनिया सिहस्वर, नि-सुनिय शिवाँ-फेक्कार ।
भुखिय तृषितउ वत्स तुहुँ, किमि हिंडीयसि नार ।।
ढलैं चमर-वर पुत्र ! तव, सीस धरिज्जै छत्र ।
मणिसिहासनें वइठनउ, किन कारण वैचित्र ।।
नव अंतःपुर नवघर, नवयौवन नवरग ।
शालिभद्र नवकनकतनु ढलकर चरण-प्रसंग
तरुवरतल आवास मुनि, भिक्षहँ भोजन-पान ।
भूमंडल आसन-शयन, वत्स ! चरण दुख-थान ।।
थल डूंगर पाहन सघन, कंकड कट तुषार ।
पनही वर्जिय गोड सन, हिंडसि केम कुमार ।।
दशविध धर्म करेसि किमि, किमि शोषसि निज अग ।
वत्स ! तहाँतहँ दोहलउ, होंइहै तुव शीलांग ।।
धर्म करेंउ जिमि ऋषभ जिन, तिमि कीजै सुत अत्र ।
पहिले सखिहिं पसारियउ, अंते यायेउ तीर्थ ।।
नवकर्पूरहिं पूरिया, नन्दन ! कोमल केश ।
केतकि वालैं वासिया, किमि उद्धरिसि अशेष ।।

---

[1] सात महलोंवाला

पट्टंसुअ तइँ पहरियां, रसियउ दिव्व अहारु ।
सुअ उव्वासिहिं सोसिया, केम करेसि विहारु ॥
फणि-रायह सिरिपुत्त मणि, मुल्लेणय बहुमुल्लु ।
सा गिण्हंता पाणहर, संजम-भरु तस तुल्लु ॥
बत्तीसहँ पल्लंकि तउं, सयण करइ नितु जाय ।
[1]डुंगरि कासुगि करिसि किम, बलि किज्जउँ तह काय ॥
भमिसि विहारिहि भारिअओ, नदण त सुकुमाल ।
वीर जिणदह चरणु पुणु, मुणि बावन्नउँ फालु ॥
मयलंछण जिमि तारयहँ, सयलहँ किल भत्तारु ।
तं बत्तीसह बहुअरहं, एक्कु देव आधारु ॥
यइ तउँ संजमु लेसि सुअ, मेल्हिवि सयलु सिणेहु ।
ता गोभद्दु अभागिहउ, हा धिगु छुडुउ गेहु ॥
रहि रहि नंदण वयणु सुणि, मामा मइँ मतावि ।
तुह विणु नितु कुण पूरिसइ, मुक्काहरणहँ वावि ॥
लडकइँ सउँ संजमु लियल, नदसेणु मुणिराउ ।
सो संजमुपव्वइय सुअ, भोगह कम्मपसाय ॥
वच्छ ति नारी दुक्खिनिहि, जाहँ न कंतु न पुत्तु ।
मुहुतइं नंदण जाइयइँ, हिव आविऊँ निरुत्त ॥
सहसाकारिहिँ गहियवउ, सुयइ कडरिएण ।
नंदण तेणय नरइदुह, पामिय भट्ठवएण ॥
षलह मणोरह पूजिसइँ, सज्जण होसिइ सोमु ।
नन्दण तु थाइसि समणु, एँउ महु कम्महँ दोसु ॥
समल देह कप्पउ समल, रत्तिदिवस गुरुआण ।
होइसइं तुव भद्दा भणइ, पर-आइत्त पवाण ॥

---

[1] वृक्ष-वनस्पतिहीन पर्वतको डूंगर कहते हैं ।

पट्टांशुक तैं पहिरिया, रसियउ दिव्य-अहार ।
सुत उपवासेंहि शोषिया, केम करेसि विहार ॥
फणिराजह श्रीपुत्र मणि, मूल्येनउ वहुमूल्य ।
सो गृहणते प्राणहर, संयमभर तसु तुल्य ॥
बत्तीसेहें पल्लंग तैं, शयन करै नित जाय ।
डूंगरि कामुग[1] करिमि किम, बलि किज्जउं तह काय ॥
भ्रमसि विहारें भारिअउ, नदन सो सुकुमार ।
वीरजिनेंद्रहँ चरण पुनि, मुनि बावनऊ फाल[2] ॥
मृगलाछन जिमि तारकहँ, सकलहँ कर भर्त्तार ।
तिन बत्तीसहँ वधुअरहँ, एक देव आधार ॥
यदि तैं संयम लेसि सुत, मेलिय[3] सकल सनेह ।
ता गोभद्र अभागिहउ, हा धिग छूटेंउ गेह ॥
रहि रहि नंदन वयन सुनि, मा मा मैं संताप ।
तुह विन नित को पूरिहैं, मुक्ताभरणहँ वापि ॥
लडकैं सँग सयम लियउ, **नंदसेन** मुनिराव ।
सो संयम प्रव्रजिय सुत, भोगहँ कर्म प्रसाद ॥
वन्स तें नारी दुःखिनी, जाहँ न कत न पुत्त ।
मम तैं नदन जाइइहि, क्यों आवेंऊँ निरुत्त[4] ॥
सहसा कारेंहिं गहियऊ, सुनिय कंडरीकेहिं[5] ।
नंदन ! ताते नरक-दुख, पाइय भ्रष्टव्रतेहिं ॥
खनह मनोरथ पूजिहै, सज्जन होंइहै शोष ।
नंदन ! तूं होयेंउ श्रमण, एँहु मम कर्महँ दोष ॥
साँवर देह कल्पउ सँवर, रातदिवस गुरुज्ञान ।
होइहै तू भद्रा भनै, पर-आयत्त-पराण ॥

---

[1] कायोत्सर्ग=खड़े बैठे ध्यानावस्थ होना [2] छलाँग
[3] छोड़ [4] निरर्थक [5] कंडरीककी कथा

हसत रोअंता पाहुणउ, ताम हसंता होउ।
सालिभद्द सजमु लियइ, महु बुज्झिअइ पमोहु ॥
—सालिभद्द-कक्का[1]

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कित्ती सा सलहिज्जइ जा सुणीइ अप्पणेहिं कण्णेहिं।
पच्छा मुअण मुदरि ! सा कित्ती होउ मा होउ ॥
जस-सहित जे नर हुआ, रवि पहिला उगंति।
जोगा जाते दीहडे, गिरि पत्थरा ढुलंति ॥
कीरति हूंदा कोटड़ा, पाडयाही न पडंति ॥
—उपदेशतरंगिणी[2] (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर[3] सूरि

काल—१३१४ ई० (?)। देश—गुजरात। कुल—जैन साधु।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

अह सामल कोमल केशपास किरि मोरकलाउ।
अद्ध-चंद-समु भालु मयणु-पोसइ भउवाउ ॥

---

[1] पृष्ठ ६२-६७ [2] "उपदेश-तरंगिणी" (रत्न-मन्दिर गणि १४६० ई०) धर्माभ्युदय-प्रेस, बनारस (२४१७ वीर संवत्) [3] कविराज राजशेखर नहीं

हसत रोंअंता पाहुनउ, तहाँ हसंता होउ।
शालिभद्र सयम लियै, मम बूझिहै प्रमोह ॥
—शालिभद्र-कक्का (पृ० ६२-६७)

§ ४६: अज्ञात कवि (१३०० ई०)

१—जीते-जी कीर्त्ति

कीर्त्ति मा सलहिज्जै जा सुनीय आपनेहि कानेहिँ।
पाछे मुये प'सुदरि ! सा कीर्त्ती होहु न होहु ॥१२॥
यश-सहित जो नर हुआ रवि पहिला ऊगंत।
युगाँ जाते दीहड़े[1] गिरि-पत्थरा ढुलति ॥१३॥
कीरति हदा कोटडा पाड़्या ही न पडति ॥
—उपदेशतरंगिणी (पृ० २७५)

§ ४७: राजशेखर सूरि

कृति—नेमिनाथ-फाग[2]।

१—सामन्त-समाज

(१) नारी-सौंदर्य

श्यामल कोमल केशपाश जनु मोरकलाप।
अर्धचंद्रसम भाल मदनपोसै भउवाहँ ॥

---

[1] दिवस [2] "प्राचीन-गुर्जर-काव्य-संग्रह" G.O.S. vol. III

वंकुडिया लीय भुहंडियहं भरि भुवणु भमाउइ ।
लाडी लोयण लह कुडलइ सुरसग्गह पाडइ ॥
किरि ससिबिंब कपोल कन्नहिँ डोल फुरंता ।
नासावसा गरुड-चंचु दाडिमफल दंता ॥
अहर पवाल तिरेह कठु राजल सर रूडउ ।
जाणुवीणु रणरणइं जाणु कोइलटहकडलउ ॥
सरल तरल भुय वल्लरिय सिहण पीण घण तुग ।
उदरदेमि लंकाउलिय सोहइ तिवल-तरंगु ॥
कोमल विमल नियंब बिंब किरि गंगा-पुलिणा ।
करि-करऊरि हरिण जघ पल्लव करचरणा ।
मलपति चालति वेलहीय हंसला हरावइ ।
संझारागु अकालिवालु नहकिरणि करावइ ॥
सहजिहिं लडहीय रायमएँ सुलखण सुकुमाला ।
घणउं घणेरउं गहणगहए नवजुव्वण बाला ॥
भंभरभोली नेमि, जिण वीवाह सुणेई ।
नेहगहिल्ली गोरडी, हियडाई विहसेई ॥
सावण सुकिल छट्ठि दिणि वावीसमउ जिणदो ।
चल्लइ राजल परिणयण कामिणि नयणाणदो ॥
—नेमिनाथ-फाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किम किम राजलदेवितणउ[1] सिणगारु भणेंवउ ।
चपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुमि कसतूरी सारी ।
सीमनइ सिंदूररेह मोतीसरि सारी ॥

---

[1] रानी

वांकडिया लिय भौंहडियहँ भर भुवन भ्रमाडइ ।
लारी लोचन लह कुडले[1] सुस्वर्गहें पातै ।।
जनु शशिबिब कपोल कर्ण हिंडोल फुरंता ।
नासावंशा गरुड-चंचु, दाडिमफल दंता ।।
अधर प्रवालहँ रेख, कंठ **राजल** सर रुडऊ[2] ।
जनु-वीणा रणरणै, जान कोंइलटहकलऊ[3] ।।
सरल तरल भुजवल्लरीय, थन-पीन-तुग ।
उदर-देशें लका सोहै त्रिबली तरंग ।।
कोमल विमल नितंब बिंब जनु गंगापुलिना ।
करि-कर उरुयुग हरिन-जंघ पल्लव कर-चरणा ।।
मलपति[4] चालति बेलीइव हंसला हरावै ।
संध्यारागा अकाल वाल नखकिरण करावै ।।
सहजें सुदर-राजमति, सुलखन सुकुमारा ।
घनउँ घनेरउ गहगहे, नवयौवन वाला ।।
भंबलभोली[5] नेमि जिन वीवाह सुनेइ ।
नेह गहिल्ली गोरडी हियरेई विहसेइ ।।
श्रावण शुक्ला छट्ठ दिन, बीई सवउँ जिनेन्द्र ।
चल्लै **राजल** परिणयन, कामिनि नयनानंद ।।
—नेमिनाथफाग (पृ० ८३-८४)

२—शृंगार-सजाव

किमि किमि राजलदेवि केर शृंगार भनेबउ ।
चंपकगोरी अतीधौत अँग चंदन लेंपेबउ ।।
खोंप भरावेउ जाति-कुसुम कस्तूरी सारी ।
सीमंतें सिदूर-रेख मोतीसर सारी ।।

---

[1] कटाक्ष [2] सुन्दर [3] टहकना [4] मस्त [5] भोली-भाली

नवरंगी कुंकुमि तिलय किय रयणतिलउ तसु भाले ।
मोती कुण्डल कन्नि थिय बिबालिय कर जाले ।।
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुंहकमलि तंबोलो ।
नागोदर कठलउ कठि अनुहार विरोलो ।।
मरगद [1]जादर कचुयउ फुड फुल्लह माला ।
करें ककण मणि-वलय चूड खलकावइ बाला ।।
रुणुझुणु रुणुझुणु रुणुझुणएँ कडि घाघरियाली ।
रिमझिमि रिमझिमि रिमझिमएँ पयनेउर जुयली ।।
नहि आलत्तउ वलवलउ सेअसुय किमिमि ।
अखडियाली रायमइ प्रिउ जोअइ मनरसि ।।
—वही (पृ० ८३-८४)

---

[1] 'चादर' शब्दका पूर्व रूप

नवरंग कुकुम तिलक किय रतन तिलक तसु भाले ।
मोती कुडल कर्णे ठिय बिंबालिय कर जाले ।।
नरतिय कज्जल-रेख नयनें मुखकमल तँबूलो ।
नागोदर कठलउ कंठ अनुहार विरोलो ।।
मरगत--जादर[1] कंचुकहउ फुर फूलहँ माला ।
करहीं ककण-मणिवलय चूड खड़कावै वाला ।।
रुनझुन-रुनझुन-रुनझुनै कटि घाघरियाली ।
रिमझिम-रिमझिम-रिमझिमै पद नूपुर युगली ।।
नखें अलक्तक वलवलउ श्वेताशु-विमिश्रित ।
अंखड़ियाली राजमनि प्रिय जोवै मन रसि[2] ।।
--वही (पृ० ८३-८४)

---

[1] दोनों जरीके कीमती वस्त्र [2] रस रखकर

हिन्दी काव्य-धारा

परिशिष्ट

– १ –

ग्रंथ, जिनसे सहायता ली गई

– २ –

कवियोंका कालक्रम, उनकी रचनाएँ

– ३ –

देहाती और तद्भव शब्द

– ४ –

सम-सामयिक राजवंश



नागार्जुन

परिशिष्ट १

निम्नलिखित ग्रथों, संग्रहों और साहित्य-पत्रों (Journals)से सामग्री एकत्र की गई—

१. पुरातत्त्व निबधावली—राहुल सांकृत्यायन। इडियन प्रेस (प्रयाग)से प्रकाशित।

२. सिद्धोंके दोहे—The Journal of Department of Letters, Calcutta University के Vol. XXVIII मे।

३ चर्यापद—J. D. L., Cal. के Vol. XXX मे।

४. स्वयभू रामायण (हस्तलिखित)—भाडारकर इन्स्टीटचूट, पूनामे सुरक्षित।

५. गोरखवानी—हिदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग)से प्रकाशित; १९९९ वि०सं०।

६. सावयधम्म दोहा।

७. महापुराण—पुष्पदत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा माणिकचंद्र दिगम्बर-जैन-ग्रंथ-मालामे सम्पादित, तीन जिल्द (१९३७, १९४०, १९४१ ई०)।

८. जसहरचरिउ—पुष्पदंत; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा करंजा-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)मे सम्पादित (१९३१ ई०)।

९. नायकुमारचरिउ—पुष्पदंत; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा देवेद्र-जैन-ग्रंथमाला (करंजा, बरार)मे सम्पादित। (१९३३)।

१० परमात्मप्रकाश दोहा और योगसार दोहा—योगीदु; ए० एन्० उपाध्ये द्वारा श्रीरायचंद-जैन-शास्त्रमाला (बंबई)की १०वीं ग्रंथसंख्या (१९३० ई०)।

११. पाहुड़दोहा—रामसिह; करजा-जैन-ग्रंथमालामें प्रकाशित।

१२. भविसयत्तकहा—धनपाल; गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ोदा द्वारा प्रकाशित (१९२३ ई०)।

१३. प्रबंधचितामणि—मेरुतुगाचार्य; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित और विश्वभारती, शातिनिकेतनसे प्रकाशित।

१४. संदेशरासक—अब्दुर्रहमान; 'भारतीय विद्या'मे मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित (मार्च १९४२ ई०)।

१५. प्राकृतपैगल—चंद्रमोहन घोष द्वारा Bibliothica Indica मे सम्पादित (१९०२ ई०)।

१६. करकंडचरिउ—कनकामरमुनि; प्रोफेसर हीरालाल जैन द्वारा करज जैन-ग्रथमालामे सम्पादित (१९३४ ई०)।
१७. प्राचीनगुर्जरकाव्यसंग्रह—गायकवाड ओरियटल सिरीज, बडोदामे प्रकाशि (१९२७)।
१८. अपभ्रशकाव्यत्रय—गायकवाड ओरियटल सिरीज़, बडोदामे प्रकाशि (१९२७ ई०)।
१९. प्राकृतव्याकरण—हेमचद्र सूरि; डाक्टर पी० एल्० वैद्य द्वारा सम्पादि और मोतीलाल लाधाजी (पूना) द्वारा प्रकाशित (१९२८ ई०)।
२०. छदोऽनुशासन—हेमचंद्र सूरि, देवकरण-मूलचंद (बबई) द्वारा प्रकाशि (१९१२ ई०)।
२१. नेमिनाथचरित—हरिभद्र सूरि; डाक्टर हरमन् याकोबी द्वारा सम्पादित
२२. उपदेशतरगिणी—रत्नमदिरगणि; धर्माभ्युदय प्रेस, बनारसमे प्रकाशित
२३. कुमारपालप्रतिबोध—सोमप्रभ सूरि; गायकवाड ओरियटल सिरीज बडोदासे प्रकाशित (१९२० ई०)।
२४. पृथ्वीराजरासो
२५. अनुव्रतरत्नप्रदीप—लक्खण; (अप्रकाशित) भारतीय विद्याभवन, बबई सुरक्षित।

परिशिष्ट २

कवि और उनकी कृतियाँ; उनके समसामयिक राजा आदि

आठवीं शताब्दी

कवि	कृतियाँ
सरहपा—७६० ई०	उपदेशगीति दोहाको
	तत्त्वोपदेशशिखर
	भावनाफल दृष्टिचर्या
	वसंत तिलक दोहाको
	महामुद्रोपदेश ,,

कवि	कृतियाँ
	सरहपादगीतिका
शवरपा—८८० ई० धर्मपाल (७७०-८०६)	चित्तगुह्यगभीरार्थगीति
	महामुद्रावज्रगीति
	शून्यतादृष्टि
	षडंगयोग
	सहजसंवरस्वाधिष्ठान
	सहजोपदेश स्वाधिष्ठान
स्वयंभूदेव—७९० ई० ध्रुव धारावर्ष (७८०-९४)	हरिवंशपुराण
	रामायण (पउरचरिउ)
	स्वयंभूछंद
भूसुकपा—८०० ई० धर्मपाल-देवपाल (शांतिदेव) (७८०-८०६-४९)	सहजगीति

नवीं शताब्दी

लुईपा—८३० ई० धर्मपाल-देवपाल	अभिसमय-विभग
	तत्त्वस्वभावदोहाकोष
	बुद्धोदयभगवदभिसमय-गीतिका
विरूपा—८३० ई० देवपाल (८०६-४९)	अमृतसिद्धि-दोहाकोष
	कर्मचंडालिका- ,,
	विरूप-गीतिका
	विरूप वज्र-गीतिका
	विरूपपदचतुरशीति
	मार्गफलान्वितावबोधक
	सुनिष्प्रपंचतत्त्वोपदेश
डोम्बिपा—८४० ई० देवपाल	अक्षरद्विकोपदेश

कवि	कृतियाँ
	गीतिका
	नाडीविदुद्वारे योगचर्या
दारिकपा—८४० ई० देवपाल	महागुह्यतत्त्वोपदेश
	तथतादृष्टि
	सप्तम सिद्धान्त
गुडरीपा—८४० ई० देवपाल	गीति
कुक्कुरीपा—८४० ई० देवपाल	योगभावनोपदेश
	स्रवपरिच्छेदन
कमरिपा—८४० ई० देवपाल	असम्बधदृष्टि
	असम्बधसर्गदृष्टि
	गीतिका
कण्हपा—८४० ई० देवपाल	गीतिक
	महाढुढन
	वसततिलक
	असम्बधदृष्टि
	वज्रगीति
	दोहाकोष
गोरखनाथ—८४५ ई० देवपाल	गोरखवानी
	वायुतत्त्वोपदेश
टेंडणपा—८४५ ई० देवपाल-विग्रहपाल (८०६-४९-५४)	चतुर्योगभावना
महीपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल (८५०-५४-९०८)	वायुतत्त्व
	दोहागीतिका
भादेपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	चर्यापद
	(गीति)
धामपा—८७५ ई० विग्रहपाल-नारायणपाल	कालिभावनामार्ग
	सुगतदृष्टिगीतिका
	हुकारचित्तविदुभावनाक्रम

दसवीं शताब्दी

कवि	कृतियां
देवसेन—९९३ ई०	सावयधम्मदोहा
तिलोपा—९६० ई० राज्यपाल-गोपाल द्वि० विग्रह-पाल द्वि० (९०८-४०-६०-८०)	निवृत्तिभावनाक्रम करुणाभावनाधिष्ठान दोहाकोष महामुद्रोपदेश
पुष्पदंत—९५९-७२ ई० राठौड़ कृष्ण-खोट्टिग ती०-(९३९-६८-७२)	महापुराण (आदिपुराण उत्तरपुराण) यशोधरचरित नागकुमारचरित
शातिपा—१००० ई० विग्रहपाल-महीपाल (९६०-८८-१०३८)	सुखदुःखद्वयपरित्यागदृष्टि
योगीदु—१००० ई०	परमात्मप्रकाशदोहा योगसारदोहा
रामसिंह—१००० ई०	पाहुडदोहा
धनपाल—१००० ई०	भविसयत्तकहा

ग्यारहवीं शताब्दी

अज्ञातकवि—१००० ई० भोज (१००९-४२)	फुटकर रचनाएँ
अब्दुर्रहमान—१०१० ई०	संनेहरासय (संदेशरासक)
बब्बर—१०५० ई० कर्ण कलचुरी (१०४०-७०)	फुटकर रचनाएँ
कनकामर—१०६० ई०	करकंडचरिउ
जिनदत्तसूरि (१०७५-११५४)	चाचरि उपदेशरसायन कालस्वरूपकुलक

बारहवीं शताब्दी

कवि	कृतियां
हेमचंद्र सूरि—११७६ ई० कर्ण, जयसिंह, कुमारपाल आदि सोलंकी राजाओंके समकालीन	प्राकृतव्याकरण छंदोऽनुशासन देशीनाममाला
हरिभद्र सूरि—११५६ ई० जयसिंह-कुमारपाल (१०६३-११४२-७३)	णेमिणाहचरिउ
अज्ञात कवि—वीसलदेव (११५३-६४)	फुटकर (उपदेशतरंगिणीसे)
आम भट्ट—जयसिंह-कुमारपाल	,, ,,
विद्याधर—११८० ई० जयचंद (११७०-६४)	स्फुट कविताएँ
शालिभद्र सूरि—११८४ ई०	बाहुबलिरास
सोमप्रभ—११६५ ई०	कुमारपालप्रतिबोध
जिनपद्म सूरि—१२०० ई०	थूलिभद्द फाग
विनयचंद्र सूरि—१२०० ई०	नेमिनाथ चतुष्पादिका
चंदवरदाई—१२०० ई०	पृथिवीराज रासो

तेरहवीं शताब्दी

लक्खण—१२५७ ई०	अणुव्वयरयण पईव (अनुव्रतरत्नप्रदीप)
जज्जल—१२६० ई० हम्मीर (१२६२-६६)	फुटकर (प्राकृतपैंगलमें)
कुछ और अज्ञात कवि...तेरहवीं सदीका पूर्वार्ध	फुटकर रचनाएँ
हरिब्रह्म तेरहवीं सदीका उत्तरार्ध... मिथिला-नेपालके राजा हरिसिंहके मंत्री चंडेश्वरके आश्रित	फुटकर कविताएँ
अंबदेव सूरि—१३१४ ई०	समररास
अज्ञात कवि—१३०० ई०	शालिभद्रकक्का (बारहखड़ी)
,,	फुटकर(उपदेशामृततरंगिणीसे)
राजशेखर सूरि—१३१४(?) ई०	नेमिनाथ फाग

परिशिष्ट ३

कुछ ख़ास देहाती और तद्भव शब्द

शब्द	पृष्ठ
रंडी	४
चेल्लु (चेला)	,,
दीवे (दीवा)	,,
अच्छहु (अच्छा)	६
धधा	,,
अवर (और)	,,
जइ भिँड़ि (जब तक—मैथिली, मगही और भोजपुरीमे 'भिडि'का प्रयोग होता है)	,,
अइस (ऐसा)	,,
चगे (अच्छे, पंजाबीमे यह शब्द अभी भी जीवित है)	८
बणारसि (बनारस)	,,
आल-माल (क्रय-विक्रय, सौदा या सामान सूचक 'माल' शब्दका सगा जैसा ही यहाँका भी 'माल' मालूम पडता है)	,,
घरणी (गृहिणी)	१२
लुक्को (छिपा)	,,
बे (दो, गुजराती)	१४
थक्कु (रहै, थाक्—बगला)	,,
अणठीय (अपरिचित, अन्यस्थित —अन्यत्र स्थितिवाला अनठिया—मैथिली)	१६
नियड़ि (निकट, नियर—भोजपुरी, काशिका, अवधी और ब्रजभाषा आदिमे)	१८
खांटि (अच्छा, खाँटि-बंगला)	,,
टानऊ (खीचो, ऊपरकी ओर करो; टान—बं०)	,,
थाकिब (रहूँगा, बं०)	,,
अच्छंत (रहते, अछैत—मै०)	,,
बलॅद (बैल, बड़द—मै०)	,,
पागल	२०
मोॅउलिल (मुरझाया, मौलायल, मौलल—मै० मग० भो०	,,
एकली (अकेली)	,,
खाट सेज } मै० मग० भो० अव० का०	,,
जेम (जैसा, गु०)	२६
ढुक्कु (घुसा, ब्रज और बुंदेलीमे —देखा)	३०
थिउ (रहा)	३२
तलाय (तालाब)	३६
बट्टइ (है, बाटे-बाड़े, बाय— भोजपुरी काशिका)	,,
जेहा (जैसा)	,,
छुड (यदि ?)	४२

शब्द	पृष्ठ
णाइ (नाई, न्याई)	४४
लड्डु	४८
सक्कर	
खंड (खांड, खाँड)	
सोयवत्ति (सेवई)	
घीअउर (घेवर)	
सालण (सालन)	
पप्पड (पापड़)	
तिम्मण (तीमन, तेमन)	
लट्ठी (लाठी)	५४,९८
खाई (खाई, गड्ढा)	
मोक्कल (मुक्त, सिधी)	६२
पोट्टल (पोटर, पोटरी, पूँटली; मै० मग० भो० बं०)	६४
मेहली (महिला—मेहरी, सम्प्रति दासीके अर्थमे प्रयुक्त; भो० का० अव०)	६६
अच्छहि (है, आछे—अछि; बं० मै०)	
धाह (जलन, ताप; मै०)	६८
जावहिँ (जभी तक, मै०)	,,
केम (कैसा, गु०)	,,
बारह, सोलह, बीस, चउबीम, तीस, पंचास, सट्ठि, चउहत्तरि	८२
बे (दो, गु०)	८८
बण्णि (दोनों, सिधी—बिन)	,,
थक्कु (रहै, बं०—थाक्)	८८,९०
थाइ (रहै, गु०—थाय)	८८,९०
थक्क (था, रहा)	,,
दोरु (डोर, पुष्पदंत और एक अज्ञात कविने 'दोर'का प्रयोग किया है; पृ० २०२ और २८८ द्रष्टव्य)	१०८
कवण (कौन)	११६
चगउ (चंगा—पं०)	१२२
माय-बप्प (माँ-बाप)	१२८
अप्पण (अपना, मै०—अप्पन, भो०—आपन, बं०—आपनि)	१३२
अहेरी (शिकारिन)	
मूसा	
अमिअ	
थाती	
मइलि (मैला, मइल—मै० मग० भो०)	१३४
उजोली (इजोरी, अँजोरी)	
चद, चंदा	
बढ़ (मूढ़, मुग्ध; मै०—बूड़ि, बुड़)	१३४
नावड़ी (छोटी नाव; तुच्छ, क्षुद्र या लघु सूचक ड़ा और ड़ी प्रत्यय राजस्थानी भाषामें बहु-प्रयुक्त है। यथा गामड़ा, खेतड़ी आदि)	१३६

शब्द	पृष्ठ
चड़िया (चढ़कर)	१४०
कोंचा-ताला (कुजी-ताला; कुचा-कुंची, कोंचा-कोची ताला-ताली)	१४२,१४८
कामलि, कामरि (कंबल)	१४४
हउं (मैं, मै० मग० भो०—हम)	१४६,१४७
मँइ, मँयि (मै)	१४८
बापुड़ी (बापुरी—बेचारी)	१५०
ताँति (ताँत; मै० ताँति, भो० तँतिया, बं० ताँत)	,,
चगेड़ा (मै० मग० भो० का० अव० आदिमे सुप्रयुक्त चंगेरा; बाँसकी खपच्चियोंसे बना चौड़ा पात्र विशेष। बं०—चाङारि)	
सासु-नणँद (सास-ननद)	
लाँगा (लंगा, नंगा)	१५२
बेग (मेढक; बं० मै० मग० भो० बेङ)	१६४
हाँड़ी	,,
साँझ	,,
खंभा	,,
हाँउ, मो (मै)	१६६
मोकु (मुझको)	
माँझ	
बिहाणु	१८०
तुहुँ	
छोक्कर (छोकरा)	१९०
खेडा (गाँव, गु० राज०)	१९२
ढेक्कार (डकार; मै० मग० भो० ढेकार, बं० ढेकुर)	१९४
केयार (छोटा खेत; सं० केदार, प्रा० केयार, हिं० क्यारी, क्याली—प्राची० हि०, बं० केयारि)	
चगा (अच्छा; पंजाबीमे बहुत ही प्रयुक्त होता है, सिं० चङो, बं० चांगा—रोगमुक्त, स्वस्थ, मै० भो०मे भी इसी अर्थका द्योतक—'मन चंगा त कठौती गंगा')	१७२,१९४,२६६
खीरु (दूध, संप्रति सिधीमे यह जीवित और सुप्रयुक्त शब्द है)	१९४,२२२
थद्ध (गाढ़, सिं०मे ठंढा)	१९६
कणइल्ल (कर्णकील या कर्णफूल; मै० भो० का० कनइल—कनैल, करवीरका फूल। संभव है पहले इस फूलको कानोंमें लगाते रहे होंगे। वहाँ गाड़ी या हलमें जुते बैलोंके कंधेको बाहर न निकलने देनेके लिए	

शब्द	पृष्ठ
जुएके दोनो ओर जो कील लगाते है उन्हें भी कनइल वा कनैल कहा जाता है, क्योंकि वे बैलोके कानोके बिलकुल पास रहती है । गाछीम ग्रामका वह पेड़ भी, जो कोनेमे पड़ता हो कोनइला वा कनैला कहलाता है । पूर्वी युक्तप्रात और बिहारमे 'कनैला' नामवाले दो-चार गाँव भी है । काशिका और अवधीमे उसी फूलको कनेल वा कनेर कहते है)	२००
अमूहँ (हमको, हमे)	२०२
बाणिज्जार (व्यापारी; स०—वाणिज्यकार । 'बनजारा' शब्दका मूल यही मालूम पड़ता है)	२१४
टोप्पी (टोपी; यही बड़ी रहने पर टोप । प्राचीन पंडितोंने अंतःसारशून्य व्यक्तिकी आडम्बरपूर्ण वेष - भूषाकेलिए 'घटाऽऽटोप'का प्रयोग किया है । ऐसे व्यक्तिका किसीपर रोब गाँठना तिरहुतमें 'टोप-टहंकार दिखलाना' कहलाता है। 'तोप' मैथिली और भोजपुरीमे एक धातु भी है जिसका अर्थ झाँपना होता है)	
तुज्झ, तुह (तेरा, तुम्हारा)	२१८
महारी (मेरी; राज० म्हारी)	२२०
रसोइ (रसोई)	२२४
चेल्ला-चेल्ली (चेला-चेली)	२४८
पुत्थी (पोथी)	,,
बहुडि (फिर, लौटकर; अव० ब्रज० बहुरि)	२५२
सवत्ति (सौत)	
माइ (माँ)	२६८
ठठ (ठाठ?)	२८०
छेहलउ (अंतिम; गु० छेल्लो)	२८८
धण (धनि ! धन्ये !)	२६८
ढंखर (गैर-आबाद ज़मीन जहाँ बबूल-कीकर, ढाक आदिकी छोटी-छोटी झाड़-झाड़ियोंका विस्तृत जगल हो—बीच-बीचमे सूखे मैदान हों । ढंख तीन पातवाले ढाक या ढाँक को भी कहते है । युक्तप्रांतके पच्छिमी भाग और पजाबमे बहु-प्रयुक्त 'ढोर-डंगर', जो 'माल-मवेशी'का द्योतक है, ध्यान देने योग्य शब्द है । इसमेंका 'डंगर' तो अवश्य ही 'ढंखर'का भाई-भतीजा	

शब्द	पृष्ठ
होगा)	३१०
भित्तरि (भीतर)	३१४
हक्क (हाक—जोरसे पुकारने-की आवाज़)	
बप्पुड़ा (बेचारा, बापुरो, 'बप्पुड़ी'केलिए १५०वाँ पृष्ठ द्रष्टव्य)	३१८
इकलि (अकेली)	,,
पियरि, पीयर (पीली; मै० भो० पीयर, पीयरि	३१८,३२६
गरास (कौर, ग्रास)	३२२
दुब्बरि (दुबली; मै० भो०मे सुप्रयुक्त)	
खणे खण (छने छन, खने खन)	
हीआ (हृदय)	३२४
थोरय (थोडे)	३३२
बालु (बालू)	३४२
थाल (थाली)	,,
एकल्ला (अकेला)	३४८
हुड्डु (उद्दंड आदमी; मै० भो० का० अव० हुडु)	३५२
विटल (धूर्त, दुष्ट; भो०मे विट-लाहा-विटलाही आक्रोशात्मक गाली है। मै० 'बिहारि' शब्द भी वैसा ही है। का० अव०में भी विटारना मिलता है किंतु गंदा करनेके अर्थ मे। बं० बिटेल वा विटले—धूर्त, दुष्ट)	
बुहारी (वधू, गढवालीमे सप्रति भी यह शब्द सुप्रयुक्त है)	३५६
भल्ला (भला)	३६०
झुपड़ा (झोंपडा)	३६२
गुट्ठ (गाँव; सिधीमे 'गोठ'का यही अर्थ होता है)	
गाँव	३६४
हट्टि, चौहट्टि (हट्टी, चौहट्टी; प० गु० रा०मे सुप्रयुक्त)	,,
सामली (साँवली)	,,
राउलि (राजकुल; पच्छिमी हि० गु० राज०मे रावल)	,,
देउलि (देवकुल, देवल; लगता ऐसा है कि अत्यधिक प्रचलित होनेके कारण देउल संस्कृत होकर 'देवल' बन गया)	,,
वप्पीहा (पपीहा)	३६६
भल्ली, भल्ला (भाला)	३७२
फालिसिं (फालसा)	३९२
जादर (चादर; मणि-माणिक्य-गुम्फित या ज़रीके बेल-बूटों-वाली, मोतीके झालरवाली ओढ़नीकेलिए बारहवीं सदी-में इसका प्रयोग होने लगा। यों 'चादर' फारसी शब्द है	४००-४८८
षुप (उच्चारण खुप—खोंपा,	

शब्द	पृष्ठ
जूड़ा; ब० अस० उड़ि० मै० मग० भो० अव० ब्रज० आदि प्रायः सभी उत्तर भारतीय भाषाओंमें खोपा या खोप सुप्रयुक्त है)	४२४,४८०
संथ (सैंथ, सीथ, सीमत)	
खरी (खरी, खरा)	४३०
गमारि (गँवारिन)	
सुहाली (बिना चुपड़ा फुलका, पतली-रूखी रोटी; अवधी, भोजपुरी और तिरहुतिया बोलियोंमें सुप्रयुक्त 'सोहारी' शब्द इसी सुहालीका उत्तराधिकारी है)	४३२
गिंदू (गेंद, कंदुक)	४५४
काअर (कायर, कातर)	४५६
तुलक (तुरक, तुरुक)	४५४
हिंदू (यहाँ तेरहवीं सदीके अंतिम चरणमें मौजूद कवि जज्जलकी और चौदहवीं सदीके प्रथम चरणमें मौजूद जैन मुनि अंबदेव सूरिकी कविताओंमें 'हिंदू' आया है। एकने रणथंभोरवाले हम्मीरदेवकी प्रशंसामें और दूसरेने अलाउद्दीनकी प्रशंसामें कविताएँ लिखी हैं। पहले-पहल 'हिंदू' शब्दका इस्तेमाल किस	

शब्द	पृ
कविने और किस शताब्दीमें किया, कह नहीं सकते। किंतु यह नवीं सदीसे पहलेका नहीं हो सकता)	४५४-६
टोप्पर (नुकीली सी बड़ी टोपी; बं० टोपर)	४६२
सेर	४६
रंक	,,
पातसाहि (पातसाह, बादशाह—फा०)	४६
सालार (मार्गदर्शक, नेता;—जंग सेनापति—फा०)	,,
खान (खान—सरदारों—सामंतोंकी फारसी उपाधि)	,,
वइल्ल (बैल)	४७
डूगर (वृक्ष-वनस्पतिहीन टीला छोटा पर्वत; गुजरात और राजस्थानमें अत्यंत ही प्रचलित शब्द)	४७४-७६
कक्कर (ककड़)	४७
लडका	४७

संकेत—पं०-पंजाबी; सिं०-सिंधी बं०-बंगला; भो०-भोजपुरी; मै० मैथिली; म०-मगही; मरा०-मराठी, हिं०-हिंदी; गु०-गुजराती; राज०-राजस्थानी; सं०-संस्कृत; अस०-असमिया; उड़ि०-उड़िया।